जो बोलैं
तो हरिकथा
भगवान श्री रजनीश

जो बोलैं तो हरिकथा

(ग्यारह प्रश्नोत्तर प्रवचन)
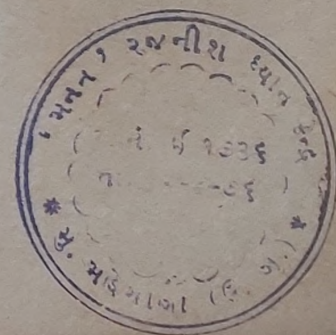
नये प्रकाशन

साहेब मिल साहेब भये	(प्रश्नोत्तर)
बहुरि न ऐसा दांव	,,
ज्यूं मछली बिन नीर	,,
दीपक बारा नाम का	,,
ज्यूं था त्यूं ठहराया	,,
जो बोलैं तो हरिकथा	,,

पॉकेटबुक्स

योग-दर्शन भाग : ५

योग-दर्शन भाग : ६

योग-दर्शन भाग : ७

योग-दर्शन भाग : ८
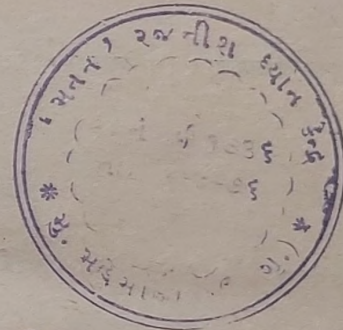
जो बोलैं तो हरिकथा

भगवान श्री रजनीश

प्रकाशक
मा योग लक्ष्मी
१७, कोरेगांव पार्क
पूना--४११ ००१

मुद्रक
सुरेश जगताप
जनसेवा मुद्रणालय
१९२, शुक्रवार पेठ
पूना--४११ ००२

प्रथम संस्करण : ११ दिसम्बर, १९८०

प्रतियां : डीलक्स : ५००
पेपरबैक : २५००

मूल्य : डीलक्स : ६० रुपये
पेपरबैक : ३० रुपये

संकलन-सम्पादन
स्वामी योग चिन्मय

संयोजन
स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

परिरूप व सज्जा
मा देव योजना

रजनीश फाउन्डेशन
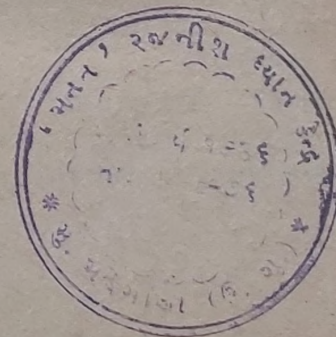
आमुख

मनुष्य जाति पाखंड में जीयी है। और इसलिए चूंकि मेरा संन्यासी प्रामाणिक रूप से जीना चाहता है––और प्रामाणिक का मेरे लिए अर्थ 'शास्त्र-सम्मत रूप से' नहीं। प्रामाणिक का अर्थ है––अपने बोध से। और यह बोध उसका निजी होगा, स्वतंत्र होगा। यह किसी के द्वारा आरोपित नहीं होगा। इसलिए मेरे संन्यासी का विरोध होने ही वाला है। इसमें कुछ आश्चर्यचकित करने वाली बात नहीं है।

अगर तुम प्रामाणिक हो कर जीओगे, तो पाखण्डी समाज में तुम्हारा विरोध होगा ही। क्योंकि तुम उन सबके पाखण्ड के लिए एक प्रश्न-चिह्न बन जाओगे।

मैं कहता हूं कि जैसा सत्य तुम्हारे भीतर हो, वैसा ही जीना है। उससे अन्यथा जीने की कोई जरूरत नहीं है। मुखौटे लगाने की कोई जरूरत नहीं है। फिर चाहे अपमान मिले––तो अपमान। फिर चाहे नर्क भी जाना पड़े, तो तैयार रहना; कोई फिक्र मत करना।

मेरी अपनी प्रतीति यह है कि जो प्रामाणिक रूप से जीता है, वह नर्क को भी स्वर्ग बना लेगा। और जो पाखण्डी है, वह अगर स्वर्ग भी चला गया, तो वह भी नर्क हो जायेगा।...

फिक्र मत करना अपमान की। प्रामाणिक रूप से जी कर अपमान मिले, तो भी जीवन में एक सुगंध होती है, एक अहोभाव होता है। गरदन भी कट जाये...। जीसस की कटी, मगर ओठों पर प्रार्थना रही। मंसूर की कटी, मगर ओठों पर मुस्कुराहट रही। सुकरात की कटी, मगर चारों तरफ धन्यता बरस रही थी।

प्रामाणिक व्यक्ति को दुख दिया नहीं जा सकता। हालांकि दुख देने की बहुत कोशिश की जायेगी। जिसने भीतर अपने को खण्डों में नहीं तोड़ा है, उसने स्वर्ग बसा ही लिया है। अखण्ड जो हो गया, वह स्वर्ग हो गया। और जो खण्डों में बंटा है, वह नर्क है। नर्क और स्वर्ग भौगोलिक नहीं हैं; आंतरिक अवस्थाएं हैं।

मेरी एक ही शिक्षा है––अखण्ड बनो; सहज बनो––और अपनी सहजता को समग्रता से जीओ। इसकी फिक्र ही मत करो कि किसी शास्त्र के अनुकूल बैठती है कि नहीं। क्योंकि जिसने शास्त्र रचा, वह और ढंग का आदमी होगा। उसने अपने हिसाब से रचा है। लेकिन लोग उलटी स्थितियों में पड़े हुए हैं!

कोई मनु के हिसाब से जी रहा है। कोई महावीर के हिसाब से जी रहा है। कोई बुद्ध के हिसाब से जी रहा है। कोई कृष्ण के हिसाब से जी रहा है। लेकिन ध्यान रखो, तुम्हें अगर कृष्ण के कपड़े नहीं बनते हैं, तो फिर क्या करोगे! हाथ-पैर काटोगे अपने!...

यही तो सारे धर्म कर रहे हैं––तुम्हें शास्त्रों के अनुसार होना चाहिए! फिर अगर तुम थोड़े लम्बे हो, तो काटो। अगर थोड़े छोटे हो, तो खिंचो। तुम्हारी जिंदगी मुश्किल में पड़ जायेगी।...

तो मैं किसी को आचरण नहीं देता। मेरे ऊपर यही सबसे बड़ा लांछन है; सबसे बड़ी आलोचना है कि मैं अपने संन्यासियों को आचरण नहीं सिखाता।

मैं उन्हें कपड़े नहीं दे सकता। क्योंकि किसी को छोटे पड़ेंगे, किसी को लम्बे पड़ेंगे। किसी को ढीले पड़ेंगे। किसी को चुस्त पड़ेंगे। मैं उन्हें कैसे आचरण दूं। मैं सिर्फ उन्हें भीतर का दीया जलाने की कला सिखाता हूं। फिर वे अपने कपड़े खुद काटें; बनायें। अपना आचरण खुद निर्मित करें। अपनी रोशनी में जीयें।

आचरण नहीं देता मैं––अंतस् देता हूं।...

हमें स्वतंत्रता का पाठ ही भूल गया; हम भाषा ही भूल गये! और पण्डित पुरोहितों ने तुम्हारे जीवन को विषाक्त कर दिया है। मैं चाहता हूं––मुक्त हो जाओ उन सबसे।

छोटी-सी जिंदगी है, इतना कर लो कि अपने भीतर ध्यान जल जाये, ध्यान की ज्योति उठ जाये, शेष सब अपने आप हो जायेगा। फिर कितना ही कष्ट झेलना पड़े, हर कष्ट एक चुनौती होगी। और हर कष्ट तुम्हारे लिए एक विकास का अवसर होगा, एक मौका होगा।

विरोध होगा। गालियां पड़ेंगी। अपमान होगा। मगर भीतर तुम्हारे शांति होगी, आनन्द होगा, उत्सव होगा। भीतर तुम्हारे परमात्मा के साथ मिलन चलता रहेगा।

अनुक्रम

समाधिस्थ स्वर : हरिकथा

पहला प्रश्न : भगवान ! 'जो बोलैं तो हरिकथा'—हरिकथा की यह घटना क्या है ? क्या यह घटना मौन व ध्यान की प्रक्रिया से गुजरने के बाद घटती है अथवा प्रार्थना से ? हरिकथा का पात्र और अधिकारी कौन है ? क्या हम आपके प्रवचनों को भी हरिकथा कह सकते हैं ?

योग मुक्ता ! सहजो का प्रसिद्ध वचन है :

जो सोवैं तो सुन्न में, जो जागैं हरिनाम ।
जो बोलैं तो हरिकथा, भक्ति करैं निहकाम ।।

जीवन जब विचार-मुक्त होता है, तो व्यक्ति एक पोली बांस की पोंगरी जैसा हो जाता । जैसे बांसुरी । फिर उससे परमात्मा के स्वर प्रवाहित होने लगते हैं ।

बांसुरी से गीत आता है, बांसुरी का नहीं होता । होता तो गायक का है । जिन ओठों पर बांसुरी रखी होती है, उन ओठों का होता है । बांसुरी तो सिर्फ बाधा नहीं देती ।

ऐसे ही कृष्ण बोले; ऐसे ही क्राइस्ट बोले । ऐसे ही बुद्ध बोले; ऐसे ही मोहम्मद बोले । ऐसे ही वेद के ऋषि बोले; उपनिषद के द्रष्टा बोले । और इस सत्य को अलग-अलग तरह से प्रगट किया गया । जैसे कृष्ण के वचनों को हमने कहा—'श्रीमद्भगवद्-गीता' । अर्थ है—भगवान के वचन । कृष्ण से कुछ संबंध नहीं है । कृष्ण तो मिट गये—शून्य हो गये । फिर उस शून्य में से जो बहा, वह तो परम सत्ता का है । उस शून्य में से जो प्रगट हुआ, वह तो पूर्ण का है । और कृष्ण ऐसे शून्य हुए कि पूर्ण के बहने में जरा भी बाधा नहीं पड़ी । रंचमात्र भी नहीं । इसलिए कृष्ण को इस देश में हमने पूर्णावतार कहा । राम को नहीं कहा पूर्णावतार । परशुराम को नहीं कहा पूर्णावतार ।

राम अपनी मर्यादा रख कर चलते हैं । उनकी एक जीवन-दृष्टि है । उनका आग्रह-पूर्ण आचरण है । वे पूरे शून्य नहीं हैं । पूर्ण की कुछ झलकें उनसे आयी हैं, लेकिन पूर्ण

पर भी उनकी शर्तें हैं ! पूर्ण उनसे उतना ही बह सकता है, जितना उनकी शर्तों के अनुकूल हो। उनकी शर्तें तोड़कर पूर्ण को भी बहने नहीं दिया जायेगा ! इसलिए राम को इस देश के रहस्यवादियों ने अंशावतार कहा। यह प्यारा ढंग है एक बात को कहने का। समझो, तो लाख की बात है। न समझो, तो दो कौड़ी की है।

अंशावतार का अर्थ यह होता है कि राम ने पूरी-पूरी स्वतंत्रता नहीं दी——परमात्मा को प्रगट होने की। कोई नैतिक व्यक्ति नहीं दे सकता। नैतिक व्यक्ति का अर्थ ही यह होता है कि उसका जीवन सशर्त है। वह कहेगा——'ऐसा ही हो, तो ठीक है।' उसके आग्रह हैं। उसने एक परिपाटी बना ली है; एक शैली है उसकी। जैसे रेल की पटरियां और उन पर दौड़ती हुई रेलगाड़ियां। चलती तो वे भी हैं; गतिमान तो वे भी होती हैं; मगर पटरियों पर दौड़ती हैं——पटरियों से अन्यथा नहीं।

नदियां भी चलती हैं, नदियां भी बहती हैं, वे भी गतिमान होती हैं, लेकिन उनकी कोई पटरियां नहीं हैं। उनके हाथ में कोई नक्शे भी नहीं हैं। कोई अज्ञात, प्राणों के अन्तश्चेतन में छिपा हुआ कोई राज बहाये ले जाता है उन्हें सागर की ओर। और कैसी अद्भुत बात है कि छोटी सी छोटी नदी भी सागर को खोज लेती है ! बिना मार्ग-दर्शक के, बिना किसी का हाथ पकड़े; बिना किसी शास्त्र के; बिना किसी समय-सारणी के; बिना किसी नक्शे के ! चल पड़ती है——और पहुंच जाती है। और कैसी उसकी चाल है ! कोई नियम में आबद्ध नहीं। जहां मिला मार्ग। कभी बायें, कभी दायें। कई बार लगता है कि अभी नदी बहती इस तरफ थी, अब बहने लगी उस तरफ। ऐसे कहीं पहुंचना होगा ! लेकिन फिर भी हर नदी पहुंच जाती है। पहुंच ही जाती है। जो चल पड़ा, वह पहुंच ही गया।

महावीर का प्रसिद्ध वचन है : 'जो चल पड़ा, वह पहुंच ही गया।' मगर चलने चलने में भी भेद होंगे।

एक मर्यादा में बंधी हुई गति है। और एक कृष्ण का अमर्याद व्यक्तित्व है। इसलिए कृष्ण को समझना मुश्किल। क्योंकि न नीति है कुछ, न अनीति है कुछ। न शुभ है कुछ, न अशुभ है कुछ। जैसा ले चले परमात्मा; बायें, तो बायें; दायें, तो दायें। किसी पंथ का कोई आग्रह नहीं है। अपंथी हैं। पंथ-मुक्त हैं। वामपंथी नहीं हैं——कि बायें ही चलेंगे। दक्षिण-पंथी नहीं हैं——कि दायें ही चलेंगे। मध्य-मार्गी नहीं हैं——कि मध्य में ही चलेंगे।

बुद्ध को भी इस देश में पूर्णावतार नहीं कहा। क्योंकि बुद्ध का भी आग्रह है——मध्य-मार्ग का। प्रत्येक पैर सम्यक होना चाहिए। देखो तो सम्यक, उठो तो सम्यक, बैठो तो सम्यक। जीवन की एक सुनिश्चित व्यवस्था होनी चाहिए; अनुशासन होना चाहिए। बुद्ध ने अनुशासन दिया इसलिए बौद्धों में उनका जो नाम है, वह है 'अनुशास्ता।'

महावीर को भी पूर्ण अवतार नहीं कहा जा सकता। उनकी जीवन-शैली तो और भी बंधी हुई है। राम से भी ज्यादा; बुद्ध से भी ज्यादा। वे तो पैर भी फूंक-फूंक कर

रखते हैं ! वे तो रात करवट भी नहीं बदलते, कि कहीं करवट बदलें अंधेरे में, कोई चींटी-चींटा दब जाये ! तो एक ही करवट सोये रहते हैं ! वे तो भोजन भी आग्रह से लेते हैं। आग्रह से लेने का अर्थ : वे सुबह-सुबह निर्णय करके निकलते हैं कि यह मेरी शर्त पूरी होगी, तो भोजन लूंगा। नहीं तो भोजन नहीं लूंगा।

भोजन भूख से नहीं लेते; भोजन के ऊपर एक शर्तबन्दी है। जैसे सुबह ही ध्यान में उतरेंगे, उठते समय निर्णय करेंगे कि आज ऐसी घटना घटे : इस द्वार से भोजन लूंगा, जिस द्वार पर कोई स्त्री अपने बच्चे को स्तन से दूध पिलाती खड़ी हो। अब अगर यह संयोग मिल जाये, तो भोजन लेंगे। मिले——न मिले। क्योंकि जिस द्वार पर स्त्री बच्चे को दूध पिलाती खड़ी हो; एक तो ऐसा द्वार खोजना कठिन। कोई द्वार पर खड़े होकर किसलिए बच्चे को दूध पिलायेगा ! पूरा घर पड़ा है; द्वार पर खड़े होकर बच्चे को स्तन से दूध पिलाना, जहां राह गुजर रही है; लोग आ रहे, जा रहे ! भारत में तो मुश्किल होगा। फिर अगर कोई स्त्री दूध पिला भी रही हो, तो जरूरी तो नहीं कि उसने महावीर को भोजन देने के लिए तैयारी रखी हो ! भोजन घर में बना भी न हो अभी ! यह भी हो सकता है : भोजन भी बना हो, तो जरूरी तो नहीं कि महावीर उसके द्वार पर अपना भिक्षापात्र फैलायें और वह न कह दे कि 'आगे बढ़ो।' हर घर से तो भिक्षा मिल नहीं जाती।

और महावीर उसी घर से भोजन लेंगे, जिस घर का निर्णय करके निकले हैं। एक बार तो यों हुआ कि छह महीने तक भोजन नहीं लिया ! अस्थि-पंजर मात्र रह गये। क्योंकि शर्त ही पूरी न हो। शर्त ऐसी थी कि पता नहीं——पूरी होती कि न होती। शर्त किसी को बताते भी नहीं थे; बता दें, फिर तो शर्त ही न रही। फिर तो कोई न कोई पूरा करवा देगा। शिष्य खबर कर देंगे। छह महीने ! और जो शर्त पूरी न हो आज, कल भी वही रहेगी। कल पूरी न हो——परसों भी वही रहेगी। जब तक पूरी न हो, तब तक वही रहेगी। तब तक शर्त भी बदलेंगे नहीं ! नहीं तो उसमें भी चालबाजी कर सकता है आदमी कि अब बदल लो, यह शर्त तो पूरी होती नहीं। चालबाजी का सवाल ही नहीं है। महावीर कोई किसी और के आदेश से अपने ऊपर ऐसा आरोपण नहीं कर रहे हैं। अपना ही उनका आरोपण है। अपना ही आग्रह है। निज से निकला है।

शर्त ले ली थी कि उस द्वार से भिक्षा लूंगा, जिस द्वार के सामने एक बैलगाड़ी खड़ी हो। बैलगाड़ी में गुड़ भरा हो। और बैलगाड़ी के पीछे एक गाय खड़ी हो। और गाय ने गुड़ में सींग मार कर अपने सींगों में गुड़ लगा लिया हो। उसके दोनों सींगों पर गुड़ लगा हो। बैलगाड़ी अभी भी खड़ी हो; गई न हो। गाय के दोनों सींगों पर गुड़ लगा हो उस द्वार से अगर भिक्षा मिलेगी, तो लूंगा। छह महीने में यह शर्त पूरी हुई ! जब पूरी हुई तो ही...।

एक बार शर्त ले ली——तीन महीने लग गये। शर्त ले ली थी कि 'कोई राजकुमारी

जिसके पैरों में जंजीरें पड़ी हों, प्रार्थना करे भोजन का, तो भोजन लूंगा।' अब एक तो राजकुमारी होगी तो पैरों में जंजीरें क्यों पड़ी होंगी! और पैरों में जिसके जंजीरें पड़ी होंगी, वह क्या प्रार्थना करेगी बेचारी, कि मेरे घर से भोजन ले लो! उसका क्या घर! यह तो कारागृह होगा। जब तीन महीने में यह शर्त पूरी हुई, तो महावीर ने भोजन लिया।

महावीर का जीवन सशर्त है। अतिनैतिक है। अतिमर्यादाबद्ध है। इसलिए जैनों ने भी महावीर की चिन्तना को, देशना को 'शासन' कहा है--जिन-शासन। एक-एक सूत्र है उस शासन का।

भारत के मनीषी सिर्फ कृष्ण को छोड़कर किसी को पूर्णावतार नहीं कह सके। क्योंकि कृष्ण की कोई शर्त नहीं है, कोई आग्रह नहीं है, कोई आचरण नहीं है, कोई मर्यादा नहीं है। कृष्ण की शून्यता समग्र है, पूर्ण है। वे हैं ही नहीं। उनसे परमात्मा को जो करवाना हो, करवा ले। न करवाना हो--न करवाये। इसलिए हम उनके वचनों को 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता' कह सके। उनके वचन उनके नहीं हैं। उनसे आये हैं--मगर उनके नहीं हैं। जैसे वृक्षों पर फूल खिलते हैं, मगर वृक्षों के ही थोड़े होते हैं। उन फूलों में जमीन का दान होता है। सूरज की किरणों का मिलन होता है। हवाओं की भेंट होती है। वे फूल इस समस्त सृष्टि के अनुदान से निर्मित होते हैं। कहीं से रंग आता है, कहीं से रूप आता है, कहीं से गंध आती है। कुछ मिट्टी देती है, कुछ आकाश देता है। कुछ हवायें देती हैं, कुछ प्रकाश देता है।

ऐसे ही जब कोई बिलकुल शून्य होता है, तो फिर जो बोले, वह हरिकथा हो जायेगी। इसलिए नहीं कि वह हरि के संबंध में बोल रहा है। हरि के संबंध में बोलने वाले तो बहुत लोग मिलेंगे। हरि के संबंध में तो घर-घर कथायें होती रहती हैं। जहां-तहां कथायें होती रहती हैं। मगर सहजो के इस सूत्र को समझना।

पहला सूत्र, उसकी भूमिका--'जो सोवैं तो सुन्न में'। जो यूं सो गये कि शून्य ही जिनका विश्राम हो गया है। जिन्होंने शून्य में अपने अहंकार को विर्सजित कर दिया है। शून्य ही जिनकी सुषुप्ति है। पतंजलि ने कहा है: समाधि में और सुषप्ति में थोड़ा-सा ही भेद है। थोड़ा-सा भी, और बहुत भी। यूं तो रत्ती भर, लेकिन रत्ती इतनी बड़ी कि जमीन आसमान को अलग-अलग कर दे।

समाधि और सुषुप्ति में समानता बड़ी है, कि दोनों ही हालत में तुम खो जाते हो। गहरी सुषुप्ति में जब स्वप्न भी नहीं होते, तो तुम कहां बचोगे! तुम लीन हो गये होते हो विराट में। इसलिए तो सुषुप्ति के बाद--आधी घड़ी की सुषुप्ति भी हो जाये, तो सुबह कितने ताजे होकर लौट आते हो! तुम्हें पता भी नहीं चलता--कौन दे गया यह ताजगी! कौन दे गया यह रस! कौन भर गया फिर से तुम्हें जीवन से! कल सांझ तो कितने थके थे, कितने टूटे थे! कितने उखड़े थे! फिर पुनरुज्जीवित हो उठे हो। सब

थकान मिटी। सब हार मिटी। सब पराजय खो गई। सब चिन्तायें विदा हो गईं। तुम किसी अमृत का घूंट पी कर लौट आये हो। मगर तुम्हें कुछ पता नहीं--कहां घटा यह, कैसे घटा यह--कहां तुम गये! तुम थे ही नहीं, तब जाना हुआ था। तुम मिटे थे, तब विराम आया था। तुम खो गये थे, लीन हो गये थे। कोई बचा ही न था मैं-भाव, तब सुषुप्ति...। स्वप्न भी न बचा था, विचार भी न बचा था, तो 'मैं' कहां बचता! 'मैं' भी तो एक स्वप्न है, एक विचार है। एक धारणा मात्र है।

मन तो बिलकुल ही मिट गया था, तिरोहित हो गया था, वाष्पीभूत हो गया था। तब सुषुप्ति में तुम परमात्मा में लीन हो गये, जैसे लहर सागर में लीन हो जाये। फिर उठे, तो ताजी होकर उठे। सागर का सारा रस लेकर उठे। सागर धो गया--सब चिन्तायें, सब धूल--पोंछ गया सब। मन की जो-जो गंदगी थी, सब बहा ले गया। आयी बाढ़--ताजा कर गयी। आयी बाढ़ सब कचरा-कूड़ा बहा ले गयी। वसंत से गुजर गये; मधुमास से गुजर गये। अमृत में एक डुबकी लगा आये। इसलिए सुबह ताजे हो।

पतंजलि कहते हैं: सुषुप्ति में व्यक्ति परमात्मा में लीन होता है। मगर एक भेद है समाधि और सुषुप्ति का। सुषुप्ति में उसे होश नहीं होता और समाधि में उसे होश होता है। इतना-सा भेद है--होश का। घटना एक ही घटती है। सुषुप्ति में भी शून्य हो जाते हो, मगर तुम्हें होश नहीं होता। इसलिए पाते हो, और फिर खो देते हो। जब होश ही नहीं है...।

जैसे बेहोश आदमी के हाथ में किसी ने कोहेनूर हीरा रख दिया। अब इसका क्या भरोसा, कहां पटक आयेगा! कहां खो आयेगा! कुत्ते को भगाने के लिए फेंक कर मार दे! इसका क्या भरोसा! सोये हुए आदमी का क्या भरोसा! इसके हाथ में तुम कुछ भी दे दो। इसे पता ही नहीं है--यह है; हाथ है; हाथ में कुछ है; क्या है! यह बेहोश है।

समाधि में बस इतना ही फर्क है: सुषुप्ति + होश; सुषुप्ति + ध्यान। समाधि में दीया जलता रहता है होश का। 'मैं' तो मिट जाता है; विचार मिट जाते हैं, मगर एक परिपूर्ण जागरूकता छायी रहती है। इसलिए सुबह जब तुम उठते हो, तो इतना ही नहीं कि तुम अमृत का घूंट पी कर आ गये अनजाने में। तुम जानते हो, तुम कहां गये थे, कैसा घूंट पिया; कैसे लौटे। तुम्हें राह का पता है; आने-जाने का पता है, इसलिए तुम जब जाना चाहो, तब जा सकते हो। जब आंख बंद करो, तब चले जाओ।

'जो सोवैं तो सुन्न में'--इस समाधि की अवस्था को कहेंगे: शून्य में सो जाना। मगर होशपूर्वक, बोधपूर्वक। ऐसे शून्य से जो फिर जागता है--'जो जागैं हरिनाम।' फिर उस जागरण में उठो तो हरिनाम है, बैठो तो हरिनाम है। बोलो तो, न बोलो तो; चुप रहो तो, गुनगुनाओ तो; कुछ भी करो...। ऐसा मत सोचना कि समाधि से लौटा

हुआ व्यक्ति राम-राम, राम-राम, हरि-हरि—ऐसा जपता रहता है। यह मतलब नहीं है।

'जो सोवैं तो सुन्न में, जो जागैं हरिनाम।' ऐसे व्यक्ति की निद्रा समाधि होती है, और ऐसे व्यक्ति का जागरण प्रभु-स्मरण होता है। 'जो बोलैं तो हरिकथा'—अगर ऐसा व्यक्ति बोले—तो हरिकथा। न बोले, तो भी हरिकथा। उसके पास भी बैठ जाओ, तो हरिकथा।

जरूरी नहीं है कि शब्द ही हों; निःशब्द भी हो। सुनने वाला चाहिए। तरंगित होने वाला हृदय चाहिए। तो ऐसे समाधिस्थ व्यक्ति के पास उठने-बैठने में भी हरिकथा हो जायेगी।

'भक्ति करैं निहकाम'। और ऐसे व्यक्ति के जीवन में जो भी है, सब भक्ति है। कोई कामना नहीं है। तुम्हारी तो भक्ति झूठी भक्ति है। तुम्हारी भक्ति में तो हमेशा कामना होती ही है। तुम भक्ति भी करते हो, तो पीछे वासना होती है कि यह मिल जाये, वह मिल जाये। न, चलो, संसार का मांगोगे, तो परलोक का मांगोगे, मगर मांगोगे जरूर।

तुम्हारी परमात्मा की धारणा यह है कि मिल जाये तो उससे यह मांग लूं, वह मांग लूं। सोचो कभी, अगर परमात्मा मिल जाये, तो क्या करोगे? एकदम मांगों ही मांगों की कतार बन जायेगी। फेहरिश्त पर लिखो एक दिन बैठकर, कि क्या-क्या मांगोगे, अगर परमात्मा मिल जाये। तो तुम चकित हो जाओगे कि क्या-क्या छोटी-छोटी बातें मांगने का मन में विचार आ रहा है! कि धन मांग लूं; पद मांग लूं; कि शाश्वत जीवन मांग लूं; कि कभी मरूं न। यह मांग लूंगा, वह मांग लूंगा। ऐसा धन मांग लूंगा कि चुके ही नहीं। ऐसा पद मांग लूंगा, जो छिने ही नहीं। ऐसा यौवन मांग लूंगा, जो मिटे ही नहीं।

और छोटे बच्चों का ही नहीं, बड़े से बड़े बूढ़ों का भी भक्ति के नाम पर वासना का ही खेल चलता रहता है! छोटा बच्चा भी जब अपने पिता के पास आ कर डैडी डैडी करने लगता है, तो पिता जानता है कि अब यह पैसे मांगेगा—कि आज सिनेमा जाना है, कि गांव में प्रदर्शनी आयी है; कि मदारी तमाशा दिखा रहा है; कि मिठाई खरीदनी है; कि वह आईसक्रीम बिक रही है! यह कुछ मांगेगा।

पति जानते हैं कि अगर घर आयें और पत्नी पैर से जूता निकाल कर रख दे और पानी से पैर धोने लगे, तो समझ लो कि फंसे! कि साड़ी खरीदवायेगी। कुछ इरादे खतरनाक दिखते हैं! पति घर आये, और फूल ले आये, और आइसक्रीम ले आये, और मिठाई की टोकरी ले आये, तो पत्नी भी जानती है कि इरादे क्या हैं। वह भी समझती है कि कुछ मांग भीतर है। कि आज मेरी देह मांगेगा। वह पहले ही से देख कर यह रंगढंग, बातें करने लगेगी कि मेरे सिर में दिन भर से दर्द है; कि मेरी कमर टूटी जा

रही है। कि आज नौकरानी नहीं आयी। बच्चे के दांत निकल रहे हैं। चूल्हा नहीं जल रहा है। लकड़ी गीली है। मुझे बुखार चढ़ रहा है। वह भी रास्ते खोजने लगेगी!

इस जगत में तो हम सारे संबंध ही वासना के बनाते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बोल रही थी कि 'पता नहीं कहां मेरी अंगूठी खो गयी। सौ रुपये की थी।' नसरुद्दीन ने कहा, 'बिलकुल फिक्र न कर। मेरे भी सौ रुपये खो गये हैं। मैं बिलकुल फिक्र नहीं कर रहा।'

पत्नी बोली, 'तुम्हारे कहां खो गये हैं?'

उसने कहा, 'कहां! कहां खोते हैं? मगर मैं फिक्र नहीं कर रहा हूं, क्योंकि मुझे अंगूठी मिल गयी है एक सौ रुपये की!'

पत्नी ने कहा, 'तुम्हें अंगूठी कहां मिली जी?'

कहा, 'वहीं, जहां खोये मेरे रुपये। खीसे में मेरे रुपये थे। सौ रुपये तो नदारद हो गये हैं, लेकिन अंगूठी खीसे में मिल गयी है!'

ये पत्नियां पहले पतियों के खीसे टटोलती हैं। पहला काम!

नसरुद्दीन एक दिन अपने बेटे फजलू को मार रहा था कि 'तूने पांच रुपये क्यों निकाले? रख रुपये।'

उसकी पत्नी ने कहा कि 'क्यों मार रहे हो जी उसको! तुम्हारे पास कोई सबूत है कि इसने पांच रुपये निकाले?'

उसने कहा, 'है सबूत। घर में तीन ही आदमी हैं। एक मैं हूं। मैंने निकाले नहीं। मेरे ही रुपये—मैं क्यों निकालूंगा? और निकालूंगा ही, तो फिर परेशानी क्या है, चिन्ता क्या है! दूसरी तू है। तूने निकाले नहीं, यह पक्का है।'

पत्नी ने कहा, 'यह तुम कैसे कह सकते हो कि मैंने नहीं निकाले?'

उसने कहा, 'नहीं निकाले तूने; क्योंकि डेढ़ सौ रुपये में से पांच निकालेगी तू! डेढ़ सौ ही जाते। यह इसी हरामजादे की शरारत है। पांच रुपये गये—ये फजलू ने निकाले हैं। तू निकालती, डेढ़ सौ निकालती। मैं निकालता—झगड़े का कोई सवाल उठता नहीं। मुझे पता ही होता कि मैंने निकाले हैं। घर में तीन आदमी हैं। रख दे फजलू पांच रुपये।'

इस जगत में नाते-रिश्ते सब ऐसे हैं। मगर जगत के ही होते तो भी ठीक था; तुम परमात्मा के मंदिर में भी जाते हो, तो कुछ मांगने ही। मस्जिदों में दुआओं के लिए हाथ फैलाते हो; मगर मांग! गिरजाघरों में, मजारों पर—तुम जहां जाओगे, तुम्हारी वासना तुम्हारा पीछा करती है। सत्य-नारायण की कथा करवाओगे; हरिकथा करवाओगे; रामायण करवाओगे। किसी पंडित को पकड़ लाओगे। ये रामचरितमानस मर्मज्ञ—पण्डित रामकिंकर शास्त्री! इनसे करवाओ! मगर पीछे प्रयोजन है।

न तुम्हारी हरिकथा हरिकथा है; न तुम्हारा हरिभजन हरिभजन। क्योंकि तुम

सदा कामना से भरे हो। सहजो का यह सूत्र समझो। इस सूत्र में सारी बात आ गयी। जैसे पूरा धर्म आ गया। कुछ बचा नहीं। सारा निचोड़ आ गया—योग का, भक्ति का, ज्ञान का।

'भक्ति करैं निहकाम।' एक ऐसी भी भक्ति है, जो बिना वासना के होती है।

अकबर ने एक दिन तानसेन को कहा कि 'तानसेन! बहुत बार तेरे संगीत को सुन कर मैं ऐसा आन्दोलित हो जाता हूं! मैं जानता हूं कि इस पृथ्वी पर कोई व्यक्ति तेरे जैसा नहीं है। तू बेजोड़ है; तू अद्वितीय है। लेकिन कभी-कभी एक सवाल मेरे मन में उठ आता है। कल रात ही उदाहरण के लिए उठ आया। जब तू गया था वीणा बजा कर और मैं गदगद हो रहा था और घण्टों तल्लीन रहा। तू तो चला गया। वीणा भी बन्द हो गयी। मगर मेरे भीतर कुछ बजता रहा, बजता रहा, बजता रहा। और जब मेरे भीतर भी बजना बन्द हुआ, तो मुझे यह सवाल उठा। यह सवाल कई बार पहले भी उठा। आज तुझसे पूछे ही लेता हूं।

'सवाल मुझे हमेशा उठता है कि तूने किसी से सीखा होगा; तेरा कोई गुरु होगा! कौन जाने, तेरा गुरु तुझसे भी अद्‌भुत हो! तूने कभी कहा नहीं; मैंने कभी पूछा नहीं। आज पूछता हूं; छिपाना मत। तेरे गुरु जीवित हैं? अगर जीवित हों, तो मुझे उनके दर्शन करने हैं। तेरे गुरु जीवित हैं? अगर जीवित हैं, तो एक बार उन्हें दरबार ले आ। उनका संगीत सुनूं, ताकि यह जिज्ञासा मेरी मिट जाये।'

तानसेन ने कहा, 'मेरे गुरु जीवित हैं। हरिदास उनका नाम है। वे एक फकीर हैं। वे यमुना के तट पर एक झोपड़े में रहते हैं। लेकिन जो आप मांग कर रहे हैं, वह पूरी करवानी मेरे वश के बाहर है। उन्हें दरबार नहीं लाया जा सकता। हां, दरबार को ही वहां चलना हो, तो बात और। वे यहां नहीं आयेंगे। उनकी कुछ मांग न रही। मैं तो यहां आता हूं, क्योंकि मेरी मांग है। मैं तो यहां आता हूं, क्योंकि अभी धन में मेरा रस है। रही तुलना की बात, तो मेरी आप उनसे तुलना न करें। कहां मैं—कहां वे! मैं तो कहीं पासंग में भी नहीं आता। मुझे तो भूल ही जायें; उनके सामने मेरा नाम ही न रखें!'

और भी अकबर कुतूहल से भर गया। उसने कहा, 'तो कोई फिक्र नहीं! मैं चलूंगा। तू इन्तजाम कर। आज ही चलेंगे।'

उसने कहा, 'और भी अड़चन है कि वे फरमाइश से नहीं गायेंगे। इसलिए नहीं कि आप आये, तो वे गायें।'

अकबर ने कहा, 'तो वे कैसे गायेंगे?'

तानसेन ने कहा, 'मुश्किलें हैं—बहुत मुश्किलें हैं। सुनने का एक ही उपाय है—चोरी से सुनना। जब वे बजायें, तब सुनना। इसलिए कुछ पक्का नहीं है। लेकिन मैं पता लगवाता हूं। आमतौर से सुबह तीन बजे उठ कर वे बजाते हैं। वर्षों उनके पास रहा हूं। उस घड़ी वे नहीं छोड़ते। जब तारे विदा होने के करीब होने लगते हैं; अभी जब सुबह हुई नहीं होती; उस मिलन-स्थल पर—रात्रि के और दिन के—वे अपूर्व गीतों में फूट पड़ते हैं। अलौकिक संगीत उनसे जन्मता है। हमें छुपना पड़ेगा। हम दो बजे रात चल कर बैठ जायें। कभी तीन बजे गाते हैं; कभी चार बजे गाते हैं; कभी पांच बजे। कौन जाने, कब गायें! हमें छुप कर बैठना होगा। चोरी-चोरी सुनना होगा। क्योंकि उन्हें पता चल गया कि कोई है, तो शायद न भी गायें!'

अकबर की तो जिज्ञासा ऐसी बढ़ गयी थी कि उसने कहा कि 'चलेंगे। कोई फिक्र नहीं।'

रात जा कर दोनों छुप रहे। तीन बजे—और हरिदास ने अपना इकतारा बजाया। अकबर के आंसू थामे न थमें! यूं आह्लादित हुआ, जैसा जीवन में कभी न हुआ था। फिर जब दोनों लौटने लगे रथ पर वापस, तो रास्ते भर चुप रहा। ऐसी मस्ती में था कि बोल सूझे ही नहीं। जब महल की सीढ़ियां चढ़ने लगा, तब उसने तानसेन से कहा, 'तानसेन! मैं सोचता था, तेरा कोई मुकाबला नहीं है। अब सोचता हूं कि तू कहां! तेरी कहां गिनती! तेरे गुरु का कोई मुकाबला नहीं है। तेरे गुरु गुदड़ी के लाल हैं। किसी को पता भी नहीं; आधी रात बजा लेते हैं; कौन सुनेगा! किसी को पता भी नहीं चलेगा और यह अद्‌भुत गीत यूं ही बजता रहेगा और लीन हो जायेगा! तेरे गुरु के इस अलौकिक सौंदर्य, इस अलौकिक संगीत का क्या रहस्य है, क्या राज है? तू वर्षों उनके पास रहा, मुझे बोल।'

उसने कहा, 'राज सीधा-सादा है। दो और दो चार जैसा साफ-सुथरा है। मैं बजाता हूं इसलिए, ताकि मुझे कुछ मिले। और वे बजाते हैं इसलिए, क्योंकि उन्हें कुछ मिल गया है। वह जो मिल गया है, वहां से उनका संगीत बहता है। मांग नहीं है वहां—अनुभव, आनन्द। आनन्द पहले है, फिर उस आनन्द से बहता हुआ संगीत है। मेरा संगीत तो भिखारी का संगीत है। यूं तो वीणा बजाता हूं, लेकिन आंखें तो उलझी रहती हैं—क्या मिलेगा! हृदय तो पूछता रहता है: आज क्या पुरस्कार मिलेगा! आज सम्राट क्या देंगे! प्रसन्न हो रहे हैं या नहीं हो रहे हैं? आपके चेहरे को देखता रहता हूं। पूरा-पूरा नहीं होता वीणा में। इसलिए आप ठीक ही कहते हैं: मेरी उनसे क्या तुलना! वे होते हैं, तो पूरे होते हैं।'

इस बात को खयाल में रखना। जिस दिन तुम आनन्द का अनुभव कर लोगे, उस आनन्द से अगर भक्ति उठी, अर्चना उठी, वन्दना उठी, तो उसका सौन्दर्य और। वह इस पृथ्वी पर है, पर इस पृथ्वी की नहीं। वह आकाश से उतरा हुआ फूल है। और जिस दिन तुम आनन्द को अनुभव कर लोगे, उस दिन जो बोलोगे, हरिकथा ही होगी।

योग मुक्ता! तू पूछती है कि 'क्या हम आपके प्रवचनों को हरिकथा कह सकते हैं?' यह भी अगर मुझसे पूछना पड़े, तो तूने फिर मुझे सुना ही नहीं। और मैं जानता

हूं कि अड़चन है मुक्ता को। सुनने में अड़चन है। मांग बाधा डालती रहती है। जब से यहां आयी है, हृदय बस मांग से ही भरा हुआ है। मुझे आये दिन पत्र लिखती रहती है कि 'मैं चेतना के बिलकुल बगल में बैठती हूं। जब आप आते हैं, तो आप नमस्कार करते हैं। चेतना को तो देखते हैं, मुझे क्यों नहीं देखते ?' इसीलिए नहीं देखता। देखूंगा ही नहीं। भूल-चूक से तू दिखाई भी पड़ जाती है, तो जल्दी से मैं और कहीं देखने लगता हूं। कि अरे! यह तो मुक्ता है! जब तक तेरी मांग रहेगी, तब तक देखूंगा भी नहीं।

रोज प्रश्न लिखती है। दो-चार प्रश्न रोज उसके होते हैं। और दो-चार-छह दिन के बाद एक प्रश्न जरूर होता है कि 'आप मेरे प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं?' आज संभवतः पहली बार उसके प्रश्न का उत्तर दे रहा हूं। और वह भी इसीलिए दे रहा हूं, ताकि उसको झकझोर सकूं।

क्योंकि तेरे मन में ध्यान आकर्षित करने की आकांक्षा बसी हुई है। तू प्रश्न भी पूछती है, तो प्रश्न के लिए नहीं; 'तेरे प्रश्न' का उत्तर मिलना चाहिए! तेरा नाम दोहराऊं!

तू चेतना के बगल में बैठती ही इसलिए है कि जब मैं सीढ़ियां चढ़ता हूं——तू वहां बैठती ही इसलिए है, क्योंकि सीढ़ियां चढ़ता हूं, तो मेरे सामने ठीक चेतना पड़ती है। तो तुझे आशा होगी कि उसके बगल में बैठेगी, तो वहां मैं तुझे देखूंगा। उसी आशा में तू बैठी है! वही आशा तेरे और मेरे बीच बाधा बनी है। वही कामना...।

मैं तो हरिकथा ही कह रहा हूं, मगर तेरे लिए हरिकथा नहीं हो पा रही है। मेरे कहने से ही क्या होगा? सुनने वाला भी तो चाहिए!

तू जब तक निष्काम भाव से नहीं यहां उठेगी-बैठेगी, तब तक अड़चन बनी रहेगी। तब तक मेरे तेरे बीच एक दीवाल बनी रहेगी। नहीं तो यह प्रश्न ही नहीं उठता कि 'क्या हम आपके प्रवचनों को भी हरिकथा कह सकते हैं?' वर्षों यहां मेरे पास रहने के बाद भी अगर मुझको ही कहना पड़े कि मेरे प्रवचन हरिकथा हैं, तो हद्द हो गयी! तो तूने क्या खाक सुना! तू क्या यहां कौड़ियां बटोरती रही?

अगर तुझे यह भी अभी पक्का नहीं है कि यह जो कहा जा रहा है, हरिकथा है, तो यहां तू क्या कर रही है? समय खराब क्यों कर रही है? जा कहीं——जहां हरिकथा हो रही हो! तलाश किसी और को। शायद यह जगह तेरे लिए नहीं। या तो मिट——या कहीं और खोज। यह तो उनके लिए है जगह, जो मिटने को तत्पर हैं, तैयार हैं। वे गदगद हो रहे हैं; वे आनन्दित हैं। उनके भीतर रस की धार बह रही है।

मैं राम का नाम लूं या न लूं, इससे क्या फर्क पड़ता है! मैं जो कहूंगा, वह हरिकथा है। नहीं कहूंगा, तो भी हरिकथा होगी। हरिकथा ही हो सकती है, क्योंकि मैं नहीं हूं——वही है।

शून्य में सोता हूं; हरिनाम में जागता हूं। चौबीस घण्टे वही गूंज रहा है। श्वास-

श्वास में वही रमा है। हृदय की धड़कन-धड़कन में उसको ही पाता हूं। तुममें भी उसे ही देखता हूं। हां, किसी के भीतर बहुत परदों में छिपा हुआ है——बहुत घूंघटों में; किसी ने जरा हिम्मत की है, घूंघट उठाया है।

तू कम से कम इतना तो कर! कम से कम किसी मारवाड़ी सन्नारी की तरह थोड़ा-सा तो घूंघट उठा! जरा दो उंगलियों से ही घूंघट को उठाकर मेरी तरफ देख! मगर तू बैठी है इस आशा में कि मैं तेरा घूंघट उठाऊं! कि मैं तुझे मनाऊं! फिर यह काम नहीं होने वाला! फिर यह बात नहीं बनेगी।

मुझसे जो अपेक्षा लेकर बैठा है किसी तरह की, वह चूक ही जायेगा। और मेरे साथ जिसका अपेक्षा का कोई संबंध नहीं है, वह मुझसे हजारों मील दूर हो, तो भी नहीं चूकेगा।

मुक्ता दूर थी; अफ्रीका थी। सब छोड़-छाड़ कर आ गयी। मगर अब भी मेरे लिए अफ्रीका में ही है। फासला यूं कम नहीं होता। ये फासले इस तरह कम नहीं होते। ये फासले कम करने के ढंग और हैं। अफ्रीका से यहां आओ या न आओ, लेकिन मेरे तुम्हारे बीच कोई कामना, कोई मांग शेष नहीं रह जानी चाहिए। मिट गये फासले। फिर चाहे चांद-तारों पर रहो, तो भी मेरे और तुम्हारे बीच कोई दूरी नहीं है। और नहीं तो मेरे बगल में बैठ जाओ, मेरे पैर पकड़ कर बैठे रहो, कुछ भी न होगा। मेरे पैरों में कुछ भी न पाओगे। मेरा हाथ हाथ में लिए बैठे रहो जन्मों तक, तो भी कुछ न मिलेगा।

यह बात थोडी समझने की है। शून्य हो जाओ मेरे पास, तो सत्संग शुरू हो। जो शून्य होकर बैठे हैं, उनके लिए सत्संग शुरू हो गया है।

अनेक भारतीय मित्र पत्र लिख कर मुझे पूछते हैं कि 'न मालूम कितने विदेशी मित्र हिन्दी प्रवचन भी सुनने आते हैं! इनकी क्या समझ में आता होगा?' समझ की बात नहीं है। वे जो विदेशी मित्र यहां बैठे हैं चुपचाप, उन्हें भी मालूम है, मुझे भी मालूम है कि हिन्दी उनकी समझ में नहीं आयेगी। मगर सत्संग का समझने, न-समझने से कुछ लेना-देना नहीं है। मेरी उपस्थिति तो समझ में आयेगी। मेरी मौजूदगी तो समझ में आयेगी।

सच तो यह है, मुझे बहुत से विदेशी मित्र लिखते हैं कि जब आप अंग्रेजी में बोलते हैं, तो हमारी बुद्धि बीच में आ जाती है। हम सोच-विचार में लग जाते हैं। वह मजा आ नहीं पाता, जो मजा जब आप हिन्दी में बोलते हैं! क्योंकि बुद्धि को तो कुछ करने को बचता ही नहीं। हमारी कुछ समझ में तो आता नहीं कि आप क्या कह रहे हैं। सिर्फ आपकी उपस्थिति रह जाती है। हम रह जाते हैं, आप रह जाते हैं; बीच में कोई व्यवधान नहीं रह जाता। अंग्रेजी में बोलते हैं, हमारी समझ में आता है, तो सोच भी उठता है, विचार भी उठता है : ठीक है या गलत है! सहमति असहमति होती है; पक्ष विपक्ष होता है। 'क्या बात कही पते की'——तो अच्छा लगता है। अगर हमारी धारणा के कोई

विपरीत बात चली जाती है, तो दिल तिलमिला जाता है कि यह तो ईसाइयत के खिलाफ बात हो गयी और मैं तो ईसाई घर में पैदा हुआ ! यह कैसे हो सकता है ? यह बात ठीक नहीं है। सत्संग में बाधा पड़ती है।

मगर इस देश के अभाग्य की कोई सीमा नहीं है। जब मैं अंग्रेजी में बोलता हूं, तो जो हिन्दुस्तानी मित्र अंग्रेजी नहीं समझते, वे आना बंद कर देते हैं। उन्हें क्या पड़ी है ! अंग्रेजी समझ में आती नहीं है। सत्संग का राज भूल गये। वे मुझे लिखते हैं कि आप अंग्रेजी में बोलते हैं, तो हम क्या करें आ कर ! इस बीच कुछ और काम-धाम देख लेंगे। कोई और उपयोग कर लेंगे समय का। क्यों समय गंवाना ! अरे, जब समझ में ही नहीं आना है, तो समय क्यों गंवाना ! जैसे समझ ही सब कुछ है। समझ के पार भी कुछ है। और जो समझ के पार है, वही सब कुछ है।

मुक्ता ! शून्य होना सीख, तो तुझे मेरे उठने-बैठने में भी हरिकथा सुनाई पड़ेगी। बोलने में, न बोलने में हरिकथा सुनाई पड़ेगी। मैं तेरी तरफ देखूं या न देखूं, इससे कुछ भेद न पड़ेगा। और तब जरूर देखूंगा। देखना ही होगा। आंख अपने आप तेरी तरफ मुड़ जायेगी। इस भीड़ में भी मेरी आंखें उनको खोज लेती हैं। कुछ मुझे चेष्टा नहीं करनी पड़ती। चेष्टा करूं, तो मुश्किल हो जाये। लेकिन इस भीड़ में भी मेरी आंख अपने आप उन पर टिक जाती है, जो शून्य होकर बैठे हैं। वे अलग ही मालूम होते हैं। उनकी भाव-भंगिमा अलग है। उनकी मौजूदगी का रस अलग है। उनकी मौजूदगी की प्रगाढ़ता अलग है। जैसे कि हजारों बुझे दीये रखे हों और उनमें दो-चार दीये जल रहे हों। तो वे दीये जो जल रहे हैं, अलग ही दिखाई पड़ जायेंगे। कुछ खोजना थोड़े ही पड़ेगा कि कौन-कौन से दीये जल रहे हैं ! हजारों दीये रखे हों बुझे, उस भीड़ में चार दीये जल रहे हों, तुम्हारी आंखें फौरन जलते हुए दीयों पर पहुंच जायेंगी।

यूं मैं इधर आता हूं; क्षण भर को हाथ जोड़ कर तुम्हें देखता हूं। जाते वक्त क्षण भर को हाथ जोड़ कर तुम्हें देखता हूं। मगर उस क्षण भर में उन पर मेरी आंखें पहुंच जाती हैं—मैं पहुंचाता नहीं; पहुंच जाती हैं—जो जल गये दीये हैं। जो बुझे दीये हैं उन पर आंखें ले जा कर भी क्या करूं ! और आंखें वहां जायेंगी भी, तो बुझे दीयों को क्या होगा ? और अकड़ आ जायेगी। और बुझने का रास्ता मिल जायेगा। यूं ही बुझे हैं, और बुझे में बुझ जायेंगे। यूं ही मरे हैं—और मर जायेंगे। उन पर तो मेरी भूल से भी नजर पड़ जाये, तो मैं हटा लेता हूं। क्योंकि उनको कहीं भी यह भ्रांति न हो जाये कि मैं उन पर ध्यान दे रहा हूं।

तूने पूछा : 'हरिकथा की यह घटना क्या है ?'

यहां घट रही है रोज और तुझे दिखाई नहीं पड़ती ? और यहां क्या घट रहा है यहां हम किसलिए इकट्ठे हैं ? यहां क्यों बैठे हैं ? वही तो वीणा छिड़ी है। वही तो गीत गुनगुनाया जा रहा है। उसी बरखा में तो हम नहा रहे हैं। वही अमृत तो बरस

रहा है। वे ही घटायें घिरी हैं। यूं कि जैसे सूरज निकला हो और कोई पूछता हो कि सूरज कहां है ! तो इतना ही सबूत देगा कि अन्धा है। सिर्फ अन्धा ही पूछ सकता है कि सूरज कहां है।

मुक्ता ! आंख खोल। यूं अंधा होने से नहीं चलेगा। मगर तेरा स्त्रैण-रोग जा नहीं रहा है। स्त्री के बुनियादी रोगों में एक रोग है कि वह चाहती है—आकर्षित करे। वह अचेतन रोग है। पुरुषों में भी होता है, लेकिन उसकी मात्रा पुरुषों में कम होती है, स्त्रियों में ज्यादा होती है। और दूसरी बीमारियां हैं, जो पुरुषों में ज्यादा होती हैं, स्त्रियों में कम होती है। सब बीमारियों का अंतिम हिसाब किया जाये, तो बराबर-बराबर पड़ती हैं। मगर फिर भी बीमारियों के भेद होते हैं। कुछ बीमारियां स्त्रियों में ज्यादा होती हैं। उसमें एक बीमारी है—आकर्षित करने की। सारे भीतर में एक ही भाव होता है कि मैं ध्यान का केन्द्र कैसे बन जाऊं ! सब की नजरें मुझ पर अटकें।

स्त्रियां सजावट करेंगी, श्रृंगार करेंगी—घंटों ! बस एक ही खयाल है कि सब की नजरें मुझ पर कैसे टिक जायें। कुछ भी करने को राजी हो सकती हैं, लेकिन सब की नजरें टिकाने के लिए बड़ा आकर्षण है, बड़ी लालसा है, बड़ी वासना है।

फिर यहां भी आ जायें, मेरे जैसे व्यक्ति के पास आ जायें, तो भी वह वासना की छाया पीछा करती है। वह खुमारी मिटती नहीं। वह पुरानी आदत टूटती नहीं। वह यहां भी भाव बना रहता है। यहां भी वही कलह और संघर्ष खड़ा होता है।

अब उसे केवल इतना ही खयाल नहीं है मुक्ता को कि मेरी दृष्टि उस पर क्यों नहीं पड़ती; साथ में उसको चेतना से भी ईर्ष्या जग रही है। वह भी स्त्री के गुणों का एक हिस्सा है। वह इससे ईर्ष्या से भी भर रही है कि चेतना पर मेरी नजर क्यों जाती है ! उस पर मेरी नजर क्यों नहीं जा रही है ? तो कहीं भीतर प्रतिस्पर्धा भी चल पड़ी है।

चेतना को कोई स्पर्धा नहीं है। किसी से कोई स्पर्धा नहीं है। न उसकी कोई मांग है। और 'बिन मांगे मोती मिलैं, मांगे मिलै न चून।' चेतना इधर आयी, तो उसकी कल्पना के बाहर। क्योंकि उसने कभी मांगा नहीं था और अचानक मैंने उसे एक दिन खबर कर दी कि वह आ जाये। लाओत्ज़ू में ही बस जाये। उसको भरोसा ही नहीं आया! उसे तो यह भी पता नहीं था कि मुझे उसका नाम भी मालूम होगा। उसकी कल्पना में भी कभी नहीं आया था; उसने कभी सपना भी नहीं देखा था कि लाओत्ज़ू में उसे रहने को जगह मिल जायेगी ! और कारण केवल इतना था कि मैंने उसके भीतर एक शून्य देखा। और जहां भी शून्य है, वहां ज्योति है।

फिर विवेक जब कभी बीमार होती है या कहीं चली जाती है, कभी दिन दो दिन के लिए, तो मेरा भोजन लाना, मेरे कमरे की व्यवस्था करनी—वह मैंने चेतना को सौंपा। उसको तो बिलकुल ही भरोसा नहीं था। वह तो इतने आनन्द में रोयी और नाची ! उसे भरोसा ही नहीं आया कि कोई कारण नहीं है कि उसे मैं क्यों चुन लिया हूं। यही

कारण है—कि उसके भीतर कोई आकांक्षा नहीं है।

मुक्ता! तू पूछती है: 'हरिकथा की यह घटना क्या है? क्या यह घटना मौन व ध्यान की प्रक्रिया से गुजरने के बाद घटती है अथवा प्रार्थना से?

प्रश्न हम बना लेते हैं और हमें सूझ-बूझ कुछ भी नहीं! न प्रार्थना का पता है—न मौन और ध्यान का; इसलिए प्रश्न बन जाता है। नहीं तो दोनों बातों में कुछ भेद है! मौन कहो, कि ध्यान कहो, कि प्रार्थना कहो—एक ही बात को कहने के अलग-अलग नाम हैं। जरा भी भेद नहीं है। ये भिन्न-भिन्न लोगों ने भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। कारण है भिन्न-भिन्न नाम देने का। इसमें भिन्न-भिन्न लोगों की अभिव्यक्ति है।

महावीर ने मौन कहा। इसलिए महावीर के संन्यासी को मुनि कहा जाता है। मगर उन मुनियों में से कितने लोग मौन हैं? मौन का किसको पता है उनमें से? मुझे न मालूम कितने मुनियों ने पूछा है कि 'हम ध्यान कैसे करें!' मैंने उनसे कहा, 'जब ध्यान ही नहीं कर सकते, तो तुम मुनि कैसे हो गये!' तो वे कहते हैं, 'मुनि होना तो दीक्षा से हो गया!' मैंने कहा, 'मुनि शब्द का भी अर्थ समझे हो? जब तक मौन ही नहीं सधा, तो क्या खाक मुनि हो जाओगे!' तो वे चौंकते हैं। वे कहते हैं, 'आपने याद दिलाया, तो याद आया कि बात तो सच है कि मुनि होने का तो अर्थ ही यही होता है कि मौन का अनुभव होना चाहिए।'

मुनि हो गये। एक दो दिन नहीं, वर्षों से मुनि हैं! एक सत्तर साल के बूढ़े मुनि ने मुझसे पूछा, जो चालीस साल से मुनि हैं, कि ध्यान कैसे करें? ध्यान क्या है?

महावीर ने उसे 'मौन' कहा। 'मौन' बड़ा प्यारा शब्द है। मौन का अर्थ है: भीतर विचार का शून्य हो जाना। वही जो सहजो कह रही है—जो सोवैं तो सुन्न में। शून्य हो जाये जो भीतर—निर्विचार हो जाये; बीज विचार के दग्ध हो जायें; चित्त का जाल कट जाये; भीतर सन्नाटा छा जाये—तो मुनि। फिर अर्थ मिलेगा जीवन का, गरिमा मिलेगी। फिर खिलेंगे फूल। आयेगा वसंत। झरी लग जायेगी अमृत की।

लेकिन और सब कर लेते हैं! कितने कपड़े पहनने, कितने नहीं पहनने, कितने रखने, कितने नहीं रखने; कितनी बार भोजन लेना, कि नहीं लेना; किस-किस दिन उपवास करना, कब व्रत करना; कब क्या करना—सब कर लेते हैं। और किसी चीज का मौन से कोई संबंध नहीं है। भूखा आदमी भी विचार से भरा हो सकता है—और पेट भरा आदमी भी विचार से खाली हो सकता है। इसलिए असली बात तो चूक जाती है; नकली बात पकड़ में रह जाती है।

पतंजलि ने उसे ध्यान कहा। ध्यान का भी वही अर्थ होता है। साधारणतः तुम सोये-सोये हो। तुम्हारी जिन्दगी नींद-नींद में भरी है। चल रहे हो, उठ रहे हो, बैठ रहे हो, लेकिन तुम्हें ठीक-ठीक साफ नहीं है—क्यों! क्या हो रहा है! जैसे कोई शराब के नशे में चलता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन ज्यादा पी कर आ गया। चाबी ताले में लगा कर खोलना चाहे, लेकिन हाथ कंप रहा, सो चाबी ताले में न जाये। पुलिस वाला रास्ते पर खड़ा बड़ी देर तक देखता रहा। फिर उसे दया आ गयी। उसने कहा कि 'बड़े मियां! चाबी मुझे दो। तुमसे न खुलेगी।'

नसरुद्दीन ने कहा, 'खोल कर रहूंगा। तुम्हें अगर इतना ही प्रेम-भाव उठा है, तो एक काम करो। जरा मेरे मकान को पकड़ कर खड़े हो जाओ। मकान ऐसा हिल रहा है कि मैं करूं तो क्या करूं!'

इधर दोनों की बात चल रही थी कि पत्नी की नींद खुल गयी। उसने खिड़की से, ऊपर से, दो मंजले से झांक कर कहा कि 'क्या बात है फजलू के पापा! क्या चाबी खो गयी? दूसरी चाबी फेंक दूं?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'चाबी तो बिलकुल मेरे पास है, अगर तेरे पास दूसरा ताला हो, तो फेंक। क्योंकि इस ताले में चाबी नहीं जा रही है। ताला मकान के साथ हिल रहा है! दूसरा ताला हो, तो फेंक दे, तो मैं खोल लूं और आ जाऊं!'

यह जो आदमी शराब के नशे में इस तरह की बात कर रहा है, इसमें और तुममें कुछ भेद है? तुम्हें भी नशे चढ़े हैं अलग-अलग तरह के। किसी को धन का नशा चढ़ा होता है, तो उसे कुछ नहीं सूझता सिवाय धन के।

चंदूलाल मारवाड़ी पर मुकदमा चला अदालत में। किसी को धोखा दे दिया था। मजिस्ट्रेट ने पूछा, 'छह महीने की सजा दूं या सौ रुपये...।' वह इतना बोल ही पाया था—आगे कुछ बोले नहीं—कि चंदूलाल बोले कि 'अब जब आपका दिल ही देने का हो गया है, तो सौ रुपये ही दे दें। अरे जब देने का ही दिल हो गया, तो सौ ही रुपये दे दें। अब छह महीने वगैरह क्या देना!'

जिसको धन का ही नशा चढ़ा हुआ है, जिसकी पकड़ ही धन पर है, जो सोचता धन की भाषा में है; उठता-बैठता है—धन को ही गुनगुनाता रहता है! जो हर चीज को धन के हिसाब से देखता है। जो आदमियों को भी देखता है, तो उसको नोट दिखाई पड़ते हैं; आदमी दिखाई नहीं पड़ते—कि कौन आदमी कितना कीमती! कौन आदमी कम कीमती; कौन आदमी ज्यादा कीमती!

तुर्गनेव की प्रसिद्ध कथा है कि दो सिपाही रास्ते से गुजर रहे हैं और एक शराबघर के सामने एक शराबी ने एक कुत्ते को दोनों टांगों से पकड़ लिया है पीछे के और बड़ी चीख-पुकार मचा रहा है। और भीड़ इकट्ठी हो गयी है और वह कह रहा है कि 'मैं इसको मार डालूंगा। यहीं पछाड़ कर मार डालूंगा। यह मुझे दो दफे काट चुका।' दोनों सिपाही भी भीड़ में खड़े हो गये। एक सिपाही ने दूसरे से कहा कि 'यह तो अपने इन्स्पेक्टर साहब का कुत्ता मालूम होता है!' जैसे ही उसने यह कहा कि दूसरा सिपाही झपटा और उसने एक झापड़ रसीद की शराबी को और कुत्ता छीन लिया उससे और

कहा, 'कितना प्यारा कुत्ता है !' और उस कुत्ते को दोनों हाथों से उठा कर छाती से लगा लिया और कहा कि 'तू चल थाने। तू इस तरह की हरकतें हमेशा करता है । सड़क पर भीड़-भाड़ इकट्ठी करनी; दंगा-फसाद करवाने की कोशिश करना ! सड़ायेंगे दो-चार दिन हवालात में, फिर तुझ पर मुकदमा चलेगा ।'

तभी दूसरे सिपाही ने उससे कान में कहा कि 'भई, यह कुत्ता इन्स्पेक्टर साहब का मालूम नहीं होता ! यह तो इसको खुजली हो रही है और यह कहां का मरियल कुत्ता है !'

जैसे ही उसने कहा--'खुजली, और मरियल कुत्ता, और इन्स्पेक्टर साहब का नहीं'--उसने फौरन कुत्ते को नीचे पटक दिया और उस शराबी से कहा, 'पकड़ इस कुत्ते को। मार डाल इस कुत्ते को। यहीं पछाड़। कहां नहाने की हालत कर दी ! अब घर जा कर मुझे नहाना पड़ेगा !' जल्दी से कपड़े झड़ाने लगा। 'ये आवारा कुत्ते और इन कुत्तों के मारे सब की नाक में दम हुई जा रही है !'

भीड़ भी चौंकी। वह शराबी भी चौंका । लेकिन शराबी को जब कहा गया और पुलिसवाला कहे ! उसने जल्दी से फिर कुत्ते की टांग पकड़ ली। फिर गालियां बकने लगा कि 'अभी पकड़ता हूं।' तभी उस दूसरे सिपाही ने कहा कि 'भई ! मुझे तो लगता है : हो न हो है तो इन्स्पेक्टर साहब का ही कुत्ता ! अरे हो गयी होगी खुजली, मगर है उन्हीं का। बिलकुल ढंग तो वैसा ही दिखायी पड़ता है ! ऐसा ही कान पर काला चिट्ठा और. . .!'

फिर बात बदल गयी। फिर उसने कुत्ते को उठा कर गले से लगा लिया और एक झापड़ फिर रसीद की उस शराबी को कि 'तुझे हजार दफे कहा कि ये हरकतें बन्द कर !'

अब तो भीड़ को भी बड़ा रस आने लगा कि यह हो क्या रहा है ! और वह उस कुत्ते पर हाथ फेर कर कह रहा है--'कैसा प्यारा कुत्ता है ! कुत्ते बहुत देखे, मगर इसका कोई मुकाबला नहीं है । तभी वह दूसरा पुलिस वाला फिर बोला कि 'भई, तू मुझे माफ कर। यह वह कुत्ता नहीं है। अरे, इसके तो दोनों कानों पर काले चिट्ठे हैं, उसके तो एक ही कान पर काला चिट्ठा है !' फौरन कुत्ते को उसने पटका। उसने कहा, 'ये हरामजादे कुत्ते, न मरते हैं, न खतम होते हैं। और एक-एक कुत्ता कितनी औलाद छोड़ जाता है !' और शराबी को एक धक्का दिया कि 'पकड़ इसको। इसको खतम कर इसी वक्त।' फिर कपड़े झड़ाये। उसने कहा कि 'चलो जी घर। पहले स्नान करना पड़ेगा। खुजली-वुजली हो जाये; कुछ से कुछ हो जाये !'

मगर वह दूसरा सिपाही बोला कि 'भई, मैं क्या करूं, क्या न करूं। मेरी खुद समझ-वमझ में नहीं आ रहा है। हो न हो यह कुत्ता है तो इन्स्पेक्टर साहब का ही। क्योंकि मैंने दूसरा कान कभी गौर से इन्स्पेक्टर साहब के कुत्ते का देखा ही नहीं था। हो सकता है : दूसरे कान पर भी काला धब्बा हो !' फिर बात बदल गई।

यूं कहानी चलती है। और बार-बार कुत्ते का पटका जाना और उठाया जाना ! अब यह आदमी होश में है ? मगर एक नशा चढ़ा हुआ है। 'साहब का कुत्ता'--एकदम बदल जाता है। कुछ का कुछ दिखाई पड़ने लगता है। और जैसे ही 'साहब का नहीं है'--फिर यह 'खुजली वाला कुत्ता--मारो; पटको !'

शराबी भी चौंका हुआ खड़ा है कि अब करना क्या ! वह पूछता है, 'साहब, मुझे साफ कह दो, करना क्या है। एक दफा कह दो, वह कर के दिखा दूं। हवालात ले चलना है, हवालात ले चलो। रात हुई जा रही है; देर हुई जा रही है। और मारना हो इसको तो मैं मार दूं। मगर तुम एक दफे तय कर लो साफ। नहीं तो मुझे भी गुस्सा आ रहा है अब। तीन-चार झापड़ मुझे रसीद कर चुके। कभी कहते हो, मार डालो। कभी कहते हो कि तुमको हवालात में बंद कर देंगे। अरे, होश की बातें कर रहे हो ! मैं ही नशे में हूं, कि तुम भी नशे में हो ?'

शराबी तक कहने लगा कि 'मैं ही नशे में हूं कि तुम भी नशे में हो ? कुछ होश की बातें करो। ऐसी की तैसी तुम्हारे इन्स्पेक्टर की और तुम्हारे कुत्ते की ! कुत्ते को भी मारूंगा, तुम्हारे इन्स्पेक्टर को भी मारूंगा। कहां-कहां के कुत्ते पाल रखे हैं और कहां-कहां की झंझटें खड़ी कर रहे हैं। और मैं पिट रहा हूं नाहक ! न लेना, न देना। पहले इस कुत्ते ने मुझे काटा, अब तू मेरे पीछे पड़ा हुआ है !'

शराबी तक को होश आ जाता है। मगर कुछ को पद का नशा है। उनको देखो, जब वे कुर्सियों पर होते हैं। उनकी छाती एकदम फूल जाती है !

अभी राष्ट्रपति वी. वी. गिरी चल बसे। जब से वे राष्ट्रपति बने, हो तो गये थे बुड्ढे सत्तर साल के पार, मगर किसी ने कह दिया कि 'अब आपकी उम्र राष्ट्रपति होने की नहीं।' फौरन उन्होंने अपनी दोनों भुजायें निकाल कर अपनी मसल दिखा दीं और कहा कि 'अभी दस मील दौड़ कर बता सकता हूं ! क्या तुमने समझा है मुझे !' वह उनकी तस्वीर देखने लायक है जिसमें वे. . .तस्वीर भी छपी है, जिसमें वे अपनी भुजायें दिखला रहे हैं। जैसे कोई मुरदा आदमी--और भुजायें फड़का रहा हो ! कुछ भुजाओं में दिखायी पड़ता नहीं। कोट के भीतर सब खाली दिखायी पड़ता है। मगर जब पद पर आदमी हो जाता है, तो एकदम भुजायें फड़कने लगती हैं। मुरदों में जान आ जाती है।

नेता अगर मर भी गया हो, इसके पहले कि उसको दफनाओ, उसके कान में कहना कि 'भइया, इलेक्शन जीत गये !' सौ में निन्यानबे मौके तो हैं--वह जिन्दा हो जाये। वह कहे : 'पहले ही क्यों न कहा, हम मरते ही नहीं !' उठ कर बैठ जायेगा एकदम ! नेता नेता ही है !

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बाजार में खड़ा था अपने गधे को लिए और लोगों से कह रहा था : 'इस गधे में यह खूबी है--यह पक्का जी-हुजूर गधा है। यह नहीं

कहना तो जानता ही नहीं। तुम जो भी कहो, एकदम सिर हिला कर कहता है कि जी हां!'

लोगों ने कई बातें कहीं और वह गधा--नसरुद्दीन ने उसको पाठ पढ़ा कर रखा था, सो कुछ भी कहो उससे, वह सिर हिला कर कहे 'जी हां!'

चंदूलाल मारवाड़ी खड़े थे वहां। हर बात में जी हां कह रहा है! नसरुद्दीन से कहा कि 'अगर इसको न कहलवा दूं तो!' तो नसरुद्दीन ने कहा, 'अगर तू न कहलवा दे, तो सौ रुपये--निकाल कर बताये कि--'ये सौ रुपये दूंगा।'

चंदूलाल उसके पास गया और गधे के कान में बोला, 'बेटा शादी करोगे?' उसने कहा कि 'नहीं!' एकदम ना कर दिया! नसरुद्दीन भी हैरान हुआ। उसने कहा कि 'तेरी तरकीब क्या है भाई?'

'अरे', उसने कहा, 'मैं भी अनुभवी आदमी हूं। दो दो शादी कर चुका हूं। यह मेरी हालत जानता है। यह तेरा गधा मेरे घर के सामने तो रहता है। मुझ पर जो बीत रही है, वह यह रोज देखता है। एक पत्नी ऊपर रहती है, एक पत्नी नीचे रहती है। और अकसर मेरी हालत रहती है कि एक टांग मेरी ऊपर मकान से खींच रही है; एक टांग नीचे खींच रही है। गधा हंसता है। इसको मैंने कई दफा सामने खड़े देखा है। यह वहां खड़ा देखता रहता है कि अच्छे फंसे चंदूलाल! तो मैं जानता था कि इसमें बिलकुल ना कर देगा कि बेटा, शादी करोगे? कहेगा, नहीं करते! और कहो तो इसको अभी और ना कहलवा सकता हूं। मुझे कई तरकीबें मालूम हैं।'

'अच्छा', कहा, 'दुबारा ना कहलवा। सौ रुपये और ले।'

उसने उसके कान में कहा कि 'बेटा, चुनाव लड़ोगे?'

उसने कहा कि 'नहीं!'

'अब तूने क्या कहा?'

उसने कहा कि 'चुनाव! मैं तीन चुनाव लड़ चुका और हार चुका। जो फजीहत होती है, वह भी यह देखता है। और नेताओं की जो हालत हो रही है, वह भी यह देखता है। इधर पिटे, उधर पिटे!'

मगर कुछ लोगों को जिद्द ही रहती है; कितने ही पिटें, कोई फर्क नहीं पड़ता। वे फिर धूल झाड़ कर खड़े हो जाते हैं। फिर हंसने लगते हैं। फिर खींसे निपोरने लगते हैं! कि फिर चुनाव आ गया, फिर वोट दो। अरे, वे गिरे थोड़े ही थे। वे तो यूं ही धूल में लेट रहे थे--मस्ती में। गिरे थोड़े ही थे। कपड़ा झाड़ कर फिर खड़े हो जाते हैं। चारों खाने चित्त कर दो उनको--कोई फिक्र नहीं। फिर उठ कर खड़े हैं! नेता गिरते ही नहीं! मगर गधों को भी इतनी अकल है।

उस गधे ने फौरन मना कर दिया कि 'मुझे चुनाव लड़ना ही नहीं है। अरे, जो फजीहत देख रहा हूं!'

नसरुद्दीन ने कहा कि 'भइया, तू ये दो सौ रुपये ले। अब मुझे कहलवाना नहीं। पता नहीं तू और भी क्या तरकीबें जानता हो! और गधे में और तुझमें सांठ-गांठ मालूम पड़ती है! हरामजादे को मैंने इतना सिखाया कि हर चीज में हां भरना, और वह अभी दगा दे गया मुझे! यहीं के यहीं दगा दे गया। मेरा गधा--और मुझे दगा दे गया! मैं इसको बेंच कर रहूंगा। इस गधे को मुझे रखना नहीं है।'

तू पूछती है योग मुक्ता, कि मौन, कि ध्यान, कि प्रार्थना...? जैसे कि ये कुछ अलग-अलग बातें हों! होश में आ।

महावीर ने मौन कहा। पतंजलि ने ध्यान कहा। मीरा ने,चैतन्य ने,सहजो ने प्रार्थना कहा। बात वही है। जिन्होंने प्रेम की नजर से देखा, उन्होंने प्रार्थना कहा। जिन्होंने सिर्फ बौद्धिक दृष्टि से देखा, उन्होंने या तो मौन कहा या ध्यान कहा। ध्यान और मौन पुरुषों के शब्द हैं--विशुद्ध, वैज्ञानिक। और प्रार्थना--स्त्रियों का शब्द है, प्रेमियों का शब्द है, कवियों का शब्द है--भावुक। मगर प्रत्येक चीज को दो ढंग से देखा जा सकता है। या तो विचार के जगत से और या फिर भाव के जगत से। हमारे भीतर दोनों हैं--भाव भी है, विचार भी है। मगर सत्य एक ही है।

उसी फूल को वैज्ञानिक देखेगा, तो कुछ और कहेगा। उसी फूल को कवि देखेगा, तो कुछ और कहेगा। लेकिन उनके अलग-अलग कहने से यह मत समझ लेना कि फूल दो हो गये फूल तो एक ही है।

तुझे जो प्रीतिकर लगे वह चुन ले शब्द। मगर सार की बात इतनी है कि निर्विचार होना है--चाहे ध्यान कहो, चाहे प्रार्थना कहो। क्योंकि जो निर्विचार होता है, वह प्रेम से तो भर ही जाता है। अगर निर्विचार की धारणा को खयाल में रखो, तो ध्यान कहोगे या मौन कहोगे। और अगर प्रेम की घटना को ध्यान में रखो, तो प्रार्थना कहोगे।

यह यूं ही बात है जैसे कि गिलास आधा खाली, कि आधा भरा? जो चाहो कहो। आधा खाली कहो, तो भी ठीक। खालीपन पर ध्यान रखो--तो खाली। और भरा देखो आधा, तो भी ठीक। भरेपन पर ध्यान रखो--तो आधा भरा।

ध्यान और मौन शून्य पर दृष्टि गड़ाये हुए हैं। व्यक्ति जब विचार से शून्य हो जाता है, तो उसे ध्यान या मौन कह सकते हो। लेकिन जैसे ही शून्य हुआ कि सारा आकाश टूट पड़ता है प्रेम का उसके भीतर। प्रेम की गंगा उतर आती है। भगीरथ हो जाता है वह। उसके ऊपर प्रेम की गंगा उतरती है--स्वर्गीय गंगा उतरती है। अगर उसको ध्यान में रखो--उसके भराव को--तो प्रार्थना। दोनों एक ही सत्य के दो पहलू है। और फिर ऐसे ध्यान या प्रार्थना में डूबे हुए व्यक्ति का जीवन हरिकथा है।

तू पूछती है कि 'हरिकथा का पात्र और अधिकारी कौन है?'

यूं तो सभी पात्र और अधिकारी हैं, लेकिन पात्र को भी तो साफ करना होता है। पात्र तो सभी हैं। अपात्र तो कोई भी नहीं है। परमात्मा अन्यायी नहीं है कि किसी को

अपात्र ही बनाया हो। पात्र तो सभी हैं, लेकिन कुछ ने पात्र इतने गन्दे कर लिए हैं कि उसमें अगर अमृत भी डालो, तो जहर हो जाये।

पात्र की सफाई करनी होती है। पात्र को स्वच्छ करना होता है। स्वच्छ करने की कीमिया, कला संन्यास है।

पात्र तो सभी हैं, लेकिन गन्दे पात्र हैं। संसार ने उन्हें गन्दा कर दिया है। कचरा भरे हुए बैठे हैं। जगह भी नहीं है उनके भीतर कि हीरे-जवाहरात अगर बरसें तो वे रख पायें। कंकड़-पत्थर इतने भरे हैं! कंकड़-पत्थर उलीचो।

दो शैलियां हैं जीवन की। या तो संसारी की शैली है। वह कूड़ा-कर्कट इकट्ठा करने की शैली है। और एक शैली संन्यासी की है। वह कूड़ा-कर्कट नहीं––हीरे-जवाहरात इकट्ठे करने की शैली है। मगर तुम कूड़ा-कर्कट से इतना मोह करते हो, इतना प्रेम करते हो कि तुम संन्यासी को त्यागी कहते हो!

मैं तुम्हें जता दूं कि संन्यासी भोगी है। त्यागी तुम हो। किसको त्यागी कहोगे––हीरे-जवाहरात रखे हों और कंकड़-पत्थर रखे हों? कंकड़-पत्थर भर ले अपनी आत्मा में––उसको तुम भोगी कहोगे? या उसको भोगी कहोगे, जो हीरे-जवाहरात चुन ले? त्यागी किसको कहोगे? जो हीरे-जवाहरात छोड़ दे, उसको त्यागी कहोगे, कि जो कंकड़-पत्थर छोड़ दे, उसको त्यागी कहोगे?

लेकिन चूंकि भाषा तुम बनाते हो; तुम्हारी भीड़ है––इसलिए तुम अपने ढंग से देखते हो। तुम महावीर को त्यागी कहते हो। मैं महावीर को परम भोगी कहता हूं। तुम बुद्ध को त्यागी कहते हो। मैं कहता हूं, बुद्ध ने जैसा भोगा, किसी ने कभी नहीं भोगा। और तुम अपने को भोगी कहते हो। हद्द कर दी तुमने भी! शब्दों का कुछ तो हिसाब रखो! क्या कह रहे हो––सोचो तो!

क्या तुम भोग रहे हो? सिवाय दुख के और क्या भोग रहे हो? दुख भोगने को भोग कहते हो? तो फिर नर्क में जो हैं, वे हैं असली भोगी। फिर स्वर्ग में कौन हैं?

लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि जो स्वर्ग में हैं, वे हैं असली भोगी। नर्क में त्यागी पड़े हैं!

मूढ़ता है त्याग। त्याग का अर्थ होता है: कौड़ियों को बीन लेना––और हीरों को छोड़ देना। और भोग का अर्थ होता है: हीरों को बीन लेना––और कौड़ियों को छोड़ देना।

स्वर्ग को चुनो। और फिर स्वर्ग के पार और भी है एक जगत––मोक्ष का। वह तो परम भोग है। निर्वाण––उससे बड़ा महासुख नहीं। बुद्ध ने उसे महासुख ही कहा है, परम आनन्द कहा है। उपनिषद के ऋषियों ने उसे सच्चिदानंद कहा है। सत्––चित्––आनन्द। आनन्द अंतिम शिखर। और जो आनन्द को पा ले, वही भोगी है। वही जानता है जीवन के रस को। वही पीता है जीवन के रस को। वही परमात्मा को पीता है।

रसो वै सः। वही परमात्मा की परिभाषा जान पाता है––कि वह रस-रूप है।

मैं तुम्हें विरागी नहीं बनाना चाहता; मैं तुम्हें अनुरागी बनाना चाहता हूं। मैं तुम्हें त्यागी नहीं बनाना चाहता। तुम्हें परम भोग की जीवन-दृष्टि देना चाहता हूं। क्योंकि मेरे लिए धर्म भोग की कला है।

सभी पात्र हैं, लेकिन सभी अधिकारी नहीं हैं। जब पात्र स्वच्छ हो जाता है, तो अधिकार पैदा होता है। और जब तक कामना लिपटी रहेगी, तब तक पात्र स्वच्छ नहीं होता। इसलिए निष्काम हो जाओ। मांगो मत––और मिलेगा। बहुत मिलेगा। अहर्निश मिलता ही रहेगा। अनन्त तक मिलता रहेगा। चुकेगा ही नहीं। मगर मांगो मत। मांगे कि भिखारी हो गये। भिखारी हो गये, कि अधिकार खो दिया।

जो सोवैं तो सुन्न में, जो जागैं हरिनाम।
जो बोलैं तो हरिकथा, भक्ति करैं निहकाम।।

दूसरा प्रश्न: भगवान! आपके धर्म का मूल उद्देश्य क्या है? संन्यासियों से भरे इस देश में आप क्यों और संन्यासी बढ़ाये जा रहे हैं? पहले क्या कमी है संन्यासियों की! आखिर आपका प्रयोजन क्या है?

स्वामी हरिहरानन्द महादेव!

उनके नाम से ही जाहिर है कि वे परम्परागत संन्यासी हैं। और इसलिए उन्हें सोच-विचार पैदा हो गया है कि 'यह देश तो संन्यासियों से भरा हुआ है, आप और क्यों संन्यासी बढ़ाये जा रहे हैं?'

मेरे देखे, हरिहरानन्द, जिनको तुम संन्यासी कहते हो––मैं नहीं कहता। मैं संन्यास को पुनरुज्जीवित करना चाहता हूं। मैं चाहता हूं संन्यास––जो बांसुरी बजाना जानता हो। मैं चाहता हूं संन्यास––जो पैरों में घूंघर बांधना जानता हो। मैं चाहता हूं संन्यास––जो उत्सव हो––उदासी नहीं। और तुम जिन संन्यासियों की बात कर रहे हो, वे उदास, हारे-थके लोग, भगोड़े, पलायनवादी।

युद्ध से कोई भाग जाये, तो उसको हम कायर कहते हैं। और जीवन-युद्ध से भाग जाये––तो संन्यासी! अच्छे नाम रखने से कुछ भी नहीं होगा। नामों की ओट में छिपा लेने से कुछ भी नहीं होगा। जीवन-युद्ध से भागे हुए भी कायर हैं।

मेरे लेखे तो भगोड़ापन भली बात नहीं। जीवन को जीओ। जीवन एक अवसर है, उसे चूको मत। उसके उतार-चढ़ाव देखो। उसकी अंधेरी घाटियों में भी उतरो और प्रकाशोज्ज्वल शिखरों पर भी चढ़ो। कांटे भी चुभेंगे––फूल भी हाथ लगेंगे। इन दोनों

को भोगो, क्योंकि इन दोनों के भोगने से ही तुम्हारे भीतर आत्मा पैदा होगी। इसी चुनौती में से गुजर कर, इसी आग में से गुजर कर तो आत्मा का जन्म होता है।

मेरा संन्यासी बहुत भिन्न है। तुम अगर पुराने संन्यासियों को संन्यासी कहते हो, तो मेरा संन्यासी वैसा संन्यासी नहीं है। और ऐसा नहीं है कि हरिहरानन्द महादेव को यह बात समझ में नहीं आ रही है। यह समझ में आ रही है। क्योंकि उन्होंने दूसरा प्रश्न भी पूछा है, उससे पता चल जायेगा कि बात समझ में आ भी रही है।

दूसरा प्रश्न पूछा है : 'भगवान, कृपया बतायें कि संन्यासी की जीवन-चर्या क्या होनी चाहिए ? मैं भी आप से संन्यास लेकर आपके आश्रम में रह कर साधना करना चाहता हूं, लेकिन मुझे आपकी शिष्याओं से डर लगता है ! आप ही कहें, मैं क्या करूं ?'

हरिहरानन्द ! अब तुम्हें भेद समझ में आया ? भेद साफ है। तुमको भी दिखायी पड़ रहा है—धुंधला-धुंधला सही, मगर दिखायी पड़ रहा है कि भेद है।

तुमने अब तक जो संन्यास लिया है, वह भगोड़ापन था। और देखो तुम, उसका परिणाम क्या हुआ ! क्या तुम खाक परमात्मा को पाओगे ! तुम स्त्रियों से भयभीत हो गये हो। इतना भीरु व्यक्ति परमात्मा के अज्ञेय, अज्ञात लोक में प्रवेश कर सकेगा ! इतनी कायरता—स्त्रियां जिसे डरा देती हैं !

पुराना संन्यास दमन है; अपने साथ जबरदस्ती है। वासनाओं के ऊपर, किसी तरह जबरदस्ती बैठ जाना है। मगर वासनायें भीतर कुलबुलाती रहती हैं। और इससे तुम्हें डर लगा रहा होगा। डर तुम्हें मेरी शिष्याओं से नहीं लग रहा है। क्योंकि मेरी शिष्याओं को तुमसे कोई डर नहीं लग रहा है। एक भी शिष्या ने नहीं लिखा है मुझे कि ये एक सज्जन आ गये हैं—हरिहरानन्द महादेव—हमें इन्हें देख कर बड़ा डर लगता है ! मेरी शिष्याएं डरती ही नहीं। क्यों डरें ? क्या तुममें डराने जैसा है ? मगर तुम डर रहे हो। तुम कंप रहे हो। तुम भयभीत हो रहे हो। क्योंकि तुमने दबाया है।

यह डर शिष्याओं का नहीं है; यह डर तुम्हारे दमन का है। तुम्हारे भीतर रोग छिपे पड़े हैं। तुम जानते हो कि किसी तरह दवा-दबू कर बैठे हैं। किसी तरह हुक्का-चिलम लगा-लगू कर दबा कर बैठे हैं। 'दम मारो दम !' कि चारों तरफ उठाते रहो चिलम का धुआं कि दिखाई ही नहीं पड़ेगा कि कौन है स्त्री, कौन है पुरुष। कुछ समझ में ही नहीं आयेगा कि क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है ! पड़े रहो पी कर गांजा-भांग। सौ में निन्यानबे संन्यासी तो यह करते रहे। बाकी जो एक प्रतिशत बचते हैं—जैनियों के मुनि होंगे कि बौद्ध भिक्षु होंगे—वे ऐसे डरे रहते हैं कि स्त्री दिखायी न पड़ जाये ! आंखें नीची झुका कर चलते हैं कि स्त्री दिखायी पड़ गयी कि उनको घबड़ाहट हुई; भय लगा।

यह स्त्री से भय आ रहा है ? यह तुम्हारे ही भीतर जो दमित वेग है वासना का, वह धक्के मारने लगता है। वह कहता है : 'मत चूको। मत चूक चौहान ! अरे, स्त्री निकली जा रही है ! महादेवजी क्या कर रहे हो—पार्वती निकली जा रही है ! उठो।

नन्दी बाबा को भी जगाओ !' या नन्दी बाबा उठने लगते होंगे कि महादेवजी, क्या कर रहे हो—पार्वती मैया जा रही है !

वही घबड़ाहट तुम्हें होगी।

मैंने सुना है कि पार्वती मायके गयी थीं; चार-छह महीने नहीं लौटीं। आश्चर्य तो यही है कि वे कैसे महादेव जी के साथ गुजार देती थीं ! गंजेड़ियों-भगेड़ियों की भीड़-भाड़ वहां। एक से एक पहुंचे हुए सिद्धपुरुष उनके आसपास ! उनकी बारात तो तुमने देखी ही है ! ऐसी बारात कभी पृथ्वी पर निकली ही नहीं। क्या-क्या छंटे हुए लोग उसमें थे ! क्या किसी सर्कस में होंगे। सारी सर्कसों के लोग इकट्ठे कर लो, तो भी मात हो जायेंगे ! शंकर जी की बारात ! सब उलटे-सीधे—हिप्पी, महा हिप्पी—सब उनकी बारात में थे !

यह पार्वती उनके साथ रह लीं इतने दिन, यही बहुत था। चली गयी होंगी मायके; तो नहीं पड़ती होगी हिम्मत लौटने की। इधर कब तक अपने को दबाये रखें महादेव जी ! बहुत परेशान हो गये। एक दिन नन्दी बाबा से बोले कि 'नन्दी बाबा, अब नहीं रहा जाता। जरा तुझको ही गले लग कर प्रेम कर लूं !'

नन्दी बाबा ने कहा, 'क्या बातें कर रहे हो ! अरे महादेव जी, होश की बातें करो। शरम नहीं आती ! मैं रहा बैल; आप महादेव, देवताओं के देवता ! और क्या बातें करते हो ! कैसी बातें करते हो ! उलटी-सीधी बातें करते हो ! ज्यादा पी गये ? पीनक में आ गये ? ऐसे तो मैं भी पीये हूं, मगर इत्ता थोड़े ही होश खो देता हूं। अरे आप, देवताओं के देवता। आप मेरे मालिक। हे गुरुदेव कैसी बातें कर रहे हो ?'

मगर शंकर जी ने कहा, 'अरे, कोई नहीं देख रहा है रे ! बाकी भी सब पिये पड़े हैं। कोई नहीं देख रहा है। थोड़ा प्यार-दुलार कर ही लें, तो क्या हर्जा है ? एकदम मन मानता ही नहीं। पार्वती जी को गये बहुत दिन हो गये !'

नन्दी ने कहा कि 'अब आप. . .! ऐसे तो सेवक हूं। अब आप नहीं मानते तो ठीक है। मगर एक शर्त है। फिर मैं भी प्यार-दुलार करूंगा। क्योंकि तुम्हारे पीछे मैं अपनी नन्दिनी को बिलकुल छोड़ ही बैठा हूं। यह तुम्हारी नन्दिनी तो चार-छह महीने से गयी है। मेरी नन्दिनी का पता ही नहीं है। मैंने तुम्हारी सेवा में सब त्याग दिया।'

मजबूरी थी। बेमन से महादेव जी ने कहा, 'अच्छा भैया, तू भी कर लेना प्यार-दुलार। पहले मुझे करने दे।'

जब वे प्यार-दुलार कर चुके, तो नन्दी बाबा बोले, 'अब मेरी बारी है !' 'अरे', उन्होंने कहा, 'हट। बैल होकर और बेवकूफी की, इस तरह की बेहूदी बातें करता है ! अपनी औकात की बात कर। बैल का बच्चा और तू मुझसे प्रेम करेगा ! मैं महादेव !'

'अरे', उसने कहा, 'होओगे महादेव। अभी तुम थोड़ी देर पहले क्या कर रहे थे ? अभी मेरे गले लग रहे थे और प्रेम-व्रेम कर रहे थे। और मैं सब बरदाश्त कर लिया !

और अब अपनी बारी आयी तो बदलने लगे !'

शंकर जी ने देखा कि यह नन्दी तो गुस्से में आ गया है । नन्दी ने कहा कि 'मैं छोड़ूंगा नहीं ।' वे अपना कमण्डलु लेकर भागे । नन्दी बाबा भी उनके पीछे भागे । पास में ही एक मंदिर––वे अंदर घुस गये । नन्दी बाबा भी वहीं बैठ गये मंदिर के बाहर । उन्होंने कहा, 'कभी तो निकलोगे !' इसलिए हर शंकर जी के मंदिर के बाहर नन्दी बाबा बैठे रहते हैं । तुमने खयाल नहीं किया !

अगर पहरा दे रहे हों, तो उनकी पीठ होनी चाहिए मंदिर की तरफ । पहरा नहीं दे रहे । उनका मुंह रहता है मंदिर की तरफ––कि बच्चू निकलो ! पहरेदार कहीं मुंह रखता है ! मैं इस कहानी को मानता नहीं । लेकिन जब मैंने यह बात देखी कि यह बात तो सच्ची है कि नन्दी बाबा हमेशा देखते रहते हैं मंदिर की तरफ कि 'निकलो ! कभी तो निकलोगे ! जब निकलोगे, तभी ! वह मजा चखाऊंगा कि याद करोगे !'

यह कोई पहरा वगैरह नहीं दे रहे हैं ।

अब तुम कह रहे हो हरिहरानन्द महादेव ! कि संन्यासी की जीवनचर्या क्या होनी चाहिए ?

संन्यासी की कोई जीवनचर्या नहीं होती । जीवनचर्या संन्यासियों की होती नहीं––संसारियों की होती है । संन्यासी तो मुक्त, अपने चैतन्य-भाव से जीता है; अपने होश से जीता है । प्रतिपल उसका होश उसका संगी-साथी है । उसका होश निर्णायक है । वह पलपल स्व-स्फूर्ति से जीता है । यह मेरे संन्यास की बात कर रहा हूं । मुझे औरों के संन्यास से कुछ प्रयोजन नहीं है । मैं मेरे संन्यासियों की बात कर रहा हूं ।

मेरा संन्यासी तो एक ही सूत्र मानता है––ध्यान । बस, उसके तो सारे जीवन का केन्द्र एक है––ध्यान । फिर ध्यान से जो भी उसे सूझता है, बूझता है, वैसा जीता है । उस पर न मैं कोई नीति थोपता हूं, न नीति के नियम थोपता हूं । मैं उसे मर्यादा नहीं देता । मेरे संन्यासी को मैं उस तरफ ले जाना चाहता हूं, जहां उसके भीतर भी परमात्मा का पूर्ण अवतार हो सके । क्या छोटा-मोटा. . .! परमात्मा को भी खोजने चले, तो आंशिक ! जब चल ही पड़े, तो पूरा ही लेंगे । क्या आधा-आधा लेना !

मेरा संन्यासी तो सिर्फ ध्यान के द्वारा शून्य को साधता है । फिर शून्य से जो भी निकलता है, सो हरिकथा । वही उसकी चर्या है ।

तुम्हें यहां नहीं जमेगा । अगर तुम्हें मेरी शिष्याओं से डर लग रहा है, यह जगह तुम्हारे लिए उपयोगी नहीं होगी । हां, अगर यहां रुकना हो, तो हिम्मत करनी होगी । तुम्हारी सारी पुरानी धारणाएं टूटेंगी, चर्या टूटेगी, पुराने ढंग टूटेंगे ।

और तुम कहते हो कि 'यहां रह कर साधना करना चाहता हूं ।' जरूर करो । लेकिन यहां साधना का अंग श्रम भी है । यह कोई काहिलों और सुस्तों की बस्ती नहीं है । यह कोई पुराने ढंग की आलसियों की जमात नहीं है ।

साधना करो । चौबीस घण्टे में दो घण्टे साधना करो । बाईस घण्टे श्रम भी करना होगा । जो भी बन सके । क्योंकि यहां श्रम में कोई छोटा-बड़ा नहीं है । बुहारी लगा सको, बुहारी लगाओ । जूते सी सको––जूते सीओ । लकड़ी फाड़ सको––लकड़ी फाड़ो । बागवानी कर सको––बागवानी करो । और यह तो अभी शुरुआत है । यह तो सिर्फ शुरुआत है । यह तो अभी केवल प्रयोग-स्थल है । जैसे नर्सरी होती है, जहां हम छोटे-छोटे पौधे तैयार करते हैं । यह तो मैं बड़े विराट प्रयोग के लिए तैयारी कर रहा हूं । जल्दी ही विराट प्रयोग तैयार हो जायेगा । जल्दी ही यह छोटा-सा समूह एक विराट कम्यून बनने के लिए आयोजनबद्ध है । नियति से ही फैसला हो चुका है । वह होना ही है । देर-अबेर हो सकती है । तब दस हजार संन्यासी होंगे; स्व-निर्भर होंगे ।

स्वागत है तुम्हारा, मगर ये सब बातें समझ कर । तुम यह कहो कि 'हम तो सिर्फ साधना ही करेंगे । हम यह बुहारी वगैरह नहीं लगाते । और हम ये कपड़े नहीं सियेंगे । हम भोजन नहीं बनायेंगे । हम तो चाहते हैं कि दूसरे हमारी सेवा करें !' तो नहीं चलेगा ।

जैन मुनि यहां मुझे खबर भेजते हैं कि 'हम आ कर सम्मिलित होना चाहते हैं ।' मैं कहता हूं––बराबर आ जाओ । लेकिन वह आशा छोड़ देना; यहां कोई जैन वगैरह तुम्हारी सेवा करने नहीं आयेंगे । यहां तो तुम्हें श्रम करना होगा । यहां तो उत्पादक होना होगा । यहां साधना में और श्रम में भेद नहीं है । दोनों एक ही जीवन-तरंग के हिस्से हैं ।

मेरा संन्यासी स्व-निर्भर होगा । वह भिखमंगा नहीं होगा । वह किसी से भीख मांगने नहीं जायेगा । क्योंकि भीख मांगने के कारण सारे संन्यासी पर-निर्भर हो गये । जैन मुनि को मुझसे मिलने आना होता है, तो वह कहता है : 'कैसे आऊं ! श्रावक आज्ञा नहीं देते !' यह संन्यास हुआ ? यह स्वतंत्रता हुई ? यह परम मोक्ष के खोजी का लक्षण हुआ ? यह तो और बन्धन में पड़ गये । इससे तो संसारी भी ठीक है, कम से कम चला तो आता है; किसी का डर तो नहीं है । बहुत से बहुत डरता है, अपनी पत्नी से डरता है ! मगर ये तो श्रावकों से, श्राविकाओं से––सब से डर रहे हैं; सब पति और सब पत्नियां इनकी छाती पर बैठे हुए हैं । वे कहते हैं कि 'महाराज, वहां गये, तो ठीक नहीं होगा । उतार गद्दी से नीचे कर देंगे । मुंह-पट्टी छीन लेंगे । यह कमण्डलु वगैरह छीन लेंगे !' और ऐसा नहीं कि उन्होंने नहीं किया । ऐसा किया ।

एक जैन मुनि कनक विजय हिम्मतवर आदमी––वे मेरे पास आकर रुक गये । मैं जबलपुर था । वे कहने लगे, 'किसी को पता न चले कि मैं आपके पास आकर रुक गया हूं ! मगर ऐसी आतुरता थी कि चला आया । पहली तो गलती यह की कि ट्रेन में सवार हुआ हूं । मगर चला आया । किसी तरह छुप कर आ गया हूं । किसी को पता न चले ।' मैंने कहा, 'भई, मैं किसी को पता करने जाता नहीं । मगर अब कोई आ जाये,

तो क्या पता।' और संयोग कि बात की वे जिस सम्प्रदाय को मानते थे, उसी सम्प्रदाय के एक अग्रणी लाला सुंदरलाल दिल्ली से आ गये दूसरे दिन। वे भी मेरे प्रेमी थे। उन्होंने कनक विजय को वहां देखा, उनकी छाती पर तो सांप लोट गये! यूं मेरे प्रेमी थे; मैंने कहा कि 'लाला, तुम तो कम से कम समझो!' 'अरे', उन्होंने कहा, 'क्या समझें! यह जैन मुनि होकर यहां क्या कर रहा है? मैं जा कर इसकी भद्द खोलूंगा।' मैंने कहा, 'इस पर कृपा करो। तुम भी मुझे प्रेम करते हो; यह भी मुझे प्रेम करता है। बेचारा प्रेम की वजह से चला आया।'

'ऐसा नहीं चलेगा।' लाला बोले कि 'यह मैं नहीं बरदाश्त कर सकता। मैं संसारी हूं, मैं आ सकता हूं। मगर यह मुनि हो कर...! मैं इसका कमण्डलु, मुंह-पट्टी छिनवा कर रहूंगा।'

बहुत लाला को समझाया, मगर लाला भी पंजाबी थे; समझ में उनकी आये क्या! वे कहें कि 'आप कुछ भी कहो, यह धर्म का विनाश कर रहा है। यह चोरी कर रहा है, बेईमानी कर रहा है।'

और कनक विजय यूं थर-थर कांपें, कि 'यह बड़ी मुश्किल में पड़ गये। यह लाला तो बड़ा उपद्रवी है! यह तो दिल्ली में जैन समाज का प्रमुख है। यह तो मेरी मुश्किल करवा देगा!' वे मुझसे कहें, 'किसी तरह इसको समझाओ। लाला को समझा-बुझा दो। यह चुप रहे; मैं कल चला जाता हूं।'

मैंने कहा, 'यह हद्द हो गयी! तू खुद ही छोड़ दे; यह मुंह-पट्टी वगैरह दे दे लाला को कि ले जा; तुम बांध लेना। और रख ले यह कमण्डलु, और जाओ भाड़ में—जहां जाना हो।'

'अरे!' कहा कि 'नहीं, मैं यह कैसे कर सकता हूं। क्योंकि मेरी सत्तर साल उम्र हो गयी। मैं कुछ काम-धाम तो कर नहीं सकता। मैं तो सिर्फ सेवा ले सकता हूं। मैं कुछ कर नहीं सकता। काम-वाम मेरे वश का नहीं है। और आपके पास रहूं, तो कुछ करना पड़ेगा। और अभी जिंदगी अच्छी चल रही है मेरी। खाने-पीने को मिल जाता है। इज्जत-आदर मिल जाता है। और क्या चाहिए आदमी को!'

'तो फिर', मैंने कहा, 'तुम जाओ; फिर लाला से माफी मांग लो और कहना कि अब ऐसी भूल नहीं करेंगे।'

लाला से माफी मांगनी पड़ी उनको! संन्यासी श्रावक से माफी मांग रहा है हाथ जोड़ कर! मैंने कहा, 'लाला, अब तो माफ कर दो!' यूं किया उन्होंने मेरे सामने, मगर नहीं कर पाये। दिल्ली में जाकर उन्होंने बात चला ही दी। जब तक कनक विजय की उन्होंने मुंह-पट्टी नहीं छिनवा दी, तब तक उनको भी चैन नहीं मिला। जब उनकी मुंह-पट्टी छिन गयी और उन्होंने मुझे लिखा। मैंने कहा, 'तू भी बिलकुल पागल है। दूसरी मुंह-पट्टी खरीद लो! है क्या मामला! मुंह की पट्टी है। अपने घर में बना

लो। किसी के बाप का कोई ठेका है! कि मुंह-पट्टी पर किसी की कोई सील है! अब मैं मुंह-पट्टी बांध लूं, मेरा कोई क्या कर सकता है? तुम भी बांध लो।'

उनको बात जंच गई। उन्होंने मुंह-पट्टी बांध ली। मगर फिर भी संस्कार तो उनके भी वही के वही हैं। उन्होंने अपने को 'जैन मुनि' लिखना बन्द कर दिया। लिखने लगे—'साधु कनक विजय'।

मैंने पूछा, 'क्यों, यह फर्क क्यों कर दिया?'

कहा कि 'नहीं, वह जरा ठीक नहीं मालूम पड़ता। अब मुनि कैसे लिखूं अपने को!

मैंने कहा, 'तुम भी हो उन्हीं गधों की जमात में। कोई भेद नहीं। खुद के भी संस्कार!'...

तो हरिहरानन्द महादेव, मेरे संन्यासी होना है तो हिम्मत रखनी पड़ेगी। यहां शिष्याएं तो हैं। और शिष्याएं तुमसे डरेंगी नहीं। कोई शिष्या तुम्हारा हाथ ही पकड़ लेगी कि 'आओ महादेव जी, जरा घूम आयें!' बस, तुम्हारे प्राण कंप जायेंगे। कोई शिष्या भाव में आकर तुम्हें गले ही लगा लेगी कि बस, तुम्हारे प्राण निकल गये! कि तुम्हारा सब मोक्ष छिन गया! यह खतरा यहां है।

और यह भी ध्यान रखना कि तुम्हें जो आदर देते रहे होंगे हिन्दू अब तक, वे फिर आदर नहीं देंगे। अनादर करेंगे। जितना आदर दिया है, उससे दुगुना अनादर करेंगे। बहुत दुष्टता करेंगे। उस सब की तैयारी हो, तो मेरे लिए स्वीकार हो।

और यहां श्रम करना होगा। यहां श्रम और साधना में भेद नहीं है।

आज इतना ही।

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक २१ जुलाई, १९८०

जीवन्त धर्म

२
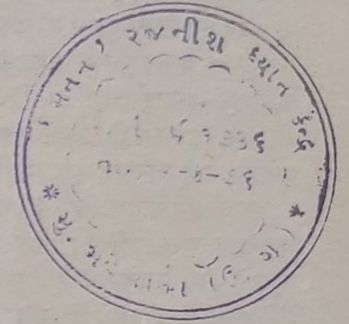
पहला प्रश्न : भगवान, मनुस्मृति में यह श्लोक है :

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत ।।

(मारा हुआ धर्म माल डालता है; रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है । इसलिए धर्म को न मारना चाहिए, जिससे मारा हुआ धर्म हमको न मार सके ।)

सहजानन्द !

यह श्लोक प्रीतिकर है । ऐसे तो मनुस्मृति बहुत कुछ कचरे से भरी है, लेकिन खोजो तो राख में भी कभी-कभी कोई अंगारा मिल जाता है। कचरे में भी कभी-कभी कोई हीरा हाथ लग जाता है ।

मनुस्मृति निन्यानबे प्रतिशत तो कभी की व्यर्थ हो चुकी है । भारत की छाती से उसका बोझ उतर जाये, तो अच्छा । उसमें ही जड़ें हैं भारत के बहुत से रोगों की । भारत की वर्ण-व्यवस्था; अछूतों के साथ अनाचार; स्त्रियों का अपमान, जिसकी अंतिम परिणति स्वभावत: बलात्कार में होती है; ब्राह्मणों की उच्चता का गुणगान—जिसका परिणाम पाण्डित्य के बढ़ने में तो होता है, लेकिन बुद्धत्व के विकसित होने में नहीं ।

लेकिन फिर भी कभी-कभी कोई सूत्र हाथ लग जा सकता है, जो अपूर्व हो । यह उन थोड़े से सूत्रों में से एक है । इस सूत्र को ठीक से समझो, तो मैंने जो अभी कहा कि निन्यानबे प्रतिशत मनुस्मृति कचरा है, वह भी समझ में आ जायेगी बात—इस सूत्र को समझने से ।

यह सूत्र निश्चित ही मनु का नहीं हो सकता; मनु से प्राचीन होगा । क्योंकि मनु ने जो भी कहा है, वह इसके बिलकुल विपरीत है । मनु के सारे वक्तव्य धर्म की हत्या करने

वाले वक्तव्य हैं। मनु जैसे व्यक्तियों ने ही तो धर्म की हत्या की है।

यह सूत्र किसी बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति से आया होगा। लेकिन पुराने समय में एक ही ग्रंथ में सब कुछ समाहित कर लिया जाता था। जैसे अभी भी विश्वकोश निर्मित करते हैं--इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका--तो सभी कुछ, जो भी खोजा गया है, जो भी आज की समझ है, उसका संकलन कर लेते हैं। ऐसे ही पुराने शास्त्र संकलित थे। इसलिए उन्हें संहिताएं कहा जाता है।

वेद को हम संहिता कहते हैं। संहिता का अर्थ होता है--संकलन। वेद में किसी एक व्यक्ति के वचन नहीं हैं। अनेक-अनेक ऋषियों के वचन हैं। और उनके साथ-साथ बहुत से अंधों के वचन भी हैं! इसलिए वेद को पढ़ते समय बहुत होश चाहिए। क्योंकि अंधे हमेशा आंख वालों से ज्यादा होते हैं। हीरे तो मुश्किल से ही मिलते हैं। कंकड़-पत्थर तो गली-कूचे, जगह-जगह मिल जाते हैं। उनकी कोई खदानें थोड़े ही खोजनी पड़ती हैं।

मनुस्मृति का अर्थ भी यही होता है कि जो-जो मनु उस समय स्मरण कर सके, जो-जो चारों तरफ व्याप्त था, जो-जो हवा में रोशनी छूट गई थी, सदियों पुरानी हो सकती है; मनु उसके लेखक नहीं हैं, केवल स्मृतिकार हैं। मनु उसके रचयिता नहीं हैं, सिर्फ संग्राहक हैं। उन्होंने उस सब को स्मृति में बांध दिया है, जो बिखरा पड़ा था।

यह सूत्र मनु का नहीं हो सकता। और अगर यह सूत्र मनु का है, तो फिर पूरी मनुस्मृति मनु की नहीं हो सकती। यह मैं इसलिए कहता हूं--आंतरिक साक्षी के आधार पर। यूं तो मनुस्मृति में यह सूत्र है, इसलिए शोधकर्ता मेरे विरोध में हो सकते हैं। लेकिन मेरे देखने-सोचने-समझने के ढंग और हैं। शोधकर्ता के वे ढंग नहीं हैं।

अंतःसाक्षी का अर्थ होता है: यह वक्तव्य इतना विपरीत है बाकी सारे वक्तव्यों से कि या तो यह ठीक होगा या फिर बाकी सब ठीक हो सकते हैं। इस एक को हटा लो, तो मनुस्मृति में से सार की बात ही निकल जाती है।

और इस सूत्र को समझना जरूरी है। फिर किसी का हो। किसने कहा, यह बात मूल्यवान नहीं है; मगर जो कहा है, अपूर्व है, अद्वितीय है। शायद भूल-चूक से मनु से ही निकल गया हो! कभी-कभी तो विक्षिप्त भी पते की बातें कह जाते हैं! कभी-कभी पागल भी बड़े दूर की खोज लाते हैं। कहावत है: 'अंधे को अंधेरे में दूर की सूझी!'

कभी-कभी टटोलते-टटोलते भी अंधे को भी दरवाजा हाथ लग जाता है। अपवाद है वह, नियम नहीं।

यह भी हो सकता है कि मनु ने ही यह सूत्र कहा हो। लेकिन मनु ने किसी ऐसी अवस्था में कहा होगा, जो साधारण मनु से बिलकुल भिन्न है। कोई झरोखा खुल गया होगा; किसी मस्ती में होंगे। कोई क्षण ध्यान का उतर आया होगा। मगर मनु की प्रकृति के अनुकूल नहीं है यह।

मनु की गिनती बुद्धों में नहीं है। वे भारतीय नीति-नियम के सर्जक हैं। उन्होंने भारत को नैतिक व्यवस्था दी। और नैतिक व्यवस्था अकसर ही राजनीति का अंग होती है। 'राजनीति' में भी जो 'नीति' शब्द है, वह ध्यान रखने योग्य है। व्यक्ति की नीति होती है, तो उसको हम नैतिकता कहते हैं। और राज्य की नीति होती है, तो उसको राजनीति कहते हैं। दोनों में तालमेल है। लेकिन दोनों ऊपर-ऊपर होती हैं, सतही होती हैं। धर्म होता है आंतरिक--भीतर का दीया जले तो। फिर उसके अनुसार जो जीवन में क्रांति होती है, वह क्रांति किन्हीं नियमों के आधार पर नहीं होती, किसी शास्त्र के अनुसार नहीं होती। इसलिए उस क्रांति की कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। कोई नहीं कह सकता कि उस क्रांति का अंतिम निखार क्या होगा। एक बात सुनिश्चित जरूर कही जा सकती है कि वह क्रांति कभी भी पुनरुक्ति नहीं करती। बुद्ध जैसा व्यक्ति फिर दुबारा उस क्रांति से पैदा नहीं होता। न महावीर जैसा, न कृष्ण जैसा, न कबीर जैसा, न मोहम्मद जैसा। उस क्रांति से हमेशा मौलिक प्रतिभा का जन्म होता है। पुनरुक्ति नहीं होती। इतनी बात भर कही जा सकती है।

नीति हमेशा पुनरुक्ति करती है। नीति तो यूं है, जैसे कार्बन कॉपी करते हैं हम। किसी के पीछे चलो। किसी की मान कर चलो। अपने ऊपर जैसे वस्त्र ओढ़ते हो, ऐसे ही शास्त्रों को ओढ़ लो, तो तुम नैतिक हो जाओगे, लेकिन धार्मिक नहीं।

नीति ऐसे है, जैसे अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में बातें करने लगे। बातें करने में क्या अड़चन है! प्रकाश के संबंध में अंधा आदमी सारी जानकारी इकट्ठी कर सकता है। लेकिन फिर भी उसने प्रकाश देखा नहीं है। और जिसने देखा नहीं, उसकी कितनी ही बड़ी जानकारी हो, हिमालय के पहाड़ जैसा ढेर हो जानकारी का, तो भी दो कौड़ी उसका मूल्य है। और जिसने प्रकाश देखा है, शायद प्रकाश के संबंध में और कुछ भी न जानता हो, तो भी क्या बात है। प्रकाश देख लिया, तो सब जान लिया। न समझे प्रकाश का भौतिकशास्त्र, न समझे प्रकाश का रसायनशास्त्र, न समझे प्रकाश का गणित, पर करना क्या है! फूल देख लिए, रंग देख लिए, इंद्रधनुष देख लिए, तितलियों के पंख देख लिए, हरियाली देख ली, लोगों के चेहरे देख लिए, चांद-तारे देख लिए, सूर्योदय-सूर्यास्त देख लिए, रोशनी के अनंत-अनंत खेल और लीलाएं देख लीं--अब क्या करना है, कि न समझे प्रकाश का विज्ञान!

लेकिन कुछ मूढ़ प्रेम को समझते रहते हैं, प्रेम नहीं करते! प्रकाश को समझते रहते हैं, आंख नहीं खोलते! उधार, बासी बातों को गुनते रहते हैं, कभी अपने जीवन की किरण को जगाते नहीं। कभी अपने सोये हुए प्राणों को पुकारते नहीं।

यह सूत्र जिससे भी आया हो, आंख वाले से आया होगा। और मनु सबूत नहीं देते--आंख वाले का। आंख वाला आदमी, आदमी आदमी को ब्राह्मण और शूद्र में नहीं बांट सकता। आंख वाले आदमी के लिए सारे विभाजन गिर जाते हैं। न कोई

काला रह जाता, न कोई गोरा। न कोई ब्राह्मण, न कोई शूद्र। न कोई स्त्री, न कोई पुरुष।

यूं हुआ कि कुछ शराबी युवक धनाढ्य थे, एक सुंदर वेश्या को ले कर और खूब शराब ले कर जंगल गये। पूर्णिमा की रात थी; मजा करेंगे। खूब डट कर उन्होंने शराब पी और नशे में ऐसे धुत हो गये कि वेश्या के सारे कपड़े छीन कर उसे नग्न कर दिया। वेश्या तो घबड़ा गयी, उनका नशा देख कर, कि इन्होंने कपड़े ही छीने, यही बहुत है। ये चमड़ी तक नोच ले सकते हैं। उनको नशे में धुत्त देख कर वह भाग खड़ी हुई। कपड़े तो उसके पास थे नहीं, तो नंगी ही भाग गयी वह। उसने सोचा : जान बची और लाखों पाये। अब किसी तरह पहुंच ही जाऊंगी घर, रात का वक्त है, नंगी भी पहुंची तो किसको पता चलेगा!

सुबह-सुबह भोर होने के करीब होती होगी, जब ठण्डी हवाएं चलीं, उन युवकों को थोड़ा होश आया। वे रात भर उन कपड़ों को ही छाती से लगाये रहे थे! होश आया, तो पता चला : वेश्या तो नदारद है। किसी के हाथ में साड़ी है, किसी के हाथ में चोली है, किसी के हाथ में कुछ है। वेश्या तो नदारद है; वेश्या तो किसी के हाथ में नहीं है! वे उसकी तलाश में निकले।

जिस रास्ते से वे आये थे, वह एक ही रास्ता था, उसी रास्ते पर उन्हें याद आया कि जब वे आये थे, तो उन्होंने एक संन्यासी को वृक्ष के नीचे बैठा देखा था। शायद वह अब भी बैठा हो! अगर वह बैठा हो, तो वह पता दे सकता है, क्योंकि इसी रास्ते से भागी होगी। और तो कोई रास्ता नहीं है।

वह संन्यासी कोई साधारण संन्यासी न था; स्वयं गौतम बुद्ध थे। वे बैठे थे अब भी। डोल रहे थे अपनी मस्ती में। सुबह की ताजी हवाएं उठने लगी थीं; फूलों की सुगंध बिखरने लगी थी; पक्षियों के गीत गूंजने लगे थे। सारा वन-प्रांत सूर्योदय की प्रतीक्षा कर रहा था। अभिनन्दन कर रहा था। बन्दनवार सजाये बैठा था।

उन्होंने जा कर उनको हिलाया। बुद्ध ने आंखें खोलीं। उन्होंने पूछा कि 'आपने जरूर यहां से एक नग्न स्त्री को भागते देखा होगा। बहुत सुंदर है; युवा है। ऐसा नाक-नक्श है, जैसे अप्सरा हो। क्या उर्वशी होगी! क्या मेनका होगी! सोने जैसी देह है उसकी। नागिन जैसे उसके बाल हैं। मछलियों जैसी उसकी आंखें हैं! कवियों ने जिसका वर्णन किया है, सब उसमें मौजूद है। और नग्न भागी है, जरूर आपने देखा होगा।'

बुद्ध ने कहा, 'तुम अगर मुझे पहले ही कह गये होते, क्योंकि तुम जब गये थे, तब मैंने भीड़-भाड़ देखी थी; शोरगुल सुना था कि तुम जा रहे हो। तुम अगर तभी मुझे कह गये होते, कि जरा ध्यान रखना, खयाल रखना, तो मैं खयाल रखता। कोई निकला जरूर था, कोई गुजरा जरूर था, लेकिन यह कहना मुश्किल है कि वह स्त्री थी या पुरुष!

और यूं भी नहीं कि मैंने न देखा हो। मगर जब से मेरे भीतर की वासना गिर गयी, तब से मेरे भीतर यह फासला भी नहीं उठता कि कौन स्त्री है, कौन पुरुष। तुम मुझे क्षमा करो। तुमने कहा होता, तो मैं खयाल करता; ध्यानपूर्वक देखता। और अब तुम मुझसे यह भी मत पूछो कि वह सुंदर थी या असुंदर। जब से वासना गयी, तब से कौन सुंदर है—कौन असुंदर है! वह तो हमारे ही भीतर की भूख होती है, जो सौंदर्य-असौंदर्य के मापदण्ड बनाती है; स्त्री-पुरुष के मापदण्ड बनाती है। कोई निकला जरूर था। किस दिशा में गया, यह भी मत पूछो, क्योंकि मैं अपने में डूबा बैठा हूं, मैं किस-किस की फिक्र करूं कि कौन किस दिशा में जा रहा है! मैं भीतर की दिशा में जा रहा हूं। और सब दिशाएं बाहर हैं। मैंने बाहर की दिशाएं छोड़ दीं, तो अब बाहर की दिशाओं में जाने वाले लोग . . .। यूं कान में भनक मेरे पड़ी थी कि कोई गुजरा है, जरूर गुजरा है। मगर यूं तो यहां से हिरण भी गुजरते हैं, हाथी भी गुजरते हैं; कभी सिंह भी गुजर जाता है। यह जंगल है। कोई गुजरा जरूर, मगर मैं तुम्हें ठीक-ठीक न कह सकूंगा—कौन गुजरा!'

यह बुद्धत्व की दशा है, जहां स्त्री और पुरुष का भेद भी गिर जाता है। लेकिन मनु के लिए ये भेद गिरे नहीं। 'स्त्री नरक का द्वार है।' यह पुरुष का दंभ!

स्त्रियों की जब चर्चा करते हैं मनु जैसे लोग, तो उसके भीतर की हड्डी, मांस-मज्जा, मवाद, खून, इत्यादि-इत्यादि की बातें करते हैं, जैसे खुद के शरीर में सोना-चांदी भरा हो!

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि ये महात्मागण स्त्रियों के शरीर का वर्णन करने में जैसे बेहूदे, भद्दे, अभद्र शब्दों का उपयोग करते हैं, उस समय बिलकुल भूल ही जाते हैं कि खुद भी स्त्री से पैदा हुए हैं! उनकी देह भी उसी मांस-मज्जा से बनी है, स्त्री की ही मांस-मज्जा से बनी है। तुम्हारे पिता का दान तो ना-कुछ के बराबर है। वह तो काम एक इंजेक्शन कर सकता है, जो तुम्हारे पिता ने किया! वह कोई खास काम नहीं है। और भविष्य में इंजेक्शन ही करेगा। जानवरों की दुनिया में तो इंजेक्शन करने ही लगा है।

लेकिन तुम्हारे देह की पूरी की पूरी जीवन ऊर्जा तो स्त्री से आती है, मां से आती है। तुम्हारी देह में वही सब है, जो स्त्री की देह में है। लेकिन स्त्री की देह को गाली देते वक्त, गंदगी का ढेर बताते वक्त पता नहीं महात्मा भूल ही जाते हैं कि उनकी भी देह उसी से बनी है; वैसी ही गंदगी से। फिर गंदगी क्या गंदगी का वर्णन कर रही है! फिर पुरुष की देह में ऐसी क्या खूबी है, ऐसा कौन-सा स्वर्ग है—जो स्त्री का देह नरक का द्वार है!

स्त्री की जैसी अवमानना मनु ने की है, और फिर बाबा तुलसीदास तक मनु के पीछे चलने वालों की जो कतार है, वह सब उन्हीं गालियों को दोहराती रही है। शूद्रों को

तो पशुओं से भी गया-बीता माना है। गाय की हत्या करो, तो महापाप है। लेकिन शूद्र की हत्या में कोई पाप नहीं बताया! जैसे गाय से भी ज्यादा गर्हित, गिरा हुआ शूद्र है। यह मनु जैसे ही लोगों की बात मान कर तो राम ने एक शूद्र के कान में सीसा पिघलवा कर भरवा दिया, क्योंकि उसने वेद के वचन सुन लिए थे! पशु-पक्षी सुनते रहते हैं, तो किसी को एतराज नहीं। कुत्ते-बिल्लियां सुनते रहें, चूहे-मच्छड़ सुनते रहें——किसी को एतराज नहीं। कितने चूहों ने नहीं सुना होगा वेद! सुना क्या——पचा गये! 'चूहों' के हाथ जब भी वेद पड़ गया है, तो पचा ही गये उसको। कितने चूहों के कान में राम ने सीसा पिघलवा कर भरवा दिया! और ऋषि-मुनि जहां वेद का पाठ कर रहे हों, वहां तुम सोचते हो——मच्छड़ भाग जाते हैं! वहीं गुन-गुन मचाते हैं।

महावीर ने तो अपने मुनियों के लिए कहा है कि कैसी जगह में बैठ कर ध्यान करना: ऊंची-नीची जगह न हो; कंकड़-पत्थर वाली न हो; मच्छड़ों इत्यादि से भरी हुई न हो——यह भी उसमें उल्लेख है! निश्चित ही महावीर को मच्छड़ों ने खूब सताया होगा। निश्चित सताया होगा। एक तो नंग-धड़ंग आदमी और फिर भारतीय मच्छड़! और ये क्या फिक्र करें कि कौन महावीर है और कौन कौन है! ऐसा शुभ अवसर ये छोड़ें! ऐसी मीठी देह; ऐसा सुस्वादु भोजन ये छोड़ें! अरे तीर्थंकर मिलता हो भोजन को, तो फिर ये साधारण मनुष्यों की फिक्र करें! महावीर को बहुत सताया होगा सताया होगा, इसीलिए उल्लेख किया है अपने जैन मुनियों को कि जहां मच्छड़ इत्यादि हों, वहां ध्यान करने मत बैठना। नहीं तो वे ध्यान करने नहीं देंगे।

बुद्ध ने भी उल्लेख किया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मच्छड़ ध्यानियों के सदा से दुश्मन रहे हैं! राक्षस वगैरह ध्यान में बाधा डालते हैं कि नहीं, यह तो कपोल-कल्पना मालूम पड़ती है, मगर मच्छड़——यह यथार्थ मालूम होता है।

मैं सारनाथ में मेहमान था। मच्छड़ मैंने बहुत देखे, लेकिन जैसे सारनाथ में हैं, वैसे कहीं नहीं हैं। हो भी क्यों न——वह पहला स्थल है जहां बुद्ध ने पहला प्रवचन दिया। उसकी महिमा ही और है। यूं तो जबलपुर जब मैं रहता था, तो जबलपुर में भी बड़े मच्छड़ हैं। तो मैं सोचता था कि जबलपुरी मच्छड़ का कोई मुकाबला नहीं। मगर जब सारनाथ गया, तब मुझे पता चला कि मच्छड़ हैं तो सारनाथ के!

भिक्षु जगदीश काश्यप के घर में मैं मेहमान था। रात हम दोनों ने किस तरह गुजारी——मत पूछो! वे तो अभ्यासी भी थे, क्योंकि वहीं रह रहे थे वर्षों से। मैंने उनसे पूछा कि 'इतने मच्छड़ो के बीच कैसे गुजार रहे हो?' उन्होंने कहा, 'मत पूछिये। पूछिये ही मत यह बात! खुद भगवान बुद्ध एक ही बार आये; एक ही रात रुके हैं सारनाथ! फिर नहीं आये। हालांकि और सभी स्थानों पर वे कई बार गये। वैशाली, कहते हैं, चालीस बार गये। मगर सारनाथ, बस एक ही बार आये!'

तो मैंने कहा, 'अब मैं भी समझा राज कि क्यों एक ही बार आये! मैं भी दुबारा

आने वाला नहीं हूं!' और दुबारा गया भी नहीं। उन्होंने बहुत निमंत्रण दिये; मैंने कहा, 'क्षमा करो। सारनाथ छोड़ कहीं और मिलना हो जायेगा। मगर सारनाथ नहीं आना है!' दिन में भी मच्छड़दानी के भीतर बैठे रहो! बाहर निकले कि वे तैयार हैं! तो बुद्ध बेचारे कोई मच्छरदानी वगैरह लेकर चलते भी नहीं थे! उन दिनों शायद मच्छड़दानी थी भी नहीं। और होती भी, तो संन्यासी मच्छड़दानी ले कर चले, तो बदनाम हो जाये! मेरा जैसा कोई संन्यासी हो, उसकी बात और——जो वदनामी से डरता ही नहीं! एक मच्छड़दानी नहीं, कई मच्छड़दानी ले कर चल सकता हूं; पूरी दुकान ले कर चल सकता हूं! कोई हर्जा नहीं।

लेकिन राम ने शूद्र के कानों में सीसा पिघलवा कर भरवा दिया। यह मनु के ही इशारों पर सारा काम चला। इस देश में जो आज भी अत्याचार हो रहा है शूद्रों पर उसमें मनु महाराज का हाथ है।

अभी भी मनुस्मृति हिन्दू-मानस का आधार-स्तंभ है। अभी भी हम उससे छूट नहीं पाये।

मगर यह सूत्र बड़ा प्यारा है। यह सूत्र अकेला ही होता, तो मनुस्मृति अद्भुत होती। मगर यह सूत्र तो दबा पड़ा है। यह सहजानन्द ने कैसे खोज लिया, यह भी आश्चर्य है! क्योंकि मनुस्मृति——बहुत से सूत्र हैं, बहुत श्लोक हैं। पूरे पढ़े होंगे, तब कभी इस सूत्र पर हाथ लगा होगा। मगर यह सूत्र . . . जब मैं मनुस्मृति को देख रहा था——उलट-पलट रहा था——तब मेरी आंखों में भी जगमगाते दीये की तरह बैठा रह गया था। मैं इसे भूला नहीं। इस सूत्र का अर्थ तुम समझो। अर्थ बिलकुल मनु के विपरीत जाता है। अर्थ ब्राह्मणों के विपरीत जाता है। अर्थ पण्डितों के विपरीत जाता है। पुरोहितों के विपरीत जाता है। क्योंकि धर्म को मारता कौन है!

यह सूत्र कहता है: 'धर्म एव हतो हन्ति——मारा हुआ धर्म मार डालता है।' निश्चित ही इसके प्रमाण ही चारों तरफ दिखाई पड़ेंगे। हिन्दू धर्म ने हिन्दुओं को मार डाला है। मुसलमान धर्म ने मुसलमानों को मार डाला है। जैन धर्म ने जैनों को मार डाला है। बौद्ध धर्म ने बौद्धों को मार डाला है। ईसाई धर्म ने ईसाइयों को मार डाला है। यह पृथ्वी मरे हुए लोगों से भरी है। इसमें मुरदों के अलग-अलग मरघट हैं। कोई हिन्दुओं का, कोई मुसलमानों का, कोई जैनों का——वह बात और——मगर सब मरघट हैं!

मारता कौन है धर्म को! तुम सोचते हो कि अधार्मिक लोग धर्म को मारते हैं, तो गलत। अधार्मिक की क्या हैसियत है कि धर्म को मारे।

तुमने कभी देखा: अंधेरे ने आ कर और दीये को बुझा दिया हो! अंधेरे की क्या हैसियत कि दीये को बुझाये! अंधेरा दीये को नहीं बुझा सकता। अंधेरा धोखा भी नहीं दे सकता आलोक होने का। इसलिए इस बात को बहुत गांठ में बांध लेना, भूलना ही मत कभी।

इस दुनिया में धर्म को खतरा अधर्म से नहीं होता; झूठे धर्म से होता है। असली सिक्कों को खतरा कंकड़-पत्थरों से नहीं होता; नकली सिक्कों से होता है। नकली सिक्के चूंकि असली सिक्कों जैसे मालूम पड़ते हैं, इसलिए असली सिक्कों को चलन के बाहर कर देते हैं।

अर्थशास्त्र की यह मान्य धारणा है, और उचित मालूम होती है : कि असली सिक्कों को चलन के बाहर करने की क्षमता केवल नकली सिक्कों में होती है। तुम्हारी जेब में भी अगर सौ सौरुपये के दो नोट हों--एक नकली और एक असली--तो तुम पहले किसको चलाओगे ? तुम पहले नकली को चलाओगे। क्योंकि असली तो कभी भी चल जायेगा। तुम नकली को किसी भी बहाने चलाओगे। अखबार ही खरीद लोगे, चाहे पढ़ना हो या न पढ़ना हो ! कुछ भी खरीद लोगे--रुपये दो रुपये की चीज, चार-छह आने की चीज। सौ रुपये का नकली सिक्का चल जाये ! और जिसके हाथ में वह पड़ेगा, जैसे ही वह पहचानेगा कि नकली है, वह भी पहला काम यही करेगा कि इससे निपटारा हो। क्योंकि नकली को रखना खतरे से खाली नहीं है। चले--न चले, तो जल्दी चला दो। असली तो कभी भी चल सकता है। इसलिए जब नकली सिक्के बाजार में होते हैं, तो असली सिक्के तिजोड़ियों में बंद हो जाते हैं, और नकली सिक्के चलने लगते हैं।

यही नियम धर्म के जगत में भी लागू होता है। बुद्धों को चलन के बाहर कर देते हैं--पण्डित-पुरोहित। ये नकली सिक्के हैं। ईसा को चलन के बाहर कर दिया--ईसाई पादरियों ने, पोपों ने। महावीर को चलन के बाहर कर दिया जैन मुनियों ने। कृष्ण को चलन के बाहर कर दिया तथाकथित कृष्ण के उपासक, पुजारी, पण्डित--इन्होंने चलन के बाहर कर दिया।

नकली सिक्के सस्ते भी मिलते हैं। असली सिक्कों के लिए कीमत चुकानी पड़ती है ! और बड़े मजे की बातें हैं कि नकली सिक्के के लिए कोई श्रम ही नहीं उठाना पड़ता। असली सिक्के के लिए बहुत श्रम से गुजरना पड़ता है।

धर्म को मारता कौन है ?

पहले समझें कि धर्म को जिलाता कौन है ? क्योंकि अगर हम जिलाने वाले को पहचान लें, तो मारने वाले को भी पहचान जायेंगे।

धर्म को जिलाते हैं, इस जगत में जीवंत करते हैं वे लोग जो धर्म के अनुभव से गुजरते हैं। बुद्ध, जीसस, कृष्ण, मोहम्मद, जलालुद्दीन, नानक, कबीर--ये धर्म के मृत प्राणों में पुनरुज्जीवन फूंक देने वाले लोग हैं। फिर बांसुरी बज उठती है, जो सदियों से न बजी हो। ठूंठ फिर हरे पत्तों से भर जाते हैं, और फूलों से लद जाते हैं--जिन पर सदियों से पत्ते न आये हों।

बुद्ध के जीवन में कहानी आती है. . .। 'कहानी' ही कहूंगा, क्योंकि मैं नहीं मानता

कि यह कोई तथ्य है; मगर प्रतीकात्मक है। बहुमूल्य है। सत्य है--तथ्य नहीं।

कहानी कहती है कि बुद्ध जब निकलते हैं--अगर किसी ठूंठ के पास से निकल जायें, तो ठूंठ हरा हो जाता है। और किसी बांझ वृक्ष के पास से निकल जायें, जिसमें फल न लगते हों, तो फल लग जाते हैं। असमय में फूल खिल जाते हैं।

कथा है कि एक गांव में बुद्ध ठहरे। सुबह-सुबह एक शूद्र चमार--उसका नाम था--सुदास, वह उठा; अपने घर के पीछे गया। काम-धाम में लगने का वक्त हो गया। घर के पीछे उसका पोखर था, छोटी-सी तलैया। चमार था; गांव में उसे कोई पानी भरने न दे, तो अपनी ही तलैया से अपना गुजारा करता था।

देख कर उसकी आंखें ठगी रह गयीं ! बे-मौसम कमल का फूल खिला। उसने अपनी पत्नी को पुकारा, 'सुन। यह क्या हुआ ! यह कभी नहीं हुआ ! मेरी जिंदगी हो गयी। यह कोई मौसम है, यह कोई समय है ! कली भी न थी रात तक, और सुबह इतना बड़ा फूल खिला ! इतना बड़ा फूल कि कभी खिला नहीं देखा ! यह कैसे हुआ ?'

उसकी पत्नी ने कहा, 'हो न हो बुद्ध पास से गुजरे होंगे। क्योंकि मैंने सुना है--जब बुद्ध गुजरते हैं, तो असमय फूल खिल जाते हैं।'

सुदास हंसने लगा। उसने कहा कि 'पागल ! यहां कहां बुद्ध गुजरेंगे ! इस चमार के झोपड़े के पास से कहां बुद्ध गुजरेंगे !' उसने आसपास खबर की। पता चला कि यह सच है; सांझ ही बुद्ध का आगमन हुआ है। वे इसी रास्ते से गुजरे हैं। और आगे जा कर एक अमराई में रुके हैं।

तो सुदास ने कहा कि 'फिर क्या करूं इस फूल का ! यह तो बड़ा शुभ अवसर है। इस फूल तो तोड़कर मैं सम्राट को बेच दूं। सौ-पचास रुपये जरूर इनाम में मिल जायेंगे। क्योंकि असमय का कमल !'

तो वह फूल को तोड़ कर राजमहल की तरफ जाता था। चकित हुआ। राजा का रथ ही आ रहा था ! अभी सूरज उग रहा था और राजा का रथ--स्वर्ण रथ--सूरज में यूं चमक रहा था, जैसे दूसरा सूरज उग रहा हो। वह ठिठक कर राह पर ही खड़ा हो गया।

माजरा क्या है ! रात इस गरीब के झोपड़े के सामने से बुद्ध गुजरे; सुबह सम्राट का स्वर्ण-रथ आ रहा है ! इस रास्ते पर कभी आया ही नहीं। यह चमारों की बस्ती, यहां सम्राट आयें किसलिए ! ठिठक कर खड़ा रह गया। हिम्मत ही न पड़ी कहने कि कि मैं फूल ले कर राजमहल की तरफ आ रहा था। लेकिन रथ खुद ही रुका। सम्राट ने सारथी को कहा--'रुको। इस सुदास को बुलाओ।'

सुदास सम्राट के जूते बनाता था। सुदास का नाम सम्राट को मालूम था। सुदास डरते हुए गया और कहा कि 'फूल ले कर आपकी तरफ ही आ रहा था। असमय का फूल है, मैंने सोचा--किसको भेंट करूं ! आपके ही योग्य है।'

सम्राट ने कहा, 'मांग, क्या मांगता है ? जो मांगेगा इसके बदले में--दूंगा ।'

सुदास ने कहा कि 'जो आप दे देंगे ।'

'नहीं', सम्राट ने कहा, 'तू मांग । क्योंकि यह फूल मैं बुद्ध को चढ़ाने ले जाऊंगा । तू जो मांगेगा, दूंगा । बुद्ध प्रसन्न होंगे देख कर--ऐसे असमय का फूल ! इतना सुंदर--इतना बड़ा फूल कमल का !'

सुदास के गरीब मन में भी एक अमीर चाह उठी कि क्यों नहीं मैं ही न चढ़ा दूं जा कर फूल ! रोटी-रोजी तो चल ही जाती है । मगर लालच भी मन में उठा कि आज सम्राट कहता है--जो मांगना हो, मांग ले !

लेकिन इसके पहले कि वह कुछ कहे, वह सोच रहा था कि कहूं--एक हजार स्वर्ण अशर्फियां; हिम्मत नहीं बंध रही थी कि एक हजार स्वर्ण अशर्फियां मांग रहा हूं, एक फूल के लिए ! तो थोड़ा झिझक रहा था । तभी सम्राट के रथ के पीछे ही उसके वजीर का रथ आ कर रुका । और वजीर ने कहा, 'सुदास, बेच मत देना; मैं भी खरीददार हूं । मैं चढ़ाऊंगा बुद्ध को । और सम्राट तो औपचारिकतावश जा रहे हैं । इनको बुद्ध से कुछ लेना-देना नहीं है । जाना चाहिए, इसलिए जा रहे हैं । मैं बुद्ध का प्रेमी हूं ।' इसलिए सम्राट को कहा कि 'देखें, आप बीच में न आयें । आप प्रतिस्पर्धा में न पड़ें । निश्चित ही मैं कैसे आप से जीतूंगा, अगर प्रतिस्पर्धा हो जाये । मगर आप बीच में न आयें, क्योंकि आपके लिए तो सिर्फ औपचारिक है जाना; मेरे हृदय की बात है ।' 'सुदास, तू मांग, जो मांगेगा दे दूंगा ।'

सुदास ने सोचा, 'जब बात यूं है, तो अब एक हजार अशर्फियां क्या मांगनी; दो हजार अशर्फियां मांग लूं !' मगर उसकी जबान न खुले । दो अशर्फियां मांगने में भी बात ज्यादा होती थी; दो हजार अशर्फियां !

और तभी नगरसेठ का भी रथ आ कर रुका। उसने कहा, 'सुदास, बेचना मत । मैं भी खरीददार हूं ।' नगरसेठ तो इतना बड़ा सेठ था कि सम्राट को भी खरीद सकता था । सम्राट को जब जरूरत पड़ती थी, तो उससे ही उधार मांगता था । और इस अकेले सम्राट को ही नहीं, आसपास के और बड़े सम्राट भी इस नगरसेठ से धन उधार लेते थे। कहते थे कि इस नगरसेठ के पास धन तौला जाता था--गिना नहीं जाता था । क्योंकि गिनने की फुर्सत किसको थी ! तो फावड़े से भर-भर कर टोकरियों में अशर्फियां गिनी जाती थीं, कि कितनी टोकरियां ! कौन गिने एक-एक दो-दो ! ऐसे गिनती करने की फुर्सत किसको थी !

उस सेठ ने कहा कि 'तू जो कहेगा । लाख अशर्फियां मांगना हो, लाख अशर्फियां मांग । लेकिन फूल मैं चढ़ाऊंगा ।'

सुदास ठिठका खड़ा रह गया । उसने कहा कि 'फूल बेचना नहीं है ।'

उन तीनों ने एक साथ पूछा--'क्यों !'

सुदास ने कहा कि 'जिस फूल के लिए एक लाख अशर्फियां देने के लिए कोई तैयार हो, गरीब आदमी हूं, मगर मेरे मन में भी गहन भाव उठा कि फिर मैं ही क्यों न इस फूल को बुद्ध के चरणों में चढ़ा दूं । जरूर उन चरणों में चढ़ाने का मजा लाख अशर्फियों से ज्यादा होगा । नहीं तो तुम एक अशर्फी न देते', नगरसेठ से उसने कहा, 'मुझे ! लाख अशर्फियां दे रहे हो ! सम्राट राजी है; वजीर राजी है; तुम राजी हो । और मुझे ऐसा लगता है कि अगर गांव में जाऊं, तो और भी लोग राजी हो जायेंगे । मुझे इसके जितने दाम चाहिए, उतने मिल सकते हैं । लेकिन अब बेचना ही नहीं है ।'

नगरसेठ ने कहा, 'दो लाख अशर्फियां देता हूं । तू जो मांग--मुंहमांगा ।'

उसने कहा, 'अब बेचना ही नहीं है । सुदास गरीब है, मगर इतना गरीब नहीं । चमार है । काम तो चल ही जाता है मुझ गरीब का--जूते सीने से ही । यह मौका मैं नहीं छोड़ूंगा । यह फूल मैं ही चढ़ाऊंगा ।'

और सुदास ने जा कर वह फूल बुद्ध के चरणों में स्वयं चढ़ाया । और बुद्ध ने उस सुबह अपने प्रवचन में कहा कि 'सुदास ने आज इतना कमाया है, जितना कि सदियों में सम्राट नहीं कमा सकते । पूछो इस सम्राट से, पूछो इस वजीर से, पूछो इस नगरसेठ से ! आज इन सब को हरा दिया सुदास ने । आज इस शूद्र ने अपने को परम श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया । आज लात मार दी धन पर । आज इसका अपरिग्रही रूप प्रगट हुआ है । यह धन्यभागी है ।'

और सुदास पर ऐसी वर्षा हुई उस दिन अमृत की कि फिर लौटा नहीं । उसने कहा, 'अब जाना क्या ! जब फूल चढ़ाने से इतना मिला, तो अपने को भी चढ़ाता हूं ।' सुदास भिक्षु हो गया । फूल ही नहीं चढ़ा; खुद भी चढ़ गया ।

यूं कहानियां हैं कि असमय, बुद्ध के पास से गुजरने से फूल खिल जाते हैं । ऐसा होता हो न होता हो . . .हो नहीं सकता ऐतिहासिक अर्थों में । क्योंकि समय कोई नियम नहीं बदलता । होना चाहिए, मगर होता नहीं है । प्रकृति तो निरपवाद रूप से चलती है । कुछ भेद नहीं करती । लेकिन प्रतीकात्मक हैं ये बातें । बुद्धों की मौजूदगी में सदियों से निष्प्राण पड़े धर्म में पुनः प्राण की प्रतिष्ठा होती है ।

जिस व्यक्ति ने स्वयं सत्य को जाना है, वह धर्म को जीवित करता है । सिर्फ वही--केवल वही । उसके छूने से ही धर्म जीवित हो उठता है ।

और धर्म को मारने वाले वे लोग हैं, जिन्होंने स्वयं तो अनुभव नहीं किया है, लेकिन जो दूसरों के उधार वचनों को दोहराने में कुशल होते हैं ।

पण्डित और पुरोहित का व्यवसाय क्या है ! उनका व्यवसाय है कि बुद्धों के वचनों को दोहराते रहें; बुद्धों की साख का मजा लूटते रहें । बुद्धों को लगे सूली, बुद्धों को मिले जहर, बुद्धों पर पड़ें पत्थर--और पण्डितों पर, पुजारियों पर, पोपों पर फूलों की वर्षा !

अभी तुम देखते हो--पोप किसी देश में जाते हैं, तो इतने लोग देखने को इकट्ठे

होते हैं कि अभी ब्राजील में सात आदमी भीड़ में दब कर मर गये ; और जीसस को सूली लगी, तब सात आदमी भी जीसस को प्रेम करने वाले भीड़ में इकट्ठे नहीं थे। सात यहां दब कर मर गये--साधारण आदमी को देखने के लिए, जिसमें कुछ भी नहीं है ! जिसके पोप होने के पहले कोई एक आदमी देखने न आता। अभी साल भर पहले जब यह आदमी पोप नहीं हुआ था, तो कितने आदमी . . . ! आदमी तो छोड़ो, कितनी चीटियां-चीटें देख कर इसको मरे ? कहां भीड़ इकट्ठी हुई ! किसी को नाम का भी पता नहीं था ! किसी को प्रयोजन भी नहीं था। और ऐसा इस आदमी में कुछ भी नहीं है। लेकिन लाखों लोग इकट्ठे होंगे। इतने लोग इकट्ठे होंगे, कि सात आदमी भीड़ में दब कर मर जायें ! और यह पहली घटना नहीं है। ऐसी और घटनाएं घट चुकी हैं पहले। कहीं तीन आदमी मरे, कहीं दो आदमी मरे भीड़ में दब कर ! देखने का ऐसा पागलपन ! और जीसस को कितने लोग देखने गये थे !

जब जीसस को सूली लगने का वक्त आया, तो उनके बारह शिष्य भी भाग खड़े हुए थे। सिर्फ एक पीछे चला। जीसस ने उसको इंगित करके कहा; नाम तो लिया नहीं, क्योंकि नाम लेना खतरे से खाली न था। पकड़ लिया जाये बेचारा। जोर से इतना ही कहा कि 'भाई लौट जा। लौट ही जा !'

जो लोग जीसस को पकड़ कर ले जा रहे थे, उन्होंने पूछा, 'किससे आप कह रहे है ? क्या कोई जीसस का संगी-साथी यहां भीड़ में है ?' उन्होंने मशालें घुमा कर देखा। एक आदमी पकड़ गया, जो आदमी अजनबी लग रहा था। उन्होंने पूछा, 'क्या तुम जीसस के साथी हो ?' उसने कहा कि 'नहीं।' और जीसस ने कहा, 'देख, मैं कहता था लौट जा। मुर्गा सुबह की बांग दे, उसके पहले तीन बार कम से कम तू मुझे इनकार कर चुका होगा।'

और यही हुआ। मुरगे की बांग देने के पहले तीन बार वह आदमी पकड़ा गया। दुश्मनों ने बार-बार देखा कि कौन है ! तो वह हर बार बदल जाये कि 'मैं ! मैं तो अजनबी हूं। बाहर के गांव से आया हूं। गांव का पता मुझे मालूम नहीं। आप सब गांव की तरफ जा रहे हैं, मशालें हैं आपके हाथ में, तो सोचा, मैं भी साथ हो लूं।'

उन्होंने पूछा, 'तू पहचानता है, यह आदमी कौन है, जिसको हम बांधे हैं ?'

उसने कहा, 'नहीं। कभी देखा नहीं ! मैं बिलकुल पहचानता नहीं। मुझे क्या पता ! कौन है यह आदमी ? क्यों इसको बांध कर ले जा रहे हो ? चोर होगा, बदमाश होगा !'

सुबह मुरगे के बांग देने के पहले एक शिष्य साथ गया था, वह भी इनकार कर गया था ! हालांकि भीड़ इकट्ठी हुई थी, कोई एक लाख लोग इकट्ठे हुए थे। लेकिन वे एक लाख लोग जीसस को देखने इकट्ठे नहीं हुए थे . . . गालियां देने, पत्थर फेंकने, सड़े-गले केले-टमाटर फेंकने; जीसस का मखौल उड़ाने, मजाक करने--कि 'यह देखो

ईश्वर का बेटा, सूली पर लटक रहा है ! अब पुकारो अपने बाप को। अब कहो अपने बाप से जो आकाश में है, जिसकी तुम बातें करते थे सदा, कि अब बचाये। बड़े चमत्कार तुम दिखाते थे, कहते हैं--मुर्दों को जिलाते थे; कहते हैं--लंगड़ों को चला दिया; कहते हैं--अंधों को दिखा दिया; अब कुछ करो !'

लोगों ने भाले भोंक-भोंक कर जीसस को कहा, 'अरे, अब कुछ चमत्कार दिखाओ ! अब क्या हो गया ! कैसे गुमसुम खड़े हो ? अब भूल गयी चौकड़ी !'

आये थे लाख लोग देखने तमाशा--हंसी-मजाक करने ! यह जीसस जैसे व्यक्तियों के साथ हमारा व्यवहार है। और फिर जीसस के पादरी-पुरोहितों के साथ हमारा व्यवहार बिलकुल बदल जाता है। बड़ी अजीब दुनिया है ! बड़ा अजीब रिवाज है ! यहां झूठे पूजे जाते हैं, यहां सच्चे मारे जाते हैं ! सत्य को यहां सूली लगती है--झूठ को सिंहासन मिलता है !

धर्म को कौन मार डालता है ?

'धर्म एव हतो हन्ति'--और निश्चित ही अगर धर्म मरा हुआ होगा, तो वह तुम्हारी क्या खाक रक्षा करेगा ! तुम उसके बोझ के नीचे दब कर मर जाओगे। तुम उसकी लाश के नीचे सड़ कर मर जाओगे।

'मारा हुआ धर्म मार डालता है।' मगर धर्म को कौन मारता है ? नास्तिक तो नहीं मार सकते। नास्तिक की क्या बिसात ! लेकिन झूठे आस्तिक मार डालते हैं। और झूठे आस्तिकों से पृथ्वी भरी है। झूठे धार्मिक मार डालते हैं। और झूठे धार्मिकों का बड़ा बोल-बाला है। मंदिर उनके, मसजिद उनके, गिरजे उनके, गुरुद्वारे उनके। झूठे धार्मिक की बड़ी सत्ता है ! राजनीति पर बल उसका; पद उसका, प्रतिष्ठा उसकी; सन्मान-सत्कार उसका !

किसी जैन मुनि के कानों में तुमने खीले ठोंके जाते देखे ! महावीर के कानों में खीले ठोंके गये ! और जैन मुनि आते हैं, तो उनके पावों में तुम आंखें बिछा देते हो ! कि आओ महाराज ! पधारो। धन्यभाग कि पधारे ! और महावीर को तुमने ठीक उलटा व्यवहार किया था। तुमने पागल कुत्ते महावीर के पीछे छोड़े, कि लोंच डालो, चीथ डालो इस आदमी को !

तुमने बुद्ध को मारने की हर तरह कोशिश की। पहाड़ से पत्थर की शिलाएं सरकाईं कि दब कर मर जाये। पागल हाथी छोड़ा। जहर पिलाया।

तुमने मीरा को जहर पिलाया ! और अब भजन गाते फिरते हो ! कि ऐ री मैं तो प्रेम दिवाणी, मेरो दरद न जाने कोय ! और दरद तुमने दिया मीरा को; तुम क्या खाक दरद जानोगे ! दरद जाने मीरा। और मीरा जाने कि प्रेम का दीवानापन क्या है।

क्या तुमने व्यवहार किया मीरा के साथ ! तुमने सब तरह से दुर्व्यवहार किया।

आज तो तुम मीरा के गुणगान गाते हो, लेकिन वृन्दावन में कृष्ण के बड़े मंदिर में मीरा को घुसने नहीं दिया गया। रुकावट डाली गयी। क्योंकि उस कृष्ण-मंदिर का जो बड़ा पुजारी था. . .रहा होगा उन्हीं विक्षिप्तों की जमात में से एक जो स्त्रियों को नहीं देखते, जो स्त्रियों को देखने में डरते हैं। जिनके प्राण स्त्रियों को देखने ही से निकल जाते हैं! जिनका धर्म ही मर जाता है––स्त्री देखी कि धर्म गया उनका! कि एकदम अधर्म हो जाता है उनके जीवन में; पाप ही पाप हो जाता है!

उसने कसम ले रखी थी कि स्त्री को नहीं देखेगा। तो वह मीरा को कैसे घुसने दे! जैसे ही खबर आयी वृन्दावन में कि मीरा आ रही है, वह घबड़ाया। उसने पहरेदार लगा दिये कि मीरा को अंदर मत आने देना, क्योंकि उसके मंदिर में स्त्रियां आ ही नहीं सकती थीं।

मगर मीरा तो मस्त थी। वह इतनी मस्त थी कि जब वह नाचने लगी मंदिर के द्वार पर जा कर, तो मंदिर के पहरेदार भी उसकी मस्ती में डोलने लगे। और यूं नाचते-नाचते वह भीतर प्रवेश हो गयी! जब वह भीतर प्रवेश हो गयी, तब द्वारपालों को पता चला कि यह क्या हो गया! अब तो बड़ी मुश्किल हुई!

ब्रह्मचारी महाराज भीतर अपना पूजा का थाल लिए आरती उतार रहे थे। उनके हाथ से थाली गिर पड़ी। स्त्री सामने आ जाये! कैसे-कैसे लोग इस दुनिया में हुए! और ऐसे लोग अभी भी हैं!

अभी इंग्लैण्ड में श्री प्रमुख स्वामी स्त्रियों को नहीं देखते! तो बहुत तलहका मचा हुआ है। वे कैन्टरबरी के प्रमुख बिशप से मिलने गये, तो उसको बेचारे को पता नहीं था। जब मिलने की घड़ी आयी, तब खबर पहुंची कि 'कोई स्त्री मौजूद नहीं होना चाहिए।' अब बिशप की सेक्रेटरी ही स्त्री! टाइपिस्ट स्त्री! और कई स्त्रियां पत्रकार-फोटोग्राफर––वे सब आयी हुई थीं। उन सब को हटाना पड़ा। इंग्लैण्ड में बहुत चर्चा हुई इस बात की, कि यह स्त्रियों का अपमान है। वे स्त्रियों को नहीं देख सकते!

ऐसा ही वह आदमी रहा होगा––ऐसा ही विक्षिप्त। उसके हाथ से थाली गिर पड़ी। और वह एकदम नाराज हो गया, आगबबूला हो गया। ऐसे लोगों के भीतर आग तो सुलगती रहती है। ये तो ज्वालामुखी पर बैठे हुए लोग हैं। कब भभक उठे इनकी आग––जरा-सा अवसर, बस काफी है।

चिल्लाया-चीखा कि स्त्री! तुझे तमीज नहीं! जब तुझे मालूम है––और बार-बार दरवाजे पर लिखा हुआ है कि स्त्री का प्रवेश निषिद्ध है––तू कैसे प्रवेश की? मेरा पूजा का थाल गिर गया; मेरे तीस वर्ष की साधना भ्रष्ट हो गयी!

स्त्री को देखने से इनकी साधना भ्रष्ट हो गयी! इनकी पूजा का थाल गिर गया! कृष्ण ने भी अपना माथा ठोंक लिया होगा––यह मेरा भक्त है! और कृष्ण की साधना भ्रष्ट न हुई! और सोलह हजार सखियां नाचती रहीं चारों तरफ। और ये उनके

भक्त हैं!

ये कृष्ण––जीवंत धर्म। जिसके पास सोलह हजार स्त्रियां नाचें, तो कुछ नहीं बिगड़ता। और यह मुरदों का धर्म––कि एक स्त्री आ जाये––वह भी मीरा जैसी स्त्री, जिसको देख कर भी इस अंधे को आंखें खुल सकती थीं, इस मुरदे में प्राण पड़ सकते थे––उसके हाथ की थाली गिर गयी!

लेकिन मीरा ने जो वचन कहे, प्यारे हैं। मीरा ने कहा कि 'क्षमा करें। मैं तो सोचती थी कि कृष्ण के भक्त मानते हैं––कृष्ण के अलावा और कोई पुरुष नहीं। तो दो पुरुष हैं: एक कृष्ण और एक आप? मैं तो सोचती थी कि कृष्ण के भक्तों की यह धारणा है कि हम सब स्त्रियां ही हैं; पुरुष तो एक परमात्मा है; हम सब उसकी प्रेमिकाएं हैं। उसकी सखियां हैं, उसकी गोपियां हैं। आज पता चला कि वह धारणा गलत थी। दो पुरुष हैं। एक कृष्ण और एक ब्रह्मचारी महाराज आप! मगर आप क्यों पूजा का थाल उठा कर प्रार्थना कर रहे हैं! आप तो स्वयं परमात्मा हैं! आप तो स्वयं पुरुष हैं! और परमात्मा हो कर आपके हाथ से थाली गिर गयी––स्त्री को देख कर आप ऐसे विचलित, ऐसे उद्विग्न हो उठे!'

इस दुनिया में सबसे बड़ी दुश्मनी बुद्धों और पण्डितों के बीच है। मगर मजा यह है कि जब तक बुद्ध जिंदा होते हैं, पण्डित उनका विरोध करते हैं। और जैसे ही बुद्ध विदा होते हैं, पण्डित बुद्धों की जो छाप छूट जाती है, उसका शोषण करने लगते हैं। तत्क्षण चींटों की तरह इकट्ठे हो जाते हैं! क्योंकि बुद्धों का जीवन ऐसी मिठास छोड़ जाता है कि सब तरफ से चींटे भागे चले आते हैं! जैसे शक्कर के ढेर पर चींटे इकट्ठे हो जायें।

बुद्धों की मौजूदगी में तो उन्हें विरोध करना पड़ता है। क्योंकि बुद्ध का एक-एक वचन, जाग्रत व्यक्ति का एक-एक वचन उनके लिए प्राणघाती तीर जैसा लगता है। लेकिन जैसे ही बुद्ध विदा हुए, वैसे ही वे कब्जा कर लेते हैं। बुद्ध जो अपने आसपास हजारों लोगों को प्रभावित छोड़ जाते हैं, अपनी आभा से मण्डित छोड़ जाते हैं––ये पण्डित जल्दी से उनकी उस विराट प्रतिभा का शोषण करने में तल्लीन हो जाते हैं। ऐसे धर्म निर्मित होते हैं––तथाकथित धर्म।

ईसा के पीछे ईसाइयत; इसका ईसा से कुछ लेना-देना नहीं है। और बुद्ध के पीछे बौद्ध धर्म––इसका बुद्ध से कुछ लेना-देना नहीं है। और महावीर के पीछे जैन धर्म––इसका महावीर से कुछ लेना-देना नहीं है। मगर इनकी घबड़ाहटें बड़ी अजीब हैं! एक से एक हैरानी की घबड़ाहटें! इनकी बेचैनी!

पण्डितों की हमेशा एक बेचैनी रहती है: कहीं फिर कोई बुद्ध न पैदा हो जाये! नहीं तो इनका जमाया हुआ अखाड़ा फिर उखड़ जाये! मगर सौभाग्य से बुद्ध आते रहते हैं। कभी कहीं न कहीं कोई दीया जल जाता है। और बुझे दीयों की छाती कंप

जाती है।

'धर्म एव हतो हन्ति——मारा हुआ धर्म मार डालता है।'

सहजानन्द ! बात तो बड़े पते की है। धर्म को पण्डित मारते हैं, पुजारी मारते हैं। फिर मारा हुआ धर्म, तुम जो उस मुरदा धर्म के पीछे चलते हो, तुम्हें मार डालता है। मुरदे को ढोओगे, तो मरोगे नहीं तो क्या होगा और !

'रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है।' लेकिन रक्षा धर्म की कौन करेगा ? धर्म की रक्षा तो वही करे, जिसे धर्म का अनुभव हुआ हो। जिसने धर्म को जिया हो, पिया हो, पचाया हो; जिसके लिए धर्म उसका रोआं-रोआं हो गया हो; जिसकी धड़कन-धड़कन में धर्म समाया हो——वह व्यक्ति धर्म की रक्षा करेगा। और धर्म की रक्षा अगर की जाये, तो धर्म तुम्हारी रक्षा करता है। स्वभावत:।

'तस्माद धर्मो न हन्तव्यो——इसलिए धर्म को मत मारो।'

इसलिए पण्डित-पुजारियों से बचो; धर्म को मत मारो। मंदिर-मसजिद कब्रें हैं धर्म की। इनसे बचो। कभी किसी सद्‌गुरु के मयखाने में बैठो, मयकदे में बैठो——जहां अभी जीवंत शराब ढाली जाती हो, पी जाती हो, पिलायी जाती हो——जहां दीवाने जुड़ते हों, जहां परवाने इकट्ठे होते हों। जहां दीया जलता है, वहां परवाने इकट्ठे होते हैं। मंदिर-मसजिदों में क्या है अब ! हां, दीये की तस्वीरें हैं। मगर दीयों की तस्वीरों को तुम सोचते हो——परवाने आयेंगे !

जरा एक दीये की तस्वीर लगा कर तो बैठो घर में और राह देखो कि कोई परवाना आ जाये ! परवाने इतने मूरख नहीं——जितना मूरख आदमी होता है ! परवाने पर भी न मारेंगे वहां। कितनी ही सुंदर तस्वीर हो दीये की, कितनी ही चमचमाती तस्वीर हो दीये की——सोने की बना लो——तो भी परवानों को धोखा न दे पाओगे।

सोलोमन के जीवन में उल्लेख है। ईथोपिया की रानी उसकी परीक्षा लेने गयी। क्योंकि उसने सुन रखा था कि सोलोमन पृथ्वी पर आज सर्वाधिक ज्ञानी व्यक्ति है। ईथोपिया की रानी उसकी परीक्षा लेने गयी। उसने एक हाथ में नकली फूल लिए, जो बड़े कलाकारों से बनवाये थे। और दूसरे हाथ में असली फूल लिए। नकली फूल इतने सुंदर बने थे कि असली को मात करते लगते थे ! वह दोनों फूलों को ले कर सोलोमन के दरबार में गयी। सोलोमन से थोड़ी दूर खड़े हो कर उसने कहा कि 'सोलोमन, मैंने सुना है कि तुम पृथ्वी के सबसे बड़े ज्ञानी हो। जरा-सा मेरे प्रश्न का उत्तर दे दो। मेरे किस हाथ में असली फूल हैं ? और किस हाथ में नकली फूल हैं ?'

सोलोमन भी बहुत हैरान हुआ ! देखे दोनों हाथ में फूल; तय करना मुश्किल था। मैं होता तो तय कर लेता। जो असली से भी ज्यादा असली मालूम हो रहे थे, उनको नकली कह देता। क्योंकि असली से कहीं ज्यादा असली कुछ होता है !

मगर सोलोमन ने जल्दी से तय करना ठीक न सोचा। उसने कहा कि 'जरा अंधेरा

है; मैं बूढ़ा भी हो गया; जरा द्वार-खिड़कियां खोल दो सब, ताकि रोशनी आये, ताकि मैं देख तो सकूं ठीक से।' सारे द्वार-खिड़कियां खोल दी गयीं। और वह थोड़ी देर चुपचाप रहा और उसने कहा, 'तेरे बायें हाथ में असली फूल हैं।'

ईथोपिया की रानी हैरान हुई। उसके वजीर हैरान हुए। दरबारी हैरान हुए। उन्होंने कहा, 'आपने कैसे पहचाना ! क्योंकि हम भी देख रहे हैं रोशनी में भी। मगर कुछ पहचान में नहीं आता कि कौन असली है !'

उसने कहा, 'मैंने नहीं पहचाना। मैं तो सिर्फ राह देखता रहा कि कोई मधुमक्खी भीतर आ जाये। और एक मधुमक्खी खिड़की से भीतर आ गयी। अब मधुमक्खी को तुम धोखा नहीं दे सकते, चाहे कितने ही बड़े चित्रकारों ने फूल बनाये हों। मधुमक्खी जिस फूल पर बैठी गयी, वे असली फूल हैं।'

परवानों को धोखा न दे सकोगे। मुझे भी धोखा नहीं होता। मैं फौरन पहचान जाता; जो असली से ज्यादा असली मालूम होते।

एक आदमी सेठ चंदूलाल के पास दान मांगने गया था। चंदूलाल यूं किसी को दान देते नहीं। उनके घर के सामने से भिखारी यूं निकल जाते हैं कि यह तो चंदूलालजी का मकान है ! मांगते ही नहीं। अगर कोई भिखारी उनके घर के सामने भीख मांगता है, तो दूसरे लोग कहते हैं, 'मालूम होते हो, अजनबी हो; इस गांव में नये हो। अरे यह चंदूलाल का मकान है ! जल्दी करो, निकल जाओ। हाथ में होगा कुछ, छीन लेगा और ! चंदूलाल से मिला कभी किसी को नहीं है। जो ले गया——पा गया सो पा गया !'

लेकिन गांव में कुछ बहुत जरूरत पड़ गयी थी और गांव के कुछ लोगों ने सोचा, एक दफे कोशिश करनी चाहिए। कई सालों से कोशिश की भी नहीं। आदमी बदल भी जाता है ! अब कौन जाने बदल गया हो। बुढ़ापा भी करीब आ रहा है; तो मौत के पास आते-आते आदमी के हृदय में भी बदलाहट होने लगती है। आदमी धार्मिक होने लगता है। कौन जाने दया-भाव जगा हो, दान जगा हो ! चलो, एक कोशिश करने में हमारा क्या बिगड़ जायेगा ! बहुत से बहुत मना ही करेगा न। तो हमारा क्या ले लेगा !

वे गये। चंदूलाल ने बड़े प्रेम से बिठाया। चंदूलाल ने कहा कि 'जरूर, जरूर दान दूंगा !' बड़े हैरान हुए। खुद भी भरोसा न आया कि क्या सुन रहे हैं ! फिर सोचा कि ठीक ही हमने सोचा था कि आदमी बूढ़ा होता है, तो बदलाहट होती है।

'पर', चंदूलाल ने कहा, 'एक शर्त है। मेरी दोनों आंखों को देख कर बताओ कि कौन-सी असली——कौन-सी नकली। अगर बता सके सही-सही, तो जो मांगोगे वह दान दूंगा !'

बहुत गौर से उन्होंने देखा। आखिर उन्होंने कहा, 'आपकी बायी आंख नकली है।' चंदूलाल ने कहा, 'गजब कर दिया ! मार डाला मुझ गरीब को ! कैसे पहचाने

कि मेरी बायीं आंख नकली है ?'

उन्होंने कहा, 'इसलिए पहचाने कि बायीं आंख में थोड़ा दया-भाव मालूम पड़ता है ! दायीं आंख तो असली होनी चाहिए; उसमें तो कोई दया-भाव नहीं !'

परवानों को धोखा नहीं दिया जा सकता। लेकिन मंदिरों में, गिरजों में, गुरुद्वारों में, जो लोग इकट्ठे हो रहे हैं, ये परवाने नहीं हैं; नहीं तो इनको धोखा नहीं हो सकता था। परवाने तो मयकदों में इकट्ठे होते हैं। और मयकदा वहां होता है, जहां कोई जीवित सद्गुरु होता है।

मगर जीवित सद्गुरु के खिलाफ सदा भीड़ होगी। क्योंकि भीड़ तो पण्डित-पुरोहितों से ही चलती है। और भीड़ के पास तो झूठा और सस्ता धर्म है। और भीड़ अपने सस्ते धर्म को, और झूठे धर्म को झूठ मानने को राजी नहीं होना चाहती। क्योंकि उसे झूठ मान ले, तो छोड़ना पड़ेगा। और उसे छोड़ना अर्थात फिर सच्चे को खोजना भी पड़ेगा। और फिर सच्चे को खोजना कठिन हो सकता है, दुरूह हो सकता है। साधना करनी होगी; ध्यान करना होगा।

यह झूठा धर्म तो सत्यनारायण की कथा करवाने से मिल जाता है ! खुद करनी भी नहीं पड़ती! कोई और कर जाता है ! एक दस-पांच रुपये का खर्चा हो जाता है। एक उधार नौकर को ले आते हैं, वह कर देता है !

जार्ज बर्नार्ड शॉं ने लिखा है कि 'दुभाग्य के वे दिन भी एक दिन आयेंगे, जब धनपति अपनी पत्नियों के पास भी नौकरों को भेज दिया करेंगे कि जा मेरी पत्नी को चुम्बन दे आ। कहना--पति ने भेजा है; उनको जरा फुर्सत नहीं है काम में। और ये छोटे-मोटे काम तो नौकर ही कर सकते हैं। इसके लिए मेरे आने की क्या जरूरत है !' लेकिन तुम धर्म के साथ यही कर रहे हो।

तुम एक पुजारी से कहते हो कि आ कर रोज हमारे घर में मंदिर की घंटी बजा जाया कर। पूजा चढ़ा जाया कर। दो फूल चढ़ा जाया कर। तीस रुपये महीने लगा दिये। वह भी दस-पच्चीस घरों में जा कर घंटी बजा आता है। उसको भी घंटी बजाने में कोई मतलब नहीं है। इससे मतलब नहीं है कि भगवान ने घंटी सुनी कि नहीं। वह जो तीस रुपये महीने देता है, उसको सुनाई पड़ जानी चाहिए। बस। जल्दी से सिर पटकता है। कुछ भी बक-बका कर भागता है, क्योंकि उसको और दस-पच्चीस जगह जाना है। कोई एक ही भगवान है ! कई मंदिरों में पूजा करनी है ! जगह-जगह जा कर किसी तरह क्रियाकर्म करके भागता है।

उधार ! तुम प्रार्थना उधार करवा रहे हो ! तो तुम प्रेम भी उधार करवा सकते हो। आखिर प्रार्थना प्रेम ही तो है। परमात्मा से भी तुम सीधी बात नहीं करते; बीच में दलाल रखते हो। परमात्मा के भी आमने-सामने कभी नहीं बैठते ! अरे, फूल चढ़ाने हों--खुद चढ़ाओ। अगर दीप जलाने हों--खुद जलाओ। अगर नाचना-गाना हो, तो खुद नाचो-गाओ। ये किराये के टट्टू, इनको ला कर तुम पूजा करवा रहे हो ! यह पूजा झूठी है। इनको पूजा से प्रयोजन नहीं है; इनको पैसे से प्रयोजन है। तुमको इससे प्रयोजन है कि भगवान कभी होगा, कहीं मरने के बाद मिलेगा, तो कहने को रहेगा कि भाई पूजा करवाते थे। तीस रुपया महीना खर्चा किया था। कुछ तो खयाल रखो। आखिर उस सब का कुछ तो बदला दो ! बहुत सुनते आये थे कि पुण्य का फल मिलता है, कहां है फल ! अब मिल जाये।

लेकिन न तुमने पूजा की; न तुम्हारे पुजारी ने पूजा की। पुजारी को पैसे से मतलब था; तुम कुछ आगे के लोभ का इंतजाम कर रहे हो। तुम आगे के लिए बीमा कर रहे हो ! तुम कुशल व्यवसायी हो।

धर्म को मार डाला है, इस तरह के लोगों ने।

और क्या-क्या मजे की बातें फिर निकालते हैं ! कल एक व्यक्ति का पत्र पढ़ रहा था अखबार में। उसने लिखा है कि मेरे घर एक साधु बाबा मेहमान हुए। सुबह उठ कर उन्होंने ध्यान-स्नान इत्यादि किया। मैंने कहा कि 'कुछ नाश्ता करें।' उन्होंने नाश्ता नहीं लिया। चले गये कुछ काम से बाहर। सांझ को लौटे। फिर स्नान-ध्यान किया। मैंने कहा, 'कुछ भोजन करें।' उन्होंने कहा, 'नहीं बच्चा।' मैंने पूछा कि 'साधु बाबा, आप न भोजन सुबह किये, न सांझ ! कुछ सत्संग ही हो जाये; कुछ दो शब्द मुझे कह दें।' तो उन्होंने कहा, 'जो असली साधु है, वह मुलाकात नहीं देता। जो असली साधु है, वह जमात इकट्ठी नहीं करता। जो असली साधु है, वह करामात नहीं दिखाता।' यह तीन उन्होंने व्याख्या की असली साधु की। 'मुलाकात नहीं देता। जमात नहीं जुटाता। करामात नहीं दिखाता।' और उसी रात वे चले गये।

उन सज्जन ने लिखा है कि मुझे तो उनका नाम भी पता नहीं, लेकिन उनकी परिभाषा याद रह गयी। इस परिभाषा के अनुसार आजकल का कोई महात्मा, कोई साधु, सच्चा साधु नहीं है, न सच्चा महात्मा है।

कोई इस सज्जन को कहे, तो फिर कृष्ण भी सच्चे महात्मा नहीं हैं ! मुलाकात दी अर्जुन को, नहीं तो गीता कैसे पैदा होती ! फिर बुद्ध भी सच्चे महात्मा नहीं हैं--जमात इकट्ठी की, नहीं तो भिक्षुओं का संघ कैसे निर्मित होता ! फिर तो महावीर भी सच्चे महात्मा नहीं हैं; मुलाकात भी दी; जमात भी इकट्ठी की। फिर तो जीसस भी सच्चे महात्मा नहीं हैं--और मोहम्मद भी सच्चे महात्मा नहीं हैं--करामात--मुलाकात--जमात--सभी कुछ किया !

तो इनके हिसाब से कौन सच्चा महात्मा है ? न कृष्ण, न लाओत्सू, न जरथुस्त्र, न महावीर, न बुद्ध, न मोहम्मद, न क्राइस्ट, न नानक, न कबीर। इनके हिसाब से वह एक आदमी जो इनके घर में ठहरा था, जिसका इनको नाम भी पता नहीं, उसके सिवाय कोई महात्मा नहीं है !

खूब इनको पकड़ा गया परिभाषा ! अब उसी परिभाषा को पकड़े बैठे रहना। मगर इस तरह की बातें लोग पकड़ कर बैठ जाते हैं । और फिर सोचते हैं कि बड़ा ज्ञान हाथ लग गया । अब ये किसी कृष्ण के पास पहुंच जायेंगे, तो अपनी परिभाषा से ये बच जायेंगे । बुद्ध के पास से गुजर जायेंगे--अपनी परिभाषा से बच जायेंगे, कि अरे, इसने जमात इकट्ठी की ! अगर जीसस के पास जायेंगे, तो फौरन बच जायेंगे--अरे, यह तो करामात दिखा रहा है ! इनके पास बचने के लिए इंतजाम हो गया ! और वह कौन आवारा आदमी, जो इनके घर में ठहरा था, जो इनको परिभाषा दे गया . . .और ठहरा भी कि नहीं ठहरा, कि किसी सपने में इन्होंने देख लिया ! मगर इनके पास एक परिभाषा है, जो इनको सब से बचा देगी । नानक मिलेंगे--बचा देगी ! कबीर मिलेंगे--बचा देगी । कृष्ण मिलेंगे--बचा देगी ।

पण्डित भी तुम्हें क्या-क्या चीजें दे जाते हैं, क्या-क्या चीजें पकड़ा जाते हैं; क्या-क्या मूर्खतापूर्ण विवरण तुम्हारे हाथ में थमा देते हैं, कसौटियां थमा देते हैं--और फिर उनके हिसाब से तुम चलने लगते हो ।

दिगम्बर जैन सोचता है कि तब तक कोई आदमी भगवान को उपलब्ध नहीं होता है, जब तक नग्न न हो । इसलिए वह बुद्ध को भगवान नहीं मानता, कृष्ण को भगवान नहीं मानता, क्राइस्ट को भगवान नहीं मानता, मोहम्मद को भगवान नहीं मानता । उसके पास एक परिभाषा है ।

जीसस को मानने वाला मानता है कि जब तक कोई आदमी अंधों को आंख न दे, बहरों को कान न दे, मुरदों को जिलाये न--तब तक वह महात्मा नहीं है ! तब तक वह भगवान का असली बेटा नहीं है ! तो न तो महावीर ने किसी अंधे को आंख दी; न कृष्ण ने किसी अंधे को आंख दी । न कबीर ने किसी अंधे की आंखें ठीक की, न किसी मुरदे को जिलाया । ये सब कोई महात्मा न रहे ! ये सब व्यर्थ हो गये । इनका ईश्वर से कुछ संबंध न रहा !

अपनी-अपनी परिभाषाएं लिए लोग बैठे हैं ! और परिभाषाएं तुम्हें कौन पकड़ा देता है ? दो कौड़ी के लोग परिभाषाएं पकड़ाने को तैयार हैं ! लेकिन उन दो कौड़ी के लोगों की बातें तुम्हारी समझ में आ जाती हैं, क्योंकि उतनी ही तुम्हारे पास समझ भी है । जितनी ओछी बात हो, उतनी जल्दी तुम्हारी समझ में आ जाती है । और कितना शोरगुल तुम मचाने लगते हो फिर !

'मारा हुआ धर्म मार डालता है ।' और पण्डित धर्म को मारते हैं । फिर मारा हुआ धर्म तुम्हें मारता है ।

'रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है ।' बुद्धपुरुष धर्म की रक्षा करते हैं । बुद्धों के साथ होना, स्वयं की रक्षा पा लेना है । बुद्ध में ही शरण है ।

'इसलिए धर्म को न मारना चाहिए ।' पण्डितों से साथ अलग कर लो अपना । उनके साथ रहना, उनके साथ अपना संबंध जोड़ना धर्म को मारने में भागीदार होना है । . . .'जिससे मारा हुआ धर्म हमको न मार सके ।'

पृथ्वी को बड़ी जरूरत है आज धर्म के पुनरुज्जीवित होने की, नहीं तो आदमी मर ही चुका; उसकी ऊर्जा खो गयी, आनन्द खो गया, उत्सव खो गया, नृत्य खो गया । बांसुरी यूं पड़ी है ! दर्पण पर धूल जमी है । न कोई गीत उठता है; न सत्य की कोई छवि बनती है ।

अब कब तक राह देखोगे ! झाड़ो यह धूल । साफ करो इस बांसुरी को, कि फिर गीत उतर सकें । फिर सत्य की छवि बन सके, फिर कोयल तुम्हारे भीतर कूके और पपीहा तुम्हारे भीतर पुकारे ।

लेकिन यह तभी संभव है जब किसी सद्‌गुरु के साथ हो जाओ । किसी जलते हुए दीये के पास ही अपने दीये को ले जाओ, तो तुम्हारा दीया जल सकता है । लेकिन जिनके दीये खुद ही बुझे हैं, उनके पास तुम अपना दीया लिए बैठे हो ! बैठे रहो जन्मों-जन्मों, तुम्हारे दीये के जलने की कोई संभावना नहीं है । लेकिन सस्ता है यह काम ।

पण्डितों के पास होने में कुछ हर्ज नहीं, कुछ खर्च नहीं । और तुम्हारे ही जैसे लोग हैं वे, इसलिए उनसे तालमेल बैठ जाता है, उनसे समझौता बैठ जाता है । बुद्धों से तालमेल बिठालने के लिए क्रांति से गुजरना जरूरी है, आग से गुजरना जरूरी है ।

अब मेरे साथ जो आज संन्यासी हैं, उनको सब तरह की आग से गुजरना पड़ रहा है, गुजरना पड़ेगा । इसी आग से गुजर कर वे कुंदन बनेंगे ।

हर छोटी-मोटी बात पर उपद्रव है ! हर छोटी-मोटी बात पर बाधा है ! और कितना शोर-शराबा मचता है ! अब मैं कच्छ के रेगिस्तान में बस जाना चाहता था, ताकि लोगों को मुझसे परेशानी न हो । तो कच्छ के रेगिस्तान में भी बसने देना कठिन है! भारी शोरगुल मचा हुआ है! कच्छियों के प्राण निकले जा रहे हैं! जैसे मैं कच्छ पहुंच जाऊंगा, तो कच्छ डूब ही जायेगा ! जैसे मैं कच्छ पहुंच जाऊंगा, तो कच्छ एकदम लुट जायेगा ! जैसे मेरे बिना कच्छ में बहुत कुछ है, जो एकदम बरबाद ही हो जायेगा ! एकदम प्राणों पर बन आयी है !

जैन मुनि इकट्ठे हो रहे हैं । जैनियों से आह्वान किया जा रहा है । भद्रगुप्त मुनि ने --किस तरह की भद्रता है, पता नहीं--और किस तरह का जैन-धर्म है, पता नहीं-- आह्वान किया है सारे जैनों का, कि अब सब कुछ बलिदान करना पड़े, तो भी करने की तैयारी रखो । मगर इस व्यक्ति को कच्छ में प्रवेश नहीं करने देना है ।

मैं कच्छ का क्या बिगाड़ूंगा !

कल खबर थी कि बम्बई के सारे कच्छियों की सभा होने वाली है । सभा का निमंत्रण छापा गया है, उसमें यह साफ लिखा हुआ है कि जो लोग विरोध करना चाहते हों, केवल वे ही आयें ! तो मतलब, जो विरोध नहीं करना चाहता है, उसको तो आने भी नहीं देना

है ! सभा में भी नहीं आने देना है, ताकि विरोध नहीं करने की तो बात ही न उठे ! जो लोग विरोध करना चाहते हैं, केवल उनके लिए निमंत्रण है । और फिर घोषणा मचायेंगे कि देखो, जितने लोग आये, सब ने विरोध किया । एक भी तो पक्ष में होता ! एक भी आदमी पक्ष में नहीं है । और निमंत्रण में ही जाहिर है, कि सिर्फ निमंत्रण ही उनके लिए दिया गया है, जो विरोध में हैं ।

अब बम्बई के कच्छियों के प्राण क्यों संकट में पड़े हैं ! मैं कच्छ जा रहा हूं; तुम कच्छ छोड़ कर बम्बई बस गये हो ! तुम कच्छ कब का छोड़ चुके । कच्छ में है कौन अब ? मैं भी एक दीवाना हूं कि कच्छ को चुना हूं, जहां से सब भाग गये ! मैं इस लिहाज से चुना कि अब यहां किसी को परेशानी न होगी । यहां है ही कौन ! पूरे कच्छ की आबादी सात लाख है । सैकड़ों मील खाली पड़े हैं ।

कभी डेढ़ सौ साल पहले कच्छ आबाद हुआ करता था, तब सिंध नदी कच्छ के पास से गुजरती थी । फिर सिंध ने अपना रास्ता बदल लिया । सिंध भी भाग खड़ी हुई ! उसने भी कच्छ छोड़ दिया ! डेढ़ सौ साल पहले सिंध ने भी कहा कि 'क्षमा करो । हे कच्छ महाराज, आप ऐसे ही रहो ! ' सिंध ने जब से छोड़ दिया, कच्छ रेगिस्तान है । और जिस दिन से सिंध ने छोड़ा, कच्छ का व्यवसाय मर गया, कच्छ का उत्पादन मर गया । कच्छ के लोगों को हट जाना पड़ा । कच्छ बरबाद हो गया । कच्छ में कुछ भी न बचा ।

लेकिन कच्छ पर भारी संकट आ गया है; उससे भी बड़ा संकट जो सिंध के हटने से आया था; उससे भी बड़ा संकट आ रहा है--मेरे वहां जाने से !

मैं कभी-कभी चकित होता हूं कि कैसे मूढ़ों की जमात है ! कैसे अजीब लोग हैं ! इनको क्या इतनी बेचैनी हो रही है ! आखिर जैन-धर्म को क्या खतरा आ गया होगा, कि सातों जैन धर्मों के अलग-अलग पंथ इकट्ठे हो गये और सातों ने मिल कर निर्णय किया । इनको क्या खतरा आ गया होगा ! इनको क्या बेचैनी हो रही है !

बम्बई के सारे उद्योगपति इकट्ठे हो गये, जैसे इनके उद्योग को मैं कोई खतरा पहुंचा रहा हूं ! कि कच्छ मैं चला जाऊंगा, तो इनके उद्योग खतम हो जायेंगे, या इनके कारखाने बंद हो जायेगे । कच्छ में तो कोई कारखाने हैं नहीं । इनको क्या बेचैनी आ रही है !

एक से एक घबड़ाहटें ! अब उन्होंने एक नया शिगूफा खड़ा किया कि मेरे कच्छ में पहुंचने से देश की सुरक्षा को खतरा हो जायेगा ! उस रेगिस्तान में मैं अपने मित्रों को ले कर बैठ जाऊंगा--देश को खतरा--देश की सुरक्षा को खतरा हो जायेगा ! देश फिर बच नहीं सकता ! फिर देश का बचना मुश्किल है !

अजीब बातें लोग उठाते हैं ! लेकिन ये सारे बहाने हैं । ये सब बहाने ऊपर-ऊपर-- भीतरी बात कुछ और । भीतरी डर ! डर एक बात का कि तुम जिस धर्म को पकड़े बैठे

हो, मेरी मौजूदगी में तुम उसे पकड़े न रह सकोगे ।

तो इस आश्रम के खिलाफ कितनी अफवाहें उड़ाई जाती हैं ! और जब अफवाहें चलती हैं, छपती हैं अखबारों में, तो लोग तो छपे हुए अखबार को मानते हैं । छपी हुई बात तो सच होनी ही चाहिए ! लिखे पर हमारा ऐसा भरोसा है ! और छापाखाने का छपा हो, फिर तो कहना ही क्या ! फिर तो सत्य होना ही चाहिए । फिर उन्हें कोई फिक्र नहीं है यहां आने की । यहां आ कर देखने की, यहां आ कर परिचित होने की । यहां तो आने में भी डर होता है ।

मेरे पास पत्र आते हैं कि हम आना तो चाहते हैं, लेकिन हमने सुना है, जो भी आता है--सम्मोहित हो जाता है ! तो यह भी आने में एक डर है, कि वहां जो जाता है, वह सम्मोहित हो जाता है !

एक व्यक्ति ने विरोध में पत्र लिखा है । अखबार में छपा है, कि मेरे पक्ष में सिवाय मेरे अनुयायियों के और कोई भी नहीं है । बाकी सब लोग मेरे विरोध में हैं ।

बात बड़ी पते की है ! तो तुम सोचते हो, कृष्ण के पक्ष में कृष्ण के अनुयायियों के सिवा कोई और है ! कि बुद्ध के पक्ष में बुद्ध के अनुयायियों के सिवा कोई और है ? कि क्राइस्ट के पक्ष में क्राइस्ट के अनुयायियों के सिवा कोई और है ? मेरे ऊपर ही सिर्फ यह नियम लागू होगा !

और बड़े मजे का तर्क है : जो मेरे पक्ष में है, वह मेरा अनुयायी । और अनुयायी तो पक्ष में होगा ही ! इसलिए जो मेरे पक्ष में है, उसकी तो बात सुननी ही मत, क्योंकि वह अनुयायी है । और जो मेरे विपक्ष में है, वह सच कह रहा होगा, क्योंकि वह अनुयायी नहीं है ! अब यह तो बड़ा मुश्किल हो गया मामला । मेरे पक्ष में कहना चाहिए--और मेरे अनुयायी होना नहीं चाहिए, तब उसकी बात में कुछ बल होगा । मगर यह कैसे होगा ? जिसे मेरी बात सही लगेगी, वह मेरा अनुयायी हो गया । सही लगी, और फिर अनुयायी न हुआ, तो क्या खाक सही लगी ! सही भी लगी, और अनुयायी भी न हुआ, तो सही कैसे लगी ?

तो जो मेरे पक्ष में बोले, वह मेरा अनुयायी है, इसलिए इसकी बात का तो कोई मूल्य नहीं है । और जो मेरे विपक्ष में बोले, उसकी बात का मूल्य है, क्योंकि वह मेरा अनुयायी नहीं है ! अगर यह मापदण्ड एक-सा ही लागू करना है, तो अगर मेरे पक्ष वाला मेरे पक्ष में बोले, उसकी बात का कोई मूल्य नहीं; तो जो मेरे विपक्ष में है, उसकी बात का भी कोई मूल्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि वह विपक्ष में है, इसलिए विपक्ष में बोलेगा । तब उस तीसरे आदमी को खोजो जो न पक्ष में है, न विपक्ष में है । मगर ऐसा आदमी तुम्हें मिलना मुश्किल है, जो न पक्ष में है--न विपक्ष में । जो पक्ष में, विपक्ष में नहीं है, उसका मतलब हुआ कि वह उदासीन है; उसे प्रयोजन ही नहीं है । वह क्यों बोलेगा ? किसलिए बोलेगा ? और बोलने के पहले उसको विचार करना पड़ेगा कि

ठीक है या गलत ! और उसी में तो गड़बड़ हो जायेगी । या तो पक्ष में हो जायेगा, या विपक्ष में हो जायेगा ।

लोग अजीब-अजीब तर्क ईजाद करते हैं ! लेकिन असली बात तो छिपाने के लिए। और ये वही पुराने तर्क हैं, जो सदा से वे ईजाद करते रहे ।

बौद्धों को भारत में टिकने नहीं दिया । आखिर भारत में एक समय था, कि बुद्ध की छाया में और प्रभाव में और फिर अशोक की गर्जना में पूरा का पूरा भारत बौद्ध हो गया था । फिर सारे बौद्ध गये कहां ! फिर उनका हुआ क्या ? लाखों संन्यासी थे बौद्धों के भारत में, उनको कड़ाहों में जलाया गया; उनको मारा गया, काटा गया । उनको खदेड़ा गया मुल्क के बाहर । उनको भारत छोड़ देना पड़ा । तिब्बत में बसे । लंका में बसे । बर्मा में बसे । जापान गये । चीन गये । कोरिया गये । पूरा एशिया बौद्ध हो गया। सिर्फ भारत को छोड़ना पड़ा उन्हें । इतनी उनको मजबूरियां कर दीं खड़ी !

उनकी सारी चेष्टा यही है कि वे इतनी मजबूरियां मेरे लिए खड़ी कर दें कि मुझे भारत छोड़ना पड़े । उनकी आकांक्षा यही है । लेकिन मैं भारत छोड़ने वाला नहीं हूं। मैं तो यहीं शराब ढालूंगा । यहीं पीऊंगा, यहीं पिलाऊंगा । यहीं दीवानगी फैलाऊंगा। क्योंकि मेरे हिसाब में भारत के पास ठीक-ठीक भूमि है । बुद्धों ने इस भूमि को निर्मित किया है । महावीरों ने इस भूमि को सींचा है । कृष्णों ने इस भूमि पर बीज बोये हैं। इस भूमि को यूं छोड़ देने वाला मैं नहीं हूं ।

इस भूमि का पूरा-पूरा उपयोग कर लेना है, क्योंकि इसी भूमि से सारी मनुष्यता को बचाने वाले धर्म का अभ्युदय हो सकता है, पुनरोदय हो सकता है । अभागे होंगे भारतवासी, अगर वे न लाभान्वित हों । वे जानें ।

और यह तुम्हें दिखाई पड़ना शुरू हो गया है कि सारी दुनिया से लोग आ रहे हैं। लेकिन भारतीयों को क्या हो रहा है ! मुझे पत्र लिख कर पूछते हैं कि क्या बात है—सारी दुनिया से लोग आ रहे हैं, फिर भारतीय क्यों नहीं आ रहे हैं ?

अभागे हैं । किस्मत खराब है । दो हजार साल से गुलाम रहे हैं । भूमि तो बुद्धों की है, लेकिन बुद्धुओं के हाथ में पड़ गयी है । तो जिनमें भी थोड़ी बुद्धि है, वे आ रहे हैं। बुद्धू तो इकटठे हो कर किस तरह से, जो सूर्य उदय हो सकता है उसको न उदय होने दिया जाये, उसकी चेष्टा में संलग्न हैं !

मगर यह सूरज उगेगा । यह उग ही चुका है । ये गैरिक वस्त्र पूरब में फैल गयी लाली के प्रतीक हैं । सूरज को आने में देर नहीं है । पूरब लाल हो रहा है; उठ रहा है । यह काम जारी रहेगा । ये बाधाएं बिलकुल स्वाभाविक हैं । ये बाधाएं किसी और के लिए नहीं हैं भारत में । न सत्य साईं बाबा के लिए ये बाधाएं हैं; न बाबा मुक्तानंद के लिए बाधाएं हैं; न स्वामी अखण्डानंद के लिए ये बाधाएं हैं । तुम जरा सोचते हो कि ये बाधाएं सिर्फ एक आदमी के लिए हैं ! मेरे लिए हैं । और किसी के लिए ये बाधाएं

नहीं हैं । इससे कुछ सोचो, इससे कुछ विचारो, कि मामला क्या है ? जरूर कुछ राज है इस बाधा में ।

मरे हुए धर्म को जो भी पोषण देने वाले लोग हैं, और उसको मुरदा ही रखने वाले लोग हैं, मरी लाश को ही जो सम्हालने वाले लोग हैं, उनको कोई बाधा नहीं है । मैं कहता हूं—आग लगाओ इस लाश को । जो मर गया है, उसे जलाओ, ताकि हम नये के लिए जगह बना सकें । इसलिए बाधा है ।

यह श्लोक प्रीतिकर है । 'धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः । तस्माद धर्मो न हंतव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत ।'

दूसरा प्रश्न : भगवान, थों तो म्हारा सगला मारवाड़ी समाज री नाक काट कर धर दी ! कोई अच्छो भी करो; म्हारी लाज राखो !

चम्पालाल समाज सेवक !

बात तो तुमने भी बड़ी गजब की कही ! मारवाड़ी समाज की कोई नाक है ? जिसको मैं काट कर रख दूं । अरे, वह तो कब की कट गई भैया ! किस नाक की बात कर रहे हो ?

यही तो खूबी है मारवाड़ी समाज की : कोई लाख नाक काटे, नहीं काट सकता । नाक हो तो काटे !

मारवाड़ी की नाक तुम काट ही नहीं सकते । किसी और की काट सकते हो, काट सक लेना । मारवाड़ी की नाक कोई नहीं काट सकता । यह तो तुम बिलकुल गलत बात कह रहे हो । तुम कह रहे हो : 'थों तो म्हारा सगला मारवाड़ी समाज री नाक काट कर धर दी ! कोई अच्छो भी करो । म्हारी लाज राखो !'

लाज—और मारवाड़ी की ? बड़ा कठिन काम दे रहे हो । चम्पालाल समाज सेवक ! सवाल तो बड़े कठिन-कठिन लोग पूछते हैं, मगर तुमने सबसे कठिन सवाल पूछा ! चलो, कुछ कोशिश करें !

एक बार एक अमरीकी, एक रूसी एवं एक मारवाड़ी एक सज्जन के यहां चाय पर आमंत्रित थे । मारवाड़ी कोई और नहीं, पुराने परिचित तुम्हारे सेठ चंदूलाल ही थे । अमरीकी ने चाय पी कर अपना कप प्लेट में उल्टा करके रख दिया । रूसी ने चाय पी कर अपना कप वैसा ही प्लेट में सीधा रखा । सेठ चंदूलाल जो अब तक उनके टेबल मैनर्स की नकल कर रहा था, उसने कुछ सोच कर अपना कप प्लेट में आड़ा लिटा कर रख दिया । उसकी इस क्रिया को देख कर अमरीकी ने चदूलाल से प्रश्न किया, 'भाई,

आपने अपना कप प्लेट में आड़ा क्यों लिटा दिया ?'

चंदूलाल बोले, 'पहले आप बताइये कि आपने अपना कप उल्टा क्यों रख दिया ?'

अमरीकी ने कहा, 'क्योंकि मुझे चाय और नहीं चाहिए थी।'

अब चंदूलाल ने रूसी से पूछा, 'आपने अपना कप सीधा क्यों रखा ?'

रूसी बोला, 'क्योंकि मुझे और चाय चाहिए।'

रूसी और अमरीकी ने पूछा, 'लेकिन आपने अपना कप आड़ा क्यों लिटा रखा है ? अब आप जवाब दें !'

चंदूलाल ने कहा, 'यदि चाय और होगी तो मिल जायेगी, वरना कोई बात नहीं !'

मारवाड़ी ऐसे सोच-विचार के लोग होते हैं ! उन्हें तुम साधारण मत समझना। बड़े अपरिग्रही होते हैं।

चंदूलाल का नौकर घबड़ाया हुआ अंदर आया और बोला, 'मालकिन, मालकिन ! बाहर सेठ साहब बेहोश पड़े हैं। उनके एक हाथ में कुछ कागज हैं और दूसरे हाथ में एक बड़ा-सा पैकेट है।'

चंदूलाल की पत्नी चहक कर बोली, 'अरे, तो मेरी नयी साड़ियां आ गयीं !'

चंदूलाल की उसी में जान गयी ! इतनी साड़ियां खरीद कर लाते-लाते हार्ट-अटैक न हो जाये, तो क्या हो ! मगर मालकिन को देखा ! क्या लाज बचाई मारवाड़ियों की ! अरे, जीवन का क्या है ! आना-जाना लगा रहता है। यह जिंदगी तो खेल है, इसमें कोई चिंता की बात नहीं। जनम-मरण, आवागमन होता ही रहता है। मगर साड़ियां आ गयीं––यह बात पते की है।

एक जेबकतरा सेठ चंदूलाल से कह रहा था, 'यार आज एक पैसा भी नहीं मिला, उल्टे एक जगह बहुत बेइज्जती हुई मेरी।'

चंदूलाल बोले, 'बेइज्जती ! क्या बात कर रहा है भाई ! इसी काम को मैं बीस वर्ष से कर रहा हूं। कई बार मेरी पिटाई हुई है, दुत्कार मिला, गालियां भी मिलीं, मगर आज तक मेरी बेइज्जती––कभी नहीं ! मेरी बेइज्जती आज तक नहीं हुई।'

बेइज्जती, मानो तो बेइज्जती है। अरे ज्ञानियों की कहीं कोई बेइज्जती कर सकता है !

एक निहायत मोटी, भद्दी और बदसूरत महिला ने पुलिस के सिपाही से शिकायत की कि 'वह मूर्ख और पागल आदमी कई घंटे से मेरा पीछा कर रहा है।'

पुलिस वाले ने महिला को कनखियों से देख कर कहा, ?'जी नहीं, आप गलत फरमा रही हैं। वह आदमी न तो मूर्ख है और न पागल है। यह सेठ चंदूलाल है। उसका दिमाग खराब नहीं है। और न ही वह मूर्ख है। वह परमहंस है। भेद-भाव ही नहीं करता ! क्या सुंदर, क्या असुंदर ! इसलिए आपका पीछा कर रहा है। नहीं तो आप का पीछा कौन करे !'

महिला ऐसी भद्दी, मोटी और बदसूरत थी, कि पीछा ही करे, तो वह करे किसी का ! मगर परमहंस चंदूलाल उसका पीछा कर रहे हैं। परमहंस वृत्ति का तो लाभ देना ही पड़ेगा उनको। भाव नहीं, भेद नहीं; सब सम-भाव रखते हैं।

तुम कह रहे हो, किसी तरह लाज बचाने की कोशिश करो, तो मैंने कहा, चलो, किसी तरह लाज बचानी चाहिए !

चंदूलाल ने अपनी नवविवाहित पत्नी को समझाते हुए कहा :

'और यह है मेरी धाय मां का चित्र !
बचपन में इन्हीं ने मुझे दूध पिलाया था।
मर ही गया होता
इन्होंने मुझे जिलाया था।
आह, इनका हृदय बाहर भीतर से
कितना साफ, स्वच्छ, पारदर्शक और पवित्र था।'
वधू ने दोनों हाथ जोड़ दिये,
सामने निपल लगी दूध की बोतल का चित्र था !

इसको कहते हैं भक्ति-भाव ! अरे जिसने जीवन बचाया, वही मां है। और फिर स्वच्छ बोतल, पवित्र, पारदर्शक ! और जिसने जीवन बचाया, आज तक उसकी याद कर रहे हैं; उसकी तस्वीर लगाये हुए हैं। यूं भूलते नहीं किसी के उपकार को।

सेठ चंदूलाल संतोषीमैया के दर्शन को रोज जाते थे। माताराम के दर्शन का वे बड़ा लाभ लेते थे। गदगद होते थे। एकदम उनकी गोदी में सिर रख कर उलटने-पटलने लगते थे। जोर-जोर से जै सीतामैया की, जै सीतामैया की––उद्घोष करते। उनके भक्ति-भाव से माताराम भी अति प्रसन्न थीं। और उनकी कुण्डलिनी जगाने का अतिरिक्त उपाय भी करती थीं। मगर चंदूलाल ठहरे मारवाड़ी, कुण्डलिनी बस खुस-पुस हो कर रह जाती थी ! जगाये-जगाये न जगे ! अब मारवाड़ी-कुण्डलिनी कभी सुना कि जगी है ! ऐसी सरसराहट हो और बस खतम––खेल खतम ! पैसा हजम !

एक दिन संतोषीमैया ने कहा चंदूलाल से कि 'रातभर तुम्हारे लिए दुआएं करती रही।' चंदूलाल बोले, 'आपने बेकार इतना कष्ट किया। अरे, मुझे फोन कर देतीं, मैं तुरंत आपके पास पहुंच जाता।' बड़े शर्माते हुए उन्होंने कहा कि 'मैं तो रात-रात बैठा ही रहता हूं कि मैया कब बुलायें ! और मैं हाजिर हो जाऊं ! आपको मेरे लिए दुआ करने की जरूरत क्या है ! बस फोन करने की जरूरत थी !'

मारवाड़ी के लक्ष्य बड़े परोक्ष होते हैं––प्रत्यक्ष नहीं। सीधा-साधा वह कोई काम नहीं करता। तीर भी चलाता है, तो तिरछे-तिरछे चलाता है। मगर निशाने पर बैठा देता है।

मारवाड़ी से कई बातें सीखने जैसी हैं।

चम्पालाल समाज सेवक ! जैसे मारवाड़ी बदलता नहीं––सारा जगत बदलता है, मगर मारवाड़ी नहीं बदलता।

बूढ़े हो गये थे चंदूलाल। अस्सी साल की उमर। एक दिन पत्नी ने कहा कि 'अब तुम मुझे पहले जैसा प्रेम नहीं करते। तुम्हारा हृदय बदल गया ! पहले तो तुम मुझे चूमते थे, तो काट भी लेते थे।'

चंदूलाल ने कहा, 'कभी नहीं, मेरा हृदय कभी नहीं बदलेगा। अरे मारवाड़ी कभी बदलता ही नहीं। अभी भी काट सकता हूं। जरा जा तू बाथरूम में से मेरे दांत उठा ला !'

चंदूलाल––आखिरी कहानी उनके बाबत। इससे अगर लाज बच जाये, तो बच जाये। और न बचे, तो भाई, फिर मैं भी नहीं बचा सकता ! फिर मैं भी क्या कर सकता हूं ! जहां तक मेरा बस है, वहां तक खींचता हूं।

चंदूलाल एक दिन शराबघर में पहुंचे। दुकान के मालिक से कहा कि 'अगर मैं अपने बायें आंख को दांत से काट कर बता दूं, तो शराब मुफ्त पीऊंगा !'

दुकानदार ने भी सोचा कि कैसे काटेगा दांत से आंख को ! उसने कहा, 'अच्छा। यह रही शराब।' उसने बोतल भर कर रख दी।

चंदूलाल ने अपनी आंख निकाली। एक आंख तो उनकी नकली है ही। और दांत से काट कर बता दिया। सिर पीट लिया दुकानदार ने। पूरी बोतल पा गये। बोले कि 'अगर एक बोतल और पिलाओ, तो दूसरी आंख भी दांत से काट कर बता दूं !'

दुकानदार ने सोचा कि दोनों आंखें तो अंधी हो नहीं सकतीं। यह चलता-फिरता है; कभी कुर्सी से नहीं टकराया। अरे शराब भी पी ले, तब नहीं टकराता। मारवाड़ी बेहोश होता ही नहीं। कितनी ही शराब पी ले, अपनी जेब पकड़े रहता है ! एक पैसा कभी ज्यादा नहीं देता। यह दूसरी आंख कैसे काटेगा !

उसने कहा, 'अच्छा ठीक। एक बोतल नहीं, दो बोतल पिलाऊंगा। ये दो बोतल रहीं।'

चंदूलाल के दांत नकली। उन्होंने दांत निकाल कर आंख काट कर बता दी !

उस दुकानदार ने सिर पीट लिया। उसने कहा, 'हद्द हो गयी ! मारवाड़ी से कौन जीते !'

चंदूलाल ने कहा, 'और है हिम्मत !'

उसने कहा, 'भैया, अब तू और क्या करेगा !'

चंदूलाल ने कहा, 'वह देखते हो, उस कोने में कम से कम तीस फीट दूर टेबल पर जो गिलास रखा है खाली ?'

कहा, 'हां, देखता हूं।'

'यहीं से पेशाब करके उसको भर सकता हूं !'

'अब तो', दुकानदार ने कहा कि 'यह बेटा, नहीं कर पाओगे। हजार रुपये का दांव लगाता हूं।'

कहा, 'लगा ले। निकाल हजार, यहां रख। ये मेरे हजार रखे हैं।'

दुकानदार ने सोचा : अब सब वसूल कर लेना ठीक है, क्योंकि . . .। यह क्या, इसके बाप-दादे भी इकट्ठे हो जायें सब, तो तीस फीट दूर गिलास को भर दे जीवन-जल से––बहुत मुश्किल है।

और चंदूलाल ने पेशाब करनी शुरू की। तीस फीट दूर जाना क्या––तीन फीट मुश्किल से गई ! इधर टेबल पर गिरी, इधर नीचे फर्श पर गिरी। वह दुकानदार बेचारा उठा और जल्दी से गमछा ले कर पोंछने लगा, सफाई करने लगा। और हंसने भी लगा।

चंदूलाल ने कहा, 'अरे, हंस मत रे ! मारवाड़ी से कोई कभी जीता !'

कहा, 'अब क्या ! भद्द हो गई तेरी। तीन फीट तो जाती नहीं, तीस फीट पहुंचा रहा था !'

'अरे', उसने कहा, 'तू बाहर देखता है, वह आदमी खड़ा है। उससे मैंने शर्त लगाई है कि पांच हजार रुपये लूंगा : अगर पेशाब करूं और न यह गमछा उठा कर पोंछे; न केवल पोंछे, बल्कि हंसे भी। देख ले। वह आदमी रो रहा है खड़ा। तू हजार की बातों में पड़ा है, पांच हजार की शर्त है !'

मारवाड़ी बच्चा से कोई कभी जीता नहीं। चंपालाल, तुम फिक्र न करो। कोई नाक है ही नहीं; कट सकती नहीं ! नाक वगैरह तो बेच चुके पहले ही। झंझट ही खतम कर ली है।

और तुम चिंता न करो। लाज मारवाड़ी की क्या बचानी ! अरे वह खुद अपनी लाज बचाने में समर्थ है। उस जैसी होशियारी, उस जैसी कला, उस जैसा कौशल किसका !

योरोप में कहावत है कि अंग्रेज की जेब फ्रेंच काट मार ले जाता है। फ्रेंच की जेब इटैलियन झटक लेता है। इटैलियन की जेब जर्मन फटक लेता है। जर्मन की जेब यूनानी नहीं छोड़ता। और यूनानी की जेब सिर्फ शैतान काट सकता है। उनको मारवाड़ियों का पता नहीं। मारवाड़ी शैतान की जेब काट लाते हैं !

तुम्हें पता हो या न पता हो, शैतान नरक के द्वार पर पहले पूछ लेता है, 'भैया, मारवाड़ी तो नहीं हो ! मारवाड़ी हो तो स्वर्ग जाओ। यहां जगह नहीं। यहां जगह बिलकुल है ही नहीं। क्योंकि एक मारवाड़ी को भीतर लेना खतरे से खाली नहीं। तुम अभी उपद्रव शुरू कर दोगे। अभी झंझट खड़ी हो जायेगी। एक दफे लिया था एक मारवाड़ी को, सो बस। उसके बाद जब से उससे छुटकारा हुआ है, तब से नर्क में भी जगह नहीं है।'

एक जहाज पर एक व्हेल मछली हमला कर रही है––बार-बार हमला कर रही

है। आखिर घबड़ा कर सामान लोग फेंक रहे हैं मछली के मुंह में। थोड़ी देर वह चबाचुबू कर फिर आ जाती। बक्से चले गये, कुर्सियां चली गयीं, संतरे के बोरे थे वे चले गये। आखिर जब कुछ न बचा तो एक मोटे मारवाड़ी को लोगों ने उठा कर फेंक दिया! मगर उससे भी हल न हुआ। थोड़ी देर में फिर व्हेल आ गयी! धीरे-धीरे करके सब जहाज के यात्री भी अंदर चले गये। जब जहाज का कप्तान पहुंचा, तो देख कर दंग रह गया। मारवाड़ी कुर्सी पर बैठा था। टेबल सामने रखी थी। टेबल पर संतरे सजाये हुए था और चार-चार आने में बेच रहा था! और बाकी यात्री खरीद रहे थे!

मत चिंता करो—चंपालाल समाज सेवक! तुम मारवाड़ियों की सेवा करने का इरादा रखते हो क्या? जरा अपनी जेब सम्हाल कर चलना। और अगर खुद ही मारवाड़ी हो, तो फिर मुझे कोई चिंता नहीं। क्योंकि समाज सेवा के नाम से तुम सिर्फ जेब काटोगे—और कुछ भी नहीं कर सकते हो।

आज इतना ही।

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक २२ जुलाई, १९८०

धर्म है महाभोग

पहला प्रश्न : भगवान,

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

'सब सुखी हों, सब निरोग हों, सब कल्याण को प्राप्त हों, कोई भी दुखभागी न हो।'

आप्तपुरुषों का यह मंगल-वचन क्या कभी सच होगा?

पूर्णानन्द!

यह तुम पर निर्भर है। यह तो आशीष है, लेकिन इसे पूरा करने के लिए भूमिका तो तुम्हें जुटानी होगी।

जिन्होंने जाना है, उन्होंने तो चाहा है कि सभी जान लें। जिन्होंने पाया है, उन्होंने प्रार्थना की है प्रभु को कि सब को मिले। स्वाभाविक है कि जिन्होंने आनन्द को पिया है, वे जब तुम्हें दुख में डूबा हुआ देखते हैं, तो हैरान भी होते हैं, पीड़ित भी होते हैं। हैरान इसलिए होते हैं कि दुख का कोई भी कारण नहीं—और तुम दुखी हो!

दुख तुम्हारे झूठ आधारों पर निर्भर है। दुख के तुम स्रष्टा हो। कोई और उसे बनाता नहीं; तुम ही रोज सुबह से सांझ मेहनत करते हो। जिस चिता में तुम जल रहे हो, उसकी लकड़ियां तुमने जुटाई हैं। उसमें आग भी तुमने लगाई है। चीखते-चिल्लाते भी हो कि कैसे इस जलन से छूटूं, लेकिन हटते भी नहीं वहां से! सरकते भी नहीं! कोई सरकाना चाहे, तो दुश्मन मालूम होता है। कोई हटाना चाहे, तो तुम उससे झगड़ने को तैयार हो। 'तुम्हारी' चिता है! तुम्हारी संस्कृति है! तुम्हारा धर्म है! तुम्हारे संस्कार हैं—कैसे तुम छोड़ दोगे! तुम्हारे शास्त्र हैं, कैसे तुम छोड़ दोगे! छाती से लगाये हुए हो—अपनी मौत को। और जब मैं कहता —'अपनी मौत को'—तो

मेरा अर्थ है : जो भी मर चुका है, उसे जब तक तुम छाती से लगाये हो, तब तक सड़ोगे, परेशान होओगे ।

आप्तपुरुष प्रार्थना करेंगे, आशीष देंगे । यूं तो बरसा भी होती है, लेकिन घड़ा उलटा रखा हो, तो बरसा क्या करे ! मेघ तो आये थे कि भर देते, मगर घड़ा उलटा रखा था । और घड़ा सीधा होना न चाहे ! उसके उलटे होने में भी मोह-आसक्तियां बन गयी हों । उलटे होने को ही उसने जीवन-चर्या समझ लिया हो ! उलटा होना ही उसकी दृष्टि हो, उसका दर्शन हो । उसका भरोसा हो कि शीर्षासन करने से ही परमात्मा मिलता है—तो लाख बरसा करें बादल, चमकें बिजलियां, लेकिन घड़ा खाली का खाली रहेगा ।

फिर कुछ घड़े हैं, जो उलटे भी नहीं हैं, मगर फूटे हैं । और उन्होंने फूटे होने में अपने न्यस्तस्वार्थ जोड़ रखे हैं । फूटे होने में वे गौरव का अनुभव करते हैं ! छिद्रों को वे आभूषण मानते हैं ! तो लाख बरसा करें बादल, और घड़ा सीधा भी रखा हो, लेकिन सछिद्र हो, तो कैसे भरेगा ? भरता भी रहेगा और खाली भी होता रहेगा ।

एक सूफी फकीर के पास एक युवक ने आ कर पूछा कि 'मैं बहुत दार्शनिकों के पास गया हूं, बहुत मनीषियों का सत्संग किया है, लेकिन मेरी समस्याएं सुलझती नहीं । किसी ने मुझे आपके पास भेजा है । कहा है कि वहां सुलझ जायें, तो सुलझ जायें, नहीं तो फिर समझना कि सुलझेंगी ही नहीं । क्योंकि यह आखिरी व्यक्ति है, जो सुलझा दे तो सुलझा दे ।'

उस फकीर ने कहा कि 'तेरी समस्याएं पीछे सुलझाऊंगा । अभी तो मैं कुएं पर पानी भरने जा रहा था । मगर यह हो सकता है कि तू भी मेरे साथ चल, और कौन जाने पानी भरते-भरते ही बात बन जाये तो बन जाये ! तेरी समस्याएं भी सुलझ जायें—मेरा पानी भी भर जाये !'

युवक तो समझा कि यह आदमी पागल है ! इसके पानी भरने से और मेरी समस्याओं का क्या संबंध ? लाख यह पानी भरे, मेरी समस्याएं इसने सुनीं भी नहीं अभी; पूछी भी नहीं ! मैंने अभी कुछ कहा भी नहीं कि मेरी तकलीफ क्या है, मेरी पीड़ा क्या है ! और यह पानी भरने से हल करने लगा ! मैं भी किस पागल के पास आ गया ! दूर से यात्रा करके आया ! जिन्होंने भेजा है, मालूम होता है, मजाक किया है । लगता है : थक गये होंगे मेरे प्रश्नों से, तो इस महामूढ़ के पास भेज दिया है ! लेकिन अब आ ही गया हूं, तो चलो, इतना और सही । चार कदम और सही । कुएं तक और चला चलूं ।

रास्ते में उस फकीर ने कहा, 'लेकिन एक शर्त खयाल रखना । जब मैं पानी भरूं, तो बीच में मत बोलना । बोलना ही मत । अगर इतनी संवरा कर सके तू, इतना संयम कर सके तो मैं पक्का वायदा करता हूं कि तेरी सारी समस्याओं को सुलझा दूंगा । समझ कि सुलझा ही दीं । तू फिक्र छोड़ । मगर इतना संयम तू दिखाना कि जब मैं पानी भरूं, तो बीच में मत बोलना, चाहे लाख उत्तेजना उठे । जैसे खुजली उठती है, ऐसी उठेगी उत्तेजना !'

वह युवक भी सोचने लगा कि मेरी समस्याओं का इसको पता नहीं । कहां की खुजली; कहां का पानी ! ये बातें क्या कर रहा है ! पर उसने कहा, 'मैं क्यों बोलूंगा; तू भर पानी !'

लेकिन मुश्किल हो गया—न बोलना मुश्किल हो गया । क्योंकि जब उस फकीर ने बालटी अपनी कुएं में डाली, तो वह देख कर दंग रह गया । बालटी में छेद ही छेद थे ! जैसे छेदों से ही मिल कर बनायी गयी हो ! इस बालटी में कब पानी भरेगा ! अनन्तकाल में भी नहीं भरने वाला है । पक्का पागल है यह आदमी—और मुझसे कहता है : बोलना मत ! अब न बोलूं तो कैसे ! मगर फिर भी उसने कहा कि थोड़ी देर तो संयम रखूं । देखूं—यह करता क्या है !

उस फकीर ने बालटी डाली । खड़खड़ायी बहुत । आवाज की बहुत कुएं में । और कुएं में बालटी गयी, तो छेद वाली थी, तो भी भर गयी । जब पानी में डूबी रही, तो भरी हुई रही । देख ली झांक कर उसने कि बालटी भर गयी है, फिर खींचना शुरू किया । इधर बालटी ऊपर उठी पानी से कि पानी गिरना शुरू हुआ । बड़ा शोरगुल कुएं में मचा पानी के गिरने का । ऊपर तक आते-आते बालटी फिर खाली हो गयी थी । उसने फिर बालटी डाली । जब तीसरी बार उसने बालटी डाली, उस युवक ने कहा, 'ठहरिये महानुभाव ! अब बहुत हो गया । बरदाश्त की एक सीमा होती है । इस बालटी में जन्मों-जन्मों तक पानी भरने वाला नहीं । मैं कब तक खड़ा रहूंगा ! इस बालटी में पानी भर सकता ही नहीं !'

उस फकीर ने कहा, 'तुमने शर्त तोड़ दी । अब तुम रास्ते लग जाओ । अब तुम बात ही मत उठाओ । मुझे तुमसे कुछ लेना-देना नहीं । तुममें शिष्य होने की पात्रता ही नहीं है । मैंने कहा था—चुप रहना ।'

उस युवक ने कहा, 'तो मैं भी आपको कहे देता हूं कि अगर यह शिष्य होने की पात्रता है, तो तुम्हें जिंदगी में कोई शिष्य नहीं मिलेगा । कब तक चुप रहते ! तीन बार देख चुका अपनी आंखों से । यह तो तीस हजार बार में भी नहीं भरने वाली ! गिनती का कोई सवाल ही नहीं है । यह जन्मों-जन्मों में नहीं भरने वाली है ।'

उस फकीर ने कहा, 'अगर इतनी अकल तुझमें है, सच में अगर इतनी अकल तुझमें है, तो मेरे पास आने की जरूरत ही न होती । लग—अपने रास्ते लग जा ।'

जब उसने यह कहा—युवक चल तो पड़ा, लेकिन रास्ते में सोचने लगा : उसने बात तो पते की कही कि अगर इतनी अकल तुझमें होती ! कुछ मामले में राज तो मालूम पड़ता है । यह आदमी पागल तो मालूम होता है, लेकिन सुना है कि कभी-कभी परमहंसों में भी पागलों जैसी लक्षणा होती है । कौन जाने—मैं थोड़ी देर चुप ही रहता ।

देखता। आखिर यह भी तो थकता। मुझ तो खड़े ही रहना था; इसको तो भरना भी था। खींचता, फिर गिराता; फिर खींचता, फिर गिराता। इसको पहले थकने देना था। और यह बूढ़ा आदमी, मैं जवान आदमी; मैं देखने में थक गया। इतनी जल्दी क्या थी! थोड़ी देर रुक ही जाता घंटे दो घंटे!

रात भर सो न सका। सुबह ही वापस फकीर के पास पहुंच गया। पैरों पर गिरा और कहा, 'मुझे माफ कर दो। मेरी भूल थी। मैं संयम न रख सका। मैं शर्त पूरी न कर सका।'

फकीर ने कहा, 'लेकिन मुझे कुछ और कहना नहीं है। इतना ही कहना है कि बालटी फूटी हो, तो जन्मों-जन्मों तक भी कुएं से पानी भरो, तो नहीं भरेगा। यह तुझे दिखायी पड़ गया। अब तू अपनी बालटी की फिक्र ले। तेरी समस्याएं क्या हैं—तेरी बालटी का फूटा होना।'

यूं तो अमृत प्रतिपल बरस रहा है; परमात्मा हर घड़ी मौजूद है; रोशनी चारों तरफ तैर रही है—और तुम अंधेरे में खड़े हो! जरूर आंख बन्द होगी! और तुम चीख-पुकार मचा रहे हो कि बड़ा अंधेरा है! आंख भी नहीं खोलते! आंख बन्द करने में तुम्हारे न्यस्त स्वार्थ हैं। अंधे होने में तुम्हें सुविधा है कुछ। आंख खोलने में तुम्हें डर है।

मुल्ला नसरुद्दीन ट्रेन में यात्रा कर रहा था। टिकिट चेकर आया। मुल्ला से टिकिट पूछी उसने। सूटकेस खोल डाला; बिस्तरा खोल डाला। एक-एक सामान उलट-पलट डाला। पूरे डब्बे में सामान फैला दिया। टिकिट चेकर भी घबड़ा गया। उसने कहा कि 'भई मुझे पूरी ट्रेन के यात्रियों की टिकिटें देखनी है। अगर एक-एक यात्री इतना समय ले! ऐसा क्या छिपा कर रखा है टिकिट! मामला क्या है? सारा बिस्तर खोल डाला। तकिये की खोल खींच कर बाहर निकाल ली, जैसे उसके अंदर टिकिट हो! बिस्तर में रखे एक-एक कोट-कमीज की जेबें टटोल डालीं! तुम कर क्या रहे हो?'

सारे कपड़े देख डाले। खुद के कपड़े जो पहने हुए थे वे देख डाले। और जब वह टिकिट कलेक्टर की जेब में हाथ डालने लगा, तो उसने कहा, 'ठहर! तू बिलकुल पागल है। तेरी टिकिट मेरी जेब में कहां से होगी! और तू तो ऐसा लगता है जैसे पूरी ट्रेन के आदमियों का सामान देखेगा! भाड़ में जाने दे टिकिट। तू जा भैया। तुझे जहां जाना हो, जा! मगर एक बात पूछना है तुझसे। कि तूने सब देख डाला, मगर यह तेरे कोट की जो ऊपर की जेब है, यह तूने नहीं देखी?'

उसने कहा, 'उसकी तो तुम बात ही मत उठाना। उस जेब को मैं कभी देखूंगा ही नहीं। जब तक मेरी सांस चलती है, मैं उस जेब को नहीं देखूंगा!'

उसने कहा, 'क्यों? यह...!'

तब तक तो पूरा डब्बा भी उत्सुक हो गया धीरे-धीरे। भीड़ लग गयी कि 'बात क्या है! आखिर इस जेब की क्या बात है! इसको क्यों नहीं देखते हो! दूसरों तक

की जेबें देखने लगा। टिकिट कलेक्टर की जब में कहां से तेरा टिकिट हो सकता है! मगर अपनी जेब नहीं देखता!'

उसने कहा, 'देखो जी, यह है बात निजी। यह तो सभ्य आदमियों को पूछनी नहीं चाहिए। असभ्यता है यह। मगर अब तुम जिद्द ही किये हो, तो कहे देता हूं। यह जेब मैं जिन्दा रहते नहीं देखूंगा, इसलिए नहीं देखूंगा कि यही जेब तो अब मेरी एकमात्र आशा है कि शायद इसमें टिकिट हो! अगर इसको भी मैंने देख लिया और टिकिट न पायी, फिर क्या होगा! अंतिम संभावना भी गयी! पहले मुझे औरों की जेबें देख लेने दो। पूरा डब्बा छानूंगा। ट्रेन पड़ी है। अरे कहीं भी सरक गयी हो; इधर-उधर हो गयी हो। किसी ने उठा कर रख ली हो। इस जेब को तो मैं बचाये रखूंगा। इसमें मेरी सारी आशा सुरक्षित है!'

इस पर तुम हंसते हो, मगर यह तुम्हारी दशा भी है। कुछ जेबें हैं, जो तुम कभी नहीं देखते। उनमें तुम्हारी आशा सुरक्षित है। तुम डरते हो, तुम भयभीत होते हो।

मैं विद्यार्थी था, तो मेरे एक शिक्षक थे, जो बड़े आस्तिक थे। और उनसे मेरा लगाव था। तो उनके घर मैं पहुंच जाता था और उनकी पूजा-प्रार्थना में संदेह खड़े करता कि आप यह क्या कर रहे हैं! यह पत्थर की मूर्ति के सामने आप बैठे घण्टी बजा रहे हैं! कुछ तो होश लाओ! ऐसे आप होशियार आदमी हैं, बुद्धिमान आदमी हैं। आपको शरम नहीं आती, एक पत्थर की मूर्ति के सामने घण्टी बजा रहे हो! अरे अगर मूर्ति भी घण्टी आपके सामने बजाये, तो भी शर्म आनी चाहिए कि यह मूर्ति और मेरे सामने घण्टी बजा रही है! तो भी बरदाश्त के बाहर हो जाना चाहिए। मगर तुम तो हद्द कर रहे हो! मूर्ति तो कुछ करती नहीं; बैठी है गुमसुम। तुम घण्टी बजा रहे हो! और जनम हो गये तुम्हें घण्टी बजाते, मिला क्या है?'

वे आदमी सच्चे और ईमानदार थे। उन्होंने मुझसे कहा कि 'मिला तो कुछ भी नहीं है। बात तो तुम ठीक कहते हो। मगर जिंदगी भर हो गया मुझे इसी पूजा में, अब तुम मत छेड़ो यह बात। अब मेरे संदेह पुनः मत जगाओ। अब मैं बूढ़ा होने के करीब हूं, अब यह मौत कब मेरे द्वार पर आ जायेगी, पता नहीं। तुम्हें देख कर मैं डरता हूं। तुम आते हो, तो कुछ संदेह खड़ा कर जाते हो। तुम तो फिर चले जाते हो; तुम्हें तो कुछ फिक्र नहीं पड़ी। लेकिन मुझे वह संदेह काटता है। मेरे भीतर चिंता बन जाता है।'

फिर मैं विश्वविद्यालय चला गया, तो साल में एकात बार ही लौटता था। जब जाता, तो उनके घर जरूर जाता। वे मुझसे एक दिन बोले कि 'अब तुम मत आया करो। हालांकि मैं राह देखता हूं साल भर तुम्हारी कि कब तुम आओगे। पता नहीं इस बार जीवित रहूंगा कि नहीं रहूंगा; तुमसे मिल सकूंगा या नहीं! लेकिन जब तुम आते हो, तो मुझे डर लगता है कि फिर तुम कुछ उपद्रव की बात करोगे। तुम कुछ कह जाओगे। तुम मानोगे नहीं। तुम मेरी श्रद्धा को झकझोरे डाल रहे हो। तुमने धीरे-धीरे मेरी श्रद्धा

की सब ईंटें खींच लीं । पूरा मंदिर मेरा गिर गया है । अब मैं पूजा करता हूं, तो भी मैं जानता हूं कि मैं यह क्या मूढ़ता कर रहा हूं । रुक भी नहीं सकता, क्योंकि जिंदगी भर पूजा की है । अब क्या मरते वक्त--अब कैसे पूजा छोड़ दूं ! माना कि नहीं कुछ सार दिखायी पड़ता है, नहीं कुछ पाया है । मगर फिर भी कहीं एक भरोसा बना हुआ है कि इतने लोग करते हैं, तो सब गलत तो न करते होंगे ! करोड़ों-करोड़ों लोग सारी दुनिया में पूजा कर रहे हैं अलग-अलग ढंग से । तो सब पागल तो नहीं हो सकते !'

मैंने उनसे कहा, 'वे भी यही सोचते हैं । वे भी जब करोड़ों को गिनते हैं, तो तुम भी उसमें एक होते हो । और उनको क्या पता कि तुम्हारी क्या हालत हो रही है ! तुम भी उनको गिन रहे हो । और मैं बहुतों को जानता हूं, जितने मुझसे परिचित हैं, उनमें से एक की पूजा भी सार्थक नहीं मैंने पायी है । और सब घबड़ाते हैं कि उनका संदेह न छेड़ देना । उनके भीतर दबी हुई शंकाएं न उठा देना । मगर अगर इन शंकाओं को नहीं जगाओगे, तो तुम्हारी आस्था सदा झूठी रहेगी ।'

आखिरी बार मैं गया, तो उन्होंने खबर पहुंचवाई अपने लड़के से कि 'मेरी तबीयत बहुत खराब है, इसलिए कृपा करके देखने मत आना । क्योंकि अब मैं बिलकुल मरण-शैया पर पड़ा हूं । यूं मन में बड़ी इच्छा है कि एक बार तुम्हें देख लूं, मगर नहीं, तुम आना मत । क्योंकि मैं नहीं चाहता कि किसी नास्तिक भाव में मर जाऊं !'

मैंने उनके लड़के से कहा कि 'एक बार तो मैं आऊंगा; मुझे कोई रोक सकता नहीं । तुम जाकर कह दो कि मैं आ रहा हूं, वे तैयारी रखें । उन्हें जितनी आस्तिकता मजबूत करनी हो, वह करके रखें । मैं आ रहा हूं । और यह मेरा आखिरी आना है, फिर मैं नहीं आऊंगा ।'

मैं उनके पास गया । मैंने कहा कि 'सोचो तो, मैं न भी आऊं, तो भी यह तुम्हारी आस्तिकता कोई आस्तिकता है ! जो इतनी भयभीत है, जो इतनी कायर है ! यूं तुम मरोगे, तो तुम नास्तिक ही मर रहे हो । क्यों धोखा ओढ़े हुए हो !'

उन्होंने कहा, 'तुम न माने, तुम आ गये ! मुझे मर जाने दो । मुझे मेरी आस्थाओं को पकड़े मर जाने दो ।'

मैंने कहा, 'अगर वे झूठी हैं आस्थाएं, तो क्या होगा पकड़ कर मर जाने से ! कम से कम मरते वक्त इस भाव से तो मरो कि मैं किसी झूठ को पकड़े हुए नहीं मर रहा हूं । भला मुझे सत्य न मिला हो, लेकिन मैंने किसी झूठ को नहीं पकड़ा है । कम से कम इतनी निष्ठा तो तुम्हारी परमात्मा के सामने रहेगी । इतना तो तुम कह सकोगे कि नहीं पा सका सत्य, मानता हूं, लेकिन झूठ को भी नहीं पकड़ा । और जिसने झूठ को नहीं पकड़ा, वह सत्य को पाने का हकदार हो जाता है । मरते वक्त तो कम से कम ईमान ले आओ । और मेरे लिए तो ईमान का अर्थ यही ही होता है : सत्य में निष्ठा--झूठे आश्वासनों में नहीं ।'

पूर्णानन्द ! तुम्हारा प्रश्न महत्वपूर्ण है । तुम कहते हो : 'आप्तपुरुषों का यह मंगल-वचन क्या कभी सच होगा ?'

आप्तपुरुष तो आशीष ही देते हैं । उनके पास और कुछ देने को है भी नहीं । उनसे तो फूल ही झरते हैं । वे तो तुम्हारे लिए प्रार्थनाओं से ही भरे हुए हैं । वे तो चाहते हैं कि तुम्हारे जीवन में सुगंध उड़े, गीत जगें, नृत्य हो । तुम्हारे जीवन में हजार-हजार कमल खिलें । तुम्हारे जीवन में रसधार बहे । लेकिन तुम बहने दो, तब ना ! तुम तो हर तरह से अड़ंगा खड़ा करते हो । और तुम्हारे बिना कोई जबरदस्ती तुम्हें सुखी नहीं कर सकता ।

यह प्रार्थना तो प्यारी है : 'सब सुखी हों ।' लेकिन तुम्हारे स्वार्थ तो दुख से जुड़े हैं । तुम कैसे सुखी होओगे ! तुम मेरी बात सुन कर शायद चौंको । लेकिन मैं दोहरा दूं, ताकि तुम समझ लो ठीक से ।

तुम्हारे स्वार्थ दुख से जुड़े हैं । तुम्हारा सारा जीवन दुख में जड़ें जमाये बैठा है । तुम सुखी नहीं होना चाहते, हालांकि तुम कहते हो कि मैं सुखी होना चाहता हूं । मगर तुम्हारे सुखी होना चाहने का जो ढंग है, वह भी तुम्हें सिर्फ दुखी करता है, और कुछ भी नहीं । क्योंकि सुखी होने की पहली शर्त है : सुख को मत चाहो । अब तुम थोड़ी मुश्किल में पड़ोगे । इस शर्त को जो पूरी करे, वही सुखी हो सकता है ।

सुख को मत चाहो । क्योंकि जिसने सुख चाहा, वह दुखी हुआ । इस दुनिया में सारे लोग सुख चाहते हैं । कौन है जो सुख नहीं चाहता ! लेकिन फिर सारे लोग दुखी क्यों हैं ? सुख की चाह में ही दुख के बीज छिपे हैं ।

सुख को चाहता कौन है ? पहली तो बात : दुखी आदमी चाहता है । जो दुखी है, वह सुख चाहता है । दुखी क्यों है ? यह तो कभी नहीं सोचता । लेकिन सुख चाहता है । दुखी है, तो कारण होंगे । दुखी है, तो बीज उसने नीम के बोये होंगे; हां, चाहता है कि आम लग जायें ! मगर उसकी चाह से थोड़े ही आम लगेंगे । बीज अगर नीम के बोता है, और चाह अगर आम की करता है, तो पागल है । तो रोज-रोज दुखी होगा । रोज-रोज विषाद से भरेगा । क्योंकि जब भी फल लगेंगे, कड़वे नीम के ही फल लगेंगे । बीज ही नीम के तुम बो रहे हो ।

पहली तो भ्रांति यह है : समस्त बुद्धपुरुषों ने कहा है--'तृष्णा दुष्पूर है ।' यह समस्त धर्म की आधारशिला है : तृष्णा दुष्पूर है । जब तक तुम मांग कर रहे हो, वासना से भरे हो, तब तक तुम दुखी रहोगे । क्योंकि तुम्हारी सारी वासना तुम्हें रोज-रोज असफलता के गड्ढों में गिरायेगी ।

लाओत्सू ने कहा है : 'मुझे कोई दुखी तो करे ! मुझे कोई दुखी नहीं कर सकता, क्योंकि मैं सुख मांगता ही नहीं ।' उसने यह भी कहा है : 'मुझे कोई हराये तो ! मुझे कोई हरा ही नहीं सकता ।' और तुम यह मत समझना कि लाओत्सू कोई पहलवान है ।

कि कोई मोहम्मद अली है ! लेकिन लाओत्ज़ू कहता है : 'कोई मुझे हराये तो ! मुझे कोई हरा नहीं सकता । क्योंकि मैं विजय मांगता ही नहीं ।' लाओत्ज़ू कहता है, 'तुम मुझे कैसे हराओगे, अगर मैं विजय चाहता ही नहीं ! अगर मैं हार से भी राजी हूं, तो तुम मुझे कैसे हराओगे ! अगर मैं हार में भी आनंदित हूं, तो तुम मुझे कैसे हराओगे !'

मैं छोटा था, तो मेरे पड़ोस में एक अखाड़ा था । पहले तो मैं यूं ही चला जाता था देखने । वहां अकसर पहलवान आते रहते । एक पहलवान में मैं जरूर उत्सुक हो गया । उसे मैं कभी भूला ही नहीं फिर । आज भी उसकी तस्वीर मुझे याद है । उसका नाम भी मुझे पता नहीं । अबजनबी था । नया-नया आया था । नागपंचमी का दिन था, उस अखाड़े में कुश्तियां हो रही थीं । मैं भी देखने पहुंचता था । उस पहलवान को मैं नहीं भूला । पता नहीं क्या उसका नाम था, कहां से आया था, कौन था––कुछ पता नहीं । लेकिन उसकी तस्वीर नहीं भूलती । वह जब कुश्ती लड़ा, तो उसके लड़ने का लहजा ही कुछ और था । ऐसे मैंने बहुत पहलवान कुश्ती लड़ते देखे थे, क्योंकि मेरे मोहल्ले में ही अखाड़ा था और जब भी मुझे फुर्सत होती, चला जाता । वहां चलता ही रहता कुछ न कुछ उपद्रव । वहां बैण्ड-बाजा बजता ही रहता । जब देखो तब वहां अखाड़ा । जब देखो तब वहां कुश्ती ! गांव में कुश्ती का शौक था और कई अखाड़े थे । छोटा-सा गांव, लेकिन बहुत अखाड़े थे । और हर अखाड़े में प्रतिद्वंदिता थी ।

उस दिन जो मैंने कुश्ती देखी, वह आदमी इस मस्ती से लड़ा, जिससे लड़ा वह उससे कम से कम दुगने वजन का आदमी था । उसकी हार निश्चित थी । मगर वह इतनी प्रफुल्लता से लड़ा ! हार भी गया । वह चारों खाने चित्त पड़ा है, और वह मजबूत पहलवान उसकी छाती पर बैठा है, और सारे लोग तालियां बजा रहे हैं प्रशंसा में जो जीता है उसकी ! लेकिन जो नीचे पड़ा था, वह खिलखिला कर हंसा । उसकी खिलखिलाहट मुझे नहीं भूलती । उसका खिलखिला कर हंसना––एक सन्नाटा छा गया ! भीड़ जो ताली बजा रही थी, वह एकदम रुक गयी । हारा हुआ आदमी––और खिलखिला कर हंसे !

वह पहलवान जो उसकी छाती पर बैठा था, एक क्षण को हतप्रभ हो गया ! उसकी भी समझ के बाहर था । कुश्तियां उसने जिंदगी में बहुत लड़ी होंगी; जीता होगा, हारा होगा । हारा होगा तो रोया होगा । जीता होगा तो हंसा होगा । मगर हारे हुए को हंसते उसने कभी नहीं देखा था ! उसने पूछा कि 'तुम क्यों हंस रहे हो ?'

वह पहलवान कहने लगा कि 'मैं इसलिए हंस रहा हूं कि मेरे लिए पहलवानी सिर्फ खेल है । न हारना––न जीत । मौज है । तुम ऊपर, कि मैं ऊपर––क्या फर्क पड़ता है !'

उस व्यक्ति को कुछ सूत्र है याद । इस व्यक्ति को कैसे हराओगे ! क्या फर्क पड़ता है––कोई तो ऊपर होगा, कोई तो नीचे होगा ! दो आदमी लड़ेंगे, तो एक नीचे आयेगा एक ऊपर आयेगा । यह स्वाभाविक है । दोनों तो ऊपर हो नहीं सकते ! दोनों नीचे नहीं

हो सकते । उसकी बात मुझे भूली ही नहीं । और जब वर्षों बाद में लाओत्ज़ू को पढ़ा, तो तत्क्षण मुझे उस पहलवान की बात याद आ गयी । शायद उसने लाओत्ज़ू का नाम भी न सुना हो । लेकिन सूत्र तो उसे याद था । वह हार में हंस सका था, क्योंकि हार और जीत सब खेल है ।

जीतने के लिए लड़ा ही नहीं था । उसके लड़ने का ढंग भी अलग था । बहुत मैंने पहलवान लड़ते देखे, मगर उसका लड़ने का ढंग अलग था । वह पहले नाचा ! पूरे अखाड़े में नाचा । लोग चौंक कर देखने लगे कि वह क्या कर रहा है ! उछला-कूदा— बड़ा प्रफुल्लित हुआ ! जैसे छोटे बच्चे, वैसा ही हलका-फुलका आदमी था । दुबला-पतला था । लड़ा भी बड़ी शानदार कुश्ती । अपने से दुगने वजनी आदमी से लड़ा । जरा भी संकोच नहीं । हार का कोई सवाल ही नहीं, कोई डर ही नहीं, कोई भय ही नहीं । यूं लड़ा जैसे खेल-खिलवाड़ हो । जैसे छोटे बच्चे से उसका बाप लड़े । तो अब बच्चे को हराता थोड़े ही है बाप, जब कुश्ती लड़ता है । खुद जल्दी से लेट जाता है । बच्चे को छाती पर चढ़ जाने देता है । और बच्चा किलकारी मारता है छाती पर बैठ कर ! और बच्चा सोचता है : 'जीत गये ! देखो, पापा को हराया ! डैडी को चारोंखाने चित्त कर दिया !' उसे क्या पता कि पापा खुद ही चारोंखाने चित्त हो गये हैं ।

इस ढंग से लड़ा । लड़ने में एक मौज थी, एक नृत्य का भाव था । हार कर भी हंसा । हार कर भी नाचा । जीतने वाले की जीत को मिट्टी कर दिया उसने ! जीतने वाले को लोग भूल गये ! लोगों ने फूल-मालायें उसके गले में डाल दीं । जीतने वाला यूं खड़ा रहा किनारे पर ! आंखें फाड़े देखता रहा कि यह हो क्या रहा है ! कि हारे हुए आदमी के गले में फूल-मालायें डाली गयीं । और जिन्होंने डालीं, वे कोई बहुत बड़े ज्ञानी नहीं थे; सीधे-सादे लोग थे । मगर उनको भी यह बात समझ में आ गयी कि यह आदमी कुछ अनूठा है ! यह हारना जानता ही नहीं । इसे तुम हरा ही नहीं सकते ।

और उसने सारी फूल-मालायें ले जा कर जो जीत गया था, उसको दे दीं कि 'तुम ऐसे दुखी न होओ; ऐसे परेशान न होओ । तुम तो जीते हो, तुम क्या उदास खड़े हो ! अरे, जब मैं हार कर नाच रहा हूं, तो तुम भी नाचो । तुम तो जीते हो !'

मगर वह जो जीता था, क्या खाक नाचे ! वह जीत कर भी न नाच सका । वह जीत कर भी विषादग्रस्त हो गया । पछताया होगा कि कैसे आदमी से कुश्ती लड़ी ! ऐसे आदमी से लड़ना ही नहीं था ।

फिर वह पहलवान गांव में कोई दस-पंद्रह दिन रहा, लेकिन कोई उससे लड़ने को राजी नहीं था । कोई लड़ा ही नहीं ! मैं रोज अखाड़े पहुंचता कि उसकी कोई कुश्ती होने वाली है ! मैं उससे भी पूछता कि 'भई, कुश्ती तुम्हारी कब होगी ?' वह कहता, 'मैं खुद परेशान हूं । कोई लड़ता ही नहीं !'

मैंने कहा, 'फिर मैं ही हूं !' मैं बहुत छोटा था । उसने कहा, 'भई तू ! अभी तू

बहुत छोटा है !' मैंने कहा, 'रहने दो, क्या फिक्र पड़ती है ! तुम्हें हारना ही है, मुझसे हार जाना। तुम्हें हंसना ही है, मुझसे हार कर हंस लेना। और तुम्हें दिल हो मुझे हराने का, तो मुझे हरा के हंस लेना !'

उससे मेरी दोस्ती हो गयी। वह कहने लगा, 'तुमसे तो मैं हारा ही हुआ हूं। तुम फिक्र मत करो।' वह जब तक रहा, रोज मुझे बुला ले जाता था--नदी नहाने जाता, तो मुझे बुला लेता। खाना खाने कहीं उसका निमंत्रण होता, तो मुझे बुला ले जाता। अखाड़े में घण्टों हम साथ बैठे रहते। मैं बहुत छोटा था; उसकी उम्र तो बहुत थी। मगर एक दोस्ती हमारे बीच बन गयी। एक सूत्र सध गया।

तृष्णा दुष्पूर है और इसलिए दुखों में ले जाती है। यह पा लूं, वह पा लूं; यह जीत लूं--बस, फिर हार के तुमने बीज बोये। फिर तुमने अपने लिए संताप पैदा किया।

तो ऋषि तो कहते हैं : 'सब सुखी हों--सर्वे भवन्तु सुखिन:'--यह उनकी प्रार्थना शुभ; ये उनके आशीष प्यारे, मगर तुम सुखी कैसे हो सकोगे ? तुम्हारे तो दुख में बहुत गहरे नियोजन हैं। पहला तो यह कि तुम सुख चाहते हो, इसलिए सुखी न हो सकोगे। दूसरा यह कि तुम बहुत गहरे में दुख के साथ विवाहित हो, तुम्हारे गठबंधन हो गये हैं; तुम्हारे सात फेरे पड़ गये हैं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हम प्रत्येक बच्चे को जीवन भर दुखी रहने के लिए शिक्षा देते हैं। और यह बात सच है। बच्चा जब दुखी होता है, बीमार होता है, तो मां भी उसके पास बैठती है, पिता भी उसके पास बैठता है। कोई उसका माथा दबाता है, कोई पैर दबाता है; दवा कोई लाता है। जब भी वह दुखी होता है, तब उसे संवेदना मिलती है, सहानुभूति मिलती है। और जब भी वह नाचता-कूदता है, तो डांट-फटकार मिलती है। जब भी हंसता है, किलकारी मारता है, दौड़ता है, छलांग लगाता है, चीजें गिरा देता है, चीजें तोड़ देता है, तब उसको डांट-फटकार मिलती है। जब वह प्रफुल्लित होता है, तब डांट-फटकार; सारा घर उसका दुश्मन हो जाता है। और जब वह बीमार होता है, मुरदा होने के करीब होता है--सब उसके मित्र हो जाते हैं ! कहीं गहरे में यह बात बैठ जाती है। ये फेरे पड़ने लगे। यह दुख के साथ विवाह रचाया जाने लगा। यह शहनाई बजी। एक बात किसी अचेतन में उतरने लगी कि दुख में लोगों की सहानुभूति होती है; सुख में लोगों की सहानुभूति नहीं होती।

दुखी आदमी के प्रति लोग सदभाव से भरे होते हैं ! तुम्हारे घर में आग लग जाये, तो सारा मोहल्ला तुमसे सहानुभूति प्रगट करेगा। और तुम एक नया मकान बना लो, तो सारे मोहल्ले में जलन और ईर्ष्या की आग फैल जायेगी।

कोई तुम्हें सुखी नहीं देखना चाहता ! तुम सुखी होते हो, तो लोग दुखी होते हैं। और इतने लोगों को दुखी करना खतरे से खाली नहीं है। और तुम जब दुखी होते हो, तो सारे लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, सहानुभूति देते हैं। सहानुभूति में तुम्हें रस आने

लगता है। अच्छा लगता है, प्रीतिकर लगता है। तो दुखी होने में तुम्हारे स्वार्थ जुड़ जाते हैं।

मेरे विरोध में अगर हजारों-लाखों लोग हैं, तो उसका कुल कारण इतना है कि यहां एक आनन्द का तीर्थ निर्मित हो रहा है। यहां मेरे पास आनन्दमग्न लोगों की जमात इकट्ठी हो रही है। यहां मस्तों की दुनिया है, मतवालों की दुनिया है। इससे ईर्ष्या जग रही है। इससे हजार तरह की ईर्ष्याएं पैदा हो रही हैं। इससे बहुत जलन पैदा हो रही है। अगर मैं भी लंगोटी लगा कर और धूप में और झाड़ के नीचे बैठ जाऊं, तो बड़ी सहानुभूति पैदा होगी। और अपने आसपास भी अगर मैं भूखे-नंगे लोगों को बिठा लूं, तो बड़ी सहानुभूति प्रगट होती। नोबल प्राइज पक्की है !

लेकिन अभी तो मुझे सिर्फ गालियां पड़ने वाली हैं। मुझे नोबल प्राइज चाहिए भी नहीं। मुझे गालियां ही अच्छी हैं। क्योंकि एक राज मेरी समझ में आ गया है : अगर तुम्हें आनन्दित होना है, तो तुम्हें इसकी फिक्र ही छोड़ देनी चाहिए। तुम्हें गालियां पड़ेंगी, तुम्हें पत्थर पड़ेंगे, मगर वे खा लेने जैसे हैं। आनन्द इतनी बहुमूल्य चीज है कि उसके लिए सारी ईर्ष्याएं झेल लेने जैसी हैं।

लोग, जिस भीड़ में तुम रहते हो--तुम्हें सुखी नहीं देखना चाहते; तुम्हें दुखी देखना चाहते हैं। इस भीड़ के खिलाफ तुम हिम्मत कर सकोगे सुखी होने की ? तुम राजी हो कि लोगों की गालियां पड़ें, तो कोई फिक्र नहीं; सहानुभूति न मिले, तो कोई फिक्र नहीं ? तुम तैयार हो ?--तो तुम्हारे जीवन में सुख का अवतरण हो सकता है। लेकिन गहरे में तो तुम भी जुड़े हो दुख से।

स्त्रियां इतनी दुखी दिखाई पड़ती हैं; उसका कुल कारण इतना है। नहीं तो स्त्रियां आमतौर से प्रसन्न-चित्त होती हैं, पुरुषों से ज्यादा प्रसन्न-चित्त होती हैं। ज्यादा प्रफुल्लित होती हैं, क्योंकि ज्यादा पार्थिव होती हैं। उनमें पृथ्वी का अंश ज्यादा है। उनमें फूल ज्यादा खिल सकते हैं। लेकिन उदास और दुखी और परेशान। और उसका कारण --क्योंकि उनके पति की सहानुभूति मिलती ही तब उन्हें है। अगर पत्नी प्रसन्न-चित्त है, तो पति की उसे कोई सहानुभूति नहीं मिलती। वह बीमार है, तो पति की सहानुभूति मिलती है। और हम इतने दीनहीन हो गये हैं कि हम सहानुभूति को ही प्रेम समझ लेते हैं। सहानुभूति झूठा सिक्का है। वह प्रेम का धोखा है। वह प्रेम नहीं है। लेकिन क्या करें ! प्रेम तो मिलता नहीं, तो चलो सहानुभूति सही। न सही असली सिक्के--नकली सिक्के सही। न कुछ से तो कुछ भी अच्छा !

तो तुम्हारे जीवन की जड़ें दुख में जमी हुई हैं। ऋषियों के आशीष बरसते रहे हैं। उन्होंने सदा चाहा कि तुम सुखी हो जाओ। मगर तुमने यह चाहा है कि तुम्हारे ऋषि भी दुखी रहें ! तुम तपस्वियों की पूजा करते हो, अर्चना करते हो। तपस्वी का अर्थ क्या है ? तपस्वी का अर्थ है : जिसकी मूढ़ता इतनी सघन है कि जिसे कोई दूसरा दुख नहीं दे

रहा है, तो वह मूढ़ खुद ही अपने को दुख दे रहा है ! तपस्वी का और क्या अर्थ होता है ! जिसको कोई दुख देने वाला नहीं मिल रहा है, तो भी वह सुख से नहीं बैठ सकता। वह खुद अपने लिए दुख के सारे आयोजन करेगा। गरमी होगी, आग बरस रही होगी, वह अंगीठी जला कर धूनी रमायेगा अपने चारों तरफ। जैसे कि वैसे ही गरमी की कोई कमी है ! कम से कम इस देश में तो धूनी रमाने की कोई जरूरत नहीं है। मगर इस गरम देश में भी गरमी के दिनों में भी जब आग बरसती हो, तब भी लोग धूनी रमाये बैठे हैं ! और जब कोई धूनी रमा कर बैठता है कि तुम्हें पास जाने में प्राण कंपें, और वह लपटों के बीच बैठा है——तुम्हारा चित्त कितना आह्लादित होता है कि अहा ! यह है तपस्वी ! यह है महात्मा ! और तुम्हारे महात्मा कहने के कारण, तपस्वी मानने के कारण उसके अहंकार की तृप्ति होती है। और अहंकार की तृप्ति के लिए वह सब सुख छोड़ने को राजी है; वह हर तरह से दुखी होने को राजी है।

तुम भूखे को, उपवासी को आदर देते हो। किसी ने दस दिन का उपवास कर लिया पर्युषण के दिनों में, तो हाथी पर जुलूस निकालो ! बैण्ड-बाजे बजाओ ! कि इन्होंने बड़ा गजब का काम किया कि दस दिन भूखे रहे ! कोई दस दिन मस्ती से खाया-पिया इसका तुम कभी जुलूस नहीं निकालते ! कि यह आदमी बड़ा मस्त है, इसको हाथी पर बिठायें ! इसका बैण्ड-बाजा बजायें। अच्छी दुनिया तो तब होगी, जब कोई आदमी दस दिन मस्त रहा, जी भर के खाया-पिया, खूब पैर-पसार कर सोया——और तुमने उसका जुलूस निकाला। तब तुम थोड़ी बुद्धिमानी का सबूत दोगे। तब तुम यह सबूत दोगे कि तुम्हारे मन में अब सुख का भी सम्मान पैदा हुआ है।

अभी तो तुम सुखी को भोगी कहते हो। और दुखी को त्यागी कहते हो। अभी दुख को आदर देते हो; सुख को अनादर देते हो। तुम्हारे अजीब मूल्यांकन हैं ! तुम्हारी जीवन-सरिणी उलटी है ! तुम्हारा तर्क कैसा है !

तो लाख आप्त-वचन बोलते रहें ऋषि, आशीष देते रहें, क्या होगा ? तुम्हारी जीवनचर्या, तुम्हारी जीवनशैली अभी दुख-निर्भर है। तुम कब सुख का सम्मान करोगे ?

यह जो सूत्र है उपनिषद का, यह उन दिनों का सूत्र है, जब अभी हमने दुख में अपने न्यस्तस्वार्थों को बहुत नहीं जोड़ा था। यह उन ऋषियों का सूत्र है, जो अभी अंगीठी जला कर नहीं बैठे थे। और जिन्होंने कांटों की सेज नहीं बिछाई थी। यह उन ऋषियों का सूत्र है, जिन्होंने अभी तक भूखे मरने को, उपवास को समादर नहीं दिया था। यह उन ऋषियों का सूत्र है, जो अभी सुख को अधार्मिक नहीं मानते थे। तब तो वे प्रार्थना कर सके : 'सर्वे भवन्तु सुखिनः।' सब के सुख के लिए प्रार्थना कर सके। नहीं तो प्रार्थना करनी थी कि हे प्रभु, सब को तपस्वी बना——सुखी नहीं ! सब के लिए कांटों की सेज बिछा ! कि सब कांटों पर सोयें ! साधारण कांटे काम न देते हों, तो लोहे के खीले !

ईसाइयों में फकीर होते हैं, जो अपनी कमर में एक पट्टा बांधे रखते हैं, जिसमें

खीले लगे होते हैं, जो उनकी कमर में अंदर धंस गये होते हैं। उन खीलों से घाव बने रहते हैं और वे खीले घावों में पड़े रहते हैं। वे चलते हैं, हिलते हैं, डुलते हैं, तो खीले चुभते रहते हैं। उनसे मवाद और खून बहता रहता है ! उनका बड़ा सम्मान किया जाता है।

ईसाइयों में एक सम्प्रदाय होता है, जिसके फकीर अपने को कोड़े मारते हैं। सुबह से उठकर जो पहला काम है, वह है कोड़े मारना। जो जितने ज्यादा कोड़े मारता है, वह उतना बड़ा तपस्वी ! स्वभावतः देह का दुश्मन है। देह से मुक्त हो रहा है ! जूते पहनते हैं वे, जिनमें नीचे खीले अंदर लगे होते हैं, जिनसे पैर में घाव बने रहते हैं; मवाद बहती रहती है। गैर-ईसाइयों को इसमें दिखाई पड़ेगा कि यह तो पागलपन है। मगर ईसाइयों को नहीं दिखाई पड़ेगा। ईसाइयों को पागलपन दिखाई पड़ता है जैन मुनियों में ! कि यह क्या पागलपन है कि नंगे फिर रहे हो ! दिगम्बर जैन मुनि ! शरीर को सड़ा रहे हो, सुखा रहे हो ! मगर जैनों का हृदय बड़े सन्मान से भरा हुआ है, गद्‌गद हो उठता है कि अहा ! यह है तपश्चर्या ! ये हैं असली मुनि !

ये सिर्फ रुग्णचित लोग हैं। ये सिर्फ बीमार हैं। ये मानसिक रूप से विक्षिप्त हैं। और चूंकि मैं सत्य को वैसा ही कह रहा हूं जैसा है, इसलिए मुझे गाली पड़ने वाली है। ईसाई गाली देंगे। जैन गाली देंगे। हिन्दू गाली देंगे। यह मैं जानता हूं कि गालियां पड़ने वाली हैं, अगर सत्य को सत्य की तरह कहना है। मगर वक्त आ गया है कि सत्य को सत्य की तरह कहा जाये। बहुत दिन हो गया झूठ में तुम्हें जीते हुए !

इस ऋषि की प्रार्थना को मैं भी पूरी करना चाहता हूं तुम्हारे लिए, मगर तुम पूरी नहीं होने देना चाहते। तुम कुछ न कुछ उपद्रव चाहते हो, क्योंकि उपद्रव में लगता है : कुछ कर रहे हो——साधना, योग। शरीर को उलटा-तिरछा करना, मोड़ना-मरोड़ना——तुम समझते हो : योग साध रहे हो तुम ! तो तो फिर सर्कस में ही सिर्फ योगी होते हैं ! जिनके शरीर बिलकुल रबर जैसे हो जाते हैं ! कि जैसा चाहो, वैसा मोड़ो।

सर्कस नहीं है योग। योग शब्द का अर्थ समझो। 'योग' शब्द का अर्थ होता है——मिलन। परमात्मा से मिलन। उसकी कला। उसकी कला प्रेम है। उसकी कला ये योगासन नहीं हैं। यह सिर के बल खड़े होना कोई परमात्मा से नहीं मिला देगा। कोई परमात्मा तुम जैसा घनचक्कर नहीं है ! कि सिर के बल खड़े हो गये, तो बड़ा प्रसन्न हो जाये ! अगर मिलने भी आ रहा होगा, तो लौट जायेगा कि इस उलटी खोपड़ी से क्या मिलना ! पहले खोपड़ी तो सीधी करो ! कम से कम आदमी की तरह खड़े होना तो सीखो ! यह तो जानवर भी नहीं करते शीर्षासन, जो तुम कर रहे हो। और अगर परमात्मा को शीर्षासन ही करना था, तो सिर के बल ही खड़ा करता ना ! तुम्हें पैर के बल खड़ा क्यों किया है ! परमात्मा ने कुछ भूल की है, जिसमें तुम्हें सुधार करना है ?

परमात्मा ने तुम्हारे भीतर आनन्दमग्न होने की पूरी क्षमता दी है। मगर तुम्हारा

समादर गलत है, रुग्ण है। उस कारण सुख कैसे हो!

तुम कृपण हो, कंजूस हो। और सुखी तो वही हो सकता है, जिसको बांटने में आनन्द आता हो। तुम्हें तो इकट्ठा करने में आनन्द आता है! हम तो कंजूसों को कहते हैं--सरल लोग हैं, सीधे-सादे लोग हैं!

मैं एक गांव में एक कंजूस के घर में मेहमान हुआ। महाकूंजस! मगर सारे गांव में उसका आदर यह कि सादगी इसको कहते हैं! सादा जीवन--ऊंचे विचार! क्या ऊंचा जीवन और ऊंचा विचार साथ-साथ नहीं हो सकता? और सादा जीवन ही जीना हो, तो यह तिजोड़ी को काहे के लिए भर कर रखे हुए हो! मगर हर गांव में तुम पाओगे: कंजूसों को लोग कहते हैं--सादा-जीवन! कि है लखपति, लेकिन देखो, कपड़े कैसे पहनता है!

सेठ धन्नालाल की पुत्री जब अट्ठाइस वर्ष की हो गई, और आसपास के लोग ताना देने लगे कि यह कंजूस दहेज देने के भय से अपनी बेटी को क्वांरी रखे हुए है, तो सेठजी ने सोचा कि अब जैसे भी हो लड़की का विवाह कर ही देना चाहिए, क्योंकि जिन लोगों के बीच रहना है, उठना-बैठना है, धंधा-व्यापार करना है, उनकी नजरों में गिरना ठीक नहीं। उन्होंने लड़के की खोज शुरू कर दी। पड़ोस के ही गांव के एक मारवाड़ी धनपति का बेटा चंदूलाल उन्हें पसंद आया। जब वे लोग सगाई करने के लिए धन्नालाल के यहां आये तो चंदूलाल के बाप ने पूछा--'आपकी बेटी बुद्धिहीन अर्थात फिजूलखर्ची तो नहीं है, इस बात का क्या प्रमाण है? क्योंकि हमारे घर में आज तक कोई फिजूलखर्च व्यक्ति नहीं हुआ है, और हम नहीं चाहते कि कोई आ कर हमारी परम्परा से जुड़ती चली आ रही सम्पत्ति को नष्ट करे; बाप-दादों की जमीन-जायदाद हमें जान से भी ज्यादा प्यारी है। यह देखिये मेरी पगड़ी; मेरे बाप को मेरे दादा ने दी थी; दादा को उनके बाप ने; उन्हें उनके पितामह ने; और उनके पितामह ने अपने एक बजाज दोस्त से उधार खरीदी थी। क्या आपके पास भी ऐसा फिजूलखर्ची न होने का कोई ठोस प्रमाण है?'

धन्नालाल जी बोले--'क्यों नहीं, क्यों नहीं। हम भी पक्के मारवाड़ी हैं, कोई ऐरे-गैरे नत्थू खैरे नहीं।' फिर उन्होंने जोर से भीतर की ओर आवाज दे कर कहा--'बेटी धन्नो, जरा मेहमानों के लिए सुपाड़ी वगैरह तो ला।'

चंद क्षणोपरांत ही धन्नालाल की बेटी सुंदर अल्युमीनियम की तश्तरी में एक बड़ी-सी सुपाड़ी लेकर हाजिर हुई; सबसे पहले उसने अपने बाप के सामने प्लेट की। धन्नालाल ने सुपाड़ी को उठा कर मुंह में रखा; आधे मिनट तक यहां-वहां मुंह में घुमाया, फिर सुपाड़ी बाहर निकाल कर सावधानीपूर्वक रूमाल से पोंछकर तश्तरी में रख अपने भावी समधी की ओर बढ़ाते हुए कहा--'लीजिए, अब आप सुपाड़ी लीजिए!'

चंदूलाल और उसका बाप दोनों यह देखकर ठगे से रह गये। उन्हें हतप्रभ देख कर

धन्नालाल बोले--'अरे संकोच की क्या बात, अपना ही घर समझिये। तकल्लुफ की कतई जरूरत नहीं। यह सुपाड़ी तो हमारी पारंपरिक सम्पदा है। पिछली चार शताब्दियों से हमारे परिवार के लोग इसे खाते रहे हैं। मेरे बाप, मेरे बाप के बाप, मेरे बाप के दादा, मेरे दादा के दादा. सभी के मुंहों में यह रखी रही है। मेरे दादा के दादा के दादा को बादशाह अकबर के राजमहल के बाहर यह पड़ी मिली थी!'

ऐसा-ऐसा सादा जीवन जिया जा रहा है! सुख हो तो कैसे हो!

सुखी होने के लिए जीवन के सारे आधार बदलने आवश्यक हैं। कृपणता में सुख नहीं हो सकता। सुख बांटने में बढ़ता है; न बांटने से घटता है। संकोच से मर जाता है; सिकोड़ने से समाप्त हो जाता है। फैलने दो--बांटो। और कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि जिनको तुम आमतौर से गलत आदमी समझते हो, वे गलत न हों।

मेरे एक प्रोफेसर थे, डॉक्टर श्रीकृष्ण सक्सेना। उनसे मेरा बहुत प्रेम था। एक बात के कारण सारे विश्वविद्यालय में उनकी बदनामी थी और वह थी शराब। लेकिन मैं उनके बहुत निकट रहा। उनके घर पर भी बहुत दिनों तक रहा। मैंने उन जैसे भले आदमी बहुत मुश्किल से देखे। जब मैं उनके घर रहता, तो वे शराब न पीते। मैंने एक दिन उनको कहा कि 'फिर मैं आपके घर न आऊंगा। क्योंकि जब आप मुझे घर ले आते हैं कभी, कहते हैं, अब छुट्टी है विश्वविद्यालय में एक चार दिन की, तो चलो मेरे साथ मेरे घर पर रहना, तो मैं देखता हूं, आप शराब नहीं पीते। मेरे कारण यह बाधा आपको पड़े--ठीक नहीं।'

उन्होंने कहा कि 'नहीं; तुम्हारा यहां होना मुझे शराब से भी ज्यादा मस्ती देता है। इसलिए नहीं पीता। पीने की जरूरत नहीं है। कोई कारण नहीं है।'

मैंने उनसे कहा कि 'आपकी आदत है!'

उन्होंने कहा, 'आदत भी नहीं है मेरी। और अकेले तो मैंने कभी जिंदगी में पी नहीं। जब तक चार लोगों को न बुला लूं, जब तक चार पीने वाले न हों, तब तक तो मैं पीता ही नहीं। कभी-कभी महीनों नहीं पीता, क्योंकि जब पीने वाले ही साथ न हों, तो क्या पीने का मजा!'

इनका बड़ा अपमान था सारे विश्वविद्यालय में कि ये शराबी हैं। बस, इस आदमी की एक खराबी कि यह शराब पीता था। एक खराब बात हो गयी, तो अधार्मिक है! लेकिन इस आदमी के जीवन की धार्मिकता को कोई भी नहीं समझा।

जब भी वे मेरे साथ रहे, उन्होंने कभी शराब न पी। मैंने लाख उन्हें कहा कि 'आप पियें, आपकी आदत है!'

वे बोलते, 'आदत का सवाल ही नहीं। मेरी कोई आदत नहीं।'

और यह मैंने जाना कि उनकी कोई आदत न थी। एक बार तो मैं दो महीने उनके घर रहा। उन्होंने दो महीने शराब नहीं पी! और जरा भी रंचमात्र शराब की

बात ही न उठी। मैंने उनसे कहा, 'दो महीने हो गये, आप शराब नहीं पिये!'

उन्होंने कहा, 'दो साल तुम मेरे घर रहो। यह मेरी कोई आदत नहीं है।'

अब मैं उस आदमी को धार्मिक कहूंगा, जो शराब भी पीता हो, और शराब पीने की जिसे आदत न हो। आदतें तो सड़ी-सड़ी चीजों की बन जाती हैं। शराब जैसी चीज की आदत न बनना तो बड़ी साधना की बात है।

आदतें तो ऐसी छोटी-छोटी चीज की बन जाती है, जिसका हिसाब नहीं! अगर अखबार रोज सुबह पढ़ने की आदत है, एक दिन न मिले, तो दिन भर बेचैनी होती है! अब अखबार कोई शराब है! नहीं पढ़ा, तो नहीं पढ़ा। लेकिन बेचैनी होती है। सुबह से ही बस एक ही धुन लग जाती है--अखबार!

और आदत तो लोगों को पूजा तक करने की हो जाती है! अगर एक दिन पूजा न करें, तो बेचैनी! अच्छी आदतें नहीं होतीं; बुरी आदतें नहीं होतीं। सब आदतें बुरी होती हैं। आदत का मतलब--गुलामी। और गजब का है वह आदमी, जिसको शराब भी गुलाम न बना पाये! मैं तो धार्मिक कहूंगा।

और वे एक सुखी आदमी थे। धार्मिक आदमी सुखी होगा ही। हालांकि मेरी धर्म की तुम परिभाषा देखोगे, तो बड़े हैरान होओगे। न वे कभी पूजा करते थे, न कभी प्रार्थना। मैंने उनसे कहा कि 'आप जैसा आदत से मुक्त आदमी--आप तो बिलकुल धार्मिक हैं! लेकिन न पूजा है, न प्रार्थना है, न आस्तिकता है! आपको कभी इन सब चीजों का खयाल नहीं उठा?'

उन्होंने कहा, 'मैं मस्त हूं, आनन्दित हूं। मैं प्रसन्न हूं, संतुष्ट हूं। और क्या करना है! किस चीज की पूजा करूं? क्यों करूं? अगर मेरा संतुष्ट होना पूजा नहीं है, तो क्या पूजा होगी और?'

और निश्चित ही वे संतुष्ट व्यक्ति थे। अति संतुष्ट व्यक्ति थे। मैंने कभी उन्हें शिकायत करते न देखा। नहीं तो जिंदगी में हर आदमी शिकायत से भरा हुआ है। और तथाकथित धार्मिक आदमी तो बहुत शिकायतों से भरे होते हैं! उनको तो हर चीज में शिकायत दिखाई पड़ती है। और धार्मिक आदमी तो वही है, जिसके जीवन में संतोष, संतुष्टि की सुगंध उड़ती हो। जिसे शिकायत ही न हो, न कोई शिकवा हो। जिसे इस दुनिया में कुछ बुरा ही न दिखाई पड़ता हो।

मैंने कभी उनके मुंह से किसी की निन्दा नहीं सुनी। हालांकि और जितने विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे, सब उनकी निन्दा करते थे। और इस सब का उन्हें पता था, लेकिन उन्होंने कभी किसी की निन्दा नहीं की।

किसको मैं धार्मिक कहूं! ये निन्दा करने वाले लोग धार्मिक हैं? इन निन्दा करने वाले लोगों में नियमित पूजा-पाठ करने वाले लोग थे। अभी-अभी चल बसे डॉक्टर रसाल; हिन्दी के बड़े पुराने कवि थे। बड़े आलोचक थे। सैकड़ों किताबों के लेखक थे।

उनका शब्दकोश बहुत प्रसिद्ध है। बड़े गुणी व्यक्ति थे। लेकिन जब मुझे मिल जाते, और मुझे अकसर मिल जाते, क्योंकि जिस हास्टल में मैं रहता था, उसके वे सुपरिंटेंडेंट थे। तो आते-जाते-निकलते--उनके दरवाजे के सामने से मुझे निकलना ही पड़ता था, मुझे बुला लेते। और जब मुझे मिलते, तो उनका पहला काम था--डॉक्टर सक्सेना की निन्दा करना!

मैंने एक दिन उनसे कहा कि 'डॉक्टर रसाल, आपको पता है कि डॉक्टर सक्सेना ने कभी आपके संबंध में एक शब्द नहीं कहा! कभी मैंने बात भी छेड़ी जानने के लिए कि वे भी आपकी निन्दा करते हैं कि नहीं! क्योंकि उनको लोग खबरें देते हैं कि आप उनकी बहुत निन्दा करते हैं कि शराबी है, पियक्कड़ है; इसको तो विश्वविद्यालय से निकाल देना चाहिए। ऐसा आदमी भ्रष्ट करेगा विद्यार्थियों को!'

और वे निश्चित ही बड़े निष्णात धार्मिक व्यक्ति थे। सुबह से ही पूजा-पाठ। ब्रह्ममुहूर्त में उठना। शुद्ध भोजन--शाकाहारी भोजन करना। शराब की तो बात दूर, वे पान न खायें, सुपाड़ी न खायें। सिगरेट न पियें; शराब तो बहुत दूर! उनमें कोई लतें नहीं। हर धार्मिक दिन पर उनके घर कभी सत्यनारायण की कथा हो रही है; कभी अखण्ड रामायण चल रही है। कुछ न कुछ वहां होता ही रहे। पण्डित-पुजारी इकट्ठे!

मैंने कहा, 'वे कभी आपकी निन्दा नहीं किये और आप जब मुझे मिलते हैं, मुझे लगता ही ऐसा है कि सिर्फ आप उनकी निन्दा करने के लिए मुझे बुलाते हैं! मैं बाहर से निकलता हूं और आप मुझे बुलाते हैं और बात तो आप कुल इतनी करते हैं कि उनकी निन्दा! आपको क्या बेचैनी है इस आदमी से! इसने आपका कुछ बिगाड़ा नहीं। होंगे शराबी, तो आपका क्या बिगाड़ते हैं? और नर्क जायेंगे, तो वे जायेंगे; कोई आपको नहीं जाना पड़ेगा। आपका तो स्वर्ग बिलकुल निश्चित है। सीढ़ी आप लगा रहे हैं। आपको उनमें इतना रस है! उनको तो मैंने कभी आप में कोई रस लेते नहीं देखा! कई दफा मैंने उकसाने की भी कोशिश की है उनको, कि रसाल आपके संबंध में ऐसा कह रहे थे; वे बात ही नहीं उठाते। वे हंस कर टाल देते हैं। वे कहते हैं, लोग कहते रहते हैं! रसाल अच्छे आदमी हैं, अच्छे कवि हैं, भले आदमी हैं। उनको कोई बात न जंचती होगी, तो मेरी निन्दा करते हैं। उनको नहीं जंचती, तो अब मैं क्या करूं? लेकिन एक शब्द आपके विपरीत नहीं।'

किसको मैं धार्मिक कहूं? किसको मैं आस्तिक कहूं?

जिंदगी इतनी आसान नहीं है, जितना हम ऊपर से समझ लेते हैं। मंदिर जो रोज जा रहा है, वह धार्मिक! इतना कहीं होता सिर्फ धार्मिक होना, तो सारी दुनिया धार्मिक थी। यहां सुख ही सुख होता। यहां सुख नहीं है। सुख न होने के साफ-साफ कारण हैं।

पहली तो बात : तुम्हारे मन में दुख का आदर है। इस आदर को जड़-मूल से काट

डालो। सुख को आदर देना शुरू करो, क्योंकि तुम जिस चीज को आदर दोगे, वही तुम्हें उपलब्ध होगा। फूलों की तरफ आंख उठाओगे, तो आंखों में फूलों के रंग छा जायेंगे। चांद-तारों की तरफ आंख उठाओगे, तो आंखों में चांद-तारे झांकेंगे। मगर तुम सिर्फ कांटे गिनते हो।

अगर मैं कहूं कि फलां आदमी सुंदर बांसुरी बजाता है, तुम तत्क्षण कहोगे : 'अरे, वह क्या बांसुरी बजायेगा! शराबी कहीं का। जुआरी--वह क्या बांसुरी बजायेगा!' और अगर मैं किसी आदमी के संबंध में कहूं कि वह जुआरी है, शराबी है, तो तुम कभी यह न कहोगे कि नहीं, नहीं, शराबी वह कैसे हो सकता है! वह कितनी प्यारी बांसुरी बजाता है! जुआरी नहीं हो सकता। और हो तो भी क्या हर्जा; उसकी बांसुरी इतनी प्यारी है!

और परमात्मा कांटे गिनता है कि फूल? तुम्हारे हिसाब से तो कांटे गिनता है, जैसे तुम कांटे गिनते हो। मेरे हिसाब से नहीं। मेरे हिसाब से तो वह यह पूछेगा कि कितनी बांसुरी बजायी। यह नहीं पूछेगा कि कितना जुआ खेला। यह पूछेगा कि कितने गीत गाये। यह नहीं पूछेगा कि कितनी गालियां दीं।

जीवन को विधायक दृष्टि से देखो। आनन्द को सम्मान देना शुरू करो। मगर तुम्हारे भीतर आनन्द के प्रति ईर्ष्या है--बहुत बहुत गहन ईर्ष्या है। तुम आनन्दित व्यक्ति को देख कर जलन से भरते हो; प्रफुल्लित नहीं होते।

तुम्हारे जीवन की प्रक्रिया ऐसी गलत है, कि तुम सुखी नहीं हो सकते। ऋषि लाख प्रार्थनाएं करें, उनकी प्रार्थनाएं व्यर्थ चली जाती हैं; अब तक तो व्यर्थ गयी हैं। जाहिर है : यह प्रार्थना किये कम से कम पांच हजार साल हो चुके होंगे। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।' सब निरोग हों। सब सुखी हों। सब कल्याण को प्राप्त हों। कोई भी दुख का भागी न हो।

यह प्रार्थना पांच हजार साल हो गये किये हुए, शायद उससे भी पुरानी हो, लेकिन अब तक इसका परिणाम नहीं हुआ। यह प्रार्थना खाली चली जायेगी। क्योंकि घड़े तुम्हारे उलटे रखे हैं।

तुमने तो जिद्द कर रखी है दुख उठाने की। तुमने तो कसम खा रखी है नर्क निर्मित करने की!

चंदूलाल के बेटे झुम्मन ने अचानक भोजन करना बन्द कर दिया। हर तरह से प्रयत्न किये गये, मगर वह भोजन करे ही न। अंततः उसे मनोवैज्ञानिक के पास ले जाया गया। मनोवैज्ञानिक उसे जब लगातार पांच घण्टे तक समझाता रहा, तो वह भोजन करने को राजी हो गया। मनोवैज्ञानिक ने प्रसन्न हो कर पूछा--'अच्छा बेटे, बताओ क्या खाओगे?'

उसने मनोवैज्ञानिक को क्रोध से देखा। वह पांच घण्टे में राजी ही इसलिए हुआ

था कि उसकी खोपड़ी खाये जा रहा था समझा-समझा कर। कहां-कहां की बातें समझा रहा था! उसने सोचा : अच्छा चलो, झंझट मिटाओ। भोजन किये लेता हूं। तो उसने मनोवैज्ञानिक की तरफ गुस्से से देखा और कहा--'केंचुए खाऊंगा!'

मनोवैज्ञानिक पहले तो थोड़ा झिझका, कि यह क्या सार निकला पांच घण्टे का! मगर मनोविज्ञान में नियम है कि मरीज को आहिस्ता-आहिस्ता फुसलाओ; धीरे-धीरे राजी करो। चलो, अभी केंचुए खाने को राजी हुआ, कम से कम कुछ खाने को तो राजी हुआ। फिर अब केंचुए की जगह कुछ और खिलाने की व्यवस्था हो सकेगी। एकदम से मरीज को इनकार मत करो। उसे विरोध में मत खड़ा कर दो। उससे दोस्ती बनानी जरूरी है।

तो मनोवैज्ञानिक ने किसी तरह केंचुओं की एक प्लेट का प्रबंध करवाया। अपने माली को कहा कि बीन ला बगीचे में से जितने केंचुए मिल सकें। केंचुओं से भरी प्लेट झुम्मन की ओर बढ़ाते हुए कहा--'लो बेटे, खाओ।'

सोचा उसने कि कौन खायेगा केंचुए! खुद ही कहेगा कि नहीं, केंचुए मुझे नहीं खाने। क्रोध में कह गया है, केंचुए खाऊंगा। सोचता होगा--कौन केंचुए खिलायेगा।

लेकिन झुम्मन बोला--'इन्हें भून कर लाओ! कच्चे नहीं खाऊंगा। क्या पेट खराब करना है!'

मनोवैज्ञानिक गया और किसी तरह केंचुओं को भूना। भुने हुए केंचुए ले कर प्लेट में मनोवैज्ञानिक फिर आया और बोला, 'लो बेटे, अब तो खाओ!'

झुम्मन बोला, 'मुझे केवल एक चाहिए। बाकी को फेंको। इतने मुझे नहीं खाने। मैं कोई भोजन-भट्ट हूं! एक काफी है।'

'चलो', मनोवैज्ञानिक ने सोचा, 'यह झंझट मिटी। कम से कम एक पर तो आया। अब धीरे-धीरे रस्ते पर आ रहा है।' वह सारे केंचुए फेंक आया और एक को बचा लिया। बोला, 'बेटा, अब खाओ!'

झुम्मन बोला, 'पहले आप आधा खाइये! मेरे घर में ऐसा नहीं कि हम अकेले खा लें! पहले आपको खाना पड़ेगा। शिष्टाचार मुझे मालूम है।'

अब मनोवैज्ञानिक घबड़ाया कि 'यह तो हद्द हो गयी। अब यह आधा केंचुआ खाना पड़ेगा!' मगर नोवैज्ञानिक भी आधे पागल तो होते ही हैं। नहीं तो मनोवैज्ञानिक ही क्यों होते! मनोविज्ञान की तरफ जो उत्सुक होते हैं, उनके दिमाग में कुछ न कुछ गड़बड़ होती है। पहले से ही गड़बड़ होती है, तभी वे मनोविज्ञान की तरफ उत्सुक होते हैं।

घबड़ाया। किसी तरह जी भी मिचलाया--केंचुआ देख कर। एक तो इनको भूना उसने। इनकी बास और...! अब यह क्या-क्या करना पड़ रहा है! मगर इसका इलाज करना ही है! किसी तरह आधा केंचुआ खा गया। और बाकी का आधा हिस्सा

झुम्मन की तरफ बढ़ा कर बोला कि 'ले भैया, अब तो खा !'

झुम्मन रोने लगा और बोला, 'मेरे हिस्से का तो खुद खा गये; अब इसे भी खा लो ! वह मेरे हिस्से का था जो तुम खा गये । मैं तुम्हारे हिस्से का नहीं खाऊंगा ।'

अब क्या करोगे !

ऋषि तो कहते हैं : 'सर्वे भवन्तु सुखिनः ।' मगर क्या करें तुम्हारे साथ ! तुम केंचुए खाने पर पड़े हो । और वह भी तुम खाओगे नहीं । वह भी कुछ बहाने निकाल लोगे । तुम्हारी जिंदगी गलत ढांचों पर दौड़ रही है । तुम अपने ढांचे बदलो । तो ये आशीष पूरे हो सकते हैं । ये आशीष यूं ही नहीं दिये गये हैं । ये कल्पना नहीं हैं आशीष । ये सत्य बन सकते हैं । मगर सत्य इनको कौन बनायेगा ?

सिर्फ आशीर्वाद से ही मत सोचना कि बात हो जायेगी । काश ऐसा होता, तो एक बुद्ध ने सारी पृथ्वी को मुक्त कर दिया होता ।

ईसाई कहते हैं कि जीसस ने इसलिए जन्म लिया कि सारी पृथ्वी को मुक्त कर देना है । वह तो ठीक कि इन्होंने इसलिए जन्म लिया, लेकिन पृथ्वी मुक्त कहां हुई ! यह कोई नहीं पूछता !

हिंदू कहते हैं कि भगवान अवतार लेते हैं । और कृष्ण ने कहा गीता में कि 'आऊंगा-आऊंगा । बार-बार आऊंगा––जब-जब धर्म की हानि होगी ।' भैया ! कब होगी ? बहुत हो चुकी, अब आ जाओ ! हे कृष्ण कन्हैया ! अब आ जाओ ! लेकिन मजा यह है कि जब आये थे, तब कितना अधर्म मिटा पाये थे ! तो अब क्या खाक मिटा लोगे ! आदमी तब से अब और होशियार हो गया है । तब नहीं मिटा पाये, तो अब क्या मिटा पाओगे ! कहते तो हो कि जब अंधकार होगा, तो आऊंगा । जब पाप बढ़ जायेगा, तो आऊंगा । साधुओं की रक्षा के लिए आऊंगा !

मगर सदियां-सदियां बीत गयीं । साधु––सच्चे साधु सदा सताये गये; झूठे साधु सदा पूजे गये । और नहीं तुम आये ! और आते भी तो क्या करते ? जब आये थे, तब क्या कर लिया था ? और ऐसा नहीं कि तुमने चेष्टा न की हो । वह मैं न कहूंगा । चेष्टा की थी, मगर परिणाम महाभारत हुआ ! परिणाम महायुद्ध हुआ । जिसमें भारत की रीढ़ टूट गयी । उसके बाद भारत कभी खड़ा नहीं हो सका । महाभारत सच में ही भारत को इस तरह से तोड़ गया, इसकी आत्मा को इस तरह से मरोड़ गया कि फिर उसके बाद भारत कभी अपनी गरिमा को, गौरव को उपलब्ध नहीं हो सका । अभी तक भी हम नहीं भर पाये, जो गड्ढा उस समय हुआ था उसको । जो हमारे प्राण दीनहीन हो गये थे, वे आज भी दीनहीन हैं ।

तब नहीं कर पाये, अब क्या करोगे ?

ये हमारी आशायें हैं, जो हमने शास्त्रों में प्रक्षिप्त कर दी हैं । यह हमारी आशा है कि भगवान आयेंगे और सब दुखों से मुक्त करा देंगे । यह भी तरकीब है तुम्हारे दुखी

बने रहने की, कि हम क्या करें, भगवान आते नहीं ! आयें, तो दुख से छुटकारा हो ! तब तो एक-बारगी छुटकारा हो चुका होता; वह अब तक नहीं हुआ है । आगे भी नहीं होगा ।

एक बात तो समझ ही लो तुम, गांठ बांध लो, प्राणों पर खोद कर रख लो––भूलना मत, कि तुम्हारे बिना सहयोग के स्वयं परमात्मा भी कुछ नहीं कर सकता है । सब आशीष व्यर्थ चले जायेंगे । तुमने अगर आंख बन्द करके की जिद्द कर रखी है, तो उगता रहे सूरज, आते रहें चांद-तारे––क्या करेंगे बेचारे ! सूरज द्वार पर दस्तक भी देता रहे, तो भी तुम कानों में सीसा पिघला कर बैठे हुए हो । तुम सुनते नहीं ।

चंदूलाल का बेटा झुम्मन एक दिन उससे कह रहा था कि 'पापा, वह नुक्कड़ पर जो जूतों की मरम्मत करने वाला चमार है, वह मुझसे आते-जाते अकसर कहता है कि तुम्हारे पिताजी ने जो पांच साल पहले मुझसे जूते सुधरवाये थे, उसकी मरम्मत के दो रुपये अभी तक नहीं चुकाये । उनसे कहो कि अब मेरे पैसे चुकायें ।'

चंदूलाल झुम्मन से बोले कि 'उससे जा कर कहो कि भाई, इतना घबड़ाओ मत । जब उसकी बारी आयेगी, तो उसके पैसे भी चुका दिये जायेंगे । अभी तो उस दुकानदार के पैसे ही नहीं चुकाये गये, जिससे दस साल पहले ये जूते खरीदे गये थे, और यह पांच ही साल में हाय-तौबा मचाने लगा ! अरे, धैर्य भी कोई चीज है ! मनुष्य को धीरज रखना चाहिए ।'

लोग अपनी भूल को तो देखते ही नहीं । दूसरे में भूल बताने को तत्पर हो जाते हैं । कि पांच ही साल में हाय-तौबा मचाने लगा । धीरज तो नाममात्र को नहीं है ! धैर्य तो दुनिया से उठ गया है ! अरे आयेगा जब तेरा समय ! पहले जूते वाले के पैसे तो चुक जाने दे । वह दस साल हो गये । तब फिर देखा जायेगा । सुधराई के पैसे तो बाद में ही चुकेंगे न ! पहले तो जूते के पैसे चुकने चाहिए !

अपनी तो कोई भूल देखता ही नहीं । और ये प्रार्थनाएं हमने अपने लिए तरकीबें बना ली हैं । हम भी सोचते हैं : भगवान का अवतरण होगा––ईसा आयेंगे, बुद्ध आयेंगे, महावीर आयेंगे और हमें मुक्ति दिला देंगे ।

आज से कोई बीस साल पहले की बात है । मैं पहली दफा बम्बई बोलने आया था महावीर जयंती पर । मुझसे पहले श्री चिमनलाल चकूभाई शाह बोले । और उन्होंने एक बात कही कि 'भगवान महावीर का जन्म मनुष्य जाति के कल्याण के लिए हुआ था ।' मैं उनके बाद बोला । मुझे तो उनका तब तक कोई परिचय नहीं था । और वह पहली और आखिरी मुलाकात हो गयी । मेरे लिए तो बात वहां समाप्त हो गयी, मगर उनके लिए अभी भी समाप्त नहीं हुई । इन बीस सालों में जितना नुकसान वे मुझे पहुंचा सकते हैं, उन्होंने हर तरह पहुंचाने की कोशिश की । जितना मेरे खिलाफ प्रचार कर सकते हैं, हर तरह उन्होंने करने की कोशिश की । एक गांठ बांध ली दुश्मनी

की ! और दुश्मनी की गांठ बांधने का कारण क्या था——यह छोटी-सी बात थी। मैं तो उन्हें जानता नहीं था। मैं बम्बई ही पहली दफे आया था। मैंने इतना ही निवेदन किया कि यह धारणा महावीर के संबंध में सच्ची नहीं है। यह तो हमारी आकांक्षा को महावीर पर थोपना है। महावीर ने तो कहीं भी नहीं कहा है कि मैं तुम्हारे कल्याण के लिए जन्म ले रहा हूं ! कहीं भी नहीं कहा है। महावीर ऐसी गलत बात कह ही नहीं सकते।

और यही तो फर्क है अवतार की और तीर्थंकर की धारणा में। अवतार का अर्थ होता है : परमात्मा ऊपर से उतरता है नीचे जो लोग भटके हैं उनको रास्ता दिखाने के लिए। वह आता ही इसलिए है। जैसे मरीज के घर में चिकित्सक आता है। बीमार है, इसलिए आता है। लेकिन तीर्थंकर की धारणा ही और है। वही तो तीर्थंकर की धारणा का गौरव है, गरिमा है।

तीर्थंकर की धारणा यह नहीं है कि कोई ऊपर से नीचे उतरता है। ऊपर कोई है ही नहीं। महावीर किसी परमात्मा को मानते नहीं, जो आयेगा। महावीर तो मानते हैं कि व्यक्ति की आत्मा ही जब परम शुद्ध अवस्था को उपलब्ध हो जाती है, तो परमात्मा है। कहीं से कोई आता नहीं; यहां नीचे से ही उठता है, उभरता है, प्रगट होता है।

और महावीर यह भी मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति ही अपने को मुक्त कर सकता है। कोई दूसरा किसी को मुक्त नहीं कर सकता। कोई किसी का कल्याण नहीं कर सकता। हां, कल्याण की कामना कर सकता है। मगर कल्याण की कामना से कल्याण नहीं होता।

महावीर का हृदय सब की कल्याण भावना से भरा है। लेकिन इससे क्या होगा ! महावीर जीवित थे, तब भी सभी का कल्याण नहीं हो सका। सब की तो बात छोड़ दो, जो उनके निकट थे, उनका भी कल्याण नहीं हो सका ! और जिन्होंने यह आशा बांध ली थी, जैसा चिमनलाल चकूभाई शाह ने कहा, उनका तो बिलकुल ही नहीं हो सका।

महावीर का प्रमुख शिष्य था गौतम। जिस दिन महावीर का इस पृथ्वी से प्रयाण हुआ, जिस दिन उन्होंने देह छोड़ी, उस दिन गौतम को उन्होंने सुबह ही पास के गांव में शिक्षा देने भेज दिया था। जब वह सांझ को लौट रहा था, तब उसको खबर मिली कि महावीर ने प्राण छोड़ दिये हैं। वह तो रोने लगा। जिन्होंने उसे खबर दी थी, उन्होंने कहा, 'अब रोओ मत। अब क्या होता है !'

गौतम ने कहा, 'यह भी मेरा दुर्भाग्य कि सदा तो साथ रहा और आज मृत्यु के क्षण में पता नहीं क्यों उन्होंने मुझे दूर भेज दिया ! आज के दिन मुझे भेज दिया दूसरे गांव ! मेरे लिए कोई संदेश छोड़ गये हैं ? जाते वक्त मेरी याद की थी उन्होंने ?'

तो उन्होंने कहा, 'जरूर याद की थी और संदेश भी छोड़ गये हैं।'

और वह संदेश बड़ा कीमती है। वही संदेश उस दिन आज से बीस साल पहले मैंने

दोहराया था।

महावीर कह गये थे जाते वक्त कि गौतम जब लौटे, तो उससे कह देना कि तू पूरी नदी तो पार कर गया, अब किनारे को पकड़ कर क्यों रुक गया है ! तूने सारा संसार छोड़ दिया, अब मुझको पकड़ लिया है ! मुझको भी छोड़ दे। नदी पार कर गया, अब किनारे को भी छोड़ दे। किनारे को पकड़े रहेगा, तो भी नदी में ही रहेगा। अब किनारे से भी ऊपर उठ। सारा संसार छोड़ दिया, अब मुझे भी छोड़ दे।' यह अपूर्व संदेश ! 'बिलकुल मुक्त हो जा।'

कोई और तुम्हारा कल्याण कर सकता है——इस धारणा में ही बंधन है। यह सीधी-सादी बात कही थी। उनको चोट लग गयी——भारी चोट लग गयी ! वे दुश्मनी अब तक भंजाये जाते हैं। अभी भी कच्छ के संबंध को ले कर कल जो बम्बई में मेरे खिलाफ सभा बुलाई गई, उसके पीछे वे ही सूत्र-धार हैं। अब सारे कच्छियों को इकट्ठा करने में लगे हैं वे। कहीं मैं कच्छ न चला जाऊं ! नहीं तो कच्छ का अकल्याण हो जायेगा ! अब मैं सोचता हूं : पूना का तो काफी अकल्याण कर चुका, अब कच्छ का भी तो कुछ करूं ! कि कच्छ का कोई अकल्याण करेगा ही नहीं ! कि कच्छ बेचारा यूं ही पड़ा रहेगा !

अब उनको एकदम प्राणों में पीड़ा पड़ी हुई है कि कहीं कच्छ का कोई अकल्याण न हो जाये !

जवाब तो नहीं दे सके, क्योंकि जो मैंने कहा था——वह सीधी-साफ बात है। मगर हम सब के भीतर यह आकांक्षा होती है कि कोई हमारा कल्याण कर दे। यह बड़े मजे की बात है।

तुम तो गंदगी फैलाओ——और कोई आ कर सफाई करे ! मगर अगर तुम गंदगी फैलाने में कुशल हो, तो वह सफा कर भी नहीं पायेगा और तुम फिर गंदगी फैला दोगे ! तुम्हारी कुशलता कहां जायेगी ! गंदगी तो साफ कर भी देगा, मगर तुम्हारी कुशलता का क्या होगा ? तुम फिर गंदगी फैला लोगे।

तुमने अगर जीवन को गलत ढांचे में ढाला हुआ है, तो कोई तुम्हें ठोंक-पीट कर ठीक-ठाक कर दे; वह जा भी नहीं पायेगा कि तुम फिर अपने ढांचे पर आ जाओगे ! तुम्हें जबरदस्ती कोई मुक्त नहीं कर सकता है।

ऋषि ठीक कहते हैं : 'सर्वे भवन्तु सुखिनः——सब सुखी हों।' बड़े प्यारे लोग रहे होंगे। तुम्हारे सुख के लिए कामना की है। 'सर्वे सन्तु निरामयाः——और सब स्वास्थ्य को उपलब्ध हो जायें।' स्वास्थ्य का अर्थ सिर्फ निरोग ही नहीं होता। स्वास्थ्य का गहरा अर्थ है। उसका ऊपरी अर्थ है कि तुम्हारा शरीर स्वस्थ हो, निरोग हो। लेकिन उसका भीतरी अर्थ है——निरामय। उसका भीतरी अर्थ है कि तुम स्वयं में स्थित हो जाओ।

हमारा शब्द 'स्वास्थ्य' बड़ा बहुमूल्य है। शरीर के लिए उसका अर्थ होता है :

शरीर की जो प्रकृति है, शरीर का जो धर्म है, उसमें थिर हो जाये शरीर। जब शरीर अपनी प्रकृति से च्युत हो जाता है, तो दुख भोगता है। जब शरीर अपनी प्रकृति में ठहर जाता है, तो सुख भोगता है।

प्रकृति में ठहर जाने में सुख है; प्रकृति से हट जाने में विकृति है, दुख है। यह जो विराट विश्व है, इसके साथ एक तल्लीनता सध जाये, तो सुख है! इसके साथ टूट हो जाये, तो दुख है। और ऐसी ही बात भीतर के जगत के संबंध में भी सच है। और तब स्वास्थ्य के बड़े गहरे अर्थ प्रगट होते हैं। दुनिया की किसी भाषा में स्वास्थ्य का वैसा गहरा अर्थ नहीं है--स्वयं में स्थित हो जाना।

जब तुम अपनी आत्मा में ठहर जाते हो, तब निरामय हुए। अब सब रोग गये, असली रोग गये। शरीर के रोग तो ठीक ही हैं। शरीर है--खुद ही चला जाने वाला है। उसके रोग भी चले जायें, तो क्या फर्क पड़ता है! स्वस्थ शरीर भी चले जायेंगे, अस्वस्थ शरीर भी चले जायेंगे। लेकिन तुम्हारे भीतर कुछ बैठा है और भी, जो अमृत है; जो न आता, न जाता। उसमें जो ठहर गया, वह परम स्वास्थ्य का भागीदार हो जाता है। उस परम स्वास्थ्य को ही धर्म कहते हैं। स्वयं की प्रकृति में ठहर जाने का नाम धर्म है।

महावीर ने धर्म की परिभाषा की है: 'वत्थु सहावो धम्म--वस्तु का जो स्वभाव है उसमें ठहर जाना धर्म है।' अपूर्व परिभाषा है। न हिन्दू, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध--इससे कुछ लेना-देना नहीं है धर्म का। प्रकृति में, स्वभाव में, निजता में ठहर जाने का नाम धर्म है। स्वस्थ हो जाना धर्म है।

इसी चेष्टा में हम यहां संलग्न हैं। ध्यान उसकी ही प्रक्रिया है। ध्यान खोना अर्थात स्वास्थ्य से हट जाना; और ध्यान में आना जाना अर्थात वापस स्वास्थ्य में आ जाना।

'सर्वे भद्राणि पश्यन्तु--सब कल्याण को प्राप्त हों।' बुद्ध कहते थे कि जब तुम प्रार्थना करो, जब तुम ध्यान करो, जब तुम आनन्द में सरोबोर हो जाओ, तो तत्क्षण--भूलना मत--कभी भूलना मत--तत्क्षण अपने आनन्द को बांट देना। कहना कि यह मेरा आनन्द सारी प्रकृति को मिल जाये: पशुओं को, पक्षियों को, पौधों को, पत्थरों को भी। यह मेरा आनन्द सब को मिल जाये। उसे बांट देना; तत्क्षण बांट देना।

एक व्यक्ति बुद्ध को सुनने रोज आता था। उसने बुद्ध से एक दिन एकान्त में कहा कि 'आपकी बात मानता हूं, पूरा-पूरा मानता हूं। सिर्फ एक बात आपसे आज्ञा चाहता हूं, इतनी आप आज्ञा दे दें। कि वह जो आदमी मेरा पड़ोसी है, उसको नहीं दे सकता मैं! तो मैं आपकी बात मान कर चलता हूं, जब आनन्दित होता हूं, जब सुबह प्रार्थना में डूबता हूं या ध्यान में उतरता हूं, और सुख का झरना बहता है, तो मैं कहता हूं: मेरे पड़ोसी को छोड़ कर सारे जगत को मिल जाये! उस हरामजादे को नहीं दे सकता!'

बुद्ध ने कहा, 'तो फिर तू बात को ही नहीं समझा। जिनसे कुछ लेना-देना नहीं है,

उनको दे सकता है। अब पत्थर-पहाड़--ले लो! क्या हर्जा है! मगर यह पड़ोसी--यह तो जान पर हमेशा उपद्रव खड़े कर रखता है। इसको कैसे सुख दे दें!' बुद्ध ने कहा--'जब तक तू पड़ोसी को न दे पायेगा, तब तक तेरा सब देना बेकार है; तब तक तेरे पास देने को है भी नहीं। तू भ्रांति में पड़ता होगा। क्योंकि ऐसे कलुषित चित्त से कैसे आनन्द उठता होगा! तू बैठता होगा ध्यान को, मगर ध्यान नहीं बैठता होगा। अगर ध्यान बैठ जाता, तो यह सवाल ही नहीं उठना था।'

जीसस ने दो वचन कहे हैं। अलग-अलग कहे हैं! मैं कभी-कभी हैरान होता हूं; क्यों अलग-अलग कहे हैं! एक वचन तो कहा है: अपने शत्रु को भी उतना ही प्रेम करो, जितना अपने को। और दूसरा वचन कहा है: 'अपने पड़ोसी को भी उतना ही प्रेम करो, जितना अपने को!' मैं कभी-कभी सोचता हूं कि जीसस से कभी मिलना होगा कहीं, तो उनसे कहूंगा कि दो बार कहने की क्या जरूरत थी! क्योंकि पड़ोसी और दुश्मन कोई अलग-अलग थोड़े ही होते हैं। एक ही से बात पूरी हो जाती है कि अपने को जितना प्रेम करते हो, उतना ही पड़ोसी को करो। पड़ोसी के अलावा और कौन दुश्मन होता है? दुश्मन होने के लिए भी पास होना जरूरी है ना! जो दूर है, वह तो दुश्मन नहीं होता।

मित्र होना जरूरी है शत्रु बनने के पहले। तुम किसी को शत्रु बना सकते हो--बिना मित्र बनाये? असंभव। यह तो कैसे होगा! मित्रता पहले, फिर शत्रुता बनती है। शायद लोग इसीलिए मित्र बनाते हैं कि शत्रु बना सकें! नहीं तो शत्रु कैसे बनायेंगे? शायद इसीलिए प्रेम रचाते हैं--कि घृणा कर सकें। शायद इसीलिए मोह बनाते हैं; ताकि क्रोध कर सकें।

लोग बड़े अजीब हैं! उनके गणित को समझो। और मैं जब लोगों की बात कर रहा हूं, तो खयाल रखना--तुम्हारी बात कर रहा हूं। तुम्हीं हो--वे लोग!

यह सूत्र तो कीमती है, पूर्णानन्द! लेकिन इस आशीष को पूरा करने के लिए तुम्हें तैयारी दिखानी होगी। इस आशीष के योग्य तुम्हें बनना होगा।

सेठ चंदूलाल जिनके माथे से खून बह रहा था, नाक छिली थी और एक आंख सूजी हुई थी, लंगड़ाते-लंगड़ाते हाथ में एक टूटा हुआ कीमती चश्मा लिए डॉक्टर के पास पहुंचे और बोले, 'मेरा कीमती चश्मा फूट गया है डॉक्टर साहब। मैंने तो सुना है कि आजकल ऐसी-ऐसी रासायनिक गोंदें आने लगी हैं, जिनसे कांच वगैरह भी जुड़ जाता है। क्या आपके पास उसकी ट्यूब है?'

डॉक्टर ने घबड़ा कर चंदूलाल को कोच पर लिटाते हुए पूछा, 'क्या हुआ सेठजी! ये चेहरे पर इतनी चोटें कैसे आ गईं? किसी से झगड़ा हो गया क्या?'

सेठजी बोले, 'अरे चोटों की बात छोड़ो भाई। शरीर तो आखिर शरीर ही है; मिट्टी का नश्वर घड़ा है; आज नहीं कल फूटेगा। तुम तो यह बताओ कि यह चश्मा जुड़ सकता है या नहीं? बहुत कीमती चश्मा है, और नया है। अभी सन् पचपन में ही

तो मैंने लगाना शुरू किया है ! लेकिन अब दोष भी किसे दूं ! किसी से झगड़ा नहीं हुआ। मेरी ही गलती से फूट गया । साली किस्मत ही खराब है । यदि नई की नई चीजें इस तरह बरबाद होने लगीं, तब तो शीघ्र ही मेरा दिवाला निकल जायेगा !'

डॉक्टर ने बामुश्किल हंसी रोकते हुए पूछा, 'जरा यह तो बताइये सेठजी, कि आपसे और भला ऐसी क्या गलती हो गई ?'

चंदूलाल ने अपनी सूजी हुई आंख पर हाथ रख कर कहा, 'आज सुबह की ही बात है, मैं और मेरी पत्नी बाथरूम में साथ-साथ नहा रहे थे । हम लोग सदा एकसाथ नहाते हैं, फव्वारे के नीचे खड़े हो कर, इससे पानी की बचत होती है । स्नान के बाद ऐसा हुआ कि मेरी खर्चीली पत्नी लघुशंका के लिए बैठी और उठकर उसने झट से फ्लश चला दिया । मैंने सोचा कि फ्लश तो चल ही रहा है, लगे हाथ मैं भी इसी में पेशाब कर दूं, वरना फिर व्यर्थ पानी बहाना पड़ेगा । बस इसी जल्दबाजी में मैं कमोड से खिसल पड़ा और फिर जो गति हुई, वह सब आप देख ही रहे हैं । नगद साढ़े तीन रुपये का चश्मा हाथ से गंवा बैठा, जिसे मेरे एक अभिन्न मित्र ने मुझे भेंट दिया था !'

इस कथा से हमें तीन शिक्षाएं मिलती हैं :

पहली, कि जल्दबाजी कभी नहीं करनी चाहिए, इससे आर्थिक हानि होती है।

दूसरी, कि कभी-कभी बहती गंगा में हाथ धोना भी ठीक नहीं ।

और तीसरी, कि गंगा में हाथ धोने जब जायें, तो कोई भी कीमती सामान अपने साथ न ले जायें ।

पूर्णानन्द, कुछ तुम्हें करना पड़े । तुम्हारी जीवन की शैली को कहीं बदलना पड़े। इसमें भूलें ही भूलें हैं । इसमें तुमने सब गलत आधार दे रखे हैं । इसलिए असंभव है कि ये प्रार्थनाएं ऋषियों की पूरी हो सकें । संभव हो सकती हैं । मैं भी प्रार्थना करता हूं कि कभी ऐसा हो सके । यह पृथ्वी आनन्द से भरे ।

मैं तो अपने संन्यासी को एक ही शिक्षा दे रहा हूं--आनन्दित होने की, प्रफुल्लित होने की । मैं तो त्याग नहीं सिखा रहा; मैं तो कह रहा हूं : धर्म परमभोग है, महासुख है । मैं तो कह रहा हूं कि संन्यास जीवन से विरक्ति नहीं है, जीवन को भोगने की कला है ।

मेरी सारी शिक्षाओं का सार-संक्षिप्त इतना ही है : नृत्य सीखो, गीत सीखो, आनन्द सीखो; बांटना सीखो, जीना सीखो । भगोड़े मत बनो, पलायनवादी मत बनो । अब तक तथाकथित धर्मों के नाम पर तुमने जो किया है, उससे पृथ्वी दुख से ही भरती गई है । उससे तुम पीड़ित ही हुए हो, परेशान ही हुए हो । मगर तुम मेरी सुनोगे, इसकी संभावना कम दिखाई पड़ती है ।

तुम्हारी अपनी धारणाएं ऐसी मजबूत हैं कि तुम टस से मस नहीं होते । तुम बिलकुल जम कर बैठे हुए हो पत्थर की तरह । लाखों दुख उठाने पड़ें, मगर तुम अपने दृष्टिकोणों

को बदलोगे नहीं ! और मेरे जैसे व्यक्ति अगर तुम्हें हिलाते-डुलाते हैं, तो दुश्मन मालूम होते हैं । लगता है कि मैं तुम्हारी संस्कृति नष्ट कर रहा हूं ! जैसे दुख तुम्हारी संस्कृति है ! मैं तुम्हारा धर्म नष्ट कर रहा हूं, जैसे कि दुख तुम्हारा धर्म है !

तुम आनन्दित नहीं होना चाहते हो क्या ? एक बार तय कर लो साफ । नहीं होना है, तो तुम स्वतंत्र हो । लेकिन तब जान कर जियो कि दुख ही हमारा जीवन का लक्ष्य है । हम तो दुखी होंगे । दुख ही हमारी आत्यंतिक गति है । हमें तो नर्क ही जाना है । तो कम से कम बोधपूर्वक नर्क जाओ !

लेकिन तुम्हारी अजीब हालत है । जाते नर्क की तरफ हो, बातें स्वर्ग की करते हो ! बनाते दुख हो, आकांक्षा सुख की करते हो । फिर छाती पीटते हो, रोते हो, परेशान होते हो ! तुम्हें देख कर हंसी भी आती है, दया भी आती है । तुम्हें देख कर दोनों बातें होती हैं : आंसू भी आते हैं, मुस्कुराहट भी आती है । आंसू आते हैं, यह देख कर कि क्या दुर्दशा है आदमी की ! और मुस्कुराहट इसलिए आती है कि हद हो गई ! इतनी मूर्खतापूर्ण दशा का भी तुम्हें बोध नहीं हो पा रहा है ! यह क्या मजाक है ! यह तुम किसके साथ मजाक कर रहे हो ! अपने ही साथ मजाक कर रहे हो । खुद ही केले के छिलके फैलाते हो, फिर उन्हीं पर फिसल कर गिरते हो । रोते हो । पीड़ित होते हो । परेशान होते हो ।

तुम्हारी सारी जिंदगी एक दुख की कथा है, व्यथा है । और कोई कसूरवार नहीं—सिवाय तुम्हारे । जिस दिन तुम यह उत्तरदायित्व समझ लोगे कि मैं ही जिम्मेवार हूं, उस दिन यह प्रार्थना पूरी हो सकती है । होनी तो चाहिए—सारी मनुष्य जाति के लिए । क्यों सारी मनुष्य जाति के लिए--पशुओं के लिए, पौधों के लिए, पक्षियों के लिए, पत्थरों के लिए भी । मगर क्या पत्थरों की बात करें, अभी तो आदमी पत्थर बना है ।

मगर अब समय आ गया है कि अगर तुम न चेते, तो आदमियत नष्ट होगी । अब बहुत दुख का घड़ा भर चुका है । या तो इसे खाली करो या यह घड़ा फूटेगा । अब आदमी ज्यादा से ज्यादा और इस सदी के अंत तक जी सकता है खींच-तान कर । तुम्हारे जीवन के जितने गलत ढांचे-ढर्रे थे, वे सब अंतिम पराकाष्ठा पर पहुंच गये हैं । उनका आखिरी परिणाम तीसरा महायुद्ध होगा, जो सारी मनुष्य जाति को, सारे जीवन को पृथ्वी से नष्ट कर देगा ।

या तो तुम चौंको, जागो--और या फिर इस महामृत्यु के लिए तैयार हो जाओ ।

इसलिए मैं सोचता हूं कि शायद तुम्हें जगाने के लिए इतने बड़े खतरे की ही जरूरत है तो ही शायद तुम चौंको । इसलिए मैं बड़ी आशा से भरा हूं । इतना महान खतरा आदमी के सामने कभी भी नहीं था, जितना आज है । इसलिए एक आशा की किरण है कि शायद यह खतरा तुम्हें झकझोर दे । शायद धर्म की एक नयी अवतारणा हो सके ।

शायद संन्यास का एक नया रूप निर्मित हो सके। शायद हम पृथ्वी को नाचते-गाते लोगों से भर सकें।

बहुत हो चुकी उदासी; बहुत हो चुकी विरक्ति। जीवन के रस को भोगने की कला को शायद आदमी अब सीखने के करीब आ रहा है, इतना प्रौढ़ हो रहा है। सीखना ही शायद पड़े, क्योंकि विकल्प या तो महामृत्यु है या महाक्रांति।

दूसरा प्रश्न : भगवान, मुझे निर्विचार चेतना को उपलब्ध हुए बहुत दिन हो गये हैं। अब मुझे इस निर्विचारता में कोई आनन्द नहीं मिलता है। मुझको अब जीने की इच्छा नहीं होती है। सिवाय आत्महत्या के कुछ भी नहीं सूझता। कृपया मुझे रास्ता दिखायें।

महेश कुमार गिनोड़िया!

किस भ्रांति में पड़े हो? निर्विचार चेतना को उपलब्ध हुए तुम्हें बहुत दिन हो चुके! कैसी यह निर्विचार चेतना है, जिसमें अभी आत्महत्या के विचार सूझ रहे हैं! कैसी यह निर्विचार चेतना है, जिसमें कोई आनन्द नहीं मिल रहा है! तुमने तो सब बुद्धों को हरा दिया। तुम तो बुद्धू हो कर बुद्धों को मात किये दे रहे हो! सब बुद्धों को बुद्धू सिद्ध किये दे रहे हो! तुम तो निरपवाद हो! तुमने तो गजब कर दिया! ऐसी बात तो कभी किसी ने कही नहीं! तुम होश में हो या पागल हो?

निर्विचार, निर्विकल्प चेतना को जो उपलब्ध हो जाता है, वह बचता ही नहीं—आत्महत्या किसकी! वह तो मर ही गया। वह तो समाप्त हुआ। यह जो तुममें मैं-मैं बोल रहा है, यह नहीं बचता। तुम अपने प्रश्न को फिर से देखो।

'मुझे' निर्विचार चेतना को उपलब्ध हुए बहुत दिन हो गये हैं। अब 'मुझे' इस निर्विचारता में कोई आनन्द नहीं मिलता है। 'मुझको' अब जीने की इच्छा नहीं होती है।

यह कौन बचा! निर्विचार चेतना या निर्विकल्प चेतना में 'मैं' तो बचता ही नहीं। और जहां 'मैं' नहीं बचता, वहां कौन मिटेगा! क्या मिटना चाहोगे!

और अगर आत्महत्या करने का ही विचार उठता है, तो क्या मुझसे आत्महत्या का रास्ता पूछने आये हो! तुम मुझको भी फंसाओगे! मैं वैसे ही झंझटों में हूं! रास्ता तो मैं बताऊंगा, क्योंकि पूछोगे, तो बताऊंगा।

मगर मुझे लगता नहीं कि तुम मरना चाहते हो। क्योंकि मरना जिसको हो, वह कोई रास्ता पूछता फिरता है! अरे इतनी गाड़ियां चल रही हैं, किसी के भी नीचे लेट जाओ! इतने पहाड़ खड़े हैं, काहे के लिए? कूद जाओ! सरकार इतने पुल बनाती

है—किसलिए? इतना सब आयोजन करते हैं, आखिर तुम्हारे ही लिए ना!

एक आदमी आत्महत्या कर रहा था। पुल पर से कूदने की जा रहा था कि पुलिस वाले ने उसके कंधे पर हाथ रखा और कहा, 'भाईजान, क्या कर रहे हो? सर्द रात्रि है, इतनी ठण्ड है, पानी बर्फ जैसा है; तुम कूदोगे, तो मुझे भी कूदना पड़ेगा, तुम्हें बचाने के लिए। अब तुम्हें तो मरना ही है; मुझे निमोनिया वगैरह हो गया, तो मैं नाहक मारा जाऊंगा। अरे भैया, घर जा कर फांसी क्यों नहीं लगा लेते? रस्सी चाहिए हो, मैं दे दूं! मुझ पर कृपा करो। यह रस्सी ले लो; घर जा कर गले में बांध लेना। लटक जाना अपने छप्पर से। कम से कम मुझे तो न मारो!'

तुम भी पूछ रहे हो कि रास्ता बतायें! अब रास्ता क्या बताना है! इतने रास्ते तो हैं, किसी भी रास्ते पर मर सकते हो। रास्तों पर लोग जाते काहे के लिए हैं! रोज तो लोग रास्तों पर मर रहे हैं। कहीं ट्रक की टक्कर से। कहीं बस गिर गयी। तुम्हें बसें नहीं मिल रही हैं, जो गिरती हैं! आजकल कौन-सी बसें पहुंचती हैं! बस यानी 'बस'! अब कहां आना-जाना! आवागमन से मुक्ति! कोई भी सरकारी बस पकड़ लो।

और इतने सरदार जी ट्रक चलाये जा रहे हैं, एकदम धूआंधार ताड़ी पिये हुए और तुम मुझसे पूछने आये हो! तुम यहां तक आ गये बच कर, यही अद्भुत है! रास्ते में कितने अवसर न आये होंगे! कितनी स्त्रियां कारें चलाने लगी हैं! अरे किसी के भी सामने आ जाओ! और ज्यादा दिक्कत हो, तो अपनी पत्नी को कार चलाना सिखा दो। वहीं घर में ही फैसला कर देगी। जैसे ही निकालेगी गैरेज से कार, खड़े हो जाना सामने! बस, पर्याप्त है।

मरने के तो कितने उपाय हैं! और निर्विचार आदमी को इतनी भी अकल नहीं आयी अभी तक! निर्विचार आदमी तो जीने तक के उपाय कर लेता है; तुम मरने की भी नहीं कर पा रहे हो!

यहां भी मैं मरना सिखाता हूं—मगर और तरह का। और वह तो मैं तुम्हें कैसे सिखाऊं! तुम वैसे तो कह रहे हो कि निर्विचार को पा ही चुके; नहीं तो यहां मैं मरना ही सिखाता हूं। न हो तो तुम इन दो महिलाओं से मिलो।

रंजन ने लिखा है—'भगवान, तेरी बगिया बड़ी प्यारी! मैं तो गई मारी, आके यहां रे!' अब इस रंजन से मिलो। यह मर भी चुकी, मगर अभी भी गीत गा रही है!

और एक से तुम्हें भरोसा न आता हो, कि एक गवाही से क्या होता है, तो तुम अमृता से मिलो। अमृता कहती है: 'भगवान, आपकी अदाएं तोबा! मर गये हम तो!!' लोग अदाओं में मरे जा रहे हैं; प्यारी बगिया देख कर मरे जा रहे हैं!

और यह रंजन और अमृता दोनों को दरवाजे पर रिसेप्शन पर बिठा रखा है इनको, कि जिनको भी मरना वगैरह हो, वहीं इनसे ही बात कर लिए! यह स्वागतद्वार

पर ही बिठा रखा है इन दोनों को ! ये दोनों होशियार हैं । बड़ी तरकीब से मर गयीं ! और अभी भी गा रही हैं—और मस्त हो रही हैं !

मरना हो, तो कुछ ऐसा मरो । क्या तुम निर्विचारता . . . कैसी निर्विचारता साध बैठे ! ताड़ी वगैरह तो नहीं पीते ! क्या करते हो !

महेश कुमार गिनोड़िया ! नाम भी तुम्हारा गजब है ! गिनोड़िया—कि 'गिनो-रिया' ! क्या-क्या नाम खोजे हुए हैं ! जैसे कोई अच्छे शब्द बचे ही न हों !

देखो, निर्विचार चेतना ऐसे नहीं होती । और कई साल पहले मिल चुकी है तुम्हें ! कई दिन हो गये हैं ! पागलपन छोड़ो । ध्यान सीखो । यह वहम उतारो । इस तरह की मूढ़ताओं से कुछ सार नहीं है । क्योंकि निर्विचार चेतना मिल जाये, तो फिर कुछ पाने को नहीं रह जाता । फिर आनन्द ही आनन्द है । और आनन्द से कोई कभी ऊबा है !

सुख से आदमी ऊब जाये । जिसको हम तथाकथित सुख कहते हैं, उससे आदमी ऊब जाये, मगर आनन्द से कभी नहीं ऊबता । वही तो भेद है हमारा—आनन्द और सुख में । या बुद्ध ने जिसको सुख और महासुख कहा है । महासुख वह, जिससे कोई कभी नहीं ऊबता । सुख वह जिससे ऊब जाता है ।

सुख का मतलब यह है कि यह स्त्री प्यारी लगती है । लगती ही प्यारी इसलिए है, जब तक मिली नहीं । मिल गयी—कि ऊबे । मिल गये—फिर क्या करोगे ! दो-चार दिन में नयापन चला जायेगा—तुम्हारा भी, और उसका भी । वही भिण्डी की सब्जी रोज-रोज ! वही भिण्डी खाते-खाते घबड़ाने ही लगोगे !

सुख से आदमी ऊब जाता है । कितना ही सुख हो . . . । एक ही फिल्म को देखने कितनी बार जा सकते हो ! एक फिल्म में पहली दफा अच्छा लगेगा, सुख मालूम होगा । दूसरी बार वह मजा नहीं आयेगा, जो पहली दफा आया था, क्योंकि अब कुछ उघड़ने को न रहा । सब उघड़ चुका । अब कहानी मालूम ही है । पहले से ही मालूम है । और तीसरी बार भी देखना पड़े—और चौथी बार भी देखना पड़े, तो पगलाने लगोगे ! अगर मजबूरी में ही दिखाई जाये फिल्म रोज-रोज—वही फिल्म—तो सात दफे के बाद फिर क्या तुम्हारा होश रह जायेगा ; तब तुम पूछोगे कि आत्महत्या करने का कोई उपाय है ! कि अब यही फिल्म मैं कब तक देखता रहूं !

लेकिन निर्विचार चेतना से कोई कभी नहीं ऊबता, क्योंकि वहां देखने को कुछ नहीं बचता । वहां दृश्य नहीं बचता । चूंकि दृष्य नहीं बचता, इसलिए कोई द्रष्टा भी नहीं बचता । न वहां दृश्य है—न द्रष्टा । न ज्ञाता न ज्ञेय । न वहां कोई भोक्ता है, न कुछ भोग्य । वहां कैसी ऊब !

तुम्हारी ऊब बता रही है कि तुमने आनन्द नहीं जाना है । और यह निर्विचारता का तुम जो दावा कर रहे हो, वह बिलकुल झूठा है । हो सकता है कि तुम सोचते हो कि तुमको निर्विचारता मिल गयी, मगर वह सोचना ही है तुम्हारा । वह भी विचार है

तुम्हारा ! यह कोई निर्विचारता नहीं है ।

यहां रहो; निर्विचारता सीखो । यहां सारी ध्यान की प्रक्रियाएं हैं, जो तुम्हें निर्विचार करना सिखा दें । और जब आनन्द का तुम्हें स्वाद मिलेगा, तब तुम कहोगे कि इससे कैसे कोई ऊब सकता है !

आनन्द है ही वह सुख, जिससे ऊबा नहीं जा सकता । ऐसे सुख का नाम ही आनन्द है, जिससे ऊबा नहीं जा सकता । इस दुनिया में जिनको हम सुख कहते हैं, वे तो आज सुख हैं, कल दुख हो जाते हैं । जो कल दुख था, वह आज सुख हो जाता है । वहां सुख और दुख रूपांतरित होते रहते हैं । उनमें अदला-बदली होती रहती है । वहां सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ।

हो सकता है, कोई मंत्र वगैरह पढ़ते होओ । और अगर मंत्र खूब जोर-जोर से पढ़ते हो, जैसा तुम्हारे ढंग से दिखता है, कि कोई जिद्दी किस्म के आदमी होओगे, तो हठयोगी वगैरह बन जाओ । लगा दी हठ एकदम—राम-राम जपने लगे । घण्टों राम-राम जपते रहे, तो एक तरह का सन्नाटा आ जायेगा । खोपड़ी भनभना जायेगी और कुछ भी नहीं, तो सन्नाटा आ जायेगा ! उस सन्नाटे को तुम कि समझे कि निर्विचार हो गये—तो गलती में हो ।

मंत्रों के जाप से नहीं होती निर्विचारणा । मंत्रों के जाप से तो एक तरह की प्रसुप्ति आ जाती है, निद्रा आ जाती है । और निद्रा से ऊब जाओगे—निश्चित ऊब जाओगे । मंत्र-जाप करने वाले आज नहीं कल एक मंत्र से ऊब जायेंगे, उनको दूसरा मंत्र चाहिए । जैसे एक पत्नी से ऊबे, एक पति से ऊबे, एक मकान से ऊबे, एक भोजन से ऊबे—ऐसे एक मंत्र से ऊब जायेंगे । कल उनको दूसरा मंत्र चाहिए; परसों तीसरा मंत्र चाहिए । क गुरु से दूसरे गुरु के पास जाते रहेंगे । एक दूकान से दूसरी दूकान पर भटकते रहेंगे ।

यहां मैं कोई मंत्र नहीं सिखाता । यहां तो निर्विचार होने की जो एकमात्र कीमिया है, वही सिखाई जाती है—साक्षी भाव । विचारों के साक्षी बनो । सिर्फ देखते रहो विचारों को । कोई राम-राम नहीं जपना है; कोई हरे कृष्ण नहीं जपना है । उन सबसे कुछ होने वाली संभावना नहीं है । कुछ होने का उपाय नहीं है ।

सिर्फ देखते रहो, जो विचार की प्रक्रिया तुम्हारे भीतर चल रही है । और देखते-देखते चमत्कार घटित होता है । देखते-देखते तुम्हारे और तुम्हारे विचार के बीच फासला पैदा हो जाता है । इतना फासला पैदा हो जाता है कि तुम साफ देख सकते हो कि मैं विचार नहीं हूं । और जिस दिन यह दिखाई पड़ता है कि मैं विचार नहीं हूं, उस दिन विचार गिर जाते हैं । उसी दिन—उसी क्षण । और जहां विचार गिरे, वहां 'मैं' गिरा, क्योंकि 'मैं' स्वयं एक विचार है । और जहां विचार गिरे, वहां यह भाव भी गिरा कि क्या सुख, क्या दुख ! ये भी सब विचार हैं ।

निर्विचार क्या कोई हो गया, फिर कुछ बचता ही नहीं । 'निर्विचार हो गया हूं'—

यह विचार भी नहीं बचता।

एक बौद्ध--परम बौद्ध--रिंझाई के पास एक युवक ने आ कर कहा कि 'आप कहते थे कि निर्विचार साध लो; साध लिया। अब बस निर्विचार ही निर्विचार रहा है।'

रिंझाई ने उससे कहा, 'अब तू इसको भी फेंक आ। फिर आना।'

उसने कहा, 'अब इसको कैसे फेंकूं!'

तो रिंझाई ने कहा, 'फिर एक विचार रह गया! अभी तू निर्विचार नहीं हुआ। अब जब सब फेंक दिया, तो एक और फेंक दे।'

वही जो महावीर ने कहा कि 'सारी नदी पार कर गया, अब किनारा न पकड़! अब किनारा भी छोड़ दे। सब छोड़ चुका, अब मुझे क्यों पकड़ता है! मुझे भी छोड़ दे!'

अब तुम इतनी कृपा करो, महेश कुमार गिनोड़िया, कि निर्विचार का भाव भी छोड़ दो। यह विचार भी विचार ही है। इसलिए हमने इस देश में, जिन्होंने जाना, उन्होंने, पतंजलि ने--समाधि के दो रूप कहे: सबीज और निर्बीज। 'सबीज समाधि' का अर्थ है: जिसमें इतना बीज मौजूद है अभी कि 'मुझे समाधि मिल गयी!' बस इसी बीज में से सब निकल आयेगा फिर से वापस। पूरा झाड़ फिर से खड़ा हो जायेगा। इसी एक बीज में से अंकुर निकलेंगे। फिर शाखायें खड़ी होंगी। फिर फल लग जायेंगे, फिर फूल लग जायेंगे। और इसी एक बीज में फिर हजारों बीज लग जायेंगे। निर्बीज होना पड़ेगा। इसलिए समाधि का जो दूसरा आत्यंतिक रूप है, वह 'निर्बीज समाधि' है।

निर्बीज समाधि का अर्थ है: अब यह बीज भी न रहा कि 'मुझे समाधि मिल गयी।' अब दोनों बातें खत्म हो गयीं। न संसार--न मोक्ष। सब गया। अब कैसा सुख--कैसा दुख! इस घड़ी में ही आनन्द की वर्षा है। झड़ी लग जाती है। मूसलाधार बरसता है आनन्द। अंतहीन, शाश्वत, सदा-सदा के लिए। उससे कोई कभी नहीं ऊबा है। तुम नहीं ऊब सकते। कोई ऊब ही नहीं सकता। ऊबना असंभव है।

अच्छा हुआ, तुम यहां आ गये। अगर तुम्हारा यह विचार भी टूट जाये कि तुम निर्विचार हो गये हो, तो काफी है। और नहीं तो तुम उपद्रव में तो पड़ ही गये। तुमने एक झूठी धारणा बना ली और इस धारणा से अब तुम परेशान हो रहे हो। और धारणा से ऊब रहे हो। अब ऊब इतनी घनी हो रही है कि आत्महत्या तक करने का खयाल आने लगा! महावीर को नहीं आया, बुद्ध को नहीं आया। कृष्ण को नहीं आया, क्राइस्ट को नहीं आया। किसी ज्ञाता को नहीं आया आत्महत्या का खयाल। तुमको आ रहा है, तो जरूर कहीं चूक हो रही है। अपनी चूक पहचानो।

तुम ठीक समय पर यहां आ गये। और अच्छा हुआ कि बिना आत्महत्या किये आ गये! अभी भी मौका है; अभी भी निर्विचार सध सकता है। और यहां तो सारा का सारा विधान ही निर्विचार का है।

ध्यान पर ही मेरा एकमात्र जोर है। न आचरण पर, न चरित्र पर, न शील पर--

किसी चीज पर जोर नहीं है; सिर्फ ध्यान पर। क्योंकि मेरी दृष्टि यह है कि ध्यान सधा तो सब सधा। इक साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।

आज इतना ही।

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक २३ जुलाई, १९८०
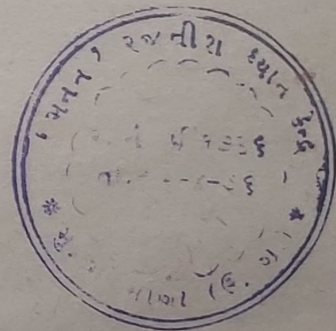
रसरूप भगवत्ता

पहला प्रश्न : भगवान, आपने उस दिन कहा कि 'रसो वै सः'—कि वह रस-रूप है। परमात्मा की यह परिभाषा मुझे सबसे बढ़कर भाती है। तैत्तिरीय उपनिषद का वह पूरा श्लोक इस प्रकार है :

रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात्।
यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयाति।

(भगवान रस-रूप है। उसी रस को पा कर प्राणी-मात्र आनन्द का अनुभव करता है। यदि वह आकाश की भांति सर्व-व्यापक आनन्दमय तत्त्व न होता, तो कौन जीवित रहता और कौन प्राणों की चेष्टा करता? वास्तव में वही तत्त्व सबके आनन्द का मूलस्रोत है।)

भगवान, हमें इसका पूरा आशय समझाने की अनुकम्पा करें!

सहजानंद!

यह परिभाषा अपूर्व है। मनुष्य जाति के समग्र इतिहास में इसके जोड़ की कोई परिभाषा नहीं है। ऐसे तो परमात्मा की परिभाषा हो नहीं सकती, लेकिन करनी ही हो, करनी ही पड़े, तो इस परिभाषा से श्रेष्ठतर परिभाषा की कोई संभावना नहीं है। लेकिन इसे समझना आसान नहीं है। एक-एक शब्द को बहुत गौर से समझना पड़े।

पहले तो 'रस'। दुनिया की किसी भाषा में इसका ठीक-ठीक रूपान्तरण नहीं किया जा सकता। रूपान्तरण करते ही बात विकृत हो जाती है। क्योंकि जिन्होंने इस शब्द को जन्म दिया होगा, उन्होंने अनुभव का निचोड़ इसमें भरा है। यह सामान्य शब्द नहीं है; अनुभूतिजन्य है। इस छोटे से शब्द में अनुभव का सागर समाया हुआ है। इस बूंद में सिंधु है। इस बूंद को कोई समझ ले, तो सारे सागरों का रहस्य समझ में आ जाये।

इस शब्द के बहुत पहलू हैं। पहला पहलू तो है कि रस का अर्थ होता है—जो सदा

प्रवाहमान है, जो बह रहा है। बह गति, गत्यात्मकता 'रस' शब्द से सूचित होती है।

जो चीज ठहरी, वह मरी। जो बहती रही, वह जीवित रही। जल तो वही है, जो हौज में भरा होता है—और कुएं में भी। शायद उसी कुएं का जल हो। लेकिन हौज का जल मृत है, उसमें प्रवाह नहीं है। वह रस नहीं है।

कुएं का जल प्रवाहमान है। उसमें झरने हैं। उसमें स्रोत हैं। उसमें गति है। वह अनंत-अनंत सागर से जुड़ा है। परोक्ष में दूर-दूर झर-झर कर पानी उस तक पहुंच रहा है। वह तो सिर्फ झरोखा है, जिसमें से सागर झांका है। और सागर भी ऐसा हो कर झांका है कि अब पिया जा सकता है। सागर से पानी न पी सकोगे। पिओगे, तो मृत्यु हो जायेगी। सागर को पृथ्वी की बहुत-सी तलों में से गुजरना पड़ता है, तब कहीं पीने-योग्य हो पाता है। तब कहीं हम उसे अपना जीवन बना सकते हैं। और पानी के बिना कोई जीवन नहीं है। आदमी के शरीर में अस्सी प्रतिशत तो पानी ही है।

कुएं का पानी तुम पी सकोगे; वह तुम्हारे पचाने के योग्य हो गया। पृथ्वी ने उसे शुद्ध किया, निर्मल किया। झर-झर कर निर्मल हुआ। बह-बह कर निर्मल हुआ। हौज में तो सड़ जायेगा; कुएं में नहीं सड़ता है। देखने में दोनों में एक जैसा लगता है।

जब कोई बुद्धपुरुष जीवित होता है, तो उसके भीतर धर्म रस-रूप होता है। जैसे कुएं में जल। जैसे सरिता का जल। और जब कोई बुद्धपुरुष विदा हो जाता है, तो पण्डितों के पास उसके शब्द छूट जाते हैं—जैसे हौज में भरा जल, जैसे डबरों में भरा जल। जिनके कोई झरने नहीं होते। जल तो वही। देखने में बिलकुल वही, फिर भी वही नहीं। बुद्धपुरुष को तुम आत्मसात कर सकते हो, उसे पी सकते हो, उसे पचा सकते हो। इसलिए जीसस ने अनूठे वचन कहे हैं।

अंतिम विदाई में जीसस ने अपने शिष्यों के लिए भोज दिया। वह बड़ा प्रतीकात्मक है: 'अंतिम-भोज'। उस भोज में जीसस ने अपने शिष्यों को कहा, 'इस भोजन को तुम साधारण भोजन मत समझना। यह मेरा मांस है, मेरी मज्जा है। इस शराब को तुम साधारण शराब मत समझना; यह मेरा खून है। मुझे खाओ, मुझे पीओ, मुझे पचाओ।'

बड़े अजीब से शब्द हैं, लेकिन बड़े गहरे। जीसस यह कह रहे हैं कि तुम सिर्फ मेरे अनुयायी बन कर मत रह जाना, नहीं तो चूक जाओगे। तुम मेरे शब्दों के धनी बन कर मत रह जाना, नहीं तो भटक जाओगे। तुम्हारे भीतर भी वही चैतन्य आविर्भूत होना चाहिए, जो मेरे भीतर हुआ। वही ज्योति जलनी चाहिए, जो मेरे भीतर जली। और ऐसा तो तब होगा, जब शिष्य अपने गुरु को पचाने को राजी हो जाता है।

विद्यार्थी पचाता नहीं; विद्यार्थी तो याद करता है। विद्यार्थी अंततः पण्डित बन जायेगा। शिष्य पचाता है। पचाता है, पीता है। लीन करता है अपने में। और जब भोजन पच जाता है, तो तुम्हारा हो जाता है। अब तुम कैसे पता लगाओगे कि तुम्हारा

खून कहां से आया—दूध से आया, सब्जी से आया, फल से आया—कहां से आया! अब तो पता लगाना भी मुश्किल है। खून—तुम्हारा खून है। हड्डी—तुम्हारी हड्डी है। मज्जा—तुम्हारी मज्जा है। लेकिन जो अनपचा रह जाये, तो रुग्ण कर देगा।

पण्डित रुग्ण होता है। उसके भीतर अनपचा भोजन पड़ा है। बहुमूल्य भोजन—मगर अनपचा। लेकिन ठण्डा हो गया भोजन!

शास्त्रों में धर्म ठण्डा हो जाता है; पचाने योग्य नहीं रह जाता। उसकी ऊर्जा भी खो जाती है, ऊष्मा भी खो जाती है। उसकी श्वासें ही कब की टूट चुकीं। मृत लाश है! वैसी ही लगती है, जैसे जीवित बुद्धपुरुष लगते थे। बस देखने में वैसी लगती है, लेकिन कुछ कमी है। और कुछ क्या—सभी कुछ कम है। आत्मा ही नहीं है। पिंजड़ा पड़ा है; आत्मा तो उड़ गयी।

धर्म रस है। लेकिन कोई झरोखा चाहिए, जिससे तुम झांक सको। कोई झरना चाहिए, जिससे तुम पी सको। शब्द काम नहीं देंगे। शास्त्र काम नहीं देंगे। जानकारी और ज्ञान काम नहीं देगा। ध्यान ही काम दे सकता है। क्योंकि ध्यान से स्वाद मिलता है।

रस का दूसरा पहलू: रस का अर्थ है, जिसका स्वाद लिया जा सके। तुम शब्द तो सुनते हो, मगर उनका स्वाद कहां? जैसे 'ईश्वर' शब्द तुमने सुना। कोई स्वाद आता है तुम्हें! तुम्हें बिलकुल स्वाद नहीं आता। 'ईश्वर' शब्द कान में भनभनाता है; एक कान में गूंजता है, दूसरे से निकल जाता है। तुम्हारे भीतर कोई हलन-चलन नहीं होती। कोई गति नहीं होती। कोई रस नहीं बहता। तुम मस्त नहीं हो जाते। तुम डोलने नहीं लगते।

यूं ही जैसे कोई 'शराब' शब्द को सुने, तो क्या मस्त हो जायेगा? पिये—तो मस्त होगा। पिये—तो झूमेगा। पिये—तो गायेगा। पिये—तो नाचेगा। शराब उसके रग-रेशे में दौड़े, तो उसका रोआं-रोआं जाहिर करेगा कि कुछ भीतर घट रहा है; कोई क्रांति हो रही है।

धर्म रस है अर्थात उसका स्वाद लेना होता है। खोपड़ी में भर लेने से स्वाद नहीं आता। स्वाद तो अनुभव से आता है। तुम लाख चर्चा सुनो मिठाई की, लेकिन कभी तुमने मीठा न चखा हो, तो चर्चा से क्या होगा! 'मीठा' शब्द याद हो जायेगा, लेकिन शब्द में कुछ अर्थ नहीं होगा। तुम्हारे लिए नहीं होगा अर्थ। अर्थ उनके लिए ही होगा, जिन्होंने चखा है।

शब्दों का एक खतरा है। शब्दों से यह भ्रांति पैदा हो सकती है कि मैं समझ गया। जब शब्द समझ में आ गया, तो हम सोचते हैं: बात समझ में आ गयी। मगर शब्द समझ में आने से कुछ समझ में नहीं आता।

'प्रेम' शब्द तुम जानते हो; खूब जानते हो। सुबह से सांझ तक प्रेम की चर्चा

करते हो। सारी पृथ्वी पर प्रेम ही प्रेम चल रहा है ! पति पत्नी को प्रेम कर रहा है। पत्नी पति को प्रेम कर रही है। मां-बाप बच्चों को प्रेम कर रहे हैं। बच्चे मां-बाप को प्रेम कर रहे हैं। सब सबको प्रेम कर रहे हैं--और फिर भी पृथ्वी पर इतना अप्रेम है, इतनी घृणा है; इतना वैमनस्य है, इतनी शत्रुता है कि सब एक-दूसरे के जान के ग्राहक बने बैठे हैं ! सब एक-दूसरे की गर्दन पर तलवारें टिकाये हुए हैं। जिसको मौका मिल जाये, वही गर्दन काट देगा !

यह मामला क्या है ! यह तमाशा क्या है ? इतना प्रेम दिया जा रहा है, लिया जा रहा है और परिणाम में सिवाय युद्धों के कुछ नहीं लगता ! तीन हजार साल में पांच हजार युद्ध लड़े गये हैं ! यह तुम्हारा अतीत है ! ये तुम्हारे सतयुग, स्वर्णयुग, रामराज्य की कथाएं हैं ! इस अतीत के तुम गुणगान गाते थकते नहीं ! ये तुम्हारे स्वर्णशिखर हैं ! ये तुमने आकाश छूए हैं !

तीन हजार साल में पांच हजार युद्ध ! जैसे आदमी लड़ता ही रहा--लड़ता ही रहा ! और सारे प्रेम का क्या हुआ ? क्योंकि एक व्यक्ति पति भी होता है, बेटा भी होता है, पिता भी होता है, भाई भी होता है, काका भी होता है, मौसा भी होता है मामा भी होता है--कितना नहीं होता ! रिश्ते ही रिश्ते हैं। उसको कितना प्रेम मिलता है ? इतना सारा प्रेम जानने के बाद फल तो बड़े कड़वे लगते हैं !

और प्रेम की कविताएं, और प्रेम के गीत, और प्रेम के शास्त्र ! हां, तुम प्रेम पर बोलना चाहो, तो खूब बोल सकते हो। मगर प्रेम का तुम्हें कुछ अनुभव नहीं। अनुभव नहीं--तो अर्थ भी नहीं।

ऐसा समझो कि अनुभव से अर्थ आता है; शब्दों की जानकारी से अर्थ नहीं आता। जिस दिन अंधे की आंख खुलती है, उस दिन वह जानता है : प्रकाश क्या है। इसके पहले लाख तुमने समझाया हो, और लाख उसने समझा हो . . .। अंधों की अलग किताबें होती हैं, ब्रेल-लिपि में लिखी हुई। उन पर उंगलियां फेर-फेर कर उसने पढ़ लिया हो; प्रकाश के संबंध में सारी जानकारी, सारे सिद्धांत, सारा भौतिक शास्त्र--जो-जो कहता है, अब तक विज्ञान ने जो खोजा है प्रकाश के संबंध में--कि प्रकाश की गति इतनी होती है : एक सैकेंड में एक लाख छियासी हजार मील ! कि प्रकाश शुभ्र रंग का होता है ! लेकिन अगर उसे स्पैक्ट्रम से गुजारा जाये, तो वह सात रंगों में टूट जाता है; उससे इंद्रधनुष बन जाते हैं। यह सब पढ़ सकता है अंधा ब्रेल-लिपि में। और न पढ़ सकता हो, तो तुम समझा सकते हो; पढ़-पढ़ कर तुम बता सकते हो।

और ध्यान रखना : अंधा सुनने में बहुत कुशल होता है ! स्वभावतः। उसके पास आंखें तो होती नहीं, तो आंखों से जो ऊर्जा व्यय होती थी, वह सब की सब कानों को मिल जाती है। इसलिए अंधे अच्छे संगीतज्ञ होते हैं, अच्छे गायक होते हैं। उनकी ध्वनि पर पकड़ गहरी होती है।

आंख से आदमी की अस्सी प्रतिशत ऊर्जा व्यय होती है। अस्सी प्रतिशत ! बाकी तुम्हारी चार इंद्रियों को केवल बीस प्रतिशत ऊर्जा मिलती है। इसलिए तो बहरे को देख कर दया नहीं आती; वैसी दया नहीं आती, जैसी दया अंधे को देख कर आती है। तुम्हारे पास बहरे के लिए कोई समादर-सूचक शब्द नहीं है। लेकिन अंधे को तुम कहते हो--'सूरदासजी !' लंगड़े को लंगड़ा ही कहते हो; लंगड़ाजी भी नहीं कहते ! बहरे को बहरा ही कहते हो; बहराजी भी नहीं कहते ! लेकिन अंधे को सूरदासजी कहते हो। क्यों ?

अंधे पर बड़ी दया आती है। दया आने जैसी बात है। क्योंकि उसका अस्सी प्रतिशत जीवन कट गया। वह केवल बीस प्रतिशत से जी रहा है। वह केवल अपने जीवन का पंचमांश जी रहा है। यूं समझो कि न जीने के बराबर जी रहा है। आंख ही नहीं, तो क्या जीवन ! न रंग है, न रूप है, न सौंदर्य है। तुम कल्पना नहीं कर सकते कि रंग, रूप और सौंदर्य के न हो जाने पर तुम्हारे जीवन पर परदा गिर जाता है। बचता ही क्या है ! लेकिन इसका एक परिणाम होता है कि यह अस्सी प्रतिशत ऊर्जा जो बचती है, आंख की, यह कान को मिल जाती है। कान आंख के सबसे करीब है; नम्बर दो।

तो अंधा सुनता बहुत गहराई से है। उसकी स्मृति बहुत मजबूत होती है गहराई की; भूलता ही नहीं। एक दफा सुन लेता है, तो भूलता नहीं। उसकी सुनने के संबंध में संवेदनशीलता बड़ी गहन होती है। जैसे तुम आदमी को उसके चेहरे से पहचानते हो, अंधा तो चेहरे से नहीं पहचान सकता। वह उसकी पग-ध्वनि तक को पहचानने लगता है। अंधा जानता है--कौन आ रहा है। वह अपने मित्र के पैरों की आवाज पहचानता है। तुमने कभी खयाल ही नहीं किया होगा कि आदमी आदमी के पैरों की आवाज में भी फर्क होता है। मगर अंधे को होता है फर्क। स्वभावतः क्योंकि उसको तो और कोई पहचान बची नहीं।

इसलिए अंधे को तुम समझाओ, तो वह समझने में कुशल होता है। शब्दों को तो वह कान से सुन लेता है, और स्मृति में समा जाते हैं। मगर प्रकाश का अनुभव कैसे होगा ?

और प्रकाश का अर्थ अंधे के लिए क्या हो सकता है ! कुछ भी नहीं हो सकता। प्रकाश तो दूर, अंधे ने अंधेरा भी नहीं देखा है। आमतौर से तुम सोचते हो कि अंधा बेचारा अंधेरे में रहता होगा। तुम इस गलती में मत पड़ना। अंधेरा देखने के लिए भी आंख चाहिए। आंख के बिना अंधेरा भी नहीं देखा जा सकता। जब प्रकाश नहीं देखा जा सकता, तो अंधेरा कैसे देखोगे ?

तुम आंख बंद करते हो, तो अंधेरा दिखाई पड़ता है। लेकिन यह मत सोच लेना इससे, यह अनुमान मत लगा लेना कि बेचारा अंधा अंधेरे में रहता होगा। अंधे को अंधेरा भी कभी नहीं दिखाई पड़ा। आंख ही नहीं है, दिखाई पड़ने का कोई सवाल ही नहीं

उठता ।

तो इसको तुम अंधेरा भी नहीं समझा सकते, प्रकाश तो क्या खाक समझाओगे ! मगर शब्द इसे याद हो सकता है । और यह अंधा पण्डित हो सकता है शब्द के आधार पर । अंधों के सिवाय और कोई पण्डित होता ही नहीं । सभी पण्डित सूरदास होते हैं । पण्डित यानी अंधा ।

गये थे समझने, गये थे हीरे लेने—बीन लाये कंकड़-पत्थर ! गये थे अनुभव लेने—ले आये शब्द । और सोचा कि सम्पदा ले आये !

'रस' शब्द को खयाल में रखो । उसका अर्थ अनुभव, स्वाद ।

सत्य तुम्हारे कंठ से उतरना चाहिए; तुम्हारी जीभ पर चखा जाना चाहिए। सत्य की प्रतीति ऐंद्रिक होनी चाहिए । यह रस का अर्थ है ।

लेकिन तुम्हारे तथाकथित महात्मा तो इंद्रियों के विपरीत हैं । उनकी तो चेष्टा यह है कि सारी इंद्रियों को मार डालो । आंखें हों, तो फोड़ लो । यही तो उन्होंने सूरदास की कहानी में जोड़ दिया है । अगर यह कहानी सच है, तो मेरे लिए सूरदास दो कौड़ी के हो गये । लेकिन मैं सोचता हूं कि यह कहानी सच नहीं हो सकती, क्योंकि सूरदास के पद इतने प्यारे हैं कि यह कहानी सच नहीं हो सकती कि उन्होंने एक सुंदर स्त्री को देख कर आंखें फोड़ ली थीं, कि न रहेंगी आंखें और न बजेगी बांसुरी !

मगर आंखें बंद कर लेने से बांसुरी का बजना बंद नहीं होता; और जोर से बजती है ! भनभना कर बजती है ! सुंदर स्त्री जा रही हो, आंख बंद कर लो; और भी सुंदर मालूम पड़ने लगेगी । इतनी सुंदर कोई स्त्री होती ही नहीं, जितनी आंख बंद कर लेने पर सुंदर हो जाती है । वास्तविक स्त्री में तो क्या खाक सौंदर्य होता है ! दो दिन में उड़ जायेगा ! थोड़े से परिचय में तिरोहित हो जायेगा ।

अब कितने ही लहराते बाल हों, नागिन से लहराते बाल हों, तो भी क्या करोगे ! कब तक सिर मारोगे ! और नाक बिलकुल तोते जैसी हो, तो भी क्या करोगे ! और रंग भी बहुत गोरा और चिट्टा हो, तो क्या करोगे ! दो-चार दिन में सब फीका हो जायेगा । दो-चार दिन में स्त्री के शरीर का पूरा भूगोल तुम पहचान लोगे, सब नाप-जोख कर लोगे, फिर बैठे हैं हाथ पर हाथ धरे !

लेकिन अगर आंख बंद कर ली, तो न होगी कभी नाप-जोख, न कभी होगी पहचान—और गैर-पहचान में मन कल्पना से भर जाता है । खूब कल्पना से भर जाता है । स्त्रियां इस सत्य को जानती हैं; सदियों से जानती हैं । इसलिए स्त्रियां उन-उन अंगों को छिपा कर रखती हैं, जिन अंगों के प्रति चाहती हैं कि तुम्हारे भीतर कल्पना जगे ! जितनी छुपी स्त्री हो, उतनी ही तुम्हारी कल्पना को प्रज्ज्वलित करती है ।

स्त्री की तो बात छोड़ दो, किसी खूसट बुड्ढे को भी तुम बुरके में उढ़ा कर जरा रास्ते में निकाल दो ! समझो—मोरारजी देसाई ही चले जा रहे हैं ! बुरका ओढ़े हुए ! तो

लोगों की छातियां थम जायेंगी; हृदय की धड़कन बंद हो जायेंगी । दुकानें ठहर जायेंगी । लोग कहेंगे—जरा रुको ! जरा देख तो लूं ! लुच्चे-लफंगे पीछे लग जायेंगे ! सीटियां बजने लगेंगी; फिल्मी गाने होने लगेंगे ! देखो, कैसी बांसुरियां बजती हैं ! वह तो जब तक बुरका नहीं उघड़ेगा, तब तक उपद्रव बहुत फैल जायेगा । दंगा-फसाद हो सकता है ! वह तो बुरका जब उघड़ेगा, तब . . .!

मैं गंगा के किनारे बैठा था अपने एक मित्र के साथ । एक व्यक्ति स्नान कर रहा था । सुंदर देह । लम्बे बाल । पीछे से यूं लगता था, जैसे कोई सुंदर स्त्री हो ! वे मित्र बोले कि 'मुझसे न रहा जायेगा । मैं देख कर आता हूं । जब देह में ऐसा सौष्ठव है, कौन जाने चेहरा भी सुंदर हो ।'

मैंने कहा, 'जाओ, जरूर देख आओ ।'

वे गये । वहां से बिलकुल सिर पीटते लौटे । कहा, 'हद हो गई । एक साधु महाराज नहा रहे हैं !'

उनके बड़े घुंघराले बाल थे । बाल पीछे उनके लटक रहे थे । और देह भी उनकी सुंदर थी । जब ये उनको देख कर लौटे चेहरा, तब पता चला । अगर बैठे ही रहते, मुझसे उन्होंने ईमानदारी से न कहा होता, तो उस रात करवटें बदलते । विचार करते रहते । सपने में उतरते । 'और वह स्त्री कौन थी !' और वहां कोई स्त्री थी ही नहीं ।

आंख बंद कर लोगे, तो रूप नष्ट नहीं होता—और प्रगाढ़ हो जाता है । क्योंकि कल्पना को अवसर मिल जाता है । इसलिए स्त्रियां अपने को छिपाने की कला में निष्णात हो जाती हैं ।

पश्चिम की स्त्रियां इतनी सुंदर नहीं मालूम होतीं, यद्यपि ज्यादा सुंदर हैं । इतनी सुंदर नहीं मालूम होतीं, जितनी पूरब की स्त्रियां मालूम होती हैं । उसका कुल राज इतना है कि पश्चिम की स्त्री ने एक पुराना हिसाब बंद कर दिया । उसने पुरानी चाल-बाजी बंद कर दी, जो संस्कृति और धर्म के नाम पर बड़ी होशियारी से थोपी गयी थी । उसने अपने शरीर को उघाड़ दिया है । वह सहज-स्वाभाविक हो गई है । लाखों स्त्रियां नग्न स्नान कर रही हैं समुद्र तटों पर । कोई देखने के लिए भीड़ इकट्ठी नहीं होती । भीड़ इकट्ठी होती ही तब है, जब देखना मुश्किल हो ।

भारत में जितने धक्के लगते हैं स्त्रियों को, दुनिया में कहीं नहीं लगते । धार्मिक देश है ! पुण्यभूमि है ! यहां देवता पैदा होने को तरसते हैं ! वे भी इसीलिए तरसते होंगे ! कि थक गये उर्वशी और मेनका से । हेमा मालिनी को धक्का देना चाहते हैं । खबरें तो पहुंचती होंगी ! कोई देवता भी ऐसा थोड़े ही कि अखबार न पढ़ते होंगे ! थोड़ी देर से पहुंचते होंगे अखबार, पहुंचते तो होंगे ही । पढ़-पढ़ कर उनके भी जी पर सांप लोट जाता होगा ।

आंख बंद करने से नहीं कुछ होने वाला है ।

सूरदास ऐसी मूढ़ता नहीं कर सकते । लेकिन कहानी यही कहती है, और इसीलिए कि सूरदास का सम्मान करती है । कि अद्‌भुत व्यक्ति थे, कि आंख फोड़ ली उन्होंने ! इतने मूढ़ नहीं हो सकते । ऐसी मूढ़ता से ऐसे सुंदर पदों का जन्म नहीं हो सकता । ऐसे रसपूर्ण पद हैं कि रस का अनुभव हुआ ही होगा । नहीं तो यह रस कैसे बहेगा ! यह रस कहीं न कहीं से आ रहा है । यह अंधे से नहीं आ सकता । यह तो बहुत संवेदनशील व्यक्ति से आ सकता है । और उन्होंने जैसा वर्णन किया है कृष्ण के सौंदर्य का, उससे प्रतीत होता है कि उनके सौंदर्य का बोध बड़ा प्रगाढ़ रहा होगा ।

तुम्हारे धर्मों ने तुम्हारी इंद्रियों को मारने की कला सिखायी है । जिह्वा को मार डालो !

महात्मा गांधी अपने भोजन में साथ में नीम की चटनी भी खाते थे । अब नीम की कोई चटनी होती है ! तुमने कभी सुनी ? मगर महात्मा जो न करें, सो थोड़ा ! ऐसी ही चीजों से तो वे महात्मा होते हैं ।

पश्चिम का एक विचारक लुई फिशर महात्मा गांधी पर एक किताब लिख रहा था, तो वह उनका निकट अध्ययन करने के लिए उनके आश्रम आया । महात्मा गांधी ने उसे अपने साथ भोजन के लिए बिठाया । और सब चीजें तो उसने देखीं, साथ में जब नीम की चटनी आयी, उसने पूछा, 'यह क्या है ?' तो महात्मा गांधी ने कहा, 'जरा चख कर देखो !' उसने चखी, तो जहर थी ! उसने कहा, 'हद्द हो गई । यह कोई भोजन है !'

महात्मा गांधी ने कहा कि 'इसे करने से धीरे-धीरे स्वाद पर नियंत्रण आ जाता है। रोज-रोज इसको खाने से आदमी का स्वाद पर बल थिर हो जाता है । तुम स्वाद के गुलाम हो । आदमी को होना चाहिए स्वाद का मालिक । सात दिन तुम यहां रहोगे, अभ्यास करो ।'

लुई फिशर तो बहुत घबड़ाया कि सात दिन यहां मैं टिक पाऊंगा इस नीम की चटनी के कारण ! उसने यह सोच कर कि पूरा भोजन खराब करने के बजाय यह बेहतर है कि इसको एक ही दफा पूरा का पूरा गोला गटक कर पानी पी लूं, फिर भोजन कर लूं, ताकि झंझट एक ही दफे में खत्म हो जाये; नहीं तो पूरा भोजन खराब होगा !

उसने पूरा गोला गटक लिया । और महात्मा गांधी ने कहा कि 'और लाओ । देखो, कितनी पसंद पड़ी ! अरे समझदार आदमी हो, तो उसको पसंद पड़ेगी ही !'

अब लुई फिशर यह भी न बोल सका कि पसंद नहीं पड़ी है । अब कैसे अपनी समझदारी को गंवाये ! सो बैठा रहा मन मारे--और दूसरा गोला आ गया । उसने कहा, 'अब अखीर में निपटाऊंगा इसको । पहले पूरा भोजन निपटा लूं ।'

एक गोले की जगह दो गोले मिलने लगे रोज उसको ! वह अगर न खाये पहला गोला, तो गांधीजी कहें, 'अरे, भूले जा रहे हो ! चटनी पहले ।' फिर दूसरा गोला आ जाये !

हर आश्रमवासी को नीम की चटनी अनिवार्य थी । ऐसे कहीं होगा, तो फिर कोई जा कर अस्पताल में. . .जीभ कोई बहुत बड़ी भारी बात नहीं है । उसमें बहुत छोटे-छोटे संवेदनशील तंतु हैं, वे जल्दी से मर जाते हैं । नीम-वीम से कहां मार पाओगे ! जिंदगी भर मारने में लग जायेगी । जा कर अपनी जीभ पर एसिड डलवा आओ । नहीं तो जा कर किसी प्लास्टिक सर्जन से कहना कि जरा ये छोटे-छोटे तंतु हैं, इनको साफ ही कर दो; काट ही डालो! फिर तुम्हें स्वाद ही न आयेगा--न मीठा, न कड़वा ! तुम हो गये जितेंद्रिय ! फिर हुए तुम जैन ! असली जैन ! जिह्वा पर विजय हो गयी !

कहां के पुराने ढांचे-ढर्रे में पड़े हुए हो; बैलगाड़ियों से सफर कर रहे हो ! अस्पताल में चले जाओ, एक पांच मिनट का काम है; तुम्हारी जबान साफ कर दी जायेगी । तंतु ही बहुत थोड़े से हैं । और पूरी जीभ भी सारा अनुभव नहीं करती । जीभ पर भी तंतु बटे हुए हैं । किसी हिस्से पर कड़वे का अनुभव होता है, किसी हिस्से पर मीठे का । किसी हिस्से पर नमकीन का--अलग-अलग हिस्सों पर ।

जरा-सी तो जीभ है, लेकिन उसके बड़े संवेदनशील तंतु हैं । इनको मारने से तुम सोचते हो कि तुम्हारी भोजन पर विजय हो जायेगी ! तो तो जीभ ही काट डालो ! काटने वाले लोग हुए हैं, जिन्होंने जीभ काट ली और जो योगी समझे गये !

कान फोड़ लो, क्योंकि संगीत है, कोयल की पुकार है । और ये सब खतरनाक चीजें हैं । कोयल की पुकार--तुम क्या सोचते हो, कोयल कोई भजन कर रही है ! और हिन्दी में भ्रांति होती है । क्योंकि हिन्दी में 'कोयल' से ऐसा लगता है कि जैसे मादा पुकार रही है । मादा नहीं पुकारती । मादाएं तो सारी दुनिया की, चाहे किसी पशु-पक्षी की हों, आदमी की हों, जानवरों की हों, बहुत होशियार हैं । पुकार वगैरह नहीं देतीं ! 'कोयला'--कोयल नहीं ! यह कोयला पुकार रहा है । ये सज्जन पुकार रहे हैं ! कोयल तो चुपचाप बैठी रहती है । ये ही पुकार मचाये रखते हैं; ये ही गुहार मचाये रखते हैं । वह जो पपीहा पुकार रहा है, वह भी पुरुष है । वह जो 'पी कहां' कह रहा है. . .कहना चाहिए--'प्यारी कहां !' मूरख है; भाषा का ज्ञान नहीं । अंट-शंट बोल रहा है ।

मगर तुम सुन लेते हो । तुम्हें पता नहीं कि यह सब पुकार तो मची हुई है वही--महात्माओं के खिलाफ ! यह प्रकृति का रस बह रहा है । तुम कान फोड़ लो अपने ।

पक्षियों के गीत हैं, संगीत है--यह सब खतरनाक है । तुम्हारे महात्माओं की मान कर चलो, तो तुम अपनी इंद्रियों को धीरे-धीरे फोड़ते चले जाओ, तोड़ते चले जाओ ।

अलग-अलग धर्मों ने अलग-अलग इंद्रियों को तोड़ने के उपाय खोजे हुए हैं। इसलाम संगीत के खिलाफ है । क्योंकि संगीत कहीं न कहीं कामवासना से जुड़ा हुआ है । यह आकस्मिक नहीं है कि संगीत कामवासना से जुड़ा हुआ है, क्योंकि सारे पशु-

पक्षियों की पुकारें और गीत कामवासना के ही अंग हैं। मनुष्य ने भी उनसे ही संगीत सीखा है।

वेश्यालयों में संगीत कोई अप्रासंगिक रूप से नहीं चलता है। दरबारों में राजाओं के जहां वैभव और विलास था, वहां संगीत की महफिलें जमी रहती थीं। जब से दरबार उखड़ गये, राजा न रहे, संगीत के भी प्राण निकल गये। संगीत में वे ऊंचाइयों न रहीं, क्योंकि खरीददार न रहे। अब फिल्मी संगीत बचा है, क्योंकि खरीददार भी तीसरी कोटि के हैं, इसलिए तीसरी कोटि का संगीत भी होगा। फिल्मी संगीत को तुम गाली मत दो। वह जनता का संगीत है! जनता पार्टी का! जनता की जितनी बुद्धि, सार्वजनिक जितनी अकल! वह जो शास्त्रीय संगीत था, वह दरबारी था। उसके लिए सुसंस्कार चाहिए थे। उसके लिए वर्षों की साधना चाहिए थी। वर्षों की साधना के बाद भी मुश्किल से मिलता था।

भारत का अंतिम मुगल सम्राट बहादुर शाह कवि भी था। उसका कवि नाम था 'जफर'। बहादुर शाह जफर। मिर्जा गालिब से वह अपनी कविताओं में संशोधन करवाता था। गालिब उसके गुरु थे। और भी उसके गुरु थे। उर्दू शायरी में यह परंपरा है कि तुम क्या लिखोगे अपने आप! इतना लिखा जा चुका है! ऐसे-ऐसे बारीक और नाजुक खयाल बांधे जा चुके हैं कि किसी गुरु के पास बैठ कर पहले समझो। और जरा से शब्दों के तालमेल से बहुत फर्क पड़ जाता है। तो वह सीख लिया करता था। उसने एक दिन मिर्जा गालिब को पूछा कि 'आप कितने गीत रोज लिख लेते हैं?'

मिर्जा गालिब ने कहा, 'कितने गीत रोज! यह कोई मात्रा की बात है! अरे कभी तो महीनों बीत जाते हैं और एक गीत नहीं उतरता। और कभी बरसा भी हो जाती है। यह अपने हाथ में नहीं। यह तो किन्हीं क्षणों में झरोखा खुलता है। किसी अलौकिक जगत से कोई किरण उतर आती है, तो उतर आती है। बंध जाती है, तो बंध जाती है। छूट जाती है—छूट जाती है। चूक जाती है—चूक जाती है! कभी तो आधा ही गीत बन पाता है, फिर आधा कभी पूरा नहीं होता। अपने हाथ में नहीं। प्रतीक्षा करनी होती है।'

जफर ने कहा, 'अरे, मैं तो दिन में जितने चाहूं, उतने गीत लिख लूं। पाखाने में बैठे-बैठे मुझे गीत उतर आते हैं!'

गालिब तो हिम्मत के आदमी थे। गालिब ने कहा कि 'महाराज, इसीलिए आपके गीतों में पाखाने की बदबू आती है!'

हिम्मतवर लोग थे। कोई अब बहादुर शाह जफर सम्राट थे, इसलिए कोई गालिब छोड़ देंगे उनको, ऐसा नहीं था। कहा कि 'अब मैं समझा। अब मैं समझा राज! कभी-कभी मुझे भी बदबू आती थी आपके गीतों में...कि मामला क्या लिखते हो आप! कूड़ा-कर्कट! अब जब पाखाने में बैठ कर लिखोगे, तो फिर ठीक ही है! कृपा कर के ऐसा न करो।'

जफर को चोट भी लगी, और समझ में भी बात आयी। और इसके बाद ही जफर ने जो गीत लिखे—थोड़े से लिखे, मगर गजब के लिखे। वे फिर जफर ने नहीं लिखे, जैसे रस ही बहा।

रस का यह पहलू समझो। तुम्हारी इंद्रियां ज्यादा संवेदनशील होनी चाहिए। उनकी संवेदनशीलता पराकाष्ठा पर पहुंचनी चाहिए। आंख उतना देखे, जितना देख सकती है। रूप की तहों में उतर जाये; रूप की गहराइयों को छू ले। कान उतना सुने जितना सुन सकता है। संगीत की परतों और परतों में उतरता चला जाये; संगीत की तलहटी को खोज ले, ऐसी डुबकी मारे, क्योंकि मोती ऊपर नहीं फिरते—तिरते; गहरे में पड़े होते हैं। 'जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ। मैं बोरी खोजन गई, रही किनारे बैठ।'

और तुम्हारे महात्माओं को मैं देखता हूं, सब किनारे बैठे हैं! डर के मारे बैठे हैं कि कहीं डूब न जायें! धार गहरी न हो; कहीं बह न जायें। भयभीत, सिकुड़े हुए! किनारे पर, पकड़े बैठे हुए हैं अपने को। अपनी सारी इंद्रियों को तोड़ रहे हैं। क्योंकि भयभीत हैं कि कहीं इस इंद्रिय के जाल में न फंस जायें, उस इंद्रिय के जाल में न फंस जायें! इंद्रियों का जाल नहीं है। इंद्रियां तो तुम्हारी रस को ग्रहण करने की संभावनाएं हैं।

परमात्मा तो सब रूपों में छाया हुआ है। आंख अगर गहराई से देखेगी, तो हर रंग में उसका रंग है। कान अगर गहराई से सुनेंगे, तो हर ध्वनि में उसकी ध्वनि है, उसका नाद है, ओंकार है—'इक ओंकार सतनाम!' वह जगह-जगह सुनाई पड़ेगा। मगर बहुत गहरे सुनने की कला आनी चाहिए।

और तब स्वाद में भी वही मिलेगा। धन्य थे वे लोग, अद्भुत थे वे लोग, जिन उपनिषद के ऋषियों ने कहा—'अन्नं ब्रह्म!' कि अन्न ब्रह्म है। ये लोग स्वाद के विपरीत नहीं हो सकते। जिन्होंने भोजन में भगवान को पा लिया हो, ये लोग स्वाद के कैसे विपरीत हो सकते हैं! जो अन्न को भी ब्रह्म कह सके, ये तुम्हारे तथाकथित महात्माओं से बड़े अलग लोग थे।

छूट गये सूत्र हमारे हाथ से कहीं। रास्ता कहीं भटक गया। कहीं बीच में हम और ही दिशाओं में निकल गये। हमने स्वास्थ्य का मार्ग छोड़ दिया; हमने रुग्ण होने की दिशा पकड़ ली। हम जीवन-विरोधी हो गये। और जीवन परमात्मा है।

अगर तुम स्पर्श की क्षमता में पूरे के पूरे प्रवीण हो जाओ, तो तुम जो छुओगे, उसी में परमात्मा का स्पर्श मिलेगा।

सारी इंद्रियां संवेदनशील होनी चाहिए। संवेदना पराकाष्ठा पर होनी चाहिए, तब तुम जानोगे कि वह रसरूप है।

तुम देखते हो, सहजानंद, तुमने जहां से भी इस सूत्र का हिन्दी अनुवाद लिया होगा, वह अनुवाद किसी पण्डित ने किया है। वह अनुवाद किसी द्रष्टा का नहीं है। तुम फर्क देखो!

सूत्र है--'रसो वै सः।' सीधा-साधा अर्थ है: 'वह रसरूप है।' लेकिन अनुवाद में तुम देखते हो, फर्क हो गया: 'भगवान रसरूप है।' 'वह' तत्काल 'भगवान' हो गया! 'वह' का मजा और। 'भगवान' में बात बिगड़ गयी; वह न रही। क्योंकि भगवान का अर्थ हो गया--व्यक्ति। 'वह' तो निर्वैयक्तिक सम्बोधन था। 'भगवान' का अर्थ हो गया--राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर--व्यक्ति। व्यक्ति ही भगवान हो सकता है। जब भी हम 'भगवान' शब्द का उपयोग करते हैं, तो वह व्यक्तिवाची हो जाता है।

कृष्ण को भगवान कहो--ठीक। बुद्ध को भगवान कहो--ठीक। ये व्यक्ति हैं। और इन व्यक्तियों ने रस पिया है। इन व्यक्तियों ने 'वह' पिया है, इसलिए इनको भगवान कह सकते हैं। 'उसको' जिसने पिया, वह भगवान। लेकिन उसको भगवान मत कहो। उसको भगवान कहने से आकार दे दिया, रूप दे दिया। और वह तो सभी आकारों में समाया हुआ है; निराकार है। वह तो निर्गुण है--सगुण नहीं। वह तो सभी आकृतियों में है, इसलिए उसकी कोई आकृति नहीं हो सकती।

'भगवान' कहा कि मुश्किल हो गयी शुरू। भगवान कहते ही तत्क्षण तुम्हारी धारणाएं जो भगवान की हैं--किसी के चतुर्भुजी भगवान हैं; किसी के त्रिमुखी भगवान हैं; किसी के भगवान के हजार हाथ हैं! किसी के भगवान का कोई रूप है; किसी के भगवान का कोई रूप है! किसी के भगवान गणेशजी हैं; हाथी की सूंड़ लगी हुई है! किसी के भगवान जी हनुमानजी हैं!

बंदर भी हंसते होंगे, कि हम ही भले, कि किसी आदमी की पूजा तो नहीं करते! ये आदमियों को क्या हो गया है! कि बंदरों की पूजा कर रहे हैं! हाथी भी चुपचाप मुस्कुराते होंगे कि 'वाह! हम ही भले! कि आदमी मिल जाये अकेले में, तो वो पटकना दें उसको कि रास्ते पर लगा दें! हम किसी आदमी की पूजा नहीं करते!' मगर यह हाथी रूपधारी गणेशजी की पूजा हो रही है! 'जय गणेश, जय गणेश' का गुंजार चल रहा है! गणेशोत्सव मनाये जा रहे हैं! आदमी अद्‌भुत है! वह कोई न कोई रूप देना चाहता है। कोई न कोई रंग भरना चाहता है।

तुम्हारा मन निराकार में जाने से डरता है।

जिसने भी यह अनुवाद किया होगा, वह निराकार से घबड़ाया हुआ है। और शायद उसे पता भी न हो कि उसने फर्क कर दिया।

'रसो वै सः' तो सीधा-सादा शब्द है। मैं तो संस्कृत जानता नहीं, मगर यह तो सीधी-सीधी बात है। इसके लिए कुछ संस्कृत जानने की जरूरत नहीं है। इसमें 'भगवान' कहीं आता नहीं शब्द। 'वह रसरूप है।' यह सूत्र गजब का है। लेकिन जैसे ही तुमने

कहा--'भगवान रस-रूप है', बात बिगाड़ दी। भगवान कैसे रस-रूप हो सकता है! भगवत्ता रस-रूप हो सकती है। मगर 'भगवत्ता' फिर व्यक्ति से मुक्त हो गयी।

इसलिए मैं तुमसे कहना चाहता हूं: भगवान तो हमने उन लोगों को कहा है, जिन्होंने भगवत्ता को चखा और अनुभव किया है। इसलिए बुद्ध को भगवान कहो--ठीक। महावीर को भगवान कहो--ठीक। जीसस को भगवान कहो--ठीक। कबीर को, नानक को भगवान कहो--ठीक। मगर उस विराट को मत सीमा में बांधो। उसमें तो सब बुद्ध खो जाते हैं, सब महावीर खो जाते हैं; सब कृष्ण और सब क्राइस्ट उसमें लीन हो जाते हैं। वह तो अनंत है। ये तो सब उसकी किरणें हैं; एक-एक किरणें। तुम उसे किरणों में मत बांधो। उसकी कोई सीमा नहीं है।

इस समय पश्चिम में बहुत झगड़ा है कि परमात्मा को हम क्या मानें--स्त्री या पुरुष! क्योंकि स्त्रियों की बगावत चल रही है पश्चिम में। और ठीक बगावत चल रही है। अंग्रेजी में तो स्त्री और पुरुष के लिए अलग-अलग सर्वनाम हो जाता है। हिन्दी में तो नहीं होता। इसलिए हिन्दी में तो हमें सुविधा है। 'वह रस-रूप है'--कोई अड़चन नहीं। लेकिन अंग्रेजी में 'वह' को क्या करोगे! अगर कहो--'ही', तो वह पुरुष हो गया। अगर कहो--'शी', तो वह स्त्री हो गया! अगर कहो--'इट', तो वह वस्तु हो गया!

अब तक तो उसको 'ही' कहा जाता रहा है--पुरुषवाची।

मैंने सुना है कि पिछला पोप जब मरा, तो उसके मरने के बाद एक अफवाह सारी दुनिया में उड़ गयी थी। पता नहीं तुम तक पहुंची या नहीं पहुंची! कि जब वह स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा, और उसने सेन्ट पीटर से कहा कि 'जल्दी द्वार खोलो। जीवन भर की आकांक्षा तृप्त करनी है। परम पिता परमात्मा से मुझे मिला दो!'

पीटर ने सिर झुका लिया और कहा कि 'सुनो, एक बात पहले खयाल में रखो। एक तो वह परम पिता नहीं है--परम माता है! और दूसरा--गोरी नहीं है; काली है; नीग्रो है! इन दो की तैयारी रखो, फिर मिलवा देता हूं! नहीं तो एकदम तुम्हारी छाती टूट जायेगी देख कर!'

वहीं बैठ गये पोप महाराज दरवाजे पर। आंखें बंद कर लीं कि यह क्या हुआ! स्त्री, पहले तो ईश्वर को मानना--और फिर वह भी नीग्रो! नीग्रो को तो घुसने न दें चर्च में।

प्रसिद्ध कहानी है कि एक नीग्रो चर्च में जाना चाहता था, तो उसने पादरी से प्रार्थना की। पादरी ने कहा कि 'भई, कुछ बुराई तो नहीं!' क्योंकि पादरी को बोलना तो पड़ता है मीठी-मीठी बातें। 'अरे, उसके सामने तो सब बराबर हैं। क्या काला--क्या गोरा! मगर पहले पात्रता अर्जित करो--चर्च में आने से क्या होगा! पहले अपने को शुद्ध करो!'

पादरी ने सोचा, 'कौन कब अपने को शुद्ध कर पाया है ! और ऐसी शर्तें बता दूंगा कि यह क्या, इसकी सात पीढ़ियां भी शुद्ध न हो पायें !' तो कहा, 'पहले कामवासना छोड़ो, लोभ छोड़ो, तृष्णा छोड़ो--सब छोड़-छाड़ कर--अहंकार विर्सजित करो--फिर आओ ।'

ये शर्तें किसी सफेद चमड़ी वाले के लिए नहीं लगायी थीं उसने कभी । यह पात्रता सफेद चमड़ी वाले से नहीं मांगी जाती थी । यह सफेद चमड़ी वालों का ही चर्च था। मगर पादरी सीधा नहीं कह सकता था । आखिर पादरी को तो अच्छी बातें कहनी चाहिए; मीठी-मीठी; सबसे ! उसको सब के प्रति दयाभाव दिखलाना चाहिए। मगर पीछे तो राजनीति चलती है--वही की वही । काले और गोरे का भेद बना ही रहता है ।

तो बेचारा नीग्रो सीधा-सादा आदमी था, वह जा कर प्रार्थना में लग गया, अपने को शुद्ध करने में लग गया । पंद्रहवें दिन वह आया । उसको आते देख कर. . . दूर से देखा पादरी ने कि वह फिर आ रहा है ! उसने कहा, 'क्या इतने जल्दी ये सारी शर्तें पूरी कर लीं !' लेकिन जैसे-जैसे करीब आया, पादरी बहुत हैरान हुआ । उसे डर लगा कि अब बड़ी मुश्किल हो गयी ! उसके चारों तरफ एक आभा-मण्डल था, जो कि परम पुरुषों के पास ही होता है । लगता है : इस नीग्रो ने तो हाथ मार लिया ! इसको किस बल पर रोकूंगा ! घुसने तो नहीं देना है । यह लगता तो बिलकुल परम पवित्र हो कर चला आ रहा है । इसकी सुगंध मालूम होती है, दूर से ! इसकी रोशनी साफ है। इसके शरीर के चारों तरफ वर्तुलाकार प्रकाश का पुंज है । मारे गये ! उसने दरवाजे पर ताला लगा कर बाहर ही खड़ा हो गया सड़क पर, कि कहीं यह घुसने ही लगे, तो मैं रोक भी न सकूंगा, इतना प्रभावशाली मालूम हो रहा है । इसके प्रभाव में न आ जाऊं !

मगर वह आया ही नहीं । चर्च के सामने थोड़ी दूर खड़ा रहा । वहां से खिलखिला कर हंसा और लौट गया ! इससे और बड़ी मुश्किल हुई पादरी को । भागा; रोका, कि 'सुन भाई ! चर्च में नहीं आना है ?'

उसने कहा, 'अब तुमसे क्या छिपाना । कल रात परमात्मा प्रगट हुए और कहने लगे--भइया, तू नाहक मेहनत कर रहा है । वे मुझको नहीं घुसने देते ! वे तुझको क्या घुसने देंगे ! वे हरामजादे ऐसी-ऐसी शर्तें बताते हैं कि मैं पूरी नहीं कर पाता ! तो तू कहां की झंझट में पड़ा है ! और मैं खुद ही आ गया । अब तुझे वहां जाने की जरूरत नहीं है । तो मैं तो सिर्फ यह देखने आया था कि क्या गजब खेल चल रहा है ! तुम परमात्मा तक को नहीं घुसने देते ! और जब तुमने मुझे देखा, जल्दी से तुमने ताला मारा और चाबी लगा कर खड़े हो गये ! देख कर मैं हंसा, कि अरे बुद्धुओं, तुम्हारा मंदिर खाली है ! किस पर ताला मार रहे हो ! तुम उसको देख कर भी ताला मार लेते हो ।'

तो अगर पोप बैठ गया हो, उसकी धक-धक बंद हो गयी हो, या झटका खा कर फिर से मर गया हो, दुबारा, तो कुछ आश्चर्य नहीं है ।

ईश्वर को जैसे ही तुमने रूप दिया, आकार दिया--झंझटें खड़ी होंगी । फिर वह ईश्वर स्त्री है या पुरुष ? फिर वह गोरा है या काला ? फिर वह चीनियों जैसा दिखाई पड़ता है, कि भारतीयों जैसा या अंग्रेजों जैसा ? बड़ी मुश्किल खड़ी हो जायेगी ! दुबला-पतला है, मोटा-तगड़ा है; जवान है, बूढ़ा है ? फिर हजार सवाल खड़े हो जाते हैं ।

नहीं । मैं तुमसे कहना चाहता हूं : परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है । यद्यपि परमात्मा की परम ऊर्जा कभी-कभी व्यक्तियों में उतरी है ।

और तुम्हारे तो अजीब तर्क हैं । तुम्हारा तर्क तो यह है कि तुम कहते हो, कोई व्यक्ति कैसे परमात्मा हो सकता है ! और मैं तुमसे कहता हूं--व्यक्ति ही परमात्मा हो सकता है । इसलिए बुद्ध को तुम भगवान कहो, मुझे एतराज नहीं । तुम कृष्ण को भगवान कहो, मुझे एतराज नहीं । मगर भगवान को 'भगवान' मत कहो । उसमें मुझे एतराज है । क्योंकि फिर तुम उसके लिए सीमाएं बांध रहे हो । भगवान को तो सिर्फ भगवत्ता कहो । वह तो सिर्फ गुण-धर्म है । इसलिए बुद्ध ने उसे 'धर्म' कहा, और लाओत्ज़ू ने उसे 'ताओ' कहा । लाओत्ज़ू ने कहा कि उसका कोई नाम नहीं है, इसलिए मैं नाम गढ़ लेता हूं--ताओ । ताओ का कुछ अर्थ नहीं होता । अ, ब, स--कुछ भी कहो; मगर उसको कुछ ऐसा नाम दो, जिससे उसका रूप न बनता हो । यही तो हमने भी किया इस देश में; हमने उसे 'ओंकार' कहा । अब तुमने कभी सोचा--ओंकार क्यों कहा ? लोग ओंकार का पाठ करते रहते हैं; धुन मचाये रखते हैं--ओम्-ओम् । कभी सोचते भी नहीं कि हमने उसे ओम् क्यों कहा ।

ओम् वैसा ही है, जैसा ताओ । ओम् का क्या रूप, क्या रंग ! ओम् कोई व्यक्ति नहीं है । और इसलिए हमने तो एक और बात भी की जो ताओवादियों ने नहीं की । हम ओम् को साधारण भाषा के अ उ म से नहीं लिखते । हमने उसके लिए अलग ही एक प्रतीक बना लिया ओंकार का, ताकि वह भाषा के शब्दों से अलग ही पड़ जाये । प्रतीक मात्र है हमारा ओम् । हमारी बारहखड़ी में नहीं आता कहीं भी । हमारे वर्णाक्षरों में नहीं आता कहीं भी । अंग्रेजी में लिखने में बड़ी तकलीफ होती है । अंग्रेजी में ॐ को कैसे लिखो ! ए यू एम करके लिखना पड़ता है । मगर वह गलत है । इसलिए मैक्समूलर ने, जिसकी कि गहरी पैठ थी भारतीय शास्त्रों में, ओम् को ॐ के प्रतीक में ही लिखा; ए यू एम में नहीं लिखा, क्योंकि वह गलती हो जायेगी । उसको तो प्रतीक ही रखना पड़ेगा; उसका कोई अनुवाद नहीं हो सकता । जैसे ताओ का कोई अनुवाद नहीं हो सकता, वैसे ही ओम् का कोई अनुवाद नहीं हो सकता । ॐ कोई शब्द ही नहीं है । जो शब्द में नहीं बंधता, उसकी तरफ इशारा है ।

इसलिए मत कहो कि 'भगवान रस-रूप है ।' कहो--'भगवत्ता रस-रूप है।'

फिर बेहतर तो यही है कि 'वह' कहो। क्योंकि 'वह' में सब समा जायेगा—स्त्री भी, पुरुष भी, वस्तु भी।

हमारा 'वह' अंग्रेजी के वह से बहुत बड़ा है। हमारा 'वह' विराट है। उसमें कोई सीमा नहीं बंधती।

दूसरा, सूत्र का हिस्सा है :

'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।' अनुवादक ने कहा है—'उसी रस को पा कर प्राणी-मात्र आनन्द का अनुभव करता है।' इतने ज्यादा शब्दों की जरूरत नहीं है। सूत्र का तो सिर्फ इतना ही अर्थ होता है : 'उस रस को उपलब्ध करना ही आनन्द है।' रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। संस्कृत को जानने की जरूरत ही नहीं है। सीधी-सी बात है। रसं ह्येवायं लब्ध्वा—उस रस को जिसने पा लिया, उपलब्ध कर लिया, लब्ध कर लिया; जो उस रस-रूप हो गया—उसे आनन्द उपलब्ध हुआ। आनन्द की भी कुन्जी दे दी।

दुख क्या है? उस रस से च्युत हो जाना दुख है। जैसे वृक्ष को कोई जड़ों से उखाड़ ले, जमीन से उखाड़ ले, बस, दुख शुरू हो गया वृक्ष के लिए, क्योंकि जमीन में ही उसका रस था। जमीन से ही वह रस पाता था। जमीन से उखाड़ लिया, कि सूखने लगा। पत्ते झरने लगे, पीले पड़ने लगे। दो-चार दिन हरा रह भी जाये, तो रह जाये, पुराने रस के आधार पर। जो रस के संग्रह उसके भीतर होंगे, कितनी देर चलेंगे! थोड़ी देर में चुक जायेंगे; फिर सूख जायेगा। अब रस की धारा नहीं बहती; रोज-रोज रस नहीं आता। अब पुराने रस के बल पर उधार कितना चल सकता है!

आनन्द का अर्थ है : अपनी जड़ों को भगवत्ता में जमा लेना। उसमें जमा लेना; उसके साथ जुड़ जाना।

हमारा अहंकार हमें तोड़ता है। 'मैं अलग हूं'—बस, यही हमारी भ्रांति है। एक मात्र भ्रांति, एकमात्र अज्ञान, कि मैं पृथक हूं, अलग हूं। वही हमें तोड़े हुए है। जिस दिन इसको छोड़ दोगे, उस दिन तुम उस रस से जुड़ जाओगे।

'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।' और फिर क्या देर है! आनन्द ही आनन्द है। उसके साथ जुड़ गये, कि पुनः रस के स्रोत से जुड़ गये। फिर तुम्हारी जड़ें जीवित हो उठेंगी, फिर नये पत्ते आ जायेंगे। फिर नये पत्ते, नये फूल, नये फल। आया वसंत। आया मधुमास! फिर पक्षी नीड़ बनायेंगे। फिर कोयल कूकेगी। फिर पपीहा बोलेगा। फिर हवाओं में नाचोगे तुम। फिर सूरज की किरणों में, और चांद की किरणों में नहाओगे।

लेकिन तुम्हारे तथाकथित महात्माओं ने तुम्हें प्रकृति से तोड़ा है—जोड़ा नहीं। उनकी सारी चेष्टा यह है कि तुम कितने अप्राकृतिक हो जाओ। उनका सारा उपाय यह है कि तुम्हारा अहंकार कैसे और मजबूत हो जाये। इसलिए तुम्हारे साधु-संन्यासियों

का जैसा अहंकार होता है, वैसा अहंकार किसी और का नहीं होता! उनकी नाक पर जैसा अहंकार चढ़ा होता है, वैसा किसी के ऊपर नहीं चढ़ा होता है। स्वाभाविकतः भी चढ़ेगा, क्योंकि जो उन्होंने किया है, किसने किया है! त्याग किया, तो अकड़ आयी। धन छोड़ा, तो अकड़ आयी। पत्नी छोड़ी, तो अकड़ आयी। तुम तो छोड़ो!

और इसलिए तुम चकित होओगे जानकर यह बात कि जो लोग इन महात्माओं को पूजते हैं, वे अकसर इनसे विपरीत होते हैं! जैसे जैन मुनि को जैन पूजते हैं। जैन मुनि की पूजा क्या है? क्योंकि उसने धन को लात मार दी। और जैनियों को यही सबसे बड़ा चमत्कार दिखायी पड़ता है दुनिया में! धन को—और लात मारना! धन को तो वे छाती से लगाते हैं।

सिर्फ भारत एकमात्र देश है जहां लक्ष्मी की पूजा होती है—नोटों की पूजा होती है! पहले कम से कम चांदी के, सोने के सिक्के रखते थे। अब वे भी न रहे। अब तो कागज के नोट रख लेते हैं लोग! लेकिन ताजे निकलवा लाते हैं बैंक से—बिलकुल चमचमाते! उनको रख कर पूजा होती है। मेरे घर में भी होती थी! मगर जैसे ही मुझे होश आया, मैंने अपने घर के लोगों को कहना शुरू किया, 'यह क्या पागलपन है! कुछ तो होश की बातें करो!' रुपये—नोट! चांदी के सिक्के बचा रखे थे पुराने—पूजा के ही लिए खास करके। कि नोट की पूजा करते उनको भी थोड़ी शर्म लगती थी! और मैं हंसता था कि 'यह क्या कर रहे हो!' तो उन्होंने कुछ सिक्के बचा रखे थे। वे कहते, 'चलो, नोट हटा दो; सिक्के रख लेते हैं। मगर हमारी पूजा में बाधा मत डालो!' मैं उनसे कहता कि 'नोट हुए कि सिक्के हुए, सब बराबर हैं। चांदी का हुआ नोट, कि कागज का हुआ नोट—नोट का मतलब नोट! किसका बना है, इससे क्या फर्क पड़ता है! धातु से बना है, कि कागज से बना है—दोनों ही एक से हैं! मगर तुम पूज रहे हो। लक्ष्मी की पूजा!'

दीपावली का अवसर ही लक्ष्मी-पूजा का अवसर है! और इस देश को हम धार्मिक देश कहते हैं! आध्यात्मिक देश! सारी दुनिया भौतिकवादी है, और हम अध्यात्मवादी हैं! और दुनिया में कहीं लक्ष्मी की पूजा नहीं होती। लोग लक्ष्मी को भोगते हैं। भोगो मजे से। पूजना क्या है! लक्ष्मी तुम्हारे पैर दबाये—ठीक! दबवा लो; कोई हर्जा नहीं। खुद विष्णु भगवान दबवा रहे हैं, तो तुम्हें क्या तकलीफ हो रही है! लेटे हैं, और लक्ष्मी पैर दबा रही है!

अब लक्ष्मी पैर दबाती हो, तो दबवा लिये, कि दबा बाई! कोई हर्जा नहीं। मगर मूरख की तरह तुम पूजा कर रहे हो, तो हद्द हो गई! मगर तुम्हारी भी तरकीब हम समझ रहे हैं कि मतलब तुम्हारा क्या है! तुम भी समझ गये कि लक्ष्मी की पूजा करो, तो लक्ष्मीनारायण तक पहुंच हो जायेगी! जैसे कि किसी नेता तक पहुंचना हो, तो पत्नी की सेवा करो। साड़ी ले जाओ, मिठाई ले जाओ। आइसक्रीम पहुंचा दो। फूल-फल

पहुंचाओ। डाली लगा दो! पत्नी की सेवा करो। क्योंकि तुम जानते हो कि पति चाहे कितना ही बहादुर हो, मगर पत्नी के सामने बस दुम दबा लेते हैं! अगर पत्नी ने कह दिया कि इस आदमी का खयाल रखना, तो अब उनके बस के बाहर है। खयाल रखना ही पड़ेगा!

समझदार आदमी सीधे-सीधे कलेक्टर या कमिशनर या गवर्नर या मिनिस्टर के पास नहीं जाते। पत्नी की सेवा करते हैं। पत्नी जल्दी प्रसन्न भी हो जाती है। साड़ी ले आये एक, और चित्त प्रसन्न हो गया उनका! एक गहना बनवा लाये, और चित्त प्रसन्न हो गया। और जब पत्नी प्रसन्न हो गई, तो पति की क्या हैसियत!

तो तुम वही तरकीब लगा रहे हो लक्ष्मी के साथ। लक्ष्मीनारायण को प्रसन्न करना है! तुम जानते हो कि यह बाई पांव दबाती है लक्ष्मीनारायण के। पांव दबाते-दबाते कह देगी कि 'जरा खयाल रखना : यह फलां-फलां आदमी है। यह अपना आदमी है; इसका ध्यान रहे!' तो लक्ष्मीनारायण भी जानते हैं कि ठीक है। ध्यान रखना पड़ेगा, नहीं तो कल ये चोटियां लेगी; पांव-वांव नहीं दबायेगी! सोने नहीं देगी। खोपड़ी खायेगी! कि 'हां बाई, करेंगे। जो कहेगी, वह करेंगे!'

लक्ष्मी की पूजा चल रही है! क्या बेहूदी बात है! सिक्के पूज रहे हो। और फिर भी तुम्हारी अकड़ नहीं जाती आध्यात्मिक होने की! और तुम्हारे भ्रम नहीं टूटते!

जैन धन का पागल है; परिग्रही है। और इसलिए जो धन को छोड़ देते हैं, कहता है कि 'वाह! यह है करामात!' क्यों करामात दिखाई पड़ती है? मुझे इसमें करामात दिखाई नहीं पड़ती। क्योंकि पहले तो मैं यह मानता हूं कि धन को पकड़ना ही मूर्खता है। वह पहली मूर्खता। फिर दूसरी मूर्खता--उसको छोड़ना! पकड़े ही नहीं कभी, तो छोड़ना क्या! अब जैसे मुझसे कोई कहे कि छोड़ो। छोड़ूं क्या खाक! कुछ कभी पकड़ा नहीं। जेब भी पास में नहीं है! एक पैसा बैंक में नहीं है! छोड़ना क्या है! जहां अपना कुछ है ही नहीं, वहां छोड़ना क्या है--पकड़ना क्या है!

लेकिन जो पकड़ने में दीवाने हैं, वे फिर छोड़ने का आग्रह रखते हैं। वे कहते हैं: जो छोड़े, वही त्यागी। यह भोगियों की भाषा है। यह भोगियों का तर्क है।

जो स्त्रियों के पीछे दीवाने हैं, वेश्यालय जिनकी वजह से आबाद हैं, ये उन मुनियों के चरणों में सिर रखेंगे कि 'वाह! क्या करामात--स्त्री को छोड़ कर चल दिये! अरे, हम अपनी स्त्री को क्या छोड़ें, अपने पड़ोसियों की स्त्री तक को नहीं छोड़ पा रहे हैं, और तुम अपनी तक को छोड़ कर चल दिये! है करामात, है चमत्कार! त्याग इसको कहते हैं! हम दूसरों की भी नहीं छोड़ सकते, जो अपनी हैं ही नहीं--पहली बात। मगर उनको भी नहीं छोड़ पा रहे हैं। उन पर भी नजर लगी रहती है! अपने को तो छोड़नी ही कैसे!'

मगर जिसने छोड़ दिया--उसकी पूजा!

तुम अकसर पाओगे कि जिस धर्म के मानने वाले जिस ढंग के होंगे, ठीक उससे विपरीत उनकी पूजा के आधार होंगे। ठीक उसके विपरीत! और इससे समझ लेना कि दोनों के दोनों एक-सी मूर्खता में पड़े हैं।

वे मुनि, वे महात्मा और उनके अनुयायी--इनमें कुछ फर्क नहीं है। इनका तर्क एक है, गणित एक है। ये दोनों एक दूसरे का गणित समझते हैं। वह मुनि भी जानता है कि 'मुझे क्यों पूजा मिल रही है, क्योंकि मैंने धन छोड़ा, पत्नी छोड़ी।' पूजा करने वाला भी जानता है कि 'महाराज, ध्यान रखना! कहीं अगर पकड़े गये, तो मुश्किल हो जायेगी। धन छूना ही मत; देखना ही मत। स्त्री से सावधान!'

तेरापंथ जैनियों में एक शास्त्र है, जिसमें नौ बाड़े हैं। नौ बातों की आड़ रखना। इन नौ बातों का ध्यान रखना। इनमें से कोई बात भीतर घुस गई कि तुम्हारा खातमा है! तो जैसे झाड़ को बचाने के लिए बागुड़ लगाते हैं, ऐसे ही नौ बागुड़! एक बागुड़ से भी काम नहीं चलेगा; नौ बागुड़ लगाना है। और उसके भीतर जो पौधे होंगे, ये मुरदा तो होने ही वाले हैं। नौ बागुड़ जिस पर लगी हों, नौ परकोटों से जो घेरा गया हो, और जिसकी जिंदगी इस बात पर निर्भर हो कि अगर जरा-सा कहीं दरवाजा खुला और हवा या रोशनी आ गई या एक हवा की लहर आ गई या पानी की एक बूंद आ गई कि इनका सब नष्ट हो गया!

जिसकी चीजें इतनी कमजोरी पर खड़ी हों, इसका बल क्या! मगर इसका बल एक है: इसके अहंकार को प्रशंसा मिल रही है। गौरव मिल रहा है। इसकी अकड़ को पूजा जा रहा है।

जीवन-विरोधी लोग सिर्फ अहंकार का मजा ले रहे हैं--और कुछ भी नहीं। और अहंकार अधर्म है।

अहंकार का अर्थ है: उस रस से च्युत हो जाना। इसलिए तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों में रस बिलकुल नहीं दिखाई पड़ता। वे तो विरस होने की बात सिखाते हैं तुम्हें! अब यह बड़े मजे की बात है!

तुम्हारा सूत्र तो है--'रसो वै सः'। तैत्तिरीय उपनिषद क्या कहता है, और तुम्हारे महात्मा तुम्हें क्या समझाते हैं कि विरस हो जाओ, विरागी हो जाओ, उदासीन हो जाओ। रस ही न लो किसी चीज में। रस का त्याग करो। जितना बन सके, उतना करो!

जैनों में दो व्रत होते हैं--महाव्रत और अणुव्रत। तुमसे अगर पूरा महाव्रत न हो सके, रस पूरा त्याग करने का, तो अणुव्रत तो करो। कम से कम थोड़ा छोड़ो। तुमसे अगर नमक समझो कि पूरा नहीं छोड़ा जाता कि हमेशा बिना नमक का भोजन करो, तो सप्ताह में एक दिन तो छोड़ दो। तो अणुव्रत हुआ! नमक का क्या कसूर है! नमक की क्या खराबी है? एक दिन नमक छोड़ देते हैं लोग, फिर उनकी अकड़ देखो!

चाल देखो ! अकड़े हुए चल रहे हैं । नमक छोड़ दिया उन्होंने एक दिन के लिए ! एक दिन शक्कर नहीं खाते, तो गजब कर दिया ! एक दिन घी नहीं खाया तो क्या कहने हैं।

कैसा सस्ता महात्मापन तुमने पैदा किया है ! और इन बेईमानों के लिए तरकीबें सुझा दी हैं कि चलो, तुमसे महान व्रत तो सधेगा नहीं अभी; अहंकार तुम उतना तृप्त कर न सकोगे । जितना बन सके, उतना कर लो । न सही पहाड़, तो चलो छोटी-मोटी टेकरी ही सही; कुछ अहंकार तो बना लो अपना ! तो वे व्रत कर रहे हैं । लेकिन इससे रस से टूट रहे हैं । इसलिए उनके चेहरों पर न तो आनन्द का भाव है, न प्रसन्नता है, न प्रमुदितता है । न नृत्य है उनके जीवन में, न गीत है उनके जीवन में । न काव्य है, न संगीत है । कुछ भी नहीं !

और इन रूखे-सूखे-ठूंठे लोगों के पीछे बाकी लोग चल रहे हैं । सो वे सारे के सारे लोग अपने को अपराधी समझ रहे हैं । कि हम कब ठूंठ बन जायेंगे, तब हम भी महात्मा होंगे । जब तक हम ठूंठ नहीं बने, तब तक हममें पत्ते लग रहे हैं । बड़ा अपराध कर रहे हैं हम । हममें अभी भी पत्ते लगते हैं; क्या करें ! पिछले जन्मों के पापों के कारण पत्ते लग रहे हैं । फूल लग रहे हैं । लगते ही जाते हैं, रुकते ही नहीं ! हमारे महात्मा देखो, क्या ठूंठ खड़े हुए हैं !

काष्ठवत्--परिभाषा की गई है, तुम्हारे महात्माओं की--सूखी लकड़ी की भांति ! क्या बातें कर रहे हो ! अरे, लकड़ी ही होनी है, तो कम से कम गीली तो रहो ! थोड़ा रस तो बहने दो !

सूखी लकड़ी की भांति हो जाओ बिलकुल ! बिलकुल ठूंठ ! कि सिवाय अंगीठी में लगा देने के किसी काम के न रहो ! किसी के चूल्हे में गिरना है, जो ठूंठ बनना है ? फूल कैसे लगेंगे ! और गंध कैसे उड़ेगी ? और परमात्मा ने जो तुम्हारे भीतर छिपाया है, वह प्रगट कैसे होगा ?

सूत्र बड़ा साफ है । 'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति ।' उस रस को उपलब्ध कर लिया, बस यही आनन्द है ।

मैं तुम्हें रस सिखाता हूं--विरस नहीं । मैं तुम्हें राग की कला सिखाता हूं--वैराग्य नहीं ।

'को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् ।' रस चला गया--तो फिर कहां जीवन ! फिर प्राण कहां ? प्यारा सूत्र है । ऐसा कि उतर जाने दो, रोयें-रोयें में समा जाने दो । उसके बिना न कोई जीवन, न कोई प्राण । और उसी से लड़ रहे हो तुम !

पश्चिम का इस सदी का सबसे बड़ा बुद्धपुरुष जार्ज गुरजिएफ कहा करता था अपने अनुयायियों से कि 'एक बात तुम खयाल रखना कि तुम्हारे सब महात्मा, चाहे हिन्दू हों, चाहे ईसाई, चाहे यहूदी--परमात्मा के खिलाफ हैं ।'

जब मैंने पहली दफे यह वचन पढ़ा, तो इतना वचन ही मेरे लिए काफी था कि इस

आदमी को कुछ दिखाई पड़ा है । ऐसा वचन मैंने कभी देखा ही नहीं था किसी और का ! कि 'तुम्हारे सब महात्मा परमात्मा के खिलाफ हैं ।' यह बात कोई जानने वाला ही कह सकता है । यह कोई पण्डित नहीं कह सकता । पण्डित की तो क्या हैसियत होगी ! सोच भी नहीं सकता ।

ऊपर से तो बड़ी उलटी मालूम पड़ती है कि तुम्हारे महात्मा परमात्मा के खिलाफ ! यह कैसी बात ! मगर मैं भी अपने अनुभव से कहता हूं कि यह बात सच है । गुरजिएफ अब तो जिंदा नहीं है, लेकिन जहां भी उसकी आत्मा होगी, उसको आनन्दित होना चाहिए । जितनी गालियां उसको पड़ीं, उससे पचास गुनी ज्यादा मुझको पड़ रही हैं !

उसको जिंदगी भर गालियां पड़ीं । मगर वह भी ईर्ष्या करता होगा मुझसे । इतनी उसको भी नहीं पड़ीं । मुझे सारी दुनिया में पड़ रही हैं । व्यापक विस्तार से पड़ रही हैं । उसकी तो बड़ी सीमा थी बेचारे की ! थोड़े से लोग ही उसको जान पाये । उसने बात ही कभी सार्वजनिक नहीं की । उसने थोड़े से लोगों से ही बात की । उसने ऐरे-गैरे नत्थू-खैरों को भीतर नहीं आने दिया । मैं ऐरे-गैरे नत्थूखैरों से भी सिर फोड़ता हूं। स्वभावतः गाली ज्यादा खानी पड़ेगी ।

वह तो सिर्फ अपने शिष्यों से बोलता था । शिष्य उसके इने-गिने थे । सारी दुनिया में मुश्किल से तीन सौ ! उनसे--वह दूसरों से बोलता नहीं था । किताब उसने अपनी जिंदगी में सिर्फ एक छपने दी । वह भी करीब-करीब जब मर रहा था, तब छपी ! वह भी जब पहली दफे छपी, तो उसने सिर्फ एक हजार कापियां छापीं । और वह भी हर किसी को नहीं बेच देता था । उसने दाम इतने ज्यादा रखे थे कि हर कोई खरीद नहीं सकता था । बामुश्किल कोई हिम्मत कर सकता था खरीदने की । और किताब इतनी बड़ी थी, एक हजार पृष्ठों की थी । और उसके लिखने का ढंग ऐसा है कि तुम दस पन्ने पढ़ लो, तो समझना कि भव-सागर पार हो गये ! एक-एक वाक्य एक-एक पन्ने में जाता है ! वाक्य में वाक्य चलता जाता है ! और वह इस-इस तरह के शब्द बनाता था--खुद गढ़ लेता था--कि जिनके अर्थ तुम्हें किसी शब्दकोश में मिल सकते नहीं । शब्दों को तोड़-मरोड़ देता था । जैसे कुण्डलिनी लिखना हो, तो कुण्डलिनी कभी नहीं लिखता था । कुण्डा-बफर ! अब तुम खोज-खोज कर मर जाओ--कुण्डा-बफर कहां है ! यह कुण्डा-बफर क्या है ! वह उसकी गाली थी ।

जैसे दो रेलगाड़ियों के डब्बों में बीच के बफर लगे रहते हैं, कि कभी धक्का लगे या गाड़ी को एकदम से रोकना पड़े, तो वे जो बफर रहते हैं, वे एकदम डब्बों को टकराने नहीं देते । या जैसे कार में स्प्रिंग लगे होते हैं; गड्ढा आ जाये, तो स्प्रिंग गड्ढे को पी जाते हैं । अंदर बैठे आदमी एकदम उछल कर छप्पर से नहीं लग जाते ! खोपड़ी नहीं खुल जाती । वह बफर ।

वह कुण्डलिनी नहीं कहता था, वह कहता था--कुण्डा-बफर ! वह कहता था--

यह आदमी के भीतर 'कुण्डाबफर' नाम की एक शक्ति है, इसकी वजह से उसको धक्के नहीं लगते; स्प्रिंग है यह। जिंदगी में ठोकरों पर ठोकरें खाता है, मगर कुण्डाबफर सब झेल जाता है! यह एक तरह का स्प्रिंग है। कि गिरे, जल्दी से कपड़े वगैरह झाड़े। देखा चारों तरफ : कोई नहीं है। फिर चल पड़े!

रोज गिरते हो। और यूं भी नहीं कि नये-नये गड्ढों में गिरते हो। उन्हीं-उन्हीं गड्ढों में रोज गिरते हो! और कल ही कसम खायी थी कि अब इस गड्ढे में नहीं गिरेंगे; कि भाड़ में जाये यह गड्ढा, कितनी दफे इसमें गिर चुके! कोई सार नहीं है। और फिर आ गये। फिर खड़े हैं! कतार में! ऐसे भी नहीं! क्योंकि उस गड्ढे में और भी गिरने वाले भी हैं; कोई तुम्हीं थोड़े अकेले हो। क्यू लगा हुआ है। अपने क्यू में खड़े हैं! भईया क्या कर रहे हो?—अब क्या करें! ऐसे तो कसम खायी थी!

कल ही मैं एक गीत पढ़ रहा था किसी कवि का। उसने लिखा है कि यूं तो हम रोज शाम को कसम खाते हैं, लेकिन फिर सुबह पी लेते हैं। तोबा रोज रात करते हैं और रोज सुबह तोड़ लेते हैं। इस तरह हम दुनिया भी सम्हालते हैं और जन्नत भी सम्हालते हैं! रात जन्नत सम्हाल लेते हैं; सुबह यह दुनिया सम्हाल लेते हैं!

फिर करें भी क्या! फिर घटायें ही कुछ ऐसी घिर गयीं कि पीने का मन हो गया! और फिर यह बत्तमीज मन—लालच उठ आयी। और पियक्कड़ों को देख कर पीने का मन हो गया! फिर सोचा, अब एक दफा और। अरे बस, एक दफा और! कोई बार-बार थोड़े ही पीना है!

मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन तय किया कि अब नहीं पीना शराब, क्योंकि बहुत हो चुका। डॉक्टर कहता है, मर जाओगे। पत्नी जान खाये जाती है। बेटा पीछे पड़ा रहता है लट्ठ लिये! कि तुम शराबघर गये कि टांग तोड़ दूंगा! यहां तक हालत आ गयी कि शराबघर का मालिक तक कभी-कभी मना करता कि 'अच्छा, उठो जी! अब दरवाजा बंद करें! कि अब नहीं पिलायेंगे तुम्हें! अब तुम ज्यादा पी गये! अब तुम गड़बड़ शुरू कर दिये। तुम बहकने लगे।'

एक दिन तो यह हालत हो गयी कि शराबघर के मालिक ने उसको धक्के दे कर निकलवा दिया, क्योंकि वह दो-चार बोतलें पी चुका, है, और अब ऐसी अंटशंट बातें बक रहा है, और ऐसे अंटशंट काम कर रहा है कि दूसरे ग्राहक देख-देख कर लौटे जा रहे हैं, कि यहां कोई झगड़ा होगा, मारपीट होगी। उपद्रव होने ही वाला है! यह आदमी किसी की हत्या कर देगा! उसको निकलवा बाहर कर दिया। वह दूसरे दरवाजे से फिर आ गया! उसने कहा, 'भाई, एक बोतल!' उसने फिर उसे निकलवा कर बाहर कर दिया। वह तीसरे दरवाजे से भीतर आ गया। होटल के कई दरवाजे थे! उधर से भी निकलवा दिया। चौथे दरवाजे से आया। जब उसे फिर निकलवाने लगा, तो उसने कहा, 'मामला क्या है! क्या बस्ती के सभी शराबखाने तेरे बाप के हैं? जहां

जाता हूं, वहीं हरामजादा, तू ही खड़ा रहता है! चार शराबघरों में हो आया! इतना होश मुझे भी है कि तेरी शकल मेरी पहचानी हुई है। यह देख कर चौंकता हूं कि यह फिर वही का वही आदमी! तो क्या बस्ती भर के शराबघर तूने ही खरीद लिये!'

जब यह मुसीबत आ गयी, तो उसने एक दिन कसम ही खा ली कि क्या बेइज्जती जगह-जगह करनी। नाली में गिरना, और सुबह रोज घर जाना; और घर पिटाई अलग होती है। और जो देखो वहीं लानत-मलामत करता है। जहां जाओ वहीं लोग उपदेश देते हैं। हर कोई उपदेश देने लगता है! उपदेश आदमी को जहर जैसा लगता है!

कहा कि 'अच्छा, आज नहीं पिऊंगा।' मगर वह शराबघर रस्ते में पड़ता है!

कहा, 'कुछ भी हो जाये, आज छाती कड़ी कर लूंगा। अरे मैं भी मर्द बच्चा हूं!' शराबघर पास आया, तो पैर उसके थरथराने लगे। कई दफा मन होने लगा, कि 'अरे एक दिन और! अरे आखिरी दिन है रे! आज तो पी ले। फिर कल से कर लेना। अब जब तय ही कर लिया है, तो फिर कल से कर लेना!'

रोज मन ऐसा ही हमारा होता है! कुछ नयी बात नहीं है, उसका हुआ तो। मगर उसने कहा कि 'नहीं। बहुत हो चुका जी। यह कई दफा हो चुका। आज जो कसम खायी, तो पूरी करनी है। नहीं जायेंगे।'

मगर एकदम पांव ठहरने ही लगे, आगे ही न बढ़ें, जैसे हजारों मन बोझ लदा हो पैरों पर—कि मामला क्या है! मगर उसने कहा, 'आज कुछ हो जाये; आज सिद्ध करना है—मर्द बच्चा हूं।'

चला ही गया। शराबघर की तरफ आंख भी नहीं उठाई। नीची आंख रखी, जैसे बौद्ध भिक्षु रखता है नीचे आंख। चार कदम से आगे नहीं देखता, क्योंकि चार कदम से आगे देखो कि संसार में गिरे!

क्या मजा है! तो एक-एक चश्मा लगा लो, जिसमें चार कदम से आगे दिखाई न पड़ता हो। सब मुक्त हो जाओगे, निर्वाण को उपलब्ध हो जाओगे! चार कदम से आगे नहीं देखता, कि जरा ही आंख उठ गयी चार कदम से ज्यादा—पता नहीं क्या दिख जाये!

घबड़ाहट के मारे नीचे देखे, नजर गड़ाये चला गया—चला गया—चला गया! मगर तिरछी नजरों से तो देख ही रहा था कि शराबघर निकला जा रहा है, निकला जा रहा है! जब सौ कदम आगे निकल गया, अपनी पीठ ठोंकी और कहा, 'बेटा, नसरुद्दीन! गजब कर दिया तूने! अरे है तू भी कोई महात्मा! अब आ, इस खुशी में तुझे आज दुगनी पिलाता हूं!'

और पहुंच गये वापस! उस खुशी में दुगनी पी रहा हूं। उस दिन से फिर दुगनी ही पी रहे हैं! क्योंकि उस दिन उनको पता चला कि अरे, दुगनी भी चल सकती है! और जब मरना ही है, तो फिर क्या! और उपदेश तो झेलना ही है, तो अब क्या

थोड़ी पीना !

एक दिन पत्नी उसकी पहुंच गई, जब बरदाश्त के बाहर हो गया । जा कर उसने बुरका उतार कर फेंक दिया । नसरुद्दीन ने कहा, 'अरे, यह क्या करती है ! बुरका उतारती है ! और शराबघर तू आयी क्यों ?'

उसने कहा कि 'तुम्हीं-तुम्हीं मजा लूट रहे हो !'

पत्नी गयी थी इसको शिक्षा देने, कि जब मैं पहुंच जाऊंगी, तो यह शरम खायेगा, संकोच खायेगा कि यह बदनामी ! हद्द हो गयी !

और बैठ गयी वह भी जम कर । उसने कहा कि 'ला तेरी बोतल !'

अब कुछ कह भी न सका । कहे क्या ! अगर कहे कि यह खराब चीज है, तो वह कहेगी कि फिर पीता क्यों है ! सो बोतल देनी पड़ी ।

उसने भी जल्दी से बोतल कुड़ेली । उसे क्या पता; कभी पिया हो उसने शराब ! गटागट पी गई बिना सोडा मिलाये, पानी मिलाये । एक ही घूंट मुंह में गया था कि कड़वा जहर ! वहीं बुलक दिया, कि 'सत्यानाश हो तेरा ! इसको पीता है तू !'

नसरुद्दीन मुस्कराया और कहा, 'तू क्या समझती थी री, कि मैं कोई यहां आनन्द मनाने आता हूं ! अरे यह बड़ी तपश्चर्या है । बड़ी मुश्किल से सधती है । देख, यूं पी जाती है ।' गटागट पूरा बोतल पी गया जल्दी से, कि कहीं फिर न मांगने लगे !

'तू यही समझती है जिंदगी भर से । अब मत कहना कि चले गुलछर्रे उड़ाने । यह कोई गुलछर्रे नहीं हैं । यह बड़ा कठिन मार्ग है !'

लोग गड्ढों में गिरते हैं; कठिन मार्ग बताते हैं । उन्हीं गड्ढों में गिरते हैं; रोज-रोज गिरते हैं । कारण क्या होगा ?

एक ही कारण है कि तुम्हारे जीवन में अमृत का कोई स्वाद नहीं है । इसलिए तुम जहर पी रहे हो । एक ही कारण है कि तुमने जीवन से नाते तोड़ लिये हैं, इसलिए तुम मृत्यु के शिकंजे में पड़ गये हो । तुमने विराट से अपनी जड़ें अलग कर ली हैं, तो तुम क्षुद्र अहंकार में ग्रसित हो गये हो । वही नर्क है । अहंकार नर्क है । और अहंकार मृत्यु है । अहंकार के जो पार गया, वह नर्क के भी पार गया और मृत्यु के भी पार गया । वह तत्क्षण अमृत का अनुभव करता है ।

को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् ।' अरे कौन उसको खो कर जीवित हो सका है ! कौनई उसको खो कर वस्तुतः जान सका है कि जीवन क्या है ! इसका अर्थ तुम समझो ।

इसका अर्थ हुआ कि वह रस और जीवन पर्यायवाची हैं । यही मैं तुमसे कह रहा हूं; रोज-रोज कहे जा रहा हूं कि जीवन और परमात्मा पर्यायवाची हैं । इसलिए जो लोग भी जीवन का विरोध करते हैं, वे ईश्वर के दुश्मन हैं । और तुम्हारा सारा धर्म जीवन का विरोध है ।

सब तरह से जीवन को काटो ! त्यागो ! भागो ! जैसे पाप हो गया है को

जीवित होने से ! जैसे परमात्मा ने कोई कसूर किया है तुम्हें जन्म दे कर ! तुम शिकायत कर रहे हो जीवन का त्याग करके । तुम क्या अनुग्रह का भाव प्रगट करोगे ! तुम कैसे धन्यवाद दोगे उसे ! तुम्हारे मन में सिर्फ शिकायतों ही शिकायतों का ढेर है । तुम्हें परमात्मा मिल जाये, तो तुम उसकी गरदन पकड़ लोगे कि तू बता कि तूने मुझे क्यों पैदा किया ? क्या जरूरत थी मुझे पैदा करने की ! क्यों मुझे संसार के जंजाल में डाला ?

यहां लोग आ जाते हैं ! उनको पता नहीं मेरी जीवन-दृष्टि का । वे मुझसे पूछ लेते हैं प्रश्न । आज ही एक सज्जन ने पूछा हुआ है कि 'हमें बताइये कि भव-सागर से कैसे मुक्त हो जायें ?'

तुम्हें सिखाया ही यह जा रहा है कि भव-सागर से मुक्त होना है ! अरे, भव-सागर में तैरना सीखो । मुक्त कहां होना है ! जाओगे कहां ? भव-सागर तो सभी जगह है ! 'भव' का अर्थ समझते हो ?––जो है । जो है, इसके बाहर कैसे जाओगे ?

भव का अर्थ है अस्तित्व । इससे बाहर कहां जाओगे !

तुम जब पूछते हो––'भव-सागर से मुक्त होना है'––तो तुम यह कह रहे हो कि हमें मरना बता दो; आत्महत्या करनी है ।

तुम जीवन से इतने उदास क्यों हो ? कौन ने तुम्हारे जीवन को विषाक्त किया ? और तुम उन्हीं के शिकंजे में हो अब भी । जो तुम्हारी गरदन दबा रहे हैं, तुम सोचते हो; तुम्हारे प्राण-रक्षक हैं !

तुम जीवन को जान ही नहीं पाये । नहीं तो यह कभी भाषा न बोलते––भव-सागर से मुक्त होने की । तुम पूछते––भव-सागर में कैसे लीन हो जाऊं ? तुम पूछते : कैसे तल्लीन हो जाऊं ? जैसे बूंद सागर में उतर जाती है और एक हो जाती है, ऐसे मैं भी कैसे एक हो जाऊं । तब तुम्हारा प्रश्न सच में धार्मिक होता ।

उसके बिना कोई जीवन नहीं, कोई प्राण नहीं ।

'यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् ।' वह है आकाश जैसा विराट ।

'यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् ।' और उसमें आनन्द ही आनन्द का विस्तार है । आनन्द का कोई अन्त नहीं । अनंत आनन्द है ।

और तुम दुख के पूजक हो ! जो आदमी अपने को दुख देता है सब तरह से, तुम उसको कहते हो––त्यागी-तपस्वी ! मैं तुम्हें सुख का सम्मान सिखाना चाहता हूं; सुख का सत्कार सिखाना चाहता हूं । कहता हूं : खोलो अपने द्वार । बांधो बंदनवार । करो स्वागत सुख का । क्योंकि परमात्मा महासुखरूप है । आनन्द ही आनन्द है ।

'एष ह्येवानन्दयाति ।' और वह इसीलिए तो आनन्द है, क्योंकि अनंत आकाश जैसा है; कभी चुकता नहीं । तुम छोटे-मोटे सुखों में सोचते हो––सुख पा लिया । तुम गलती में हो । इस बात को थोड़ा गौर से समझना ।

तुम्हारे छोटे-छोटे सुख एक उपद्रव कर रहे हैं । ये तुम्हें पण्डितों, पुरोहितों, और

साधु-महात्माओं के जाल में गिरा देते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, 'तुम्हारे छोटे-छोटे सुख--कहां मिला सुख ? बताओ--कहां मिला सुख ?' और तुम बता भी नहीं सकते। उनका तर्क ठीक लगता है। वे कहते हैं, 'ये क्षण-भंगुर सुख हैं। छोड़ो इनको ! चलो हमारे साथ। भजन-कीर्तन करो। त्याग-तपश्चर्या करो। सिर के बल खड़े होओ। उपवास करो। भूखे रहो। शरीर को गलाओ। तब कहीं जन्मों-जन्मों में असली सुख मिलेगा !'

तुम उनसे तर्क नहीं कर सकते। क्योंकि तुम भी जानते हो कि तुम्हारे सुखों में तुम्हें सुख नहीं मिला। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं : वे तुमसे जो कह रहे हैं, गलत कह रहे हैं। तुम्हारे सुखों में सुख उतना ही मिला, जितना मिल सकता था। उससे ज्यादा तुम चाहते थे, वह नहीं मिला। और उसी का वे फायदा उठा रहे हैं।

अब तुम चाहते थे कि भोजन से शाश्वत सुख मिल जाये ! तो तुम मूरख हो। भोजन से कैसे शाश्वत सुख मिल सकता है ? कल फिर भूख लगेगी। फिर तो एक दफे भोजन कर लिया सो कर लिया ! फिर दुबारा भोजन न करना पड़े ! यह तुम चाहते थे ! तो तुम्हारे चाह की गलती थी। भोजन का कोई कसूर नहीं है। तुमने चाह ही असंभव बना ली थी।

अब तुम सोचते हो कि इस शरीर में रहने से शाश्वत जीवन मिल जाये ! कैसे मिलेगा ! यह शरीर ही बना है--तो मिटेगा। इसमें तो उतना ही मिल सकता है, जितना मिल सकता है। इससे ज्यादा मांगते हो, वह मिलता नहीं। नहीं मिलता--विषाद पैदा होता है ! विषाद होता है--महात्मा का जाल पड़ा। उसने तुम्हारी गरदन दबाई। उसने कहा कि मैं पहले ही कह रहा था कि यहां दुख ही दुख है।

फिर भी मैं तुमसे कहता हूं : उसका तर्क गलत है। यहां उतना ही सुख है, जितना किसी वस्तु में हो सकता है। अब कोई रेत में से तेल निचोड़ना चाहे और न निचुड़े; तो इसमें रेत का कसूर है ? इसमें तुम्हारी मूढ़ता है--और कुछ भी नहीं।

अब लोग चाहते हों कि धन से ध्यान मिल जाये, तो गलती में हैं। धन से अच्छा मकान मिल सकता है। धन से सुंदर बगीचा बन सकता है। जरूर बनाओ। मगर धन से ध्यान नहीं मिल सकता। तुम धन से चाहते हो ध्यान मिल जाये ! महात्मा तुम्हारी गरदन पकड़ लेता है। वह कहता है--मिला ध्यान ? --नहीं मिला। छोड़ो धन।

मैं तुमसे कहता हूं : धन से जो मिल सकता है, वह धन से लो। बुद्धिमानी इसमें है। और जो ध्यान है, वह न तो धन से मिलता है, न धन छोड़ने से मिलता है। जरा मेरी बात पर खयाल कर लेना। क्योंकि वह जड़ की बात है। भूल की बात है।

न धन से ध्यान मिलता है, न धन को छोड़ने से मिलता है।

तुम जरा अपने महात्माओं से तो पूछो कि धन छोड़ने से ध्यान मिला ? मैंने पूछा है। और तुम्हारा एक महात्मा जवाब नहीं दे सका। मैंने महात्माओं पर वे सब तरकीबें अपनायीं, जो तरकीबें वे तुम पर अपनाते हैं। और मैं बड़ा हैरान हुआ। पता नहीं तुमने

क्यों नहीं ये तरकीबें उन पर अपनायीं अब तक !

वे तुमसे कहते हैं, भोजन से शाश्वत सुख मिला ? तुन उनसे पूछो, 'तुमको उपवास से शाश्वत सुख मिला ?' तुम कम से कम भोजन पा कर स्वस्थ तो हो ! कम से कम शरीर में बल तो है ! उठ-बैठ तो सकते हो !

पश्चिम में भोजन की सुविधा है, तो लोग ज्यादा जी रहे हैं। आज रूस में डेढ़ सौ साल की उम्र के हजारों लोग हैं। थोड़े-बहुत नहीं, हजारों की संख्या में। कोई आदमी डेढ़ सौ साल का हो जाये, तो रूस में अखबार में खबर नहीं छपती। अभी एक खबर छपी, जब एक आदमी दो सौ वर्ष का हो गया। डेढ़ सौ वर्ष के तो बहुत लोग हैं।

और यहां तुम्हारे ? अगर कोई सौ वर्ष का हो जाये, तो हम कहते हैं--है सतयुगी ! क्या गजब का आदमी है ! सौ वर्ष का हो गया !

महात्मा गांधी सोचते थे कि एक सौ पचीस वर्ष जीना है। यह तो पूना के लोगों की कृपा हो गयी उन पर, कि उनको नहीं जीने दिया ! नाथूराम गोडसे ने उनको जल्दी खतम कर दिया, कि काहे को इतनी देर परेशान होते हो ! छुटकारा दिला दिया जीवन से जल्दी ! भव-सागर से मुक्ति करवा दी उनकी !

पूना के लोग गजब के हैं ! ये भव-सागर से मुक्ति करवाते हैं ! एक सज्जन मुझे भव-सागर से मुक्ति करवा रहे थे ! --अभी कुछ ही दिन पहले, छुरा फेंक कर ! क्या-क्या समाज-सेवी पड़े हुए हैं ! अब मुझे भव-सागर से छूटना भी नहीं है, तो भी छुड़वा रहे हैं ! गांधीजी को छुड़वाया, तो ठीक भी; उनको तो छूटना भी था। मैं तो भव-सागर में बिलकुल मजे से तैर रहा हूं ! मगर इनके कष्ट देखो ! बेचारे कितना कष्ट उठाते हैं ! अब अगर इन पर झंझट पड़ेगी, अब मुकदमा चलेगा; सात साल, दस साल; सजा भुगतेंगे ! आये थे सेवा करने !

यह दुनिया बड़ी बुरी है। करो नेकी--बदी हाथ लगती है ! क्या गजब की दुनिया है ! यहां भला करने जाओ, बुरा हो जाता है ! आये तो थे बेचारे सेवा करने मेरी, अब दस साल उनको जेलखाने में कहीं सेवा न करनी पड़े ! मुझे यही चिंता होती है कि इस आदमी को बेचारे को दस साल खराब न हों जायें और !

एक सौ पचीस वर्ष जीने का जो इरादा महात्मा गांधी का था, वे सोचते थे, यह आखिरी कल्पना है। इससे ज्यादा कौन जी सकता है ! और उनकी धारणा यह थी कि एक सौ पचीस वर्ष जियेंगे वे--अपने उपवास, अपने ब्रह्मचर्य के बल पर ! वह तो अच्छा हुआ, भला हो नाथूराम का ! रामजी के ही एक रूप समझो--नाथू-राम ! तभी तो महात्मा गांधी ने, जब गोली लगी तो कहा, 'हे राम !' नाथूराम कहने लायक समय नहीं मिला, नहीं तो पूरा नाम लेते ! तो अंग्रेजी-हिसाब से आखिरी हिस्सा बोल दिया, कि 'हे राम !' नाम पूरा था--नाथू-राम !

राम का ही रूप समझो इनको, कि आ गये, और छुटकारा करवा दिया !

लेकिन अगर गांधी को खुद मरना पड़ता--और मरना ही पड़ता. . .। और एक सौ पचीस वर्ष, मैं नहीं सोचता कि वे जी सकते थे । भारत की भोजन व्यवस्था इतनी स्वस्थ नहीं है कि यहां एक सौ पचीस वर्ष जीना आसान हो जाये ।

अगर पहले मरना पड़ता, तो वे बड़े दुखी मरते । उस दुख से नाथूराम ने बचा दिया । वे दुखी मरते कि मेरी तपश्चर्या में कमी रह गयी ! वे तो हर छोटी-मोटी बात में समझ लेते थे कि मेरी तपश्चर्या में कभी रह गयी ! जैसे तपश्चर्या से कोई उम्र का संबंध है ! तपश्चर्या से उम्र का कोई संबंध नहीं है ।

शंकराचार्य तैंतीस साल की उम्र में मर गये । अगर तपश्चर्या से संबंध है, तो जाहिर है कि तपश्चर्या इनकी गड़बड़ थी ! और विवेकानंद चौंतीस साल में मर गये । अगर तपश्चर्या के संबंध है, तो जाहिर है कि तपश्चर्या गड़बड़ थी । तपश्चर्या से कोई संबंध नहीं है ।

आज योरोप के देशों में अस्सी वर्ष, पच्यासी वर्ष, नब्बे वर्ष, औसत उम्र है । स्वीडन की औसत उम्र नब्बे वर्ष है । अभी भारत की औसत उम्र छत्तीस वर्ष है ! तो अगर स्वीडन में डेढ़ सौ साल का आदमी मिल जाये, तो क्या अड़चन है ! भारत में भी नब्बे साल का आदमी मिल जाता है । छत्तीस वर्ष औसत उम्र है तब ।

ये जो हमारी आकांक्षाएं हैं. . .। शरीर तो मिटेगा ही--सौ साल में मिटे, डेढ़ सौ साल में मिटे । वैज्ञानिक कहते हैं कि तीन सौ साल जिंदा रह सकता है--कम से कम--अगर पूरी व्यवस्था दी जाये तो । समझो, तीन सौ साल भी जिंदा रह गया, तो भी मिटेगा तो ही, जायेगा तो ही । जो चीज पैदा हुई है, वह जायेगी । इससे तुम अगर शाश्वत की आकांक्षा कर रहे हो, तो भूल तुम्हारी है । इससे उतना ही मांगो, जितना यह दे सकता है । उससे तुम ज्यादा मांगते हो, फिर वह मिलता नहीं, तो फिर तुम्हारे साधु-महात्मा कहते हैं कि ' देखो, नहीं मिला न ! कहा था न ! छोड़ो-छोड़ो !'

मैं उनके तर्क को गलत मानता हूं । मैं तुमसे कहता हूं कि तुमने ज्यादा मांगा, वह तुम्हारी गलती थी । ज्यादा मत मांगो । जो मिल सकता है, वह मांगो । और जो नहीं मिल सकता, उसके लिए और रास्ते खोजो । इसको छोड़ने से वह नहीं मिल जायेगा ।

न तो धन को पकड़ने से, धन को भोगने से ध्यान मिलता है, न छोड़ने से ध्यान मिलता है । मैं ऐसे मुनियों को जानता हूं, जिनको सत्तर साल घर छोड़े हो गये; नब्बे-नब्बे साल की उम्र के हो गये हैं; और उनसे मैंने पूछा कि 'ध्यान मिला कि नहीं ?' वे कहते कि 'अभी नहीं मिला ! क्या करें ? कैसे ध्यान करें ? चित्त तो अभी भी काम करता है ! मन तो अभी भी विचारों से भरा हुआ है !'

तो मैंने कहा, 'एक बात तो साफ हुई तुम्हें कि नहीं--कि घर-द्वार छोड़ने देने से मन नहीं छूट जाता ! मन का घर-द्वार छोड़ने से क्या संबंध है ! मन के छोड़ने की

प्रक्रिया अलग है । विधि अलग है, विज्ञान अलग है ।' इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूं कि तुम विज्ञान समझो जीवन का ।

शरीर को स्वस्थ रखना है--भोजन । लेकिन भोजन से कुछ आत्मवान नहीं हो जाओगे । हां, आत्मा को स्वस्थ रखना है, तो तुम्हें दूसरा भोजन तलाशना होगा--ध्यान, प्रेम, मौन, शून्य--तो तुम्हारी आत्मा स्वस्थ होगी । और दोनों स्वस्थ होने चाहिए । इनमें कुछ विरोध नहीं है--कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा नहीं हो सकती ! कि ठीक भोजन करते ध्यान नहीं हो सकता । मैं तो मानता हूं, बिलकुल उलटी बात है ।

ठीक भोजन करो, तो ही ध्यान कर पाओगे ; नहीं तो ध्यान नहीं कर पाओगे । 'भूखे भजन न होंहि गुपाला !' तो जरा भूखे हो कर भजन तो करो ! ऊपर-ऊपर भजन निकलेगा--भीतर-भीतर भूख लगी रहेगी ! भीतर-भीतर खयाल चलता रहेगा कि कब भोजन मिले ! यह भजन कब खतम हो ! भजन कर ही इसलिए रहे हो, कि भोजन मिले !

लेकिन जब पेट भरा हो, तो स्वभावतः सरलता से, सहजता से भजन का आनन्द हो सकता है; ध्यान का आनन्द हो सकता है ।

जीवन का एक क्रमिक क्रम है । शरीर की जरूरतें पहले पूरी होनी चाहिए । फिर मन की जरूरतें पूरी होनी चाहिए । फिर आत्मा की जरूरतें पूरी होनी चाहिए । जब तीनों की जरूरतों में एक तालमेल बन जाता है, तब--रसो वै सः ! तब चौथी, तुरीय अवस्था पैदा होती है । तब तुम जान पाओगे, वह रस-रूप क्या है; वह आनन्द क्या है । वह आकाश क्या है ।

'वह आकाश की भ्रांति सर्व-व्यापक आनन्दमय तत्त्व न होता, तो कौन जीवित रहता ! और कौन प्राणों की चेष्टा करता ? वास्तव में वही तत्त्व सबके आनन्द का मूलस्रोत है ।'

जीवन को चाहो; जीवन को जियो--समग्रता से, सम्पूर्णता से । भगोड़ापन नहीं, भय नहीं; क्योंकि जीवन परमात्मा का पर्यायवाची है । जीवन ही वह रस है ।

दूसरा प्रश्न : भगवान ! आप कहते हैं कि नृत्य में डूबो, उत्सव मनाओ, गीत गाओ--यही धर्म है । लेकिन क्या यही सारे समाज के लिए संभव है ? इस देश में अस्सी प्रतिशत लोग तो निर्धनता का अभिशाप झेल रहे हैं, उनके पास फुर्सत ही नहीं है । क्या आपका यह हंसता, गाता और नाचता हुआ धर्म केवल मुट्ठी भर लोगों के लिए ही है, जो किसी भांति धन-संग्रह करके पहले ही सब तरह की सुविधाओं का मजा लूट रहे हैं--अथवा सामान्यजन के लिए आप धर्म का कोई सर्व-सुलभ उपाय बताते हैं ?

चिंतामणि पाठक !

पहली तो बात : तुम अपनी फिक्र के लिए यहां आये हो, कि सब की फिक्र के लिए ? तुमने कोई ठेका लिया है--सारे लोगों की फिक्र का ? तुम कौन हो उनकी चिंता करने वाले ? पहले तुम तो पा लो !

और तुम यह नहीं पूछते कि शास्त्रीय संगीत सबके लिए है या नहीं ! और तुम यह नहीं पूछते कि शेक्सपीयर के नाटक और कालिदास के शास्त्र, और भवभूति की रचनाएं, और रवींद्रनाथ के गीत सबके लिए हैं या नहीं ! तब तुम यह नहीं कहते कि कोई सस्ते कालिदास क्यों पैदा नहीं किये जाते ? जो सर्व-सुलभ हों ! धर्म के लिए ही क्यों यह आग्रह है तुम्हारा ?

धर्म को लोगों ने समझ रखा है--दो कौड़ी की चीज होनी चाहिए ! सस्ती होनी चाहिए ! सर्व-सुलभ होनी चाहिए ! और धर्म इस जीवन में सबसे कीमती चीज है; सबसे बहुमूल्य । यह तो जीवन का परम शिखर है । यहां कालिदास, भवभूति, रवींद्रनाथ, शेक्सपीयर और मिल्टन जैसे लोगों की भी पहुंच मुश्किल से हो पाती है । यहां आइंस्टीन और न्यूटन और एडिंग्टन जैसे वैज्ञानिकों तक की पहुंच नहीं हो पाती । सर्व साधारण की तो बात ही तुम छोड़ दो । यहां तो कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई जीसस--उंगली पर इने-गिने लोग पहुंच पाये । मैं क्या करूं ! नियम यह है । 'एस धम्मो सनंतनो !'

धर्म तो परम शिखर है । इसके लिए तो प्रतिभा चाहिए । इसके लिए तो बड़ी प्रखर प्रतिभा चाहिए, क्योंकि यह जीवन के आखिरी तत्त्व को खोज लेना है ।

तुम्हारा प्रश्न सोचने जैसा है । और पहले प्रश्न के संदर्भ में इसको लेना, तो आसान हो जायेगा समझना ।

कहते हो : 'आप कहते हैं कि नृत्य में डूबो, उत्सव मनाओ, गीत गाओ--यही धर्म है ।' निश्चित ही यही धर्म है । और अगर तुम नृत्य में नहीं डूब सकते, गीत नहीं गा सकते, उत्सव नहीं मना सकते--तो और क्या करोगे ?

तुम कहते हो, 'इसकी फुर्सत कहां है !' और चिलम पीने की फुर्सत है ! और ताश खेलने की फुर्सत है ! और अभी बरसात में चौपड़ बिछा कर बैठने की फुर्सत है ! और आल्हा-ऊदल गाने की फुर्सत है ! किन गंवारों की बात कर रहे हो यहां ? ये ही गंवार गांवों में बैठकर हनुमान चालीसा पढ़ रहे हैं ! और हनुमानजी की पूजा करने की फुर्सत! और गीत गाने की फुर्सत नहीं ! और नाचने की फुर्सत नहीं ! और उपद्रव करने की फुर्सत है ! हिन्दू-मुस्लिम दंगा करना हो, तो बिलकुल फुर्सत है ! और बलात्कार करना हो, तो फुर्सत है ! हरिजनों के झोपड़े जलाने हों, तो फुर्सत है ! और चुनाव लड़ना हो, तो फुर्सत है !

जो मर गये हैं बिलकुल, वे भी वोट देने पहुंच जाते हैं लोगों के कंधों पर बैठ कर ! अंधे, लंगड़े, लूले--इनको चुनाव में रस है ! और अगर इनसे कहो--उत्सव--तो चिंतामणि पाठक को बड़ी चिंता पैदा हो रही है !

तुम कहते हो--'फुर्सत कहां है लोगों को ! निर्धनता का अभिशाप झेल रहे हैं ।' कौन जिम्मेवार है ? अगर झेल रहे हैं, तो खुद जिम्मेवार हैं । और तुम जैसे लोग जिम्मेवार हैं, जो उनकी निर्धनता का किसी तरह का सुरक्षा का उपाय खोज रहे हो । क्यों झेल रहे हैं निर्धनता का अभिशाप ?

पांच हजार साल से क्या भाड़ झोंकते रहे ! अमरीका तीन सौ साल में समृद्ध हो गया । कुल तीन सौ साल का इतिहास है । और दुनिया के शिखर पर पहुंच गया ! तुम क्या कर रहे हो ? तुम्हें लेकिन फुर्सत है रामचरितमानस पढ़ने की ! हर साल रामलीला खेलने की । वही गांव के गुण्डे राम बन जायेंगे--और उनके पैर छूने की ! और गांव का कोई मूरख सीता बन जायेगा, और तुम जानते हो कि कौन है यह ! मूंछे मुड़ाये खड़ा हुआ है ! और 'सीतामैया-सीतामैया' कर रहे हो ! तुम्हें फुर्सत है इस सब की !

मैं नहीं देखता कि तुम्हें फुर्सत की कमी है । मैं गांवों से परिचित हूं । मैं गांव में ही पैदा हुआ हूं । गांव के लोगों के पास इतनी फुर्सत है कि समय कैसे काटें ! हर तरह से समय बरबाद करने की फुर्सत है ! मगर आलसी हैं; बेईमान हैं ।

और तुम्हारे महात्माओं ने तुम्हें बेईमानी और आलसीपन सिखाया है । वे तुम्हें सिखा गये, कि 'क्या करना है ! अरे, सबका देखने वाला भगवान है ! जब उसकी मरजी होगी, छप्पर फाड़कर देता है ! अभी तक किसी को छप्पर फाड़ कर दिया, देखा नहीं । और देगा भी, तो सम्हल कर बैठना; खोपड़ी न खुल जाये ! छप्पर ही न गिर जाये कहीं !

तुम कहते हो--फुर्सत नहीं है ! और कर क्या रहे हैं गांव के लोग चौबीस घण्टे ? और हर तरह के दंगे-फसाद की फुर्सत है ! सत्यनारायण की कथा में बैठने की फुर्सत है ! डण्डे चलाना हो, तो एकदम तैयार हैं ! नाग-पंचमी में दंगल करना हो, तो दंगल के लिए तैयार हैं ! सांप की पूजा करनी हो, तो ये तैयार हैं !

एक दूसरे सज्जन ने पूछा हुआ है कि मेरा विश्वास सनातन धर्म में है । बजरंगबली महावीर में मेरी अटूट श्रद्धा है । आपकी बातें मुझे दिलचस्प तो लगती हैं, लेकिन हमारे सनातन धर्म से उनका मेल नहीं बैठता । क्या आप बताने की कृपा करेंगे कि मुझमें क्या कमी है ?

नाम है--खिलिन्दा राम चौधरी । प्रधान, महावीर सेवा दल, पानीपत !

इस सब की फुर्सत है ! इन खिलिन्दा राम को तरह-तरह के खेल करने की फुर्सत है ! महावीर सेवा दल के प्रधान हैं--इसकी इनको फुर्सत है ! और बजरंगबली की सेवा करने की फुर्सत है !

और तुम्हें कोई भी चीज सही कही जाये, तो तुम्हारे सनातन धर्म से मेल नहीं

खाती ! तो न खाये ! तुम्हारा सनातन धर्म गलत होगा । मुझे कुछ पड़ी नहीं कि तुम्हारे सनातन धर्म से मेल खानी चाहिए ।

मैं तो अपनी बात कह रहा हूं । मेल खा जाये, तो तुम्हारे सनातन धर्म का सौभाग्य ! न खाये—तुम जानो । कोई मैंने ठेका नहीं लिया है, तुम्हारे धर्म से मेल बिठालने का । मैं किस-किस के धर्म से मेल बिठाऊं ! यहां तीन सौ धर्मों को मानने वाले लोग पृथ्वी पर हैं । अगर इन सब का ही मेल बिठाता रहूं, तो मेरा ही तालमेल खो जाये !

किस-किस का मेल बिठालना है ! यहां तरह-तरह के मूढ़ पड़े हुए हैं । और सबकी अपनी धारणाएं हैं ! अब तुम्हारी अटूट श्रद्धा बजरंगबली में है ! तुम आदमी हो या क्या हो ! और कमी पूछ रहे हो ! बजरंगबली से ही पूछ लेना । वे खुद ही हंसते होंगे, कि यह देखो मूरख ! खिलिन्दा राम ! राम हो कर और बजरंगबली की सेवा कर रहे हैं !

आजकल बजरंगबली तक राम की सेवा नहीं कर रहे हैं । क्योंकि उनको दूसरी रामलीला में ज्यादा पैसे पर नौकरी मिल गयी !

इस तरह से लोगों से यह देश भरा हुआ है । जमाने भर की जड़ता को तुम सनातन धर्म कहते हो ! हर तरह के अंधविश्वास को तुम सनातन धर्म कहते हो ! और तुम्हें जब कोई अनुभव नहीं है, तुम्हें अटूट श्रद्धा कैसे हो गयी ? और अटूट श्रद्धा थी, तो यहां किसलिए आये हो ? तुड़वाने आये हो श्रद्धा ! बजरंगबली तो वहीं उपलब्ध हैं पानीपत में । खुद पानी पियो, उनको पिलाओ । यहां किसलिए आये हो ! श्रद्धा तुड़वानी है ?

और दिलचस्पी मत लो मेरी बातों में । खतरनाक हैं ये बातें । इसमें बजरंगबली से हाथ छूट जायेगा । यह अटूट श्रद्धा वगैरह कुछ नहीं है । अटूट होती ही तब है, जब होती नहीं ।

तुम कहते हो कि 'मेरा विश्वास सनातन धर्म में है ।' कैसे तुम्हारा विश्वास है ? किस आधार पर तुम्हारा विश्वास है ? संयोग की बात है कि तुम हिन्दू घर में पैदा हो गये । तुमको बचपन में उठा कर मुसलमान के घर में रख देते, तो तुम्हारी अटूट श्रद्धा इस्लाम में होती । हिन्दुओं के गले काटते । तब तुम यह महावीर सेवा दल वालों की जान ले लेते । तब तुम कुछ और दल बनाते । रजाकार ! तब तुम दूसरा झण्डा खड़ा करते, कि 'इस्लाम खतरे में है ! और मेरा विश्वास इस्लाम में है !' और तुम ईसाई घर में पैदा हो जाते, तो तुम यही उपद्रव वहां करते ।

तुम्हारा विश्वास है कैसे ? किस आधार पर तुम्हारा विश्वास है ? सिर्फ यही न कि तुम्हारे मां-बाप ने तुम्हें यह सिखा दिया, कि 'हनुमानजी हैं ! ये पत्थर की मूर्ति नहीं हैं । इनकी सेवा करो । इन्हें नाराज मत करना । हनुमान चालीसा पढ़ो । यह, बेटा, बहुत फल देंगे । ये बड़े भोले-भाले हैं । इनको मना लेना बड़ा आसान है । जो

चाहोगे, ये कर देंगे !'

इसी सब पागलपन के पीछे तो यह देश गरीब है । यही सारा श्रम अगर देश को समृद्ध बनाने में लगे, तो इस देश के पास बड़ी समृद्ध पृथ्वी है । और हमारे पास पांच हजार साल का अनुभव होना चाहिए था । हमें तो दुनिया में शिखर पर होना चाहिए था । मगर एक तरफ अंध-विश्वास और दूसरी तरफ तुम्हारे महात्मागण, जो कह रहे हैं—'सब त्यागो, सब छोड़ो; भौतिकता छोड़ो !' तो गरीब न रहोगे, तो क्या होगा !

और फिर गरीब रहो, तो यहां इस तरह के प्रश्न खड़े करते हो, जैसे मेरा कोई जुम्मा है । मेरा कोई जुम्मा नहीं है । तुम्हारी गरीबी के लिए तुम जिम्मेवार हो । और अभी भी तुम्हारी गरीबी टूट सकती है । मगर जो आदमी तुम्हारी गरीबी तुड़वाने के लिए कोशिश करेगा, तुम उसकी जान लोगे । तुम्हें अपनी गरीबी से मोह हो गया है !

आखिर मेरा विरोध क्या है ! मेरा विरोध यह है कि मैं कह रहा हूं कि भारत को भौतिकता के ऊपर अपनी जड़ें जमानी चाहिए, क्योंकि जिस देश की जड़ें भौतिकता में हों, उसी देश के शिखर पर अध्यात्म के फूल खिल सकते हैं । यह मेरे विरोध का कारण है ।

इसलिए तुम्हारी संस्कृति मेरे कारण खतरे में है ! तुम्हारा धर्म खतरे में है ! उसकी रक्षा तुम्हें करनी है !

तुम पूछ रहे हो : 'क्या यही सारे समाज के लिए संभव है ?'

धर्म का समाज से कोई संबंध ही नहीं होता, पहली तो बात । व्यक्ति से संबंध होता है । तुमने कृष्ण से नहीं पूछा कि हे महाराज ! अर्जुन को तुम जो गीता समझा रहे हो, यह सारे समाज के लिए संभव है ? तुमने महावीर से नहीं पूछा कि सारे समाज के लिए नंगा होना संभव है ? कि सारा समाज पत्नी वगैरह को छोड़ कर भाग जायेगा, तो फिर महावीर वगैरह कैसे पैदा होंगे आगे ? कि महाराज, कुछ यह तो बता जाओ कि आगे तीर्थंकर वगैरह के पैदा होने की तरकीब क्या है ! कौन से जादू-मंतर से पैदा करेंगे ?

तुमने बुद्ध से नहीं पूछा कि यह सारे समाज के लिए संभव है ? तुमने किससे पूछा ? मुझसे तुम पूछते हो !

धर्म कभी समाज की बात नहीं रहा । धर्म व्यक्ति की बात है । समाज की कोई आत्मा ही नहीं होती । समाज तो केवल कोरा शब्द है । कहीं समाज मिला तुम्हें ? जैसे मैं तुमसे कहूं कि 'जाओ जरा समाज से मिल आओ !' तो किससे मिलोगे ? जब भी मिलोगे, किसी व्यक्ति से मिलोगे । मगर शब्द धोखा दे देते हैं ।

धर्म वैयक्तिक बात है । यह वैयक्तिक क्रांति है । यह एक-एक व्यक्ति को अपना निर्णय लेना पड़ेगा । मैं व्यक्तियों से बात कर रहा हूं—समाजों से नहीं । मैं समाज को मानता ही नहीं । मैं तो—व्यक्ति में मेरी निष्ठा है । व्यक्ति ही वास्तविक है; समाज

तो केवल संज्ञा मात्र है।

तो सारे समाज से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। अधिकतम, जितने व्यक्तियों तक अपनी खबर पहुंचा सकता हूं, पहुंचाऊंगा, । और जिनको नाचने की हिम्मत है, वे नाचेंगे। और जिनको गीत गाने की हिम्मत है, वे गीत गायेंगे। निश्चित ही उसके पहले उन्हें बहुत-सी बातें छोड़नी पड़ेंगी।

कई तो ऐसे लोग हैं, जिनको रोने की आदत पड़ गई है! कि जब तक रोयें न, उनके चित्त को चैन नहीं मिलता! उनके लिए मेरे पास जगह नहीं है।

और तुम कहते हो—'आपका यह हंसता, गाता, और नाचता हुआ धर्म क्या केवल मुट्ठी भर लोगों के लिए ही है?'

जो भी समझेगा उनके लिए है। वे मुट्ठी भर भी हो सकते हैं, आकाश भर भी हो सकते हैं। मगर कम से कम तुम तो समझो महाराज, चिंतामणि पाठक! कम से कम तुम तो कुछ बुद्धि लगाओ! यहां तक आ गये हो, अब तुम दूसरों की चिंता में न पड़ो। तुम अपनी चिंता कर लो, तो काफी!

तुम्हारा दीया जल जाये, तो शायद तुम किसी और का दीया जलाने में भी सहयोगी हो सकते हो।

अब तुम पूछ रहे हो कि 'जिन लोगों ने किसी तरह धन-संग्रह करके पहले से ही सब तरह की सुख-सुविधाओं का मजा लूट रहे हैं....!' तुम्हारे मन में ईर्ष्या दिखती है। और ईर्ष्या हमेशा बुद्धुओं का लक्षण है।

तुम क्या चाहते हो—ये भी भिखमंगे होते, तो बड़ा अच्छा होता! कम से कम कुछ लोग खाते-पीते हैं, इससे भी तुम्हें चैन नहीं मिल रहा है! सौ में से मुल्क में मुश्किल से दो प्रतिशत आदमी खाते-पीते हैं। अंट्ठानब्बे प्रतिशत से तुम्हें चैन नहीं मिल रहा है, शांति नहीं मिलती आत्मा को! इन दो प्रतिशत को भी नंगा कर दो, वही चेष्टा है—तथाकथित समाजवादियों की! कि इनको भी बांट दो। कि ये दो प्रतिशत भी जो खाते-पीते लोग दिखाई पड़ते हैं, इनको भी बांट दो! तो गरीबी और बढ़ जाये।

सौ प्रतिशत गरीब हो जायें, फिर बड़ी चैन की बांसुरी बजेगी! सभी एक जैसे हो गये, तो ठीक है! सभी नंगे खड़े हो जायें, तो चिंता हमारी मिटे! वह जो एक आदमी कपड़ा पहने दिखाई पड़ता है, उसके कपड़े को लोंच लेने का मन होता है! तुम्हारे मन में ईर्ष्या भरी हुई है, कि 'किसी भांति धन-संग्रह कर लिया!' तुम्हें कौन रोकता था?

और धन-संग्रह किसी भांति नहीं होता। उसके लिए भी बुद्धि चाहिए! बुद्धू भर नहीं कर पाते। मगर बुद्धू अपने बुद्धूपन का बचाव करने के लिए तरकीबें सोचते हैं। वे सोचते हैं, हम सीधे-सादे आदमी, धार्मिक आदमी, इसलिए धन इकट्ठा नहीं कर पाते। ये बेईमान धन इकट्ठा कर रहे हैं! बेईमानी के लिए भी थोड़ी बुद्धि चाहिए! और ईमानदारी के लिए तो बहुत बुद्धि चाहिए।

ईमानदारी से जो धर्म इकट्ठा कर सके उसके लिए तो परम बुद्धि चाहिए। मगर मैं बुद्धुओं के पक्ष में नहीं हूं। और बुद्धूपन को मैं कोई ईमानदारी नहीं मानता। डरपोक और कायरों को मैं कोई ईमानदार नहीं मानता।

ईर्ष्याएं छोड़ो। श्रम में लगो। तुम भी धन पैदा कर सकते हो। धन पैदा करना होता है। सारा देश धनी हो सकता है। सारी पृथ्वी धनी हो सकती है। लेकिन गलत धारणाएं हमें रुकावट डाल रही हैं।

और मैं तुमसे यह कहे देता हूं कि जो लोग सुविधाएं भोग रहे हैं, वे ही केवल धर्म का अर्थ समझ सकते हैं। राम किसी भिखमंगे के घर में पैदा नहीं हुए थे। उनके बाप दशरथ ने 'किसी भांति' धन इकट्ठा कर लिया होगा! धन आया कहां से? और न बुद्ध किसी घर में पैदा हुए थे गरीब के। और न महावीर किसी गरीब के घर में पैदा हुए थे। जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही राजाओं के बेटे थे। यह धन किसी तरह से इकट्ठा कर लिया होगा बेईमानों ने! और इन बेईमानों के घर में तीर्थंकर पैदा हुए!

कृष्ण भी कोई गरीब के बेटे नहीं थे। ये सब बेईमानों के घर में तुम्हारे अवतार पैदा हुए! इन अवतारों को शर्म न आयी! डूब मरें चुल्लू भर पानी में! होना था पैदा कहीं नंगे-भिखमंगे, कोढ़ी, लंगड़े, लूले—इनके घर में पैदा होना था! कोई जगह चुननी थी ढंग की। दरिद्रनारायण के घर में पैदा होना था! मगर एक भी दरिद्र-नारायण के घर में पैदा नहीं हुआ! तुम्हारा एक अवतार नहीं; एक बुद्ध नहीं, एक तीर्थंकर नहीं। क्या कारण होगा?

कारण साफ है। गणित साफ है। जिनके पास सारे तरह की सम्पन्नता होती है, उनके जीवन में ही बड़े सवाल उठते हैं। विराट सवाल उठते हैं। जिनके पास धन होता है, उनको यह बात दिखाई पड़ती है कि धन से न आनन्द मिला, न शांति मिली, तो अब हम क्या करें!

जिनके पास धन नहीं होता, वे सोचते हैं कि 'धन मिल जायेगा, तो सब मिल जायेगा।'

मैं तो सब को धनी देखना चाहता हूं, ताकि प्रत्येक व्यक्ति समझ पाये कि धन की एक सीमा है और उस सीमा के पार भी बहुत कुछ है। मगर वह धन हो, तो ही समझ पायेगा। नहीं तो नहीं समझ पायेगा।

अब मैं क्या करूं! तुम्हारा अतीत सड़ा-गला है। उसके लिए मैं जिम्मेवार नहीं हूं। मैं तुम्हारे भविष्य को बदल सकता हूं, लेकिन तुम मेरी सुनो तो!

मेरी बात सुनने की भी तैयारी नहीं है! मेरी गरदन काट देने की तैयारी है! तो तुम्हारा भविष्य भी इतना ही सड़ा-गला होगा, जितना तुम्हारा अतीत था। इससे भी ज्यादा सड़ा-गला होगा। क्योंकि सड़न-गलन पुरानी होती जा रही है। और-और गहरी होती जा रही है!

मगर मैं तुमसे इतना ही कहूंगा कि धर्म सर्व-सुलभ नहीं हो सकता । तुम्हें धर्म की ऊंचाई तक उठने के लिए श्रम करना होगा । धर्म तुम्हारी नीचाई पर नहीं उतर सकता । तुम्हें अगर सूरज की तरफ जाना है, तो तुम्हें पंख खोलने होंगे । तुम यह चाहो कि सूरज तुम्हारे घर में आये और द्वार खटखटाये कि 'भैया चिंतामणि पाठक ! उठो । मैं सूरज हूं ! आया हूं तुम्हारे घर में रोशनी करने !' तो तुम यह आशायें मत करो। सूरज की तो बात छोड़ो, बिजली घर के दफ्तर का कोई आदमी भी आने वाला नहीं है ! वहां भी जा कर रिश्वत दोगे, तो शायद बिजली का बल्ब तुम्हारे घर में लगे, तो लगे । सूरज क्या खाक तुम्हारे घर में आयेगा ! और आ जायेगा, तो तुम खाक हो जाओगे ।

तुम्हें ही उड़ना पड़ेगा । सत्य की तरफ ऊंचाई तक पहुंचने के लिए, शिखरों पर चढ़ने के लिए तुम्हें श्रम करना होगा ।

धर्म सर्व-सुलभ नहीं हो सकता । जिनको धर्म चाहिए, उनको तैयारी करनी चाहिए। उनको श्रम, साधना के लिए साहस जुटाना आवश्यक है । उसे ही मैं संन्यास कहता हूं ।

आज इतना ही ।

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक २४ जुलाई, १९८०

झूठा धर्म और राजनीति
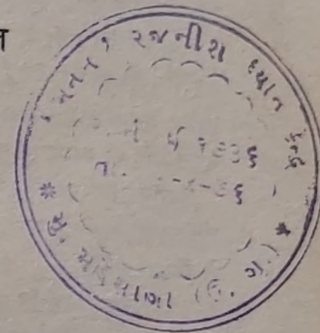
पहला प्रश्न : भगवान, अब तक धर्म और राजनीति को परस्पर-विरोधी आयाम माना जाता था । लेकिन आज यह साफ हो गया है कि धर्म और राजनीति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । आज भुज में स्वामिनारायण सम्प्रदाय के महंत हरिस्वरूपदास जी ने आपके कच्छ-प्रवेश को 'कच्छ संस्कृति पर आक्रमण' की संज्ञा दी है । तथा एक राजनीतिज्ञ श्री बाबू भाई शाह ने आपको 'साधु-वेश में शिकारी' सम्बोधित किया है !

इस धर्म और राजनीति के ब्लैक बोर्ड पर आपकी धार्मिकता सफेद खड़िया से लिखी हुई सिद्ध हो रही है ।

मुकेश भारती !

धर्म का सम्यक स्वरूप तो सदा राजनीति से उतने ही दूर है, जितने दूर पृथ्वी से आकाश । या शायद उससे भी ज्यादा दूर । पृथ्वी और आकाश के बीच तो शायद सेतु बनाया भी जा सके; धर्म और राजनीति के बीच कोई सेतु नहीं बन सकता है ।

धर्म का अर्थ होता है : आत्म विजय, स्वयं को जानना । राजनीति का अर्थ होता है : दूसरे पर मालकियत कायम करना । इन दोनों में क्या तालमेल हो सकता है ? राजनीति में प्रवेश ही वह व्यक्ति करता है, जो अपने भीतर अनुभव करता है कि अपना मालिक तो मैं कभी हो न सकूंगा । उस कमी को कैसे पूरी करूं ? उस खड्ड को कैसे भरूं ? वह खड्ड काटता है ।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एडलर ने उसे तो मनुष्य-जाति की सारी मानसिक रुग्णताओं का आधार-स्रोत माना है । उसे 'हीनता की ग्रंथि' कहा है—इन्फीरियॉरिटि कॉम्पलेक्स। भीतर लगता है : मैं कुछ भी नहीं हूं, तो कम से कम बाहर ही दिखावा कर लूं ! सिद्ध कर दूं बाहर दुनिया में कि मैं महान हूं । कि देखो, मेरे यश की पताका दूर-दिगंत तक उड़ रही है ! कि देखो, मेरे धन की राशि—कि मेरे पद की ऊंचाई—कि गौरीशंकर

की ऊंचाइयां छोटी हो गयीं ?

भीतर की कमी है, बाहर किसी तरह पूरा कर लूं। कम से कम औरों के सामने तो सिद्ध हो जायेगा कि मैं कोई छोटा-मोटा आदमी नहीं ! विशिष्ट हूं--साधारण नहीं। असाधारण हूं--सामान्य नहीं। हालांकि भीतर की हीनता ऐसे मिटती नहीं। वरन और भी प्रगाढ़ हो कर दिखाई पड़ने लगती है।

बाहर कितना ही धन इकट्ठा कर लो, भीतर की निर्धनता रत्ती भर कम नहीं होगी। हां, पहले दिखाई न पड़ती रही हो इतनी प्रगाढ़ता से, अब और भी प्रगाढ़ता से दिखाई पड़ेगी।

इसलिए राजनीति की दौड़ का कोई अंत नहीं आता। और आगे--और आगे ! और ज्यादा--और ज्यादा ! जितना जाओ आगे, उतना ही लगता है : अभी तो बहुत बाकी है। जितना पाओ, उतना ही लगता है : अभी तो मैं बहुत खाली। बाहर ढर लगते जाते हैं पद के, प्रतिष्ठा के, सम्मान के, अहंकार के--उनके ही अनुपात में भीतर का गड्ढा और भी साफ दिखाई पड़ने लगता है। शिखरों के पास ही तो गड्ढे साफ दिखाई पड़ते हैं !

राजनीति की यही दुविधा है। और जब मैं 'राजनीति' शब्द का प्रयोग करता हूं, तो खयाल रखना--धन की दौड़ भी राजनीति है--पद की दौड़ ही नहीं। सब दौड़ राजनीति है। 'और' की दौड़ राजनीति है। राजनीति के फिर बहुत पहलू हैं। लेकिन जहां 'और' की मांग है, वहां राजनीति है।

धर्म है संतुष्टि--राजनीति है असंतोष। इनमें क्या तालमेल हो सकता है ? कोई तालमेल नहीं हो सकता।

जो अपने को जानने में लग जाता है, उसकी राजनीति मिटनी शुरू हो जाती है। उसे क्या पड़ी किसी को जीतने की ! अपने को जीता--तो सब जीता। अपने को जाना--तो सब जाना। उसे फिर सिकंदर नहीं होना; नेपोलियन नहीं होना; स्टैलिन नहीं होना; माओत्से तुंग नहीं होना। ये सब बचकानी बातें हो जाती हैं।

जो स्वयं हो गया--वह सब हो गया। जो स्वयं हो गया, वह तो परमात्मरूप हो गया। उसने तो भगवत्ता पहचान ली। अब उससे ऊपर और क्या बचा ? अब उसके पार और क्या है ! उसके पार और कुछ भी नहीं है। उसने तो आखिरी ऊंचाई छू ली। परम शिखर पर पहुंच गया। इसलिए उसके जीवन में राजनीति नहीं होगी। और जो राजनीति की दौड़ में है, उसके जीवन में धर्म नहीं होगा।

लेकिन यह जो मैं कह रहा हूं, सम्यक धर्म के संबंध में ही लागू होता है। तथाकथित धर्मों के संबंध में लागू नहीं होता। तुम दोनों में भेद स्पष्ट कर लो। वहीं तुमसे चूक हो रही है।

तुमने लिखा : 'अब तक धर्म और राजनीति को परस्पर-विरोधी आयाम माना

जाता था। लेकिन आज यह साफ हो गया है कि धर्म और राजनीति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।'

झूठा धर्म निश्चित ही राजनीति का ही एक अंग है। झूठा धर्म हमेशा राजनीति के साथ सांठ-गांठ करता है। झूठा धर्म उसी षड्यंत्र का हिस्सा है, जिसका नाम राजनीति है।

राजनीतिज्ञ एक तरह से लोगों पर कब्जा पाता है। तथाकथित झूठा धार्मिक व्यक्ति भी दूसरे ढंग से औरों पर कब्जा पाता है। और जिसने दूसरों पर कब्जा जमा लिया है, उसे बेचैनी तो होगी। उसे बेचैनी इस बात से होगी कि कोई और उसकी 'भेड़ों' को न छीन ले जाये ! उसे घबड़ाहट होगी। वह डरा-डरा रहेगा !

मेरे विरोध में स्वामिनारायण सम्प्रदाय के महंत हरिस्वरूपदास जी को और क्या कारण हो सकता है ! कहीं ऐसा न हो कि स्वामिनारायण सम्प्रदाय की कुछ भेड़ें मेरी बातों में आ जायें, बहक जायें ! कुछ भेड़ों को अपना स्वरूप याद आ जाये और सिंह की गर्जना करने लगें ! तो महंत की जो प्रतिष्ठा है, जो साख है, उसको चोट पड़ेगी !

इसके पहले जैन मुनि भद्रगुप्त ने वक्तव्य दिया है। सारे जैनियों को आह्वान किया है कि मेरे कच्छ-प्रवेश को रोकना ही होगा। इसके लिए जो भी कुरबानी करनी पड़े, जैन-समाज को कुरबानी देने के लिए तैयार हो जाना चाहिए ! जैसे मेरे कच्छ-प्रवेश से जैन-धर्म को खतरा है !

अब स्वामिनारायण सम्प्रदाय को खतरा पैदा हो गया ! अभी और-और खतरे पैदा होंगे। अभी तो सभी धर्मों के लोगों को खतरे पैदा होंगे। अभी तो वे सभी इकट्ठे होंगे ! अभी जैनों के सातों सम्प्रदायों ने इकट्ठे हो कर निर्णय किया है कि हम संघर्ष करेंगे। अभी तुम पाओगे कि जैन, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई--वे भी सब इकट्ठे हो कर घोषणा करेंगे कि हम संघर्ष करेंगे। क्योंकि सब का भय एक है। उनकी आपसी दुश्मनियां भूल जायेंगे वे। क्योंकि मैं 'किसी' धर्म का नहीं हूं। धर्म मेरा है। मेरे संन्यासी किसी धर्म के नहीं हैं। हालांकि धर्म मेरे संन्यासियों का है। और धर्म बहुत नहीं हैं। बहुत तो राजनीति ने बना दिया है उन्हें। नहीं तो धर्म तो एक ही है। धर्म कैसे बहुत हो सकते हैं ?

जब विज्ञान बहुत नहीं होते, तो धर्म कैसे बहुत हो जायेंगे ! कोई हिन्दुओं की भौतिकी (फिजिक्स) मुसलमानों की भौतिकी से अलग होगी ? कि हिन्दुओं का रसायनशास्त्र जैनों के रसायनशास्त्र से अलग होगा ? यह बात ही मूर्खतापूर्ण मालूम होगी ! कोई कहे कि यह जैन-रसायनशास्त्र, और यह हिन्दू-रसायनशास्त्र !

धर्म भी न हिन्दू होता, न मुसलमान होता। न ईसाई होता--न जैन होता। धर्म तो एक धार्मिकता की बात है। जीवन को जीने की एक कला है। जीवन को प्रामा-

णिकता से जीने का विज्ञान है। जीवन को आनन्द-उत्सव बनाने का राज है, रहस्य है कीमिया है। अलग-अलग नहीं है। चाहे हिन्दू को आनन्दित होना है—और चाहे मुसलमान को—आनन्द होने का सूत्र एक है।

जिसको भी संतुष्ट होना है, उसको राजनीति की दौड़ छोड़नी पड़ेगी। फिर वह कहीं भी हो, दुनिया के किसी कोने में हो। सभ्यताएं अलग-अलग होती है; संस्कृति, अलग-अलग नहीं होती, नहीं हो सकती है। सभ्यता का अर्थ होता है—तुम्हारे कपड़े पहनने का ढंग, तुम्हारे बाल कटाने का ढंग, तुम्हारे खाने बनाने का ढंग, तुम्हारे मकान बनाने का ढंग, मकान को सजाने का ढंग। सभ्यता ऊपरी चीज का नाम है।

स्वभावतः आदिवासी जंगल में रहने वाला एक तरह के मकान बनाता है। और बम्बई में रहने वाला दूसरे तरह के मकान बनाता है। उनकी जरूरतें अलग। अब कोई आदिवासी को तीस मंजिल मकान थोड़े ही बनाने की जरूरत है! क्या करेगा बना कर तीस मंजिल मकान! चढ़ते-उतरते मर जायेगा! व्यर्थ ही परेशान हो जायेगा! और तीस मंजिल मकान बना कर फिर बस्ती कहां बसेगी? एक ही मकान में बस्ती खतम हो जायेगी! बस्ती की आबादी ही दो सौ, तीन सौ होती है! एक मकान को भी पूरा नहीं भर पायेगी! और फिर जमीन इतनी पड़ी है आदिवासी के पास। पूरा जंगल उसका है, पहाड़ उसके हैं! क्या जरूरत कि मकान के ऊपर मकान, डब्बे के ऊपर डब्बों को रखता चला जाये! और फिर डब्बों में से लोग झांक रहे हैं, जैसे कबूतरों के लिए हम खोके बना देते हैं। उनमें से वे झांक रहे हैं और गुटर-गूं कर रहे हैं! बम्बई और न्यूयॉर्क में जरूरत है। आदमी थोड़े ही हैं; कबूतरखाने हैं! लेकिन जंगल में जहां जमीन खूब पड़ी है, वहां क्या जरूरत है? तो वहां एक-मंजला मकान काफी है। सीमेंट का भी बनाने की जरूरत नहीं है। घास-फूस का पर्याप्त है। घास-फूस का ही पर्याप्त है, और उचित है। क्योंकि वही उसे उपलब्ध है; आसानी से उपलब्ध है। और कोई शाश्वत बनाने की जरूरत है? हर साल घास बदल ले। हर साल नया कर ले। तुम्हें तो बासे मकान में रहना पड़ता है। रहे आओ बासे मकान में जिंदगी भर! एक बासे मकान से दूसरे बासे मकान में चले जाओ। वह मकान भी बदल लेता है हर साल। उसके पास सामान भी थोड़ा है। उतनी उसकी जरूरत है। उससे ज्यादा का उसे प्रयोजन नहीं है। उसकी सभ्यता अलग होगी। उसका काम-धाम, उसका जीवन एक और दुनिया में है।

लेकिन संस्कृति तो आंतरिक संस्कार का नाम है।

'सभ्यता' शब्द का अर्थ समझो। सभ्यता शब्द का अर्थ होता है, सभा में बैठने योग्य। बाहरी बात है। सभ्य उसको कहते हैं, जो सभा में बैठने योग्य हो। जिसे तमीज हो, शिष्टाचार हो। जो चार आदमियों के बीच बैठे, तो इतनी भद्रता हो उसमें, कि कैसे बैठना, कैसे उठना। औरों के साथ हमारे जो संबंध हैं, उनका नाम सभ्यता है।

वह बाह्य घटना है। स्वभावतः अलग-अलग देश में अलग-अलग होगी। और कई दफे बड़ी भूल हो सकती है।

जापानी मित्र मुझसे संन्यास लेने आते हैं। धीरे-धीरे मुझे समझ में आया; फिर भी भूल जाता हूं, क्योंकि वे सिर अलग ढंग से हिलाते हैं। जब हमको 'हां' कहना होता है, तो हम सिर को ऊपर-नीचे करते हैं। जब उनको हां कहना होता है, तो वे सिर को दायें-बायें करते हैं! सारी दुनिया में सिर को दायें-बायें करने का मतलब होता है—नहीं। लेकिन जापान में अर्थ होता है—हां! और जब वे सिर को ऊपर-नीचे करें, तो वे 'नहीं' कर रहे हैं!

तो पहले पहल तो मुझे बड़ी मुश्किल होती थी। उनसे मैं पूछूं कि 'रुकोगे कुछ देर!' वे बेचारे हां कह रहे हैं, और समझूं कि नहीं! तो मैं उनसे पूछूं कि 'इतनी क्या जल्दी है?' मगर वे मुझसे कहें, 'जल्दी! साल भर रुकने आये हैं!' जापानी सबसे ज्यादा रुकते हैं। जर्मनों का नम्बर दो है। जापानियों ने सबको मात किया हुआ है! छह महीने से कम तो कोई जापानी रुकता ही नहीं। नौ महीने, साल भर, दो साल तक रुकने वाला जापानी आता है। कि वह दो साल के लिए आया हो। वह बेचारा दो साल रुकने आया है और मैं समझ रहा हूं—मैं उससे पूछता हूं: इतनी जल्दी क्या है? तो वह स्वभावतः पूछेगा कि जल्दी!

उसके सिर हिलाने का ढंग अलग है। फिर बाद में मुझे नर्तन ने, जो मेरा अनुवाद करती है, जापानियों और मेरे बीच, उसने मुझे बताया कि यह झंझट बार-बार खड़ी होती है!

इटैलियन मित्र आते हैं। उनके गले में माला डालता हूं, पूछता हूं—'मेरी तरफ देखो।' वे फौरन आंख बंद कर लेते हैं! सिर्फ इटैलियन आंख बंद करते हैं, और कोई नहीं बंद करता। मैं बड़ा हैरान कि क्या बात है! मैं जब भी कहता हूं, मेरी तरफ देखो, वे फौरन आंख बंद कर लेते हैं! मैं देखने को कह रहा हूं, वे आंख बंद कर रहे हैं; बात क्या है? कहीं कुछ मेरे और उनके बीच भेद पड़ रहा है। शायद वे ही ठीक हैं। क्योंकि मुझे देखना हो, तो आंख ही बंद करके देखा जा सकता है। वह भी देखने का एक ढंग है। स्त्रियां उसी ढंग से देखती हैं। वह ज्यादा प्रेमपूर्ण ढंग है—और ज्यादा आंतरिक।

जब स्त्री किसी को गले लगेगी, तो आंख बंद कर लेगी। इसलिए स्त्रियों को पुरुषों के रंग में, रूप में, आकृति में उतनी उत्सुकता नहीं होती, जितनी उनकी संस्कारशीलता में उत्सुकता होती है। स्त्रियां अलग चीजों से प्रभावित होती हैं—पुरुष अलग चीजों से। पुरुष देखता है कि रंग कैसा है, रूप कैसा है, नक्श कैसा है। नख से शिख तक वह पूरा का पूरा रूप-रंग-आवरण—सब देखता है। बाल का रंग, चमड़ी का रंग, नाक का ढंग, आंख का ढंग! स्त्री इन चीजों में उतना रस नहीं लेती। उसका रस

कुछ और है। वह देखती है : पुरुष में कितना प्रसाद है; कितना विनम्र, कितना सरल है। कितना आनन्दित व्यक्ति है, आह्लादित व्यक्ति है ! अब आह्लाद का, आनन्द का, प्रसाद का नाक की लम्बाई से कोई संबंध नहीं है। न रंग से कोई संबंध है।

और स्त्री को जब तुम आलिंगन करोगे, तो वह आंख बंद कर लेगी, क्योंकि वह तुम्हें भीतर से पकड़ना चाहती है। वह तुम्हारे भीतर डूब जाना चाहती है। वह अंतर्मुखी है। पुरुष बहिर्मुखी है। वह स्त्री को प्रेम भी करना चाहता है, तो बिजली का बल्ब जला कर करना चाहता है। वह देखना चाहता है कि उसके चेहरे पर क्या भाव आते हैं। यहां तक ही नहीं—यहां तक पागल पुरुष हैं कि आईने लगा रखते हैं अपने बिस्तर के ऊपर, कि अगर ठीक से न देख पायें, तो आईने में दिखाई पड़ता रहे !

और पश्चिम के मुल्कों में तो मूर्खों ने हद्द कर दी। कैमरे लगा रखे हैं आटोमैटिक, कि फिर बाद में अलबम में देखेंगे कि प्रेम में क्या-क्या घटा ! इसलिए पुरुषों के पास इस तरह की किताबें छपती हैं उनके लिए, इस तरह की पत्रिकाएं—जिसमें स्त्रियों के नग्न चित्र होते हैं। पुरुष को रस है उनमें। स्त्रियों को इस बात में बहुत रस नहीं है। बहुत उत्सुकता नहीं है कि वे पुरुषों के नग्न चित्र देखें। उसे पुरुष की आत्मा में रस है, देह में कम।

शायद इटैलियन ही ठीक करते हैं कि आंख बंद कर लेते हैं ! वे मेरे साथ तल्लीन हो रहे हैं। वे एकरूप हो रहे हैं।

ये सभ्यता के भेद हैं। सभ्यता अलग-अलग होगी। लेकिन संस्कृति अलग-अलग नहीं होगी। और यहां तो हद्द हो गयी ! भारतीय संस्कृति का ही मामला नहीं है, अब, तो कच्छ की संस्कृति पर हमला है ! तब तो गांव-गांव की संस्कृति का अलग हो जायेगा मामला !

अभी तो भारतीय संस्कृति की बात थी। अब भारतीय संस्कृति वगैरह तो दूर, महाराष्ट्रियन संस्कृति है, और गुजराती संस्कृति है ! और गुजरात की संस्कृति भी जाने दो भाड़ में ! कहां गुजरात ! कच्छ की संस्कृति ! थोड़े दिन में मांडवी की संस्कृति और भुज की संस्कृति ! फिर मोहल्लों की संस्कृति। फिर हर घर की संस्कृति ! फिर अपनी-अपनी संस्कृति !

'संस्कृति' का अर्थ समझो। उसका शाब्दिक अर्थ भी प्यारा है : संस्कार शीलता, परिष्कार होना। जीवन भीतर ऊंचाइयां छूने लगे। तुम्हारे भीतर शिखर उठने लगें चैतन्य के। वह आत्मा को आविष्कृत करने का विज्ञान है। वह कच्छ की, और गुजरात की, और महाराष्ट्र की, और कर्नाटक की नहीं होती। न भारत की होती है, न चीन की होती है, न जापान की होती है।

अगर लाओत्जू, बुद्ध, जीसस, मोहम्मद, बहाउद्दीन, कबीर, नानक—एक साथ बैठें, तो उनकी सभ्यताएं तो अलग-अलग होंगी, लेकिन उनकी संस्कृति बिलकुल अलग-

अलग नहीं होगी। सभ्यताएं तो अलग-अलग होंगी।

बुद्ध एक ढंग से बैठेंगे—पद्मासन लगा कर। शायद जीसस से पद्मासन न लगे। जिंदगी भर नहीं लगाया, तो लगे कैसे ! लाओत्जू जिंदगी भर भैंसे पर सवार हो कर चलता था। अब बुद्ध को तुम भैंसे पर बिठाओगे, फौरन गिरेंगे। चारों खाने चित्त पड़ेंगे ! भैंसे पर कभी बाप-दादे नहीं बैठे ! और चीन में पुराना रिवाज है भैंसे पर सवार होना। तो कोई अड़चन न थी। लाओत्जू की सवारी ही भैंसा था।

और जीसस तो गधे पर बैठ कर चलते रहे। अब महावीर ने कितना ही परित्याग कर दिया हो राज्य का, सब छोड़ दिया हो, मगर उनसे भी तुम कहो कि गधे पर बैठो, तो वे भी झिझकेंगे ! कि नंग-धड़ंग—और गधे पर ! क्या और बदनामी करवानी ! वैसे ही तो लोग नंगे-लुच्चे समझते हैं ! क्योंकि महावीर बाल लोंच कर उखाड़ देते थे, इसलिए लुच्चे ! और नंगे रहते थे, इसलिए नंगे। यह 'नंगा-लुच्चा' शब्द सबसे पहले महावीर के लिए उपयोग में आया था ! अब तो तुम किनको नंगे-लुच्चे कहते हो ! कहना ही नहीं चाहिए। यह तो महावीर जैसे व्यक्ति के लिए उपयोग किया गया महान शब्द है ! बाल लोंचे कोई, और नग्न रहे।

महावीर भी कहेंगे कि एक तो वैसे ही लोग नंगे-लुच्चे कह रहे हैं—और गधे पर बिठाल दो ! मगर जीसस जिंदगी भर गधे पर बैठे। वह जेरुशलम का रिवाज था; कोई अड़चन न थी। सभी गधे पर बैठते थे, उसमें कोई बाधा ही न थी।

लेकिन संस्कृति अलग-अलग नहीं होगी। अगर ये सारे लोग बैठेंगे, तो एक दूसरे को तत्क्षण पहचान लेंगे। इनके भीतर का स्वाद एक होगा।

एक व्यक्ति, एक ईसाई पादरी झेन फकीर रिंझाई के पास बाइबिल ले कर पहुंचा। प्रभावित करने, और रिंझाई को ईसाई बनाने। ईसाइयों को एक पागलपन सवार है : सारी दुनिया को ईसाई बनाना है ! जैसे इतने ईसाई काफी नहीं ! हर तरह के उपाय में लगे रहते हैं ! बस, ईसाई बन जाओ ! वह राजनीति का जाल है। क्योंकि राजनीति रहती है संख्या पर। जितने ज्यादा ईसाई होंगे, उतना ईसाइयों का बल होगा पृथ्वी पर। इसलिए दूसरे भी उत्सुक होते हैं कि हम भी यही धंधा करें।

तो आर्य समाजी हैं; उनको कोई ईसाई हो जाये हिन्दू, तो उसको फिर से हिन्दू बनाना है ! अब एक दफे भूल कर ली, तो कर लेने दो। दुबारा तो न करवाओ ! चलो, ईसाई हो गया है, ठीक है, होने दो। कुछ हर्जा क्या है ! अगर जीसस से इसको कुछ सीख मिल जाये, तो भी ठीक है। नहीं सीख पाया तुम्हारे कृष्ण से, तो जीसस से सीख लेने दो ! शायद वहां इसके जीवन का फूल खिल जाये। किसी भूमि में खिले, फूल तो खिलने दो। नहीं, इसको फिर खींच-तान कर हिन्दू बनाना है ! फिर इसको आर्य समाजी बनाना है !

सबको सवार है भूत—संख्या बढ़ाने का ! कि संख्या बढ़ जानी चाहिए। संख्या

बढ़ेगी, तो वोट का अधिकार तुम्हारे हाथ में है। वोट का अधिकार तुम्हारे हाथ में है, तो राजनीति तुम्हारी है ! राजनीति उनकी है, जिनके पास भीड़ है।

तो यह पादरी गया था। सुना था इसने कि रिंझाई सरल-सीधा आदमी है। सोचा कि चलो, बदल लेंगे ! जीसस के प्रसिद्ध वचन हैं, जो उन्होंने पर्वत पर प्रवचन दिया। तो उसने सोचा कि यही सुनाऊं। तो उसने कहा कि 'क्या आप पसंद करेंगे, मैं कुछ मेरे धर्म-ग्रंथ के वचन सुनाऊं !'

रिंझाई ने कहा, 'जरूर !'

उसने पहला वचन पढ़ा कि 'धन्य हैं वे, जो सरल हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।'

रिंझाई ने कहा कि 'बस, और ज्यादा सुनाने की कोई जरूरत नहीं। जिसने भी यह कहा हो, वह व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया था।'

वह ईसाई पादरी तो बोला, 'और तो सुनिये !'

उसने कहा, 'लेकिन बात ही खतम हो गई। इसके आगे अब कुछ बचा नहीं !'

उसने पूछा, 'यह भी तो पूछिये कि ये वचन किसके हैं ?'

उसने कहा, 'यह भी क्या करूंगा ! नाम कुछ अर्थ रखता है ! किसी के भी हों, जिसने भी यह कहा है, वह आदमी बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया है।'

जीसस का नाम भी उसने नहीं पूछा। क्या करना है ! जब सामने सागर बह रहा हो, तो चख लिया। पाया, कि नमकीन है। कहा कि ठीक है। अब यह सागर अरब सागर हो, कि बंगाल सागर हो, कि हिंद महासागर हो, कि पैसेफिक महासागर हो—कोई भी सागर हो, क्या लेना-देना है ! सागर का भी कोई नाम होता है ? हमने दे दिये नाम। नमकीन उसका स्वाद चख लिया, उसका रस ले लिया। और एक बूंद ही बता देती है बात !

उसने कहा, 'बस, अब और तुम मेहनत न करो। मैं पूरी तरह राजी। जिसने भी यह कहा, वह आदमी बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया।'

वह ईसाई पादरी तो बड़ा हतप्रभ हुआ कि ऐसे आदमी के साथ क्या करना ! इसको तो जीसस का नाम भी बताना मुश्किल है; ईसाई बनाना तो बहुत दूर की बात है !

लेकिन उसको समझ में ही नहीं आ रहा है कि ऐसे व्यक्ति को क्या ईसाई बनाना है ! यह तो स्वयं ईसा है। यह तो स्वयं बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति है, इसलिए तो तत्क्षण पहचान गया।

महावीर जीसस को पहचान लेंगे। जीसस मोहम्मद को पहचान लेंगे। मोहम्मद बुद्ध को पहचान लेंगे। कबीर नानक को पहचान लेंगे। नानक फरीद को पहचान लेंगे। बात भी न होगी। आंख आंख में बात हो जायेगी। नजर नजर में बात हो जायेगी।

खामोशी में बात हो जायेगी। नजर से नजर कह देगी। शब्द भी उपयोग न करने पड़ेंगे।

बुद्ध ने कहा है कि दो अज्ञानी मिलें, तो खूब चर्चा होती है। हालांकि उसमें मतलब कुछ नहीं होता; बकवास होती है। दो ज्ञानी मिलें, चर्चा बिलकुल नहीं होती, मतलब बहुत होता है। बात होती ही नहीं, मगर बड़ी 'बात' होती है। बात इतनी बड़ी होती है कि बात में अंट नहीं सकती, समा नहीं सकती। आकाश जैसी होती है, कहां शब्दों में समाओगे ? कहां शब्दों के छोटे-छोटे आंगन, घरघूले—उसमें कहां विराट आकाश को भरोगे ! यूं बात बहुत होती है, मगर नजरों नजरों में हो जाती है। बिन बोले हो जाती है ! बिन डोले हो जाती है। हलन-चलन भी नहीं होता। लहर भी नहीं उठती और संदेश यहां से वहां हो जाते हैं। ज्योति ज्योति को तत्क्षण पहचान लेती है। आंख वाला आंख वाले को पहचान लेता है। जागा हुआ आदमी जागे हुए दूसरे आदमी को पहचान लेता है। हां, सोया हुआ आदमी जागे हुए आदमी को नहीं पहचान सकता। और दो सोये आदमी तो बिलकुल ही नहीं पहचान सकते, चाहे रात भर बड़बड़ायें ! और अकसर सोये हुए आदमी बड़बड़ाते हैं। मगर कौन किसकी सुन रहा है ?

बुद्ध ने कहा, दो ज्ञानी मिलते हैं, तो बोलते नहीं। बिन बोले बात हो जाती है। दो अज्ञानी मिलते हैं, तो बहुत बकवास होती है ! ऐसी होती है कि सिर खुल जायें ! बकवास ही बकवास में सिर खुल जायें ! बात ही बात में बतंगड़ बन जाये। बात में से बात निकल आये। कुछ का कुछ हो जाये !

एक ज्ञानी और एक अज्ञानी मिल सकते हैं। ये तीन ही तो घटनाएं हो सकती हैं मिलने की। एक ज्ञानी और अज्ञानी मिलता है, तो ज्ञानी कहने की कोशिश करता है उसको, जो कहा नहीं जा सकता। और अज्ञानी उसको अपने अज्ञान से समझने की कोशिश करता है। ज्ञानी उसकी खबर देना चाहता है उसे, जो शब्दों के पार है। और अज्ञानी अपनी मूढ़ताओं के जाल में घिरा हुआ उन्हीं के माध्यम से उसे समझने की कोशिश करता है ! तो कुछ का कुछ समझ लेता है ! कुछ कहो, कुछ समझ लेता है।

मगर ज्ञानी और अज्ञानी के बीच वार्ता हो सकती है। क्योंकि कम से कम एक तो उसमें जागा हुआ है। वह कोशिश करके, खींच कर अज्ञानी को ला सकता है उस झरोखे पर। समझा-बुझा कर, मना कर, फुसला कर, प्रलोभन दे कर उस झरोखे पर ला सकता है, जहां से सूरज दिखाई पड़ जाये। जहां से खुला आकाश, चांद-तारे दिखाई पड़ जायें।

यही तो सारी चेष्टा है सत्संग में।

मैं क्या कर रहा हूं ? तुम्हें फुसला रहा हूं कि झरोखे पर आ जाओ। मगर तुम अपनी-अपनी जिद्द में बैठे हुए हो ! कोई कहता है कि हम तो बजरंगबली पर भरोसा करते हैं। जितने हुड़दंगअली हैं, सब बजरंगबली पर भरोसा करते हैं ! ये सिर्फ तुम्हारे हुड़दंगेपन का सबूत है, और कुछ भी नहीं।

इससे बजरंगबली का कोई कसूर नहीं है। इससे सिर्फ तुम्हारी बुद्धि की जड़ता का पता चलता है। और कुछ भी नहीं।

मगर बहुत दिन तक बात सुनी हो, तो हम जकड़ जाते हैं।

कल ही पूछा था न खिलाड़ी राम ने! तीन राम तो यहां मौजूद हैं। एक खयाली राम भी मौजूद हैं! और एक बुलाकी राम मौजूद हैं! तीनों के प्रश्न आ गये। मैं भी थोड़ा सोचने लगा कि असली राम क्या बिलकुल दुनिया से नदारद ही हो गये हैं! खयाली राम--बुलाकी राम--खिलाड़ी राम! यह तो ऐसे ही हुआ, जैसे असली घी नदारद हो गया है। तरह-तरह के घी उपलब्ध हैं! असली डालडा तक नदारद हो गया!

'खयाली राम' मतलब खयाल ही खयाल में राम हैं! और 'खिलाड़ी राम' यानी खेल-खेल में राम। मतलब--कोई गंभीरता से मत लेना इनको! शुद्ध राम का पाना भी मुश्किल है! उसमें भी शर्तें जुड़ी हुई हैं!

और अगर इनको कुछ कहो, तो इनके हृदय को चोट पहुंच जाती है। एकदम आघात हो जाता है कि हमारी अटूट श्रद्धा पर चोट हो गई!

श्रद्धा पर कभी चोट होती ही नहीं। श्रद्धा को कोई चोट पहुंचा सकता ही नहीं। श्रद्धा ज्ञान का नाम है। और श्रद्धा का अर्थ विश्वास नहीं होता। विश्वास तो श्रद्धा का दुश्मन है। जो जितना विश्वास करता है, उतना ही श्रद्धा से दूर है।

विश्वास का अर्थ है: पता तो नहीं है, मान लिया है। श्रद्धा का अर्थ है: पता है। इसलिए मानें न मानें, तो करें क्या! मानना ही पड़ेगा। विश्वास में चेष्टा है मानने की। श्रद्धा में न मानना भी चाहो, तो कोई उपाय नहीं है।

श्रद्धा अखंड है। और विश्वास कितना ही अटूट तुम्हें मालूम पड़ता हो, जरा में टूट जायेगा।

झूठा धर्म विश्वास पर जीता है। झूठी संस्कृति विश्वास पर जीती है। असली संस्कृति, असली धर्म श्रद्धा का आविष्कार है।

धर्म है वह नियम, जिसके माध्यम से संस्कृति का जन्म होता है। धर्म है वह पत्थर, जिस पर तुम्हारी प्रतिभा पर धार रखी जाती है। जैसे कोई पत्थर पर घिस-घिस कर तलवार पर धार रखता हो। धर्म है वह पत्थर, जिस पर तुम्हारी प्रतिभा की तलवार पर धार रखी जाती है। और वह जो धार आ जाती है प्रतिभा पर, उसका नाम संस्कृति है।

धर्म से संस्कृति पैदा होती है, संस्कार पैदा होता है, परिष्कार पैदा होता है। तुम शुद्धतर होने लगते हो। तुम पवित्रतर होने लगते हो। तुम्हारे जीवन में नये-नये फूल खिलते हैं; नयी-नयी गंध उड़ती है। नया संगीत उठता है। नये काव्य का आविर्भाव होता है।

लेकिन झूठा धर्म और झूठी संस्कृति हमेशा विश्वास पर आधारित होती है। इसलिए हमेशा भयभीत होती है। 'इसलाम खतरे में है'--यह भी क्या बकवास है! इसलाम कभी खतरे में नहीं है। और जो खतरे में है, वह इसलाम नहीं! हिन्दू-धर्म खतरे में है! पागल हो गये हो! और तुम धर्म को बचाओगे--हद हो गई! धर्म तुम्हें बचाता। तुम्हें धर्म को बचाना पड़ रहा है! यह तो यूं हुआ कि--

सेठ चंदूलाल घर आये। एकदम पत्नी से बोले कि 'सौभाग्य की बात है आज, कि यूं तो सब लुट गया, मगर मेरी पिस्तौल बच गई! डाकुओं ने घेर लिया। जेबें खाली कर डालीं। हाथ की घड़ी भी उतार ली। अरे और तो और--मेरी टोपी तक ले गये! जूते ले गये। कोट उतार लिया।'

पत्नी ने कहा, 'लेकिन तुम्हारे पास पिस्तौल थी। तुम करते क्या रहे?'

बोले, 'मैं पिस्तौल को ही तो बचाता रहा! कि ये हरामजादे कहीं पिस्तौल न ले जायें! क्योंकि वही महंगी चीज थी। मगर धन्यवाद हो परमात्मा का, कि किसी की नजर ही न पड़ी पिस्तौल पर! मैंने भी ऐसी छुपाई थी बिलकुल अपनी धोती में!'

अब पिस्तौल तुम्हारी रक्षा के लिए है, कि तुम पिस्तौल को धोती में छिपा कर बैठे हुए हो! कि मेरी पिस्तौल खतरे में है! तो पिस्तौल है किसलिए?

कौन धर्म को बचायेगा? --ये महंत स्वरूपदास जी धर्म को बचायेंगे? ये ही तो हत्यारे हैं! धर्म की हत्या कौन कर रहा है? महंत का मतलब ही यही समझना चाहिए कि जिसने कर दी हत्या। हंता--महंता--महान हंता! मार-मूर कर बैठे हैं बिलकुल! हत्या करके बैठे हैं। लाश पर सवार हैं!

अब इनको खतरा है कि कोई आ कर कह न दे कि यह तुम जिस चीज को पकड़े बैठे हो, यह धर्म नहीं है।

खतरा धर्म को नहीं है। खतरा झूठे धर्म को जो लोग धर्म की तरह चला रहे हैं--उनको है। असली सिक्के को क्या खतरा होता है? नकली सिक्के को खतरा होता है। नकली सिक्का चलाने वाला डरा-डरा जाता है। चुपचाप निकालता है। जल्दी से पकड़ा कर भागता है। दस रुपये का नोट देगा, तुम उसको वापस जो पैसे लौटाओगे, उनकी गिनती भी नहीं करता। क्योंकि गिनती-विनती की, इतने में कहीं तुम दस का नोट पहचान लो! जब कोई आदमी तुम चिल्हर वापस लौटाओ, गिनती न करे, फौरन गौर करना! हां, कुछ महापुरुष होते हैं, उनकी बात छोड़ दें।

चंदूलाल! दस का नोट दिया उन्होंने; एक सिनेमा में जा कर टिकिट खरीद रहे थे। और फिर एक-एक रुपये को, जो नौ रुपये फिर वापस मिले, उसको गौर से देख रहे थे।

उसने पूछा, 'भाई क्या बात है? कुछ कमी है?'

'नहीं-नहीं। कोई बात नहीं। कमी वगैरह कुछ भी नहीं है। मैं तो यही देख रहा

था कि कहीं वही हाल तो नहीं है, जो मेरी नोट का था ! कहीं तो एक किसी तरह उसको चला कर बचे । अब इनको चलाते फिरो !'

वह जो नकली पर भरोसा किये बैठा है, या नकली पर लोगों को भरोसा करवा रहा है, उसको खतरा है ।

बड़े मजे की बात है ! सारे जैन मुनि हैं कच्छ में । स्वामिनारायण सम्प्रदाय के स्वामीगण हैं । और हिन्दू संन्यासी हैं । मुसलमान हैं, मौलवी हैं, पंडित हैं—इन सबको मुझ एक अकेले आदमी से क्या खतरा हो सकता है ? खतरा मुझे हो, क्योंकि इनकी भीड़ है ! मुझे तो कोई खतरा दिखाई नहीं पड़ता । खतरा इन सबको हो रहा है, इससे बात जाहिर है कि मामला क्या है ।

जेब काटने की एक घटना पर लम्बी-चौड़ी जिरह होने के बाद जिसकी जेब कटी थी, उससे पूछा गया, 'आपको विश्वास है कि इसी व्यक्ति ने आपकी जेब काटी ?'

उत्तर मिला, 'विश्वास है नहीं—था । जिरह के बाद तो मुझे शक हो रहा है कि मैंने उस दिन कोट पहना भी था या नहीं !'

ये लोग तर्क का जाल फैला कर बैठे हुए हैं । किसी तरह लोगों के सिर पर जबर-दस्ती थोप दिये हैं विचार । तो इनको खतरा है कि कहीं उखड़ न जाये यह झूठी पर्त ! कहीं यह लीपापोती खुल न जाये ! कहीं ये झूठी गांठें वक्त पर दगा न दे जायें । कहीं कोई आ कर इनको तोड़ न डाले !

नहीं तो मेरी चुनौती है । आखिर उन्हीं लोगों से तुम बात कर रहे हो सदियों से, उन्हीं से मुझे भी बात करनी है—करने दो । तुम भी करो । मैं भी बात करूं । जिसकी बात उनको रुचेगी, जिसकी बात उनको भली लगेगी, उसके साथ हो लेंगे ! अब तुम्हारी उनको भली न लगे, तो मैं क्या करूं ? अगर मेरी भली लगे, तो मेरा क्या कसूर ? निर्णय उनके हाथ में है । लेकिन खतरा क्या है तुमको ?

खतरा यही है कि तुम्हें खुद ही शक है कि तुम्हारी बात में बल कितना है ! न तुम जानते हो, न जिनने तुम्हें समझाया है, वे जानते हैं । न तुम जिनको समझा रहे हो, वे जानते हैं । यह सब अंधेरे में बैठे हुए जो चर्चा चल रही है, यह छोटे-से दीये के जलने से भी घबड़ाता है अंधेरा । इसके प्राण कंपते हैं कि यह टूट न जाये !

'क्या तुमको गवाही देने के लिए किसी ने पहले से ही सिखा-पढ़ा कर भेजा है ?' जज ने पूछा ।

'जी हां,' उत्तर मिला ।

प्रतिपक्षी वकील उछला, 'मैं तो पहले ही कह रहा था कि यह बच्चा सिखा-पढ़ा कर लाया गया है ।'

वकील को शांत रहने का आदेश दे कर जज ने लड़के से पूछा, 'किसने सिखाया तुम को ?'

'मेरे पिताजी ने ।'

वकील ने जज का आदेश भूल कर फिर उतावली में कहा, 'माननीय महोदय, एकदम ठीक कह रहा है यह लड़का । इसके बाप ने इसको सिखा-पढ़ा कर भेजा है ।'

इस बार भी जज ने वकील की ओर ध्यान नहीं दिया और लड़के की ओर मुड़ कर तीसरा प्रश्न किया, 'क्या सिखाया है तुम्हें ?'

लड़के ने कहा, 'यही कि अदालत में प्रतिपक्षी वकील तुम्हें तरह-तरह से परेशान करेगा, पर तुम उसका खयाल न करना; सच्ची बात ही कहना ।'

मैं लोगों को क्या कह रहा हूं ! इतना ही कह रहा हूं कि सच्ची बात कहो—सच्ची बात जीओ । इससे जो झूठ के सौदागर हैं, उनको चिंता हो रही है । फिर उस झूठ के सौदागर में राजनीतिज्ञ भी हैं और धार्मिक भी हैं । उन दोनों को झंझट है । उन दोनों का पुराना षडयंत्र है ।

राजनेता और धर्मगुरु सदियों से सांठ-गांठ किये बैठे हैं । एक ने कब्जा कर लिया है आदमी के शरीर पर, और दूसरे ने कब्जा कर लिया है आदमी की आत्मा पर । दोनों ने बंटवारा कर लिया है कि हम आत्मा पर कब्जा रखेंगे, तुम शरीर पर कब्जा रखो । तुम हमारे काम में दखलंदाजी मत देना, तुम हमारी प्रशंसा करना; हम तुम्हारे काम में दखलंदाजी नहीं देंगे । तुम्हें जरूरत पड़ेगी, हम तुम्हारी सहायता करेंगे; हमें जरूरत पड़े, तुम हमारी सहायता करना । लेकिन हम एक दूसरे का साथ देंगे, क्योंकि हमारा धंधा एक है । वे दोनों के दोनों साझीदार हैं एक ही धंधे में । और धंधा क्या है ? आदमी के शोषण का धंधा है ।

इससे मुझसे दोनों नाराज हैं । नहीं तो राजनीतिज्ञों को और धार्मिक को मेरे विरोध में एक साथ खड़े हो जाने की क्या जरूरत ?

तुमने पूछा है कि 'एक राजनीतिज्ञ श्री बाबूभाई शाह ने आपको साधुवेश में शिकारी सम्बोधित किया है ।'

साधु का मेरा वेश है नहीं । पक्का शिकारी हूं ! सिर्फ शिकारी हूं ! और शिकार करने के सिवाय मुझे कोई शौक नहीं । वे गलती में हैं । साधुवेश कहां ? इतने लोगों को मैंने साधुवेश पहना दिया, मैंने नहीं पहना ! मेरा न कोई गुरु है, न मेरा कोई धर्म है ! न मेरा कोई शास्त्र है । न मेरा कोई वेश है । मेरी तो मौज है । दिल आ जाता है, तो तुर्की टोपी लगा लेता हूं । सरदार गुरदयालसिंह को भाव आ गया कि 'एक दिन तो आप सरदारी साफा बांधिये !' मैंने कहा, 'ले आओ ।' सो वे साफा बांध गये ला कर । तो मुझे कोई अड़चन नहीं है । मुझे क्या तकलीफ है ! मेरा कोई वेश वगैरह नहीं है । मुझे कोई आग्रह नहीं है ।

मेरी एक संन्यासिनी ने मुझे पत्र लिखा कि 'एक दिन आप टाई बांध कर आयें ! मैंने कहा, 'मुझे कोई अड़चन नहीं है । मैं तो नंग-धड़ंग और टाई बांध कर आ सकता

हूं; तू क्या बातें कर रही है ! कि महावीर स्वामी भी सिर पीट लें, कि हद्द हो गई ! कि कम से कम नंग-धड़ंग हुए, तो टाई नहीं बांधना ! टाई बांधने वाले भी सिर पीट लें कि हद्द हो गई ! टाई की भी इज्जत गई ! इस आदमी के हाथ में जिस चीज की इज्जत न चली जाये, कहना मुश्किल है ।

शिकारी हूं । नाहक साधुवेश वगैरह की बात न करो । मैं कोई महात्मा हूं, कि कोई बाबा हूं ! कि कोई महंत हूं, कि कोई संत हूं ! इन सब टुच्ची-फुच्ची बातों में मुझे कोई रस नहीं है ।

मैं तो अपनी मौज से जी रहा हूं । जो मेरी मौज । कोई मेरे ऊपर किसी तरह का आग्रह मैंने रखा नहीं है ।

लेकिन इनकी अड़चनें तुम समझो । इन बेचारों की तकलीफ भी समझो । इन पर दया भी खाओ । ये दीन हैं, अत्यंत दीन हैं । ये क्या कह रहे हैं, कि 'कच्छ की संस्कृति पर आक्रमण हो रहा है !'

मैं अपने कमरे से बाहर निकलता नहीं । मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मैं महाराष्ट्र में हूं, कि गुजरात में हूं, कि हिन्दुस्तान में हूं, कि जापान में हूं । मैं अपने कमरे में ही रहूंगा । वही चार दीवालें मेरे कमरे की, कहीं भी रहें । और तुम जान कर हैरान होओगे कि मैं एक-सा ही कमरा बनवा लेता हूं, जहां रहता हूं । जबलपुर में था, तो मेरा कमरा ऐसा था । बम्बई में था,तो मेरा ऐसा कमरा था । यहां हूं, तो मेरा कमरा वैसा ही है । मुझे सच में पक्का पता ही नहीं चलता कि मैं कहां हूं । कमरा ही एक जैसा रहता है ! और चौबीस घण्टे उसी में रहना है !

और मुझे कोई रस नहीं है कच्छ वगैरह में ! क्या मुझे रस पड़ा हुआ है ? तुम सोचते हो, मैं कभी मांडवी जाऊंगा, कि कभी भुज जाऊंगा ? कभी नहीं जाऊंगा ! मैं तो अपने कमरे में प्रवेश कर जाऊंगा––बात खतम हो गई ! फिर उस कमरे से क्या मुझे निकलना है ?

इतना ही रास्ता जो कमरे से यहां तक सुबह तुम्हारे पास आता हूं, यही मैं कुल-जमा इतनी यात्रा करता हूं ।

मुझसे कच्छ की संस्कृति को क्या खतरा है ? और आक्रमण ! जिनको उत्सुकता हो, उनको मेरे पास आना पड़ेगा । अब जिनको उत्सुकता है, उनको यहां भी आना हो तो आ जाते हैं । यहां भी, आखिर कच्छ से आ कर लोग यहां भी संन्यस्त हुए हैं । कच्छ में मेरे संन्यासी हैं । जिनको बिगड़ना ही है, उनको तुम कैसे रोकोगे ? वे कच्छ से बेचारे यहां तक आते हैं !

और यूं मुझसे मिलना आसान नहीं है । जिसने बिगड़ने की जिद्द ही कर रखी हो, वही मिल पाता है । जिसने कसम ही खा ली हो कि बिगड़ेंगे ही, वही मिल पाता है । हर-किसी से मैं मिलता भी नहीं हूं ।

ये कोई आक्रमण के ढंग हैं ? यह मैं किसी के घर पर जा कर दरवाजे खटखटाता हूं ? कि किसी की गरदन पकड़ता हूं ? असल में बहुत मुश्किल है आश्रम में प्रवेश । हिंदुस्तान में है कोई दूसरा तुम्हारा धार्मिक व्यक्ति जिसके आश्रम में प्रवेश के लिए तुम्हें पहले पैसा देना पड़ता हो ? अपनी गरदन कटवाओ––और पैसा दो ! अब तुम्हारा दिल ही है, तो अब मैं क्या करूं ! तो मैं तो अपनी मेहनत का पैसा लूंगा ! तुम्हें गरदन कटवानी है, मैं मुफ्त में ही काटूं !

तो अब जिसको गरदन कटवानी है, वह आयेगा । मैं कहीं भी रहूं, वह आयेगा । और सच यह है कि कच्छ मैं जा रहा हूं, क्योंकि पूना में जब तक रहूंगा, पूना के कुछ लोग गरदन कटवाने से बचे हुए हैं, इनके लिए कच्छ जाना पड़ रहा है ! क्योंकि जब मैं कच्छ जाऊंगा, तब ये आयेंगे ! ऐसे बुद्धू हैं !

मैं बम्बई था, तो कुछ लोग नहीं आये बम्बई । पूना आ गया, तो अब आये ! जब तक बम्बई था, तब तक उनने सोचा कि कभी भी चले जायेंगे ! जब पूना आ गया, तो उनने सोचा कि अब चले ही जाना चाहिए । पता नहीं, फिर जाना हो पाये, न हो पाये !

यह चेतना मेरे सामने बैठी हुई है । इससे पूछो । यह उसी मकान में रहती थी, वुडलैण्ड में, जिसमें मैं रहता था । मेरी खोपड़ी पर बैठी थी ऊपर ! तब न आयी ! और फिर यहां आयी. तो गई ही नहीं ! अब वहीं उसी मकान में था मैं, तो सोचती थी कि कभी भी चले जायेंगे ! ऐसी जल्दी क्या है ! लिफ्ट वहीं मेरे दरवाजे पर से रोज गुजरती रही । आती रही, जाती रही । इसमें ही जाती होगी, आती होगी ! मगर मेरी नजर में थी । शिकारी जो ठहरा ! इसमें मैं ध्यान लगाये बैठा था ! कि तू बच ले––कब तक बचती है ! मगर तुझको बिगाड़ कर रहूंगा ! और बिगाड़ कर ही रहा । और खुद बिगड़ी सो बिगड़ी, पति को भी बिगाड़ दिया ! मैं तरकीब जानता हूं । पहले पत्नियों को बिगाड़ लेता हूं, फिर उनके पतियों को बिगाड़ लेता हूं ! अरे जब पत्नी बिगड़ गई, तो पति की क्या हैसियत ! वे तो बेचारे छाया की तरह अपने आप चले आयेंगे !

पूना के नालायकों की वजह से कच्छ जा रहा हूं ! नहीं तो इनकी गरदन नहीं कटेगी; ये यूं ही रह जायेंगे । और तुम जान कर हैरान होओगे कि अब कच्छ की खबर जो जोर पकड़ी, तो आने लगे ! यूं नहीं आते थे । और छोटे-मोटे लोग ही नहीं, पूना के उद्योगपति, आ कर प्रार्थना करने लगे कि मत जाइये ! कि 'हमने तो सुना ही नहीं । हम तो कभी बैठे ही नहीं, आये ही नहीं !' और मैं यहां छह साल से क्या कर रहा हूं ? अब जब कि उनको पक्का होने लगा कि जा ही रहा हूं, तो अभी पूना के उद्योगपतियों का एक प्रतिनिधि-मण्डल महाराष्ट्र के चीफ मिनिस्टर को मिलने जा रहा है, कि मुझे रोका जाये ! मैं पूना न छोडूं । जब तक पूना में था, तब तक इनमें से कोई न आया ! अब ये आये हैं प्रार्थना करने कि 'मत जाइये ! क्यों आप कच्छ जाते हैं ! आपको क्या

तकलीफ है ? आपको पूना में कौन-सी सुविधाएं चाहिए ?'

कल एक उद्योगपति आये कि 'दो हजार एकड़ जमीन मैं यहां इंतजाम करता हूं। आप हां भर भर दें ! कहीं मत जायें। महाराष्ट्र को क्यों छोड़ते हैं ?'

मैं जब पहुंच जाऊंगा कच्छ, तब ये वहां आयेंगे। तभी ये वहां आयेंगे। नहीं तो ये नहीं आने वाले हैं।

मैं जबलपुर था। जो लोग कभी जबलपुर नहीं आये, मिलने नहीं आये—अब वे यहां आ कर दावेदारी करते हैं कि हम तो जबलपुर से हैं ! हमें तो मिलने का पहले अधिकार है। और मैं बीस साल जबलपुर में था, तब तुम कहां थे ! कभी तुम्हारी शकल न देखी।

यह आदमी बड़ा अजीब आदमी है !

कच्छ के लोगों को बिलकुल नहीं घबड़ाना चाहिए। ये स्वामी हरिस्वरूपदास जी, इनको तो बिलकुल नहीं घबड़ाना चाहिए। कच्छियों को बचाने का सबसे ज्यादा ठीक उपाय यह है कि मुझको कच्छ में बुला लो ! कच्छी निश्चित हो जायेंगे कि अब कोई फिक्र नहीं है। कभी भी चले जायेंगे ! अभी यहां आते हैं कच्छी। संन्यस्त भी होते हैं। और मुझे इन सबकी बकवास रोक नहीं पायेगी। क्योंकि मेरे पास दूसरी तरफ से भी रोज खबरें आ रही हैं। कच्छ के युवकों ने खबर भेजी है कि 'पंद्रह हजार युवक तैयार हैं। आप जिस दिन आयें, हम स्वागत के लिए तैयार हैं। और देखें, कौन रोकता है !'

अब ये अपने हाथ से मुसीबत में पड़ेंगे। ये चुपचाप रहें। शांति से अपना भजन-कीर्तन करो। तुम्हें क्या करना है इन बातों में ! जिन्हें बिगड़ना है, वे कोई न कोई रास्ता खोज लेंगे। और जिनको मेरा शिकार ही होना है, वे हो ही जायेंगे।

और तुम्हारे बचाने से बचने वाले नहीं हैं। सिर्फ तुम्हारी घबड़ाहट उनको और भी बता देगी कि अरे, दो कौड़ी के हो ! क्या घबड़ाते हो ! एक आदमी के आने से पूरा कच्छ इतना घबड़ाया हुआ हो ! सारे साधु-महात्मा, सारे राजनेता इतने घबड़ाये हों, ऐसी क्या घबड़ाहट है ? कोई मैं जादू कर दूंगा सारे लोगों को, जा कर !

मगर बेचैनी का कारण यह है कि बुनियादें झूठ पर खड़ी हैं। और मैं तो दो-टूक बात कहने का आदी हूं। जैसा है, वैसा ही कह देता हूं। मैंने तो कसम खायी है कि जैसा है वैसा ही कहूंगा, चाहे कोई भी परिणाम हो।

मेरे पहुंचने से इन सबकी जो ढोल में पोल है, उसके खुल जाने का डर है। मगर वह इनके शोरगुल मचाने से ही खुली जा रही है ! मैं अभी पहुंचा ही नहीं हूं, ये अपने हाथ से ही अपनी पोल खोले दे रहे हैं ! चुप रहते, तो शायद थोड़ी देर छिपी भी रहती।

और यह कैसा कमजोर हो गया देश ! यह कैसा नपुंसक हो गया देश ; यहां देश में लोग घूमते थे। बुद्ध पूरे विहार में घूमे; महावीर घूमे। शंकराचार्य तो पूरे देश में घूमे। नानक ने तो देश के बाहर तक यात्राएं कीं ! मक्का और मदीना तक यात्राएं कीं।

लोग प्रभावित होते थे, आनन्दित होते थे कि शंकराचार्य का गांव में आगमन हो रहा है। निश्चित ही उस गांव के पण्डित को अड़चन आने वाली है। लेकिन वे भी हिम्मत के लोग थे।

जब मण्डन मिश्र के गांव मण्डला में शंकराचार्य गये, विवाद करने मण्डन मिश्र से, तो मण्डन मिश्र ने आह्लादित हो कर उनका स्वागत किया। ये शानदार लोग थे ! क्योंकि यह कहना कि यह तो हम पर हमला हो जायेगा, इस बात का सबूत होगा कि तुम कमजोर हो ! तुम्हारे पास बुनियाद नहीं है।

मण्डन मिश्र ने स्वागत किया कि 'मैं धन्यभागी हूं कि तुम इतनी दूर से, दक्षिण से, केरल से यात्रा करके आये! मैं तो बूढ़ा हो गया हूं। मैं चाहता तो भी इतनी यात्रा नहीं कर सकता था। (पैदल यात्रा के दिन थे।) तुमने बड़ी कृपा की, जो तुम आये ! और मैं गौरवान्वित हूं कि मुझसे विवाद करने तुम इतनी दूर से आये हो !'

विवाद हुआ। लेकिन एक बड़ी अड़चन थी। अड़चन यह थी कि विवाद का निर्णायक कौन हो ? क्योंकि कोई भी विवाद का निर्णायक हो, वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, जो शंकराचार्य को भी समझ सके, मण्डन मिश्र को भी समझ सके। जिसकी प्रतिभा इनसे कम तो होनी ही नहीं चाहिए; थोड़ी ज्यादा ही हो !

मण्डन मिश्र ने कहा कि 'एक व्यक्ति को मैं जानता हूं, लेकिन मैं नहीं कह सकता कि उस व्यक्ति को न्यायाधीश बनाया जाये।'

शंकराचार्य ने कहा, 'आप कहें या न कहें, मुझे भी उस व्यक्ति का पता है। मैं निवेदन करता हूं कि उस व्यक्ति को मेरा भी उतना ही भरोसा है, जितना आपका !'

और वह व्यक्ति कौन था ?—वह मण्डन मिश्र की पत्नी थी ! भारती। मण्डन मिश्र ने स्वभावतः कहा कि 'मैं कैसे कहूं कि मेरी पत्नी न्यायाधीश बन कर बैठे ! क्योंकि उसमें तो यह हो सकता है कि वह पक्षपात कर जाये! वह मेरे पक्ष में निर्णय दे दे।'

शंकराचार्य ने कहा, 'मुझे बिलकुल भी चिंता नहीं है। मैंने उसकी बड़ी ख्याति सुनी है। उससे योग्य और कौन निर्णायक होगा ! वह निर्णायक हो।'

पत्नी निर्णायक हुई। छह महीने विवाद चला और पत्नी ने छह महीने बाद निर्णय दिया कि मण्डन मिश्र हार गये !

शानदार लोग थे !

पत्नी निर्णय दे सकी कि पति हार गया। और हार गया, इसलिए अब पति को एक ही उपाय है कि वह शंकराचार्य का शिष्य हो जाये। इनसे दीक्षित हो।

शंकराचार्य भी चौंके। इतनी निष्पक्षता ! इतनी सरलता ! सत्य के प्रति ऐसा अद्‌भुत भाव कि कोई नाता-रिश्ता काम नहीं करता। सब नाते-रिश्ते फीके पड़ जाते हैं सत्य के सामने !

लेकिन भारती अद्‌भुत महिला थी। मण्डन मिश्र से तो उसने कहा कि 'तुम्हें

शंकराचार्य का शिष्य होना पड़ेगा ।' लेकिन शंकराचार्य से कहा कि 'सुनो । अभी विवाद पूरा नहीं हुआ । मण्डन मिश्र हारे हैं; मैं उनकी अर्धांगिनी हूं । इसलिए अभी तुमने सिर्फ आधे मण्डन मिश्र को जीता । अभी आधा मण्डन मिश्र मुझमें जिंदा है । तुम मुझे भी जीत लो । तो ही जीत पूरी होगी अन्यथा अधूरी है । मण्डन मिश्र तो तुम्हारे शिष्य हो जायेंगे, लेकिन मैं नहीं । मैं तुम्हें विवाद के लिए चुनौती देती हूं । और मण्डन मिश्र तो हार चुके हैं, वे तुम्हारे शिष्य हैं । इसलिए ये न्यायाधीश हो जायें ।'

शंकर थोड़े घबड़ाये ! घबड़ाये इसलिए कि स्त्री से उन्होंने कभी विवाद नहीं किया था । पहला मौका । और स्त्री से विवाद करना जरा झंझट की बात है ! क्योंकि स्त्री के सोचने-विचारने के ढंग और होते हैं ! उसकी तर्क-पद्धति और होती है । तर्क से कम जीती है वह; उसकी जीवन की प्रक्रिया अनुभूतिगत होती है—तर्कगत नहीं होती । इसलिए थोड़े झिझके ।

लेकिन भारती ने कहा कि 'आप झिझकेंगे तो जीत अधूरी रहेगी । मण्डन मिश्र को आप ले जायें । मगर भूल कर भी कभी मत कहना कि मण्डन मिश्र पूरे जीते गये । अभी मैं जिंदा हूं और मुझे हरा दें, तो अच्छा हो, ताकि हम दोनों ही आपके शिष्य हो जायें !'

चुनौती स्वीकार करनी पड़ी । और वही हुआ, जो होना था, जिससे घबड़ा रहे थे शंकराचार्य । उसने पहला ही प्रश्न जो पूछा, वह कामशास्त्र के संबंध में था !

शंकराचार्य ने कहा कि 'मुझे मुश्किल में डालती हो ! अरे कुछ ब्रह्म की चर्चा करो ! मैं ठहरा ब्रह्मचारी; विवाह मैंने किया नहीं, और तुम कामशास्त्र का प्रश्न पूछती हो !'

भारती ने कहा कि 'जिसमें मेरी पैठ है, जिसमें मेरी गहरी पैठ है, वही प्रश्न मैं पूछूंगी । ब्रह्म का विवाद तो मैं देख चुकी । उसमें तुम जीत गये । उसमें शायद तुम मुझसे भी जीत जाओगे । मगर उसमें मुझे रस ही नहीं है । हार-जीत उससे निर्णय नहीं होगी । मुझे जिसमें रस है, मुझे प्रेम में रस है—ब्रह्म में नहीं । हां, तुम अगर चाहते हो कि अभी तुम्हारी तैयारी नहीं है, तो तुम समय मांग सकते हो, कि भई छह महीने, साल भर, दो साल मैं अनुभव करके आऊंगा । तो तुम्हें छुट्टी दे सकती हूं । लेकिन विवाद तो तुम्हें जो मैं पूछूंगी, उस संबंध में करना पड़ेगा ।'

और शंकराचार्य ने यही उचित समझा कि छह महीने की छुट्टी ले लें । कहा कि 'छह महीने की मुझे छुट्टी दो । मैं अनुभव करके लौटूं, तभी मैं उत्तर दे सकता हूं । मुझे कुछ भी पता नहीं है । मैं बाल-ब्रह्मचारी हूं ! मैंने प्रेम न किसी से किया, न प्रेम जाना, न प्रेम का मुझे रहस्य पता है, न उसके राज पता हैं । मैं तो ब्रह्म में ही उलझा रहा ! मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि इस पर विवाद खड़ा होगा !'

तो भारती ने छह महीने की छुट्टी दी । और कहानी बड़ी प्रीतिकर है, कि

शंकराचार्य क्या करें ! मैं तो मानता हूं कि यह कहानी कल्पित है । और बाद में कमजोर पण्डितों ने ईजाद की होगी । मेरे हिसाब से तो शंकराचार्य हिम्मत के आदमी थे, बहुत हिम्मत के आदमी थे । इसलिए मेरे हिसाब में तो यह है कि वे छह महीने जरूर किसी वेश्या के पास जा कर रहे होंगे । और कोई उपाय नहीं है जानने का ।

लेकिन हिन्दू कैसे मानें यह ? तो उन्होंने एक कहानी गढ़ी कि एक राजा मर रहा था, तो उस मरते राजा के. . .वह तो मर ही गया; उसकी आत्मा निकल गई—जल्दी से उसकी देह में घुस गये । उनकी आत्मा राजा की देह में घुस गई ! अब क्या-क्या जाल बनाने पड़ते हैं, सीधी-सादी बात को हल करने के लिए ! आत्मा उनकी राजा की देह में घुस गई, और अपनी देह को छोड़ गये वे; एक गुफा में रख गये । अपने शिष्यों को बता गये कि 'इसकी सम्हाल रखना । छह महीने बाद मैं आऊंगा । कहीं देह सड़ न जाये ! कीड़े-मकोड़े न लग जायें ! हिफाजत रखना चौबीस घण्टे । कोई जानवर जंगली खा न जाये, नहीं तो मैं लौटूंगा कहां ! छह महीने में अनुभव करके लौटता हूं ।'

तो उनकी आत्मा राजा के शरीर में प्रविष्ठ हो गई और छह महीने राजा की रानी के साथ उन्होंने भोग किया !

अब इतना जाल फैलाना, सीधी-सादी बात को—झूठ के इर्दगिर्द खड़ा करना सत्य को ! और मामले में क्या फर्क पड़ता है ! आखिर आत्मा ने छह महीने स्त्री का भोग किया ही । अब देह अपनी थी कि देह दूसरे की थी, इससे क्या फर्क पड़ता है ! देह अपनी है ही नहीं । अरे देह तो मिट्टी है । फिर मिट्टी किसकी थी ? अपनी थी, कि और की थी, इससे क्या फर्क पड़ता है ? चलो, कहानी इनकी ही मान लो कि कहानी सही होगी । मगर कहानी मुझे लगता है कि बेईमानी की है । इस बात को छिपाने के लिए कि शंकराचार्य छह महीने तक किसी स्त्री के साथ रहे, ताकि कामकला की सारी की सारी व्यवस्था को समझ लें । इस बात को अगर सीधा-सीधा कहो, तो उनके ब्रह्मचर्य का क्या हुआ ! कमजोर लोग ! इनका ब्रह्मचर्य जरा में टूट जाये !

मेरे हिसाब से तो ब्रह्मचारी थे वे; हिम्मत वाले ब्रह्मचारी थे । और उनकी ब्रह्मचर्या इतनी प्रतिष्ठित थी कि क्या चिंता थी ! छह महीने एक स्त्री के साथ रह लिये होंगे । ऐसे कहीं कुछ टूटता है ब्रह्मचर्य ! ब्रह्मचर्य क्या कोई इतना छोटा-मोटा-कच्चा मिट्टी का घड़ा है कि जरा बरसा हो गई, कि बह गया ! ब्रह्मचर्य तो ध्यान से उपलब्ध होता है । वे अपने ध्यान में तल्लीन रहे होंगे । और इस स्त्री के साथ उन्होंने देह की सारी की सारी संभावनाओं की तलाश की, खोज की । जो आदमी छह जन्मों में कर पाये, वह छह महीने में किया । चौबीस घण्टे डूबे रहे होंगे । फिर लौटे । फिर भारती को उन्होंने विवाद में हराया । तो भारती भी उनकी शिष्या हो गई ।

अद्भुत लोग थे । मण्डन मिश्र ने निर्णय दिया कि भारती हार गई । भारती ने निर्णय दिया कि मण्डन मिश्र हार गये ! दोनों बूढ़े थे; शंकराचार्य तो बिलकुल तीस

साल के जवान लड़के थे ! दोनों उनके चरणों में गिरे और दीक्षित हुए। दोनों ने संन्यास लिया।

यह हिम्मतवार समय था । ये जानदार लोग थे । और ये आज के लोग हैं ! ये जैन मुनि भद्रगुप्त ! और ये स्वामी हरिस्वरूप दास ! और अभी और आयेंगे । अभी तो शुरुआत है । जब तक मैं कच्छ पहुंचूंगा नहीं, तब तक और भी अभी कई प्रतिभाएं प्रगट होंगी ! ये सब गोबर-गणेश हैं ! एक तो गणेश––और फिर गोबर !

मुकेश ! ऐसा मत सोचो कि धर्म और राजनीति विरोधी नहीं हैं । वे तो विरोधी हैं ही । इसलिए तो मेरा विरोध हो रहा है । ये सब राजनैतिक लोग हैं । राजनीतिज्ञ तो राजनीतिज्ञ हैं ही, ये तथाकथित तुम्हारे धर्मगुरु, पण्डित-पुरोहित––ये सब राजनीतिज्ञ हैं । यह सब राजनीति का ही जाल है ।

मेरा राजनीति से कोई लेना-देना नहीं है । मेरा तो शुद्ध व्यक्ति को कैसे आत्मज्ञान हो, बस उतनी ही बात से संबंध है । इसलिए मेरे संन्यासियों को कुछ लेना-देना नहीं है । न मेरे संन्यासी किसी को वोट देने जाते हैं . . . । पता ही नहीं चलता मेरे संन्यासी को––कब चुनाव आया, कब चुनाव चला गया ! कौन जीता, कौन हारा––किसी को कुछ लेना-देना नहीं है । लेकिन उनको बेचैनी है ।

मुझे तो इन लोगों के नाम भी पता नहीं हैं, कि कौन हैं स्वरूपदास जी ! ये कौन हैं भद्रगुप्त जी ! लेकिन इनको इतनी बेचैनी मालूम हो रही है कि जरूर मेरा तीर––मैंने चलाया भी नहीं है––और इनकी छाती में चुभ गया है । इसको तो शिकार कहते हैं ! यही शिकार है ।

चीन की प्रसिद्ध कथा है कि एक बहुत बड़ा शिकारी था । उसने अपने सम्राट से कहा कि 'अब मैं चाहता हूं कि आप घोषणा कर दें कि मैं पूरे चीन का प्रथम शिकारी हूं। मुझसे बड़ा कोई धनुर्विद नहीं है । अगर कोई हो, तो मैं चुनौती लेने को तैयार हूं ।'

सम्राट भी जानता था कि उससे बड़ा कोई धनुर्विद नहीं है । घोषणा करवा दी गई, डुण्डी पिटवा दी गई सारे साम्राज्य में कि अगर किसी को चुनौती लेनी हो, तो चुनौती ले ले । नहीं तो घोषणा तय हो जायेगी कि यह व्यक्ति राज्य का सबसे बड़ा धनुर्धर है ।

एक बूढ़े फकीर ने आ कर कहा कि 'भई, इसके पहले कि घोषणा करो, मैं एक व्यक्ति को जानता हूं, जो चुनौती तो नहीं लेगा, उसको शायद तुम्हारी घोषणा पता भी नहीं चली, क्योंकि वह दूर पहाड़ों में रहता है । उसको पता ही नहीं चलेगा कि तुम्हारी डुण्डी वगैरह पिटी । वहां तक कोई जायेगा भी नहीं । और वह अकेला एकांत में वर्षों से रहता है । और मैं लकड़हारा हूं और उस जंगल से लकड़ियां काटता था, जब जवान था । मैं जानता हूं कि उसके मुकाबले कोई धनुर्विद नहीं है । इसलिए इसके पहले कि घोषणा की जाये, इस धनुर्विद को कहो कि जाये, उस फलां-फलां बूढ़े

को खोजे । अगर वह बूढ़ा मान जाये कि यह धनुर्विद है, तो ही समझना । नहीं तो यह कुछ भी नहीं है ।'

वह धनुर्विद गया उस बूढ़े की तलाश में । बड़ी मुश्किल से तो उस पहाड़ पर पहुंच पाया । एक गुफा में वह बूढ़ा था । बहुत वृद्ध था––कोई एक सौ बीस वर्ष उसकी उम्र होगी । कमर उसकी झुक गई थी बिलकुल । झुक कर चलता था । यह क्या धनुर्विद होगा ! पर आ गया था इतनी दूर, तो उसने कहा कि 'महानुभाव, मैं फलां-फलां व्यक्ति की तलाश में आया हूं । निश्चय ही आप वह नहीं हो सकते, क्योंकि आपकी देह देख कर ही लगता है कि आप क्या धनुष उठा भी नहीं सकेंगे ! धनुर्विद आप क्या होंगे ! आप कमर सीधी कर नहीं सकते । आपकी कमर ही तो प्रत्यंचा हुई जा रही है ! तो जरूर कोई और होगा । मगर आपसे पता चल जाये शायद । आप इस पहाड़ पर रहते हैं । जानते हैं आप यहां कोई फलां नाम का धनुर्विद ?'

वह बूढ़ा हंसा । उसने कहा कि 'वह व्यक्ति मैं ही हूं । और तुम चिंता न करो मेरी कमर की । और तुम यह भी चिंता मत करो कि मैं हाथ में धनुष ले सकता हूं या नहीं । धनुष जो लेते हैं, वे तो बच्चे हैं । मैं तो बिना धनुष हाथ में लिए, और शिकार करता हूं ।'

वह तो आदमी बहुत घबड़ाया । उसने कहा कि 'मार डाला ! बिना धनुष-बाण के कैसे शिकार ?' उसने कहा, 'आओ मेरे साथ ।'

वह बूढ़ा उसको ले कर चला । वह गया एक पहाड़ के किनारे जहां एक चट्टान दूर खड्ड में निकली थी, कि उस चट्टान से अगर कोई फिसल जाये, तो हजारों फीट का गड्ढ था, उसका पता ही नहीं चलेगा । उसका कचूमर भी नहीं मिलेगा कहीं खोजे से ! हड्डी-हड्डी चूरा-चूरा हो जायेगी । वह बूढ़ा चला उस चट्टान पर, और जा कर बिलकुल किनारे पर खड़ा हो गया । उसकी अंगुलियां चट्टान के बाहर झांक रही हैं पैर की । और कमर उसकी झुकी हुई ! और उसने इससे कहा कि 'तू भी आ जा ।'

यह तो गिर पड़ा आदमी वहीं ! यह तो उस चट्टान पर खड़ा हुआ, तो इसको चक्कर आने लगा । इसने नीचे जो गड्ढा देखा, इसके हाथ-पैर कंपने लगे । और वह बूढ़ा अकंप वहां चट्टान पर सधा हुआ खड़ा है । आधे पैर बाहर झांक रहे हैं ! अब गिरा, तब गिरा !

इसने कहा कि 'महाराज, वापस लौट आओ ! मुझे हत्या का भागीदार न बनाओ !'

उसने कहा, 'तू फिक्र ही मत कर । तू कैसा धनुर्धर है ! तुझे अभी मृत्यु का डर है ? तो तू क्या खाक धनुर्धर है । और तू कितने पक्षी मार सकता है अपने धनुष से ? देख ऊपर आकाश में पक्षी उड़ रहे हैं ।'

उसने कहा, 'अभी मैं कहीं नहीं देख सकता । इस चट्टान पर इधर-उधर देखा;

कि गये ! इधर मैं धनुष भी नहीं उठा सकता । और निशाना वगैरह लगाना तो बात ही दूर है ! मेरी प्रार्थना है कि कृपा करके वापस लौट आइये ।'

यह तो गया भी नहीं उतनी दूर तक !

उस बूढ़े ने कहा कि 'देख । मैं न तो धनुष हाथ लेता हूं, न बाण; लेकिन यह पूरी पक्षियों की कतार मेरे देखने से नीचे गिर जायेगी ।' और उसने पक्षियों की तरफ देखा और पक्षी गिरने लगे ।

यह धनुर्विद उसके चरणों में गिर पड़ा और कहा कि 'मुझे यह कला सिखाओ । यह क्या माजरा है ! तुमने देखा और पक्षी गिरने लगे !'

उसने कहा, 'इतना विचार काफी है । अगर निर्विचार होओ, तो इतना विचार काफी है । इतना कह देना कि गिर जा, बहुत है । पक्षी की क्या हैसियत कि भाग जाये ! भाग कर जायेगा कहां ?'

वर्षों वह धनुर्विद उसके पास रहा । निर्विचार होने की कला सीखी । भूल ही गया धनुष-बाण । यहां धनुष-बाण का कोई काम ही न था । और जब निर्विचार हो गया, तो उसने धनुष-बाण तोड़ कर फेंक दिया । सम्राट से जा कर कहा कि 'बात ही छोड़ दो । जिस आदमी के पास मैं हो कर आया हूं, उसको पार करना असंभव है । हालांकि थोड़ी-सी झलक मुझे मिली । बस, उतनी मिल गई, वह भी बहुत है । धनुष-बाण, मेरे गुरु ने कहा है, कि बच्चों का काम है । जब कोई सचमुच धनुर्धर हो जाता है, तो धनुष-बाण तोड़ देता है । और जब कोई सचमुच संगीतज्ञ हो जाता है, तो वीणा तोड़ देता है । फिर क्या वीणा पर संगीत उठाना, जब भीतर का संगीत उठे !'

मुकेश भारती ! मैं शिकारी ही हूं । मगर कोई धनुष-बाण ले कर नहीं चलता । और तुम देख रहे हो--पक्षी गिरने लगे ! कहां कच्छ में गिर रहे हैं ! अभी मैंने नजर भी नहीं उठायी । अभी दरवाजे के बाहर भी नहीं गया--और कच्छ में पक्षी गिर रहे हैं !

राजनीतिज्ञ और धर्मगुरु और सब तरह के लोगों को एकदम तहलका मच गया है ! कच्छ में भूकंप आ गया है ! अभी मैं गया नहीं हूं । जब जाऊंगा, तब तुम देखना ! तुम सब साक्षी रहोगे कि इसको ही शिकार करने की कला कहते हैं ।

मगर स्मरण रखना कि धर्म और राजनीति परस्पर विरोधी आयाम हैं । लेकिन तथाकथित धर्म जो तुम्हें दिखाई पड़ते हैं दुनिया में, वे धर्म नहीं हैं ।

धर्म तो किसी सद्गुरु के जीवन में होता है--मस्जिदों में नहीं, मंदिरों में नहीं । शास्त्रों में नहीं । सिद्धांतों में नहीं । जब बुद्ध श्वास लेते हैं, उसमें धर्म होता है । महावीर चलते हैं, उसमें धर्म होता है । कृष्ण बांसुरी बजाते हैं, उसमें धर्म होता है । जीसस सूली पर प्रभु से प्रार्थना करते हैं--'इन सब को क्षमा कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते, ये क्या कर रहे हैं'--उसमें धर्म होता है ।

धर्म तो जीवित व्यक्ति में होता है--मुरदा शास्त्रों में नहीं, मुरदा मूर्तियों में नहीं । और ये सब मंदिर मुरदा हैं । इनमें पत्थर पूजे जा रहे हैं । और जो पत्थरों को पूजते हैं, वे पत्थरों से गये-बीते हो जाते हैं । उनकी खोपड़ी में सिर्फ कंकड़-पत्थर ही होते हैं, और कुछ भी नहीं । उन्हें हीरों का कुछ पता नहीं है ।

चलेंगे कच्छ । उनको हीरों की खबर तो देनी ही होगी । कुछ पक्षी तो मारने ही होंगे । और यह मारना कुछ ऐसा है कि इधर मारते हैं और उधर जिलाते हैं । यूं मारा--और यूं जिलाया ! तभी यह कला पूरी होती है ।

धर्म मृत्यु भी है और पुनर्जीवन भी । अहंकार मरे--तो आत्मा का अभ्युदय होता है । और ये सब अहंकार हैं, जो पीड़ित हो गये हैं । चलेंगे । इन अहंकारों को मिटाना होगा । इन अहंकारों को मिटाना ही इन व्यक्तियों के ऊपर करुणा है ।

दूसरा प्रश्न : भगवान, मैं बरसों से आपको सुनता हूं और सदा आप पर प्रेम भी बहुत उमड़ आता है और अनुभव करता हूं कि आपकी अनुकम्पा से मेरे मन पर संस्कार और धारणाओं का दबाव भी नहीं रहा । लेकिन फिर भी ऐसा लगता है कि मेरा व्यक्तित्व पूरी तरह खुला और खिला नहीं है । कहीं न कहीं घुटन शेष है । मुझे यह स्पष्ट बोध नहीं है । इसलिए आप से निवेदन हैं कि आप ही समझाएं कि मेरा मूल रोग क्या है ?

प्रेमतीर्थ !

मूल रोग अलग-अलग नहीं होते । मूल रोग तो एक ही है । और जो रोग अलग-अलग होते हैं, वे मूल नहीं होते । हमारे भेद पत्तों के होते हैं—जड़ों के नहीं होते । कोई इस तरह से बीमार है, कोई उस तरह से बीमार है । किसी की छाती पर कुरान का वजन है; किसी की छापी पर गीता का वजन है । किसी की छाती पर हनुमानजी बैठे हैं; किसी की छाती पर गणेशजी बैठे हैं ! वजन अलग-अलग हैं, मगर छाती दबी है । और दबाव ऐसे हैं कि तुम बौद्धिक रूप से तो मेरी बातें समझ लेते हो . . . ।

मैं तुम्हारे प्रेम को जानता; तुम्हारे मेरे प्रति लगाव को जानता । और तुमने बड़े समर्पण से मेरी बातों को सुना है । मगर सदियों के संस्कार गहरे चले जाते हैं, बहुत गहरे चले जाते हैं । वे तुमसे कहीं ज्यादा गहरे हो जाते हैं ।

तुम्हारा चैतन्य का जगत बहुत छोटा है । मनोविज्ञान के हिसाब से अगर हमारे चेतना के दस खण्ड किये जायें, तो एक खण्ड मात्र चेतन है और नौ खण्ड अचेतन हैं । तुम सुनते हो मुझे, वह चेतन खण्ड से । वे नौ खण्ड जो अचेतन हैं, उनमें इतना कूड़ा-

कर्कट भरा है ! और तुम्हारे ही नहीं, सबके अचेतन खण्डों में वैसा ही भरा हुआ है। उसका तुम्हें पता भी नहीं होता। लेकिन इतना भी कुछ कम नहीं है; धन्यभागी समझो अपने को कि तुम्हें स्पष्ट हो रहा है कि 'मुझे स्पष्ट बोध नहीं है कि माजरा क्या है ! मामला क्या है ? मैं पूरा खुला हुआ और खिला हुआ क्यों अनुभव नहीं कर रहा हूं ! यह शुरुआत है।

जिसको यह अनुभव शुरू हो गया कि कहीं घुटन है, वह शीघ्र ही खोज लेगा द्वार-दरवाजे, जिनको खोल लेगा और खुली हवा आने लगेगी। मगर अभागे तो वे लोग हैं, जिनको यह भी पता नहीं है कि वे घुट रहे हैं ! कि सड़ रहे हैं ! उन्होंने अपनी सड़ांध को भी सुगंध समझ लिया है ! अभागे तो वे लोग हैं, जो अपनी मूढ़ता को अपना ज्ञान समझे बैठे हैं। बदकिस्मती तो उनकी है, कि जो अपनी जंजीरों को आभूषण समझे हैं। और अगर तुम उनकी जंजीरें तोड़ो, तो लड़ने को, मरने को तैयार हैं ! जो बासे और उधार को छाती से लगाये बैठे हैं ! मुरदा लाशों को ढो रहे हैं। और सोच रहे हैं : इससे मुक्ति मिल जायेगी ! अगर तुम उनसे कहो कि लाश ढो रहे हो, तो वे मरने-मारने को उतारू हैं ! वे यह सुनना नहीं चाहते। उन्हें डर लगता है कि कहीं यह बात सच ही न हो ! कहीं हम लाश ही न ढो रहे हों।

अगर तुम उनसे कहो कि तुम्हारा धर्म झूठा है—फौरन वे तलवार खींचने को तैयार हैं ! कृपाण निकल आती है। अगर तुम उनसे कहो, 'तुम्हारा प्रेम झूठा है', तो वे दुश्मन हो जाते हैं सदा के लिए तुम्हारे।

और मजा यह है कि साधारणतः आम आदमी का सब कुछ झूठा है। होगा ही। नहीं तो क्यों इतनी पीड़ा ? क्यों इतना संताप ? क्यों इतनी चिंता ? क्यों इतनी उदासी ? क्यों यह अमावस की रात ? जीवन पूर्णिमा क्यों नहीं बनता ?

आइये प्यार करें।

एक अदद लहराती साड़ी
एक किलो नमकीन चेहरा
पांच सौ ग्राम मदमाती चाल
पाव भर नाज नखरे
चार आने की मुस्कुराहट
इन सबकी खिचड़ी पका कर
आइये प्यार करें।

दोस्त से मांगा गया एक सूट

उधार से हासिल एक स्कूटर
थोड़ी-सी दादा टाइप बुलंदी
चंद फिल्मी गाने
रात भर जाग कर रटी गयी
दो चार शायरी
इन सबका भुरता बना कर
आइये प्यार करें।

ऐसा चल रहा है ! सब उधार। सब बासा। सब कचरा।

मगर तुम्हें दिखाई पड़ना शुरू हो गया कि 'घुटन है। खिलापन नहीं, खुलापन नहीं; स्पष्ट बोध भी नहीं है'—यह अच्छा लक्षण। यह पहली किरण। यह जानना कि मैं अज्ञान में हूं—ज्ञान की तरफ पहला कदम।

सिर्फ अज्ञानी ही मानते हैं कि वे ज्ञानी हैं। अज्ञानी तो अखण्ड श्रद्धा रखते हैं अपने ज्ञान पर ! वे तो टस से मस नहीं होते ! वे तो कस कर अपने को बांध कर रखते हैं; वे ऐसी बात ही नहीं सुनना चाहते, जिससे उनकी श्रद्धा डगमगा जाये। और क्या खाक वह श्रद्धा है, जो डगमगाती हो ? श्रद्धा ही नहीं।

तुम्हारे चेतन मन से तो अवरोध छटा है, धारणाएं गिरी हैं, लेकिन तुम्हारे अचेतन मन में बहुत-सा कचरा भरा पड़ा है ! जैसा सबके मन में भरा पड़ा है। अब उस कचरे को भी निकालना होगा। मगर उसमें डर लगता है। उसमें डर लगता है, क्योंकि वही हमारा भराव है। ऐसा लगता है कि कहीं उस सब को निकाल दिया, तो बिलकुल गड्ढा ही न हो जाये भीतर ! भीतर सब खाली न हो जाये !

हमारा गणित ऐसा है, हमें सिखाया यह गया है कि कुछ न हो, इससे तो कुछ भी हो, वह अच्छा ! न कुछ से तो कुछ भी अच्छा ! शून्य से हमें बहुत डराया गया है। रिक्तता से बहुत घबड़ाया गया है।

मुझे मेरे कमरे में कुछ भी रखना पसंद नहीं। जो मजबूरी में रखना पड़ता है—अब एक बिस्तरा रखना पड़ता है, एक कुर्सी रखनी पड़ती है ! अन्यथा मेरा कमरा बिलकुल खाली होता है। जब कोई कभी पहली दफे मेरे कमरे में आता है, तो चौंक कर देखता है। वह कहता है, 'अरे, कमरे में कुछ भी नहीं !' उसे ऐसा सदमा लगता है ! मैं उसे कहता हूं, कमरे का मतलब ही यह होता है कि जहां खालीपन हो, नहीं तो रहोगे कैसे ! अंग्रेजी में 'रूम' शब्द का अर्थ ही खालीपन होता है। कमरे का मतलब ही यह है कि जो खाली हो।

मैं एक धनपति के घर में सागर में रुका करता था। बिड़ी के भारत के बड़े से बड़े उद्योगपतियों में वे एक हैं। अब तुम समझ सकते हो कि बिड़ी बेच-बेच कर जिसने

धन कमाया हो, उसकी अकल क्या होगी ! बिड़ी बनवा-बनवा कर जिसने धन इकट्ठा किया हो, उसका संस्कार कितना होगा ! सो बिड़ी-भांज के संस्कार हैं उनके । धन तो बहुत है, अटूट है, जरूरत से ज्यादा । समझ में नहीं आता कि क्या करें उसका ।

उन्होंने मुझे उनके महल में जो सबसे सुंदर कमरा है, उसमें ठहराया । मैंने कहा कि 'पहले इसका सब कचरा बाहर करो ।'

उन्होंने कहा, 'मतलब ! कचरा कह रहे हैं आप !'

उस कमरे में रहने की जगह ही नहीं । उसमें चलना-फिरना मुश्किल ! इतना फर्नीचर ! तरह-तरह का फर्नीचर ! क्योंकि बाजार में जो भी फर्नीचर आ गया, नयी फैशन जिसकी आयी, वही खरीद कर आ गया ! पुराना तो हटता ही नहीं, वह तो जमा ही है, नया भी चला जाता है ! और वे बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली और लन्दन और न्यूयॉर्क जाते हैं, तो जहां जो मिला, वह सब भरता जाता है । रेडियो भी, टेलीविजन भी । रेडियो भी तीन-चार !

मैंने कहा, 'कोई मेरी खोपड़ी को खराब करना है ! ये तीन-चार रेडियो का क्या करना है यहां ?' फोन—कमरे में ही नहीं—बाथरूम में ! मैंने कहा, 'हटाओ, बेवकूफी ! मुझे नहाने भी दोगे कि नहीं !'

उन्होंने कहा कि 'अरे, यहां तो मेरे घर जो भी आते हैं, वे बड़े प्रसन्न होते हैं कि आपने भी गजब का इंतजाम कर रखा है ! फोन बाथरूम में भी ! कि वहीं बाथरूम में ही, संडास में बैठे-बैठे फोन कर रहे हैं !'

मैंने कहा, 'मैं एक काम एक ही बार में करता हूं । यह दो-दो काम मैं एक साथ नहीं कर सकता । तुम यह हटाओ यहां से । कोई की घंटी बजे यह मुझे बरदाश्त नहीं । कि मैं बाथरूम में लेटा हूं, स्नान कर रहा हूं और कोई घंटी बजाने लगे !' मैंने कहा, 'मुझे कमरे में भी नहीं चाहिए । मैं किसी का फोन वगैरह लेता ही नहीं ।'

मैंने कहा, 'तुम यह सब हटाओ, तो ही मैं कमरे में घुसूंगा । और मुझे टेलीविजन बिलकुल पसंद नहीं है । यहां से तुम हटा ही दो । मुझे कोई अपनी आंखें खराब करनी हैं ! कोई मुझे कैंसर. . .!'

'अरे', उन्होंने कहा, 'आप भी क्या बातें कर रहे हैं ! टेलीविजन—और कैंसर !'

मैंने कहा, 'टेलीविजन कैंसर के मूल कारणों में से एक है । क्योंकि टेलीविजन ने पहली दफा एक उपद्रव खड़ा कर दिया है कि तुम प्रकाश के स्रोत में सीधा देखते हो । इससे तो फिल्म देखना बुरा नहीं है । फिल्म बहुत से बहुत तुम्हारी आंख खराब कर सकती है । और ज्यादा नहीं । क्योंकि फिल्म में प्रकाश का स्रोत पीछे होता है । परदे पर प्रकाश नहीं होता है; प्रकाश की केवल छाया मात्र होती है । टेलीविजन में तो. . . तुम टेलीविजन में प्रकाश के स्रोत में देखते हो, जहां से बिजली सीधी तुम्हारी आंखों में आ रही है । वह बिजली तुमको मार डालती है । और लोग पांच-पांच, छह-छह घण्टे

टेलीविजन देख रहे हैं ! उनकी आंखों के रेशे जल जाते हैं, जो कि कैंसर का कारण बनते हैं । आंख का कैंसर आज अमरीका में जोर से फैल रहा है । छोटे-छोटे बच्चों को कैंसर हो रहा है । और कारण टेलीविजन है । ऐसा आग में जैसे अपने को जला रहे हो व्यर्थ ।'

और मैंने कहा, 'इतना फर्नीचर ! कोई मेरे हाथ-पैर तुड़वाओगे ! कि अगर रात को उठकर मुझे जाना भी हो बाथरूम, तो बिना बिजली जलाये नहीं जा सकता । अपने की कमरे में ऐसे चलना पड़े, जैसे कोई चोर चल रहा हो किसी और दूसरे के कमरे में ! चुकता चीजें हटा दो । मुझे चाहिए सिर्फ. . .एक बिस्तर और एक कुर्सी बहुत है ।'

वे कहने लगे, 'जो भी आता है, वही इस फर्नीचर की प्रशंसा करता है । इसमें कई तो एंटीक चीजें हैं । यह रानी एलिजाबेथ के जमाने का टेबल है । यह फलाने जमाने का, यह विक्टोरिया के जमाने का. . .!'

मैंने कहा, 'मुझे न विक्टोरिया से कुछ लेना-देना है—न एलिजाबेथ से । सब मर-मरा गये । ये फर्नीचर भी सब मुरदा । इसको हटाओ । मुझे तो सिर्फ एक ढंग की कुर्सी दे दो जो आरामदायक हो । मुझे एंटीक से क्या लेना-देना है !'

लोगों के कमरे ही कचरे से नहीं भरे हुए हैं । इसी तरह उनका भीतर का चित्त भी कचरे से भरा हुआ है । खालीपन से उनको डर लगता है । रिक्तता से घबड़ाहट पैदा होती है ।

और प्रेमतीर्थ ! वही अड़चन हो रही है । तुम्हें रिक्त होना सीखना पड़ेगा । तुम्हें शून्य होना सीखना पड़ेगा ।

तुमने मुझे प्रेम किया । अब मेरे प्रेम में इतनी हिम्मत भी करो कि शून्य हो जाओ । अब ध्यान में उतरो ।

एक आदमी अपनी पत्नी से बोला, 'श्रीमतीजी, मेरे मित्र घर आ रहे हैं । तुम जल्दी से यह गुलदान, टाइम पीस, और अन्य सामान ड्राइंग रूम से उठा लो ।'

पत्नी ने हैरान हो कर कहा, 'अरे, वह क्यों ? क्या आपके मित्र कोई चोर हैं ?'

'नहीं', पति ने कहा, 'बिलकुल नहीं । वे चोर नहीं हैं । मगर वे अपनी चीजें पहचान लेंगे !'

तुम भरे हो क्या-क्या ! कहीं गीता भरी, कहीं कुरान भरा, कहीं वेद भरे । जमाने भर का कूड़ा-कर्कट, जिससे तुम्हें कुछ लाभ नहीं हुआ, लेकिन भीतर भरा हुआ है । बस, इतना अच्छा लगता है कि सामान है; खाली नहीं है ।

संन्यासी को पहली कला सीखनी पड़ती है—खाली होने की, रिक्त होने की, शून्य होने की । तुम शून्य हो जाओ और तुम खिल जाओगे । जो शून्य हुआ, वह पूर्ण हुआ । और जो शून्य होने को राजी है, उसके भीतर परमात्मा उतर आता है ।

लेकिन लोग शून्य होने को राजी नहीं हैं । हर तरह के उपद्रव करने को राजी हैं !

जो भी चीज भर दे, उसके लिए ही राजी हैं ! खाली नहीं बैठ सकते । खाली घड़ी भर नहीं बैठ सकते । कुछ न कुछ खटर-पटर करते रहेंगे । खिड़की खोलेंगे, बंद करेंगे । अखबार उठायेंगे, रखेंगे । रेडियो खोलेंगे, पंखा चलायेंगे—फिर बंद कर देंगे । कुछ न कुछ करते रहेंगे ।

मैं ट्रेन में सफर करता था, बीस वर्षों तक सफर करता रहा, तो मुझे बड़े-बड़े अनूठे अनुभव हुए । कभी छत्तीस घण्टे सफर करनी पड़ती मुझे, तो किसी सज्जन को मेरे कमरे में मेरे साथ रहना पड़ता । मैं उन्हें पहले से ही हताश करता, ताकि वे बातचीत न करें, क्योंकि छत्तीस घण्टे कौन सिर पचायेगा ! तो हां-हूं करके जवाब देता । वे एक पूछते, मैं और भी जवाब दे देता, ताकि आगे के भी आप ये उत्तर ले लो ! जैसे वे पूछते कि आप किस गांव में रहते हो । तो मैं गांव का पता देता । जिला बता देता । प्रदेश बता देता । और मेरे पास ये-ये और गांव हैं !

वे कहते, 'हम आपसे सिर्फ आपके गांव की पूछ रहे हैं !'

'भइया, तुम आगे यह भी पूछोगे . . .। मेरे पिताजी का यह नाम है । घर में यह धंधा होता है । इतने भाई-बहन हैं । मैं सब बताये देता हूं, ताकि झंझट खतम ! एकदफे छत्तीस घण्टे का मामला निपटा लो तुम अभी !'

सब उत्तर दे देता । वे एक पूछते कि 'आप कहां जा रहे हो !' मैं उनको सब बता देता : कहां से आ रहा हूं, कहां जा रहा हूं । पूरी जिंदगी का उनको संक्षिप्त-सार दे देता कि 'आप निश्चित हो जाओ । अब दुबारा आप न पूछना । अब छत्तीस घण्टे शांति से हम रह सकते हैं !'

वे कहते, 'हम तो सोचे थे, प्रसन्न हुए थे कि चलो भई, कोई यात्री, सहयात्री मिल गया ! तो मतलब छत्तीस घण्टे अब हमको ऐसी चुप्पी में गुजारने पड़ेंगे !'

मैंने कहा, 'आपको जो करना है, आप कर सकते हैं !'

थोड़ी बहुत देर तो वे संकोच रखते, कि कैसे कुछ भी करें, अंटशंट करें । सामने आदमी बैठा हो . . .! कोई न हो तो आदमी देखते अपने बाथरूम में फिल्मी गाना गुनगुनायेंगे; मुंह बिचकायेंगे—आईने के सामने खड़े हो कर ! क्योंकि कोई है ही नहीं, तो डर क्या ! मगर जब कोई सामने ही बैठा हो . . .! तो मैं अकसर आंख बंद करके लेट जाता, ताकि इनको जो भी करना हो, करें । ऐसा बीच-बीच में आंख खोल कर देख लेता ! जब कभी बीच में आंख खोल कर देखता, वे जल्दी सम्हल कर . . .!

छत्तीस घण्टे में क्या-क्या तमाशा नहीं देखना पड़ा मुझे ! खिड़की खोलेंगे, बंद करेंगे । सूटकेस खोलेंगे, कपड़े फिर से जमा लेंगे । वही अखबार फिर पढ़ने लगेंगे ! फिर रख देंगे ! फिर नौकर को घण्टी बजा कर बुलायेंगे कि चाय ले आओ । सोडा ले आओ । फलाना करो, ढिकाना करो ! मगर छत्तीस घण्टे—गुजारे नहीं गुजर रहे हैं ! छत्तीस जनम जैसे लगे जा रहे हैं ! प्राण निकले जा रहे हैं उनके !

और मुझे उन पर दया भी आती, हंसी भी आती । और उनको मुझ पर क्रोध आता ! क्योंकि मैं मस्ती से लेटा हूं, शांति से ! और उनका तमाशा देख रहा हूं ।

वे कहते, 'आपको घबड़ाहट नहीं होती ?'

मैंने कहा, 'घबड़ाहट क्या हो ! मुफ्त का खेल देख रहा हूं, घबड़ाहट क्या हो ! अरे, सर्कस में भी ऐसे करतब देखने को नहीं मिलते, जो आप दिखा रहे हैं ! और आपको भी मालूम कि यह सूटकेस आप बीस दफे खोल चुके ! काहे के लिए बीस दफे खोले ? निकाल लो एकदफे जो निकालना हो ! या खोल कर ही रख लो इसको अपने पास ! सो देखते रहे । बार-बार क्या खोलना, बंद करना ! और यह खिड़की क्यों आप बार-बार खोल रहे हैं, बंद कर रहे हैं ? अखबार कितनी दफे पढ़ चुके ? और ठेठ शुरू से ! ब्रुकबाण्ड टी का जहां ऊपर विज्ञापन होता है, वहां से ले कर अखीर तक कि सम्पादक कौन है, वहां तक कितनी दफे पढ़ चुके ! फिर-फिर उठा लेते हो इसी अखबार को ! तो तमाशा देख रहा हूं । मुझे तो मजा आ रहा है, कि आदमी की यह क्या गति है !

खाली होना सीखो प्रेमतीर्थ । खटपट कम करो । जितनी देर मौका मिल सके, उतनी देर सन्नाटे में बैठो ।

और तैयारी कर लो, क्योंकि जल्दी ही तुम्हें आना पड़ेगा कम्यून में । नये कम्यून में तुम्हें आना ही पड़ेगा, क्योंकि तुम्हारी पत्नी आ ही चुकी समझो !

प्रेमतीर्थ हैं नीलम के पति । नीलम तो आ ही चुकी है । वह सिर्फ राह देख रही है कि मैं कहूं कि बस, अब जाना नहीं ! और अब ज्यादा देर नहीं है, किसी भी दिन उससे कहूंगा कि अब जाना नहीं । तो तैयारी कर लो । क्योंकि कम्यून में आनन्दित तभी हो सकोगे, जब पूरे खिले होओगे ।

और भारतीय मन जरूर बहुत कुंठाओं से ग्रस्त है । अजीब-अजीब कुंठाओं से ग्रस्त है ! अजीब-अजीब ज्ञान से परेशान है ! तुम सब लुधियाना में ही छोड़ आओ । सब कूड़ा-कर्कट वहीं रख आना । यहां तो बिलकुल मेरे पास खाली आ जाने की तैयारी करो । उसके पहले थोड़ा अभ्यास कर लो, तो अच्छा लगेगा । क्योंकि जिस नयी जगह में मैं कम्यून बनाना चाह रहा हूं, जहां बनेगा कम्यून, वहां सन्नाटा होगा, जंगल होगा, झील होगी, और लम्बा विस्तार होगा कि दूर-दूर तक, तुम मीलों तक किसी को देख न पाओ ।

तो उसकी तैयारी करके आ जाओ ।

खिलोगे । कोई बाधा नहीं है । जैसे मैं खिला हूं, तो मैं जानता हूं कि कैसे कोई और खिलेगा । सूत्र तो वही है—शून्य होना । और कोई अड़चन नहीं है ।

तीसरा प्रश्न : भगवान,
करके विवाह,
हुआ तबाह
अब हंसी नहीं,
निकलती है आह
अंधा हुआ हूं
सूझती न राह
तुम्हीं बताओ
राह दिखाओ
मुझे मेरे बीबी से बचाओ।

रतनसिंह भारती !

सिंह हो कर जब तुम्हारी यह हालत हो रही है. . .! तुम बीबी को मेरे पास ले आओ। उसके द्वारा मैं तुमको भी बचा लूंगा। मगर तुम चाहो कि तुम्हारी बीबी से तुम्हें बचाऊं, तो जरा मुश्किल मामला है ! तुम्हारी बीबी को बचा कर उसके द्वारा तुमको भी बचवा लूंगा। बीबी बची, तो तुम भी बच जाओगे। लेकिन तुम चाह रहे हो कि तुम बच जाओ—और बीबी से बच जाओ ! ऐसा असंभव कार्य न तो कभी हुआ है, न हो सकता है !

दूसरे शहर से चिड़ियाघर देखने आया एक दल ज्योंही शेर के पिंजड़े के पास पहुंचा, शेर ने एक खौफनाक दहाड़ लगायी। दहाड़ इतनी जोरदार थी कि एक व्यक्ति को छोड़ कर सारा दल बेहोश हो गया। चिड़ियाघर का एक अधिकारी उस व्यक्ति की ओर प्रशंसा भरी दृष्टि से देखता हुआ बोला, 'लगता है आप बहुत निडर हैं !'

वह व्यक्ति बोला, 'जी नहीं। दरअसल मैं तो रोज-रोज ऐसी दहाड़ें सुनने का अभ्यस्त हो चुका हूं।'

'क्या आप भी किसी चिड़ियाघर में काम करते हैं ?' अधिकारी ने पूछा।

'जी नहीं, मैं शादीशुदा हूं,' उस आदमी ने कहा।

लेकिन बीबी से बचना मुश्किल मामला है। एक बीबी से बचा लो, तो तुम दूसरी बीबी के चक्कर में पड़ जाओगे। क्योंकि तुम तो तुम ही रहोगे। बीमारी बदल जायेगी, और कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। बीमारी जारी रहेगी। तुम कितनी देर अकेले रह सकोगे ?

अकसर लोग विवाह करके सोचते हैं कि 'करके विवाह, हुआ तबाह।' मगर जरा उनको विवाह से मुक्त करवा दो. . .। अब पश्चिम में तो सुविधा बहुत हो गई है, तलाक दे कर लोग मुक्त हो जाते हैं। मगर चार-छह महीने भी मुक्त नहीं रहते ! फिर विवाह ! एक-एक आदमी एक-एक जिंदगी में आठ-आठ, दस-दस बार विवाह कर रहा है !

कई बार टूटे हैं एक बार और सही

यदि कोई मोह-पाश काम नहीं आये तो
रेशे-रेशे हो कर बिखर-बिखर जाये तो
बेवजह हवाओं में गाले मंदारों के
कई बार फूटे हैं, एक बार और सही।

परिचय आकर्षण की, स्नेह की, समर्पण की
कितनी मुद्राएं हैं छोटे-से दर्पण की
निष्ठुर हैं चंचल छायाएं तो कई प्यार
कई बार झूठे हैं, एक बार और सही।

कुछ ट्रेनें ऐसी भी, द्रुतगामी होती हैं
जो शहरों से शहरों के रिश्ते ढोती हैं
जिनके आगे हम हैं स्टेशन छोटे तो
कई बार छूटे हैं, एक बार और सही।

आदमी एक झंझट से बचता नहीं कि तत्काल दूसरी झंझट ले लेता है। तुम यूं ही नहीं फंस गये हो। अपने आप फंसे हो। क्योंकि अकेले नहीं रह सकते हो। वही तो प्रेमतीर्थ से मैं कह रहा था, वही मैं तुमसे कहता हूं। वही सबसे कहता हूं।

एकांत, मौन, शून्य होने की कला में निष्णात होओ, नहीं तो यह जाल तो जन्मों से चल रहे हैं। यह कोई पहला जन्म है तुम्हारा ? जनम-जनम हो गये, यही धंधा—गोरखधंधा करते-करते !

नर्स का इंटरव्यू था। डॉक्टर ने जिस नर्स का चुनाव किया, उस नर्स से पूछा, 'आप तनख्वाह क्या लेंगी ?'

नर्स बोली, 'यही कोई तीन सौ रुपये।'

डॉक्टर बोला, 'अजी तीन सौ रुपये तो मैं आपको आनन्द के साथ दूंगा।'

नर्स बोली, 'महाशय, आनन्द के साथ तो मैं पांच सौ रुपये से एक पैसा कम नहीं लूंगी !'

कौन फंसा रहा हैं तुम्हें ? नर्स तो तीन सौ में ही राजी थी। मगर तुम आनन्द के

साथ . . . ! तो फिर तो महंगा पड़ ही जायेगा सौदा !

आनन्द की झोली फैला रहे हो दूसरों के सामने कि दे दे कोई आनन्द ! कि है कोई देने वाला आनन्द ! तो फिर जो भी तुम्हें आनन्द देगा, वह उसका बदला भी लेगा। वह तुम्हें उसका मजा भी चखायेगा, उसका पाठ भी पढ़ायेगा ।

और मजा ऐसा है कि पति आनन्द की झोली फैलाये हैं पत्नियों के सामने, और पत्नियां आनन्द के लिए झोली फैलायी हैं पतियों के सामने । भिखमंगे भिखमंगों से भीख मांग रहे हैं ! फिर क्रोध आता है । क्योंकि न उसको मिलती, न इसको मिलती। मिले कहां से ? पास किसी के कुछ हो, तो कोई दे दे । और जब नहीं मिलता, तो विषाद पकड़ता है ।

और इस देश में और बुरी तरह पकड़ता है । क्योंकि यहां छूटने का भी उपाय नहीं है । नहीं तो थोड़े दिन में यह भी अकल आ जाती है कि इसमें दूसरा कोई जिम्मेवार नहीं है, हम ही मूरख हैं ! एक स्त्री से बचे कि दूसरी स्त्री के चक्कर में पड़ेंगे !

असल में यह है सचाई कि एक से बचने के पहले ही आदमी दूसरे चक्कर में पड़ जाता है । दूसरे के चक्कर पड़ता है, तभी एक से बच पाता है !

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा फजलू पूछ रहा था कि 'पापा ! सरकार आदमियों को एक ही विवाह करने के लिए क्यों मजबूर करती है ?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'बेटा, जब बड़ा होगा, तू समझ जायेगा । आदमी बड़ा कमजोर है । अगर उसको एक ही विवाह के लिए मजबूर न किया जाये, तो वह अपनी आत्म-रक्षा नहीं कर पायेगा ! इतनी स्त्रियां हैं, वह ऐसी ठोकरें खायेगा इधर से उधर—इस घर से उस घर—न घर का न घाट का; धोबी का गधा हो जायेगा । उसको एक स्त्री चाहिए, जो उसकी रक्षा करे !'

तुम्हारी पत्नी तुम्हें और स्त्रियों से रक्षा करती है । और फिर स्वभावतः जो रक्षा करेगा, वह फिर मालकियत भी दिखायेगा । वह उसी डण्डे से तुम्हारी रक्षा करती है दूसरों से, उसी डण्डे से फिर तुमको भी ठीक करती है !

और वह भी तुमसे नाराज है । वह भी कुछ प्रसन्न नहीं है । वह भी अपना सिर ठोंकती रहती है, कि किस दुर्भाग्य के क्षण में इस दुष्ट से बंधन हो गया ! क्योंकि उसके भी सब सुख के सपने टूट गये हैं ।

लेकिन दूसरे से सुख के सपने पूरे हो ही नहीं सकते, इस सत्य को समझो । तब फिर कोई नाराजगी नहीं है । फिर बचने का भी कोई सवाल नहीं है । पत्नी अपनी जगह, तुम अपनी जगह । क्या लेती-देती है ! थोड़ा शोरगुल भी मचाती होगी, तो उसको भी ध्यान बनाओ । सुने प्रसन्नता से । समभाव रखे । डांवांडोल न हुआ करे । ध्यान को खण्डित न होने दिया करे । हंस कर सुन लिए । पत्नी खुद ही चौंकेगी, जब तुम हंस कर सुनोगे, कि 'तुम्हें हो क्या गया है ! मैं बेलन लिए खड़ी हूं, और तुम हंस

रहे हो !'

तुम अपनी प्रसन्नता में खण्डन न पड़ने दो किसी चीज से । अगर तुम प्रसन्न हो सको, आनन्दित हो सको, भीतर से—तो पत्नी खुद ही तुमसे पूछने लगेगी कि राज सीखा कहां से !' प्रसन्न उसे भी होना है, आनन्दित उसे होना है । दुखी तुम भी हो, दुखी वह भी है । दया करो उस पर भी । उसे भी यहां लाओ । तुमने संन्यास का रस लिया है, उसको भी पीने दो ।

'क्या तुम सुरक्षित उस रात अपने घर पहुंच गये थे ?'

दूसरे ने उत्तर दिया, 'नहीं यार । उस रात बड़ी गड़बड़ हो गई । मैं नशे में चूर चला जा रहा था कि रास्ते में पुलिस वालों ने मुझे पकड़ लिया और मुझे सारी रात हवालात में बंद रहना पड़ा !'

पहला बोला, 'यार, तुम तो बड़े भाग्यशाली रहे । मैं तो अभागा ऐसा कि पार्टी से निकल कर सीधा अपने घर पहुंच गया था ! फिर मुझ पर जो गुजरी वह मैं जानता हूं !'

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी एक दिन बिगड़ पड़ी उस पर, तो वह भाग गया घर से । सब जगह जा कर उसने खोजा—जहां-जहां उसके अड्डे थे । कहीं न मिला । रात भर आया भी नहीं, तो पत्नी भी चिंतित हुई । सुबह से फिर निकली खोजने, तो किसी ने बताया कि हमने उसे वह गांव में जो सर्कस आया हुआ है, उस तरफ जाते देखा था रात को ।

तो वह सर्कस की तरफ गई । सर्कस तो रात को होता है । दिन में सब बंद था । उसने देखा, तो देख कर चमत्कृत हो गई । बरसात के दिन थे, तो छाता लगायी हुई थी । सो छाते से उसने क्या किया—हुद्दा मारा नसरुद्दीन को । वह सो रहा था—जो सिंह का पिंजड़ा था, उसके भीतर ! सिंह भी सो रहा था, और नसरुद्दीन उसका तकिया बनाये सो रहे थे ! सो उसने सींकचों के भीतर छाता डाल कर नसरुद्दीन को हुद्दा दिया और कहा कि 'अरे कायर, बाहर निकल ! घर चल, फिर तुझे बताऊं !'

अब यह नसरुद्दीन एक देखो तो एक तरफ तो बहादुर यूं कि सिंह का तकिया बना कर लेटे हैं ! रात और इन्हें कोई जगह मिली नहीं बेचारे को, सो वह सिंह का जो कटघरा था, उसमें घुस कर सो गये ! यूं सिंह से नहीं डरते, और पत्नी इनसे कह रही है—'अरे कायर ! बाहर निकल ! घर चल, फिर तुझे मजा चखाऊं !'

नसरुद्दीन क्या बोले ! 'नहीं जाता ? अपना मालिक हूं ! जहां रहना है, वहां रहेंगे ! तेरी हो हिम्मत तो भीतर आ जा ।' वह भीतर न आये, क्योंकि सिंह ! और नसरुद्दीन बोले, 'देखा ! कौन मालिक है, यह आज तय ही हो जाना चाहिए । बोल चीं, तो घर चलूं ! नहीं तो हम नहीं निकलेंगे । अरे यहीं मर जायेंगे । सिंह ने खाया कि तूने खाया, यहीं मर जायेंगे ! और रात भर जिस शांति से आज सोये हैं, जिंदगी में नहीं सोये ।'

तुम्हारी तकलीफ क्या है ? तुम्हारी तकलीफ यही है ना कि तुमने अपेक्षाएं की थीं, वे पूरी नहीं हुईं। अपेक्षाएं की थीं, वह तुम्हारी भूल थी। पत्नी ने भी अपेक्षाएं की होंगी। पत्नी भी दुखी होगी——तुम ही थोड़े दुखी हो। जब एक व्यक्ति दुखी होता है; तो दूसरा भी दूसरे पहलू पर दुखी होता है।

तुम्हारी पत्नी क्या कहती है, मुझे पता नहीं। उसे ले आओ। उसकी भी सुन लूं। क्योंकि यह एकतरफा बात हुई। दूसरी तरफ की बात भी मुझे पता चलनी चाहिए। तुम्हें पता भी नहीं होगा कि तुम पत्नी के साथ क्या कर रहे हो !

एक साहब ने शाम को अपनी पत्नी से कहा, 'प्यारी, मैं बहुत जरूरी काम से एक मीटिंग में जा रहा हूं। शायद एक घण्टे ही में वापस आ जाऊं, क्योंकि तुम जानती हो, तुम्हारे बिना एक क्षण गुजारना भी मुझ पर भारी होता है। लेकिन अब शाम हो गई है, और अगर मीटिंग में बहुत देर हो गई, तो मैं वहीं मीटिंग रूम में सो जाऊंगा। इस सूरत में किसी चपरासी के हाथ तुम्हें एक चिट्ठी लिख कर भेज दूंगा, ताकि तुम परेशान न होओ।'

पत्नी बोली, 'चिट्ठी भेजने की आवश्यकता नहीं, उसे मैंने पहले ही आपकी जेब में से निकाल लिया है !'

वे चिट्ठी लिख कर रखे ही हुए हैं ! और कह रहे हैं, 'प्यारी, तुम्हारे बिना एक क्षण गुजारने का मन नहीं होता। तुम्हारे बिना जीने में कोई सार ही नहीं !'

तुम क्या कर रहे हो पत्नी के साथ, पता नहीं !

न पति भला व्यवहार कर रहे हैं, न पत्नियां भला व्यवहार कर रही हैं। और उसका कुल जाल यह है कि विवाह ही एक रोग है। विवाह का मतलब ही होता है, अपेक्षा से भरे हुए एक दूसरे के साथ बंध जाना। निरपेक्ष भाव से एक दूसरे से मैत्री होनी चाहिए, बस। मांग नहीं——दान। तुम जो दे सकते हो, दे दो। मांगो मत।

प्रेम बेशर्त होना चाहिए। और जब भी प्रेम में कोई शर्त आती है, प्रेम गंदा हो जाता है। और जहां गंदगी आयी, सड़ांध आयी, वहां दुर्गंध उठेगी, वहां जीवन विषाक्त होगा।

विवाह ने सारी पृथ्वी को विषाक्त कर दिया है। मेरी, विवाह के संबंध में अलग ही धारणा है। मैं उसे गठ-बंधन नहीं मानता। अभी तुम यही कहते हो कि प्रेम-गठबंधन, विवाह-गठबंधन——कि मेरा बेटा और बेटी प्रणय-सूत्र में बंध रहे हैं ! प्रेम मुक्ति होना चाहिए——बंधन नहीं।

विवाह को हम बंधन मानते हैं ! विवाह मुक्ति होनी चाहिए। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब तुम्हारा प्रेम ध्यान में परिष्कृत हो कर आये, तो फिर मिट्टी सोना हो जाती है।

दो ध्यानी व्यक्ति ही केवल प्रेम कर सकते हैं और आनन्दित हो सकते हैं। क्यों ?

क्योंकि वे वैसे ही आनन्दित हैं; अकेले भी आनन्दित है। न दूसरा हो, तो भी आनन्दित हैं।

जो व्यक्ति अपने एकांत में आनन्दित है, वह दूसरे के साथ जुड़ कर आनन्द को हजार गुना कर लेता है। दोनों का आनन्द गुणनफल हो जाता है। कई गुना हो जाता है।

लेकिन तुम भी दुखी, तुम्हारी पत्नी भी दुखी——तो फिर दुख का गुणनफल हो जाता है ! जो भी तुम ले कर आते हो, उसी का गुणनफल हो जाता है।

तुम पूछ रहे हो कि 'मुझे मेरी बीबी से बचाओ !'

तुम्हारी बीबी से तुम्हें बचाना तो बहुत कठिन नहीं है। संन्यासी सदियों से यही करते रहे हैं। बीबियों से भागते रहे। बचने का और क्या उपाय ?——भाग गये ! अब यह कोई नसरुद्दीन ही थोड़े सिंह से जा कर पीठ लगा कर सोया। तुम्हारे साधु-संन्यासी जो हिमालय की गुफाओं में बैठे हैं, वे भी यही किये हैं। हिमालय की गुफा में बैठ गये हैं, वहां नहीं डर रहे हैं——घर में डर गये थे ! और हिमालय की गुफा में आसपास सिंह दहाड़ मार रहे हैं। यह तो सर्कस का सिंह था। इसके दांत वैसे ही टूटे हुए होंगे। इससे कोई खतरा भी नहीं था ज्यादा। यह तो देखने का ही सिंह था। मगर असली सिंह जहां दहाड़ रहे हैं, वहां भी साधु-संन्यासी धूनी रमाये बैठे हैं——डर नहीं ! और वहीं पत्नी आ जाये, कि बस, इनका जीवन-जल निकल जाये——वहीं ! एकदम पत्नी को देख कर बस इनके होश हवास खो जायें ! एकदम घबड़ा कर उठा लें अपना दण्ड-कमण्डल और भागने लगें ! कि 'ऐ बाई, तू यहां क्यों आ रही है ! हे चंडीगढ़ वासिनी चंडी, तू यहां क्यों आ रही है ! माई, मैं तो सोचता था कि इतने दूर निकल आया ! तुझे किसने पता दिया——किस दुश्मन ने तुझे मेरा पता दे दिया ?'

पत्नियों से ऐसा डर क्या है ? डर है, क्योंकि अपेक्षा है। मांगा था——मिला नहीं। देने का वायदा किया था——दिया नहीं। झूठे साबित हो गये हो। पत्नी के सामने आंख उठाने लायक नहीं रहे हो, इसलिए उसका कब्जा है।

और फिर तुम पत्नी पर जो कब्जा बांधे हुए हो, कि किसी और से मिलना नहीं, किसी और से बात करना नहीं, किसी और के साथ हंसना नहीं, कहीं और जाना नहीं ! तो स्वभावत: तुम पर भी उसने कब्जा किया हुआ है। तुम जो पत्नी के साथ करोगे, वही वह तुम्हारे साथ कर रही है। अगर तुम चाहते हो मुक्ति——उसे भी मुक्त करो।

तुम चाहते हो, वह तुम पर भरोसा करे, तुम भी उस पर भरोसा करो। तुम चाहते हो, वह तुम्हारे साथ आदमी जैसा व्यवहार करे——तो तुम भी उसके साथ आदमी जैसा व्यवहार करो। तुम पशुओं जैसा व्यवहार कर रहे हो ! तुम्हारे बाबा तुलसीदास जैसे आदमी क्या-क्या कह जाते हैं ! क्या-क्या व्यर्थ की बातें ! और फिर भी स्त्रियां हैं कि पढ़े जा रही हैं रामचरितमानस ! बाबा तुलसीदास का ! स्त्रियां ही ज्यादा उनकी चौपाई रटे बैठी हैं ! जला भी नहीं देतीं, कि जला दें आग में। क्योंकि जो आदमी

इस तरह की बातें लिख रहा हो कि 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी !'

कम से कम स्त्रियों को तो तुलसीदास के खिलाफ खड़ा हो ही जाना चाहिए। कि इस आदमी को कहीं न टिकने देंगे; किसी घर में न टिकने देंगे ! मगर नहीं। तुलसीदास बाबा उन्हीं पर सवार हैं। उन्हीं के मुंह से बोल रहे हैं ! स्त्रियां खुद इन वचनों को पढ़ती हैं और डोलती हैं--चौपाई पढ़-पढ़ कर। प्रसन्न होती हैं कि 'वाह, बाबा क्या बात कह गये ! क्या पते की बात कह गये ! इससे राजी हैं।' राजी हो गई हैं बिलकुल कि अगर पति नहीं मारता-पीटता उनको, तो सोचती हैं : प्रेम खतम ! क्योंकि 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी !' जब तक पति इनको ताड़ता है, तब तक समझो कि प्रेम करता है ! गांव और देहातों में स्त्रियां यह मानती हैं कि जब तक पति मारता-पीटता है, तभी तक समझो कि प्रेम करता है। जब उसने मार-पीट करनी बंद कर दी, मतलब : कहीं और मार-पीट करने लगा यह ! अब इसको रस नहीं है।

क्या पागलपन है ! इस पागलपन में कैसे आनन्द हो सकता है ? मुक्ति दो। स्त्री का सम्मान करो। उसे आदर दो। तुम्हारे साधु-संतों-महंतों ने तुम्हें अनादर सिखाया है। स्त्री को बिलकुल जड़ बना कर रख दिया है। स्त्री-सम्पत्ति कहा है उसको ! बाप कन्या-दान करता है ! क्या पागलपन की बातें हैं ! जीवित व्यक्ति दान किये जा रहे हैं ! जैसे कन्या न हुई, गौ-माता हुई !

स्त्री को सम्पत्ति समझा जा रहा है। धर्मराज जिनको तुम कहते हो युधिष्ठिर, वे स्त्री को जुए पर लगा देते हैं ! जब सम्पत्ति है, तो लगायेंगे। शर्म नहीं, संकोच नहीं। स्त्री को दांव पर लगा दिया, और कोई निन्दा भी नहीं ! भारत के पांच हजार साल के इतिहास में तुम्हारे किसी संत-महात्मा ने निन्दा नहीं की, कि युधिष्ठिर को कहा होता कि यह आदमी आदमी नहीं है। धर्मराज ! इस जुआरी को ? और यह लम्पटता की हद हो गई। जुआ भी खेलो, तो भी समझ में आता है। स्त्री को भी दांव पर लगा दिया ! और फिर धर्मराज के धर्मराज रहे ! उसमें कुछ कमी न आयी। ज्ञाता के ज्ञाता बन रहे, ज्ञानी बने रहे !

इस सब जाल को उखाड़ कर फेंको। स्त्री को सम्मान दो। वह भी वैसी ही, उतने ही मूल्य की आत्मा है, जितने मूल्य के तुम हो। तुमसे रत्ती भर कम नहीं। न ज्यादा, न कम। एक समता का भाव लाओ। मुक्ति दो--और मुक्ति पाओ।

और नाश्ता-रिश्ता सिर्फ प्रेम का होना चाहिए। इससे ज्यादा कोई बंधन नहीं। मगर चूंकि मैं ऐसी बात करता हूं, इसलिए तुम्हारी संस्कृति पर हमला हो जाता है ! चूंकि मैं सत्य की ऐसी बात कहता हूं, तुम्हारा धर्म डगमगाता है। तुम्हारा धर्म और संस्कृति इसी तरह के बेहूदे खयालों पर रची गई है। इसलिए तुम्हारे साधु, संत

महात्मा, मेरे खिलाफ खड़े होंगे ही। इनमें उनका कोई कसूर नहीं। मेरा ही कसूर है।

आज इतना ही।

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक २५ जुलाई, १९८०

धर्म का रहस्यवाद

पहला प्रश्न : भगवान, निरुक्त में यह श्लोक आता है :

मनुष्या वा ऋषिसूत्क्रामत्सु
देवानब्रुवन्को न ऋषिर्भविष्यतीति।
तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन् ।।

(इस लोक से जब ऋषिजन जाने लगे, जब उनकी परम्परा समाप्त होने लगी तब मनुष्यों ने देवताओं से कहा कि अब हमारे लिए कौन ऋषि होगा ? उस अवस्था में देवताओं ने तर्क को ही ऋषि-रूप में उनको दिया। अर्थात् देवताओं ने मनुष्यों से कहा कि आगे को तर्क को ही ऋषि-स्थानीय समझो।)

भगवान, हमें निरुक्त के इस वचन का अभिप्राय समझाने की कृपा करें।

सहजानन्द !

पहली बात : ऋषि कभी गये नहीं; जा सकते नहीं। जैसे रात हो, तो आकाश में तारे होंगे; जैसे पृथ्वी हो, तो कहीं न कहीं फूल खिलेंगे; ऐसे ही मनुष्य-चेतना मौजूद हो, तो ऋषि विलुप्त नहीं हो सकते। कहीं न कहीं कोई झरना फूटेगा; कोई गीत उठेगा; कोई बांसुरी बजेगी।

मनुष्य इतना बांझ नहीं है कि ऋषियों की परपम्रा समाप्त हो जाये ! कभी समाप्त नहीं हुई। लेकिन निरुक्त जिन्होंने लिखा है, वे ऋषि नहीं हैं। वे भाषाशास्त्री हैं। व्याकरण के जानकार हैं। उनकी निष्ठा तर्क में है—उनकी निष्ठा काव्य में नहीं है। उनकी निष्ठा विचार में है—उनकी निष्ठा ध्यान में नहीं है। और अपनी निष्ठा को लोग हजार तरकीबों से प्रतिपादित करते हैं, चालाकियों से प्रतिपादित करते हैं।

निरुक्त कोई धर्म-शास्त्र नहीं है। वह तो भाषा का विज्ञान है। और भाषा का विज्ञान तो तर्क पर ही आधारित होगा। वह तो गणित है। व्याकरण गणित है।

और इसलिए गणितज्ञ नहीं चाहेगा कि ऋषि हों। गणितज्ञ के लिए सबसे बड़ा खतरा ऋषियों से है।

गणितज्ञ तो चाहेगा कि तर्क परम हो——तर्क ही ऋषि हो। यह नहीं हो सकता। तर्क कैसे ऋषि हो सकता है?

तर्क का अर्थ क्या होता है? तर्क का अर्थ होता है : मनुष्य के सोचने-विचारने की प्रक्रिया। लेकिन क्या सत्य को सोचने-विचारने से जाना गया है कभी? जिसे तुम नहीं जानते हो, उसे सोचोगे कैसे, विचारोगे कैसे? सोच-विचार तो ज्ञात की परिधि में ही परिभ्रमण करते हैं। और सत्य तो अज्ञात है। अज्ञात ही नहीं——अज्ञेय भी।

विज्ञान समस्त अस्तित्व को दो हिस्सों में बांटता है——धर्म तीन हिस्सों में। विज्ञान कहता है, जगत दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है, और कोई कोटि नहीं है। एक ज्ञात और एक अज्ञात। जो आज ज्ञात है, वह कल अज्ञात था; और जो आज अज्ञात है, वह कल ज्ञात हो जायेगा। अज्ञात की सीमा रोज सिकुड़ती जा रही है। और ज्ञात की सीमा रोज बढ़ती जा रही है। इसी को विज्ञान विकास कहता है। जिस दिन अज्ञात शून्य हो जायेगा, बचेगा ही नहीं, सभी कुछ ज्ञात हो जायेगा——उस दिन विज्ञान अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जायेगा, उस दिन विज्ञान गौरीशंकर का शिखर होगा।

लेकिन धर्म कहता है, एक और भी तीसरी श्रेणी है——अज्ञेय——जिसे तुम लाख जानो, तो भी अनजाना रह जाता है। जानते जाओ, जानते जाओ, फिर भी जानने को शेष बना ही रहता है। ऐसा कोई उपाय नहीं है, जिसके तुम दावेदार बन सको कि मैंने जान लिया। उस अज्ञेय को ही 'ईश्वर' कहा है। इसलिए उसे कभी भी 'जाना' नहीं जा सकेगा। जानने वाले होते रहेंगे, उसका स्वाद लेने वाले होते रहेंगे, उसके गीत गाने वाले होते रहेंगे; जिसके हाथ भी उसकी बूंद पड़ जायेगी, वही स्वर्णिम हो उठेगा। जिसके हाथ में एक स्वर लग जायेगा, वही ऋषि हो जायेगा। लेकिन सागर को छू लेना, सागर को पा लेना नहीं है। सागर में डुबकी भी मार ली, तो भी सागर को पा लेना नहीं है। सागर में लीन भी हो गये, तो भी सागर विराट है। हम तो बूंदें हैं।

जान कर भी——जान-जान कर भी, फिर भी जो जानने को शेष रह जाता है, वही धर्म का रहस्यवाद है। और ध्यान रखना : विज्ञान की विभाजन प्रक्रिया खतरनाक है। उसका अर्थ है कि एक दिन सब जान लिया जायेगा। फिर क्या करोगे? फिर तो आत्मघात के अतिरिक्त कुछ भी न बचेगा। इसलिए मनुष्य जाति जितनी जानकार होती जाती है, उतनी ही आत्महत्याएं बढ़ती जाती हैं। जितना सुशिक्षित देश होता है, उतनी ज्यादा आत्महत्याएं! जितना सुसंस्कृत देश समझा जाता है, उतना ही आत्मघाती! क्यों? क्योंकि जीवन में फिर कोई रहस्य नहीं रह जाता। जब कुछ जानने को ही नहीं बचता, सब जान लिया——पहचान लिया, तो अब कल जी कर

क्या करना है? किसलिए जीना है? क्यों जीना है? फिर यही पुनरुक्ति करनी होगी? फिर जीवन को इसी वर्तुल में घुमाना होगा। और उसी-उसी की पुनरुक्ति ही तो ऊब पदा करती है।

सोरेन कीर्केगार्ड ने, जो पश्चिम के महानतम, महततम प्रतिभाशाली लोगों में एक हुआ——उसने कहा है कि 'मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या ऊब है, बोर्डम है।' क्यों? इसीलिए मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या ऊब है, कि जो जान लिया, उससे ही ऊब पैदा हो जाती है। पति पत्नियों से ऊबे हुई हैं, पत्नियां पतियों से ऊबी हुई हैं! क्यों?——जान लिया। अब जानने को कुछ बचा नहीं। पहचान ली एक दूसरे की भूगोल, झांक लिया एक दूसरे के इतिहास में, सब परिचित हो गया। अब फिर वही-वही है।

क्यों लोग एक धर्म से दूसरे धर्म में प्रविष्ठ हो जाते हैं? क्यों हिन्दू ईसाई बन जाते हैं? क्यों ईसाई हिन्दू बन जाते हैं? ऊब गये पढ़-पढ़ कर गीता, दोहरा-दोहरा कर गीता——बाइबिल थोड़ी नयी लगती है! बाइबिल से ऊब गये——गीता थोड़ी नयी लगती है। लोग बदलते रहते हैं!

मन हमेशा बदलाहट की मांग करता है। मकान बदल लो; काम बदल लो; पत्नी बदल लो; कपड़े बदल लो; फैशन बदल लो। बदलते रहो, ताकि ऊब न पकड़ ले। न बदलो, तो ऊब पकड़ती है। लेकिन ये सब बदलाहटें ऊब को मिटा नहीं पातीं, ढांक भला देती हों।

धर्म ही एकमात्र कीमिया है, जिससे ऊब सदा के लिए समाप्त हो जाती है। किसी ने बुद्ध को ऊबा नहीं देखा! किसी ने महावीर के चेहरे पर ऊब नहीं देखी, उदासी नहीं देखी, हारापन नहीं देखा, थकापन नहीं देखा।

तुम्हारे तथाकथित धार्मिक धार्मिक नहीं हैं। उनके लिए तो धर्म भी एक ऊब है। इसलिए तुम मंदिरों में, धर्म-सभाओं में लोगों को सोते देखोगे। क्या है वहां जानने को? रामलीला लोग देखने जाते हैं, तो सोते हैं। रामलीला तो पता ही है! सब वही-वही बार-बार देख चुके हैं।

एक स्कूल में ऐसा हुआ...। गांव में रामलीला चल रही थी। सारे बच्चे राम-लीला देखने जाते थे। अध्यापक उनको दिखाने ले जाता था। धर्म की शिक्षा हो रही थी। और तभी स्कूल का इंस्पेक्टर जांच करने आ गया। अध्यापक ने सोचा कि अभी सब बच्चे रामलीला देख रहे हैं, ऐसे अवसर पर अगर यह रामलीला के संबंध में ही कुछ प्रश्न पूछ ले, तो अच्छा होगा।

इंस्पेक्टर ने पूछा कि 'किस संबंध में बच्चों से पूछूं?' उसने कहा कि 'अभी ये रोज रामलीला देखते हैं; मैं भी देखने जाता हूं; इनको दिखाने ले जाता हूं। अभी रामलील के ही संबंध में कुछ पूछ लें।'

तो इंस्पेक्टर ने कहा, 'यही ठीक।' तो उसने पूछा कि 'बताओ बच्चो, शिवजी

का धनुष किसने तोड़ा ?'

एक लड़का एकदम से हाथ हिलाने लगा ऊपर उठ कर। शिक्षक भी बहुत हैरान हुआ, क्योंकि वह नम्बर एक का गधा था ! इसने कभी हाथ हिलाया ही नहीं था जिंदगी में ! यह पहला ही मौका था। शिक्षक भी चौंका। मगर अब क्या कर सकता था। कहीं यह भद्द न खुलवा दे और !

अध्यापक तो चुपचाप रहा। इंस्पेक्टर ने कहा, 'हां बेटा, बोलो। किसने शिवजी का धनुष तोड़ा—तुम्हें मालूम है ?'

उसने कहा कि 'मुझे मालूम नहीं कि किसने तोड़ा। मैं तो इसलिए सबसे पहले हाथ हिला रहा हूं कि पहले आपको बता दूं कि मैंने नहीं तोड़ा ! नहीं तो कोई भी चीज टूटती है कहीं—घर में कि बाहर, कि स्कूल में—मैं ही फंसता हूं। अब यह पता नहीं, किसने तोड़ा है !'

इंस्पेक्टर तो अवाक् रहा कि यह कैसी रामलीला देखी जा रही है ! इसके पहले कि वह कुछ बोले, सम्हले कि शिक्षक बोला कि 'इंस्पेक्टर साहब, इसकी बातों में मत आना। इसी हरामजादे ने तोड़ा होगा ! यह सामने देख रहे हैं आप गुलमोहर का झाड़, इसकी डाल इसी ने तोड़ी। यह खिड़की देख रहे हैं, कांच टूटा हुआ—इसी ने तोड़ा ! यह मेरी कुर्सी का हत्था देख रहे हैं—इसी ने तोड़ा। यह देखने में भोला-भाला लगता है; शैतान है शैतान ! मैं तो कसम खा कर कह सकता हूं कि मैं इसकी नस-नस पहचानता हूं। इसी हरामजादे ने तोड़ा है !'

इंस्पेक्टर तो बिलकुल भौंचक्का रह गया कि अब करना क्या है ! अब कहने को भी कुछ नहीं बचा।

'और', शिक्षक ने कहा, 'आप अगर मेरी न मानते हों, तो और लड़कों से पूछ लो ?'

लड़कों ने कहा कि 'जो गुरुजी कह रहे हैं, ठीक कह रहे हैं !'

एक लड़के ने अपनी टांग बतायी कि यह जो पलस्तर बंधा है; 'इसी ने मेरी टांग तोड़ी ! शिवजी का धनुष अगर कोई तोड़ सकता है, तो यही लड़का है। यह जो चीज न तोड़ दे...!'

इंस्पेक्टर तो वहां से भागा। प्रधान अध्यापक से जा कर उसने कहा कि 'यह क्या माजरा है ?'

लेकिन प्रधान अध्यापक बोला कि 'अब आप ज्यादा खयाल न करें। अरे, ये तो लड़के हैं, चीजें तोड़ते ही रहते हैं ! लड़के ही ठहरे। आप इतने व्यथित न हों। अब यह तो स्कूल है। हजार लड़के पढ़ते हैं ! अब तोड़ दिया होगा किसी ने शिवजी का धनुष। और जरूरत भी क्या है शिवजी के धनुष की ! अरे टूट गया—तो टूट गया ! भाड़ में जाये शिवजी का धनुष। आप क्यों चिंता कर रहे हैं !'

उसकी तो सांसें रुकने लगीं इंस्पेक्टर की कि क्या रामलीला हो रही है गांव में ! और सारा स्कूल जा रहा है। अध्यापक, प्रधान अध्यापक—सब रामलीला देखने जा रहे हैं ! वह वहां से भागा, सीधा म्युनिसिपल कमेटी के दफ्तर में पहुंचा, जिसका कि स्कूल था। और उसने कहा कि 'मैं शिक्षा समिति का जो अध्यक्ष है, उससे मिलना चाहता हूं।' उसने कहा कि उसको कहूं कि यह क्या माजरा—यह क्या शिक्षा हो रही है !

मगर इसके पहले...वह पूरी बात कर भी नहीं पाया था...उसने कहा कि 'आप फिक्र न करो। अरे, जुड़वा देंगे। टूट गया, तो जुड़वा देंगे ! ऐसा कौन करोड़ों का दिवाला निकल गया है ! अब यह तो टूटती फूटती रहती हैं चीजें; जुड़ती रहती हैं ! और हम किसलिए बैठे हैं ? कहां है धनुष ? एक बढ़ई को तो हमें लगाये ही रखना पड़ता है। स्कूल में कहीं कुर्सी टूटी, कहीं टेबल टूटी, कहीं कुछ टूटा, कहीं कुछ टूटा। जोड़ देगा धनुष को ! इसमें इतने क्यों आप पसीना-पसीना हो रहे हैं !'

रामलीला सब देख रहे हैं ! मगर यह बात, यह कहावत सच है कि लोग रात भर रामलीला देखते हैं और सुबह पूछते हैं कि सीतामैया रामजी की कौन थीं ! क्योंकि देखता कौन है ? लोग सोते हैं। इतनी बार देख चुके हैं कि अब ऊब पैदा हो गयी है। कोई नयी घटना घट जाये, तो भला देख लें।

जैसे एक रामलीला में यह हुआ कि हनुमानजी गये तो थे लंका जलाने, अयोध्या को जला दिया ! तो सारी सभा आंख खोल कर बैठ गयी ! लोग खड़े हो गये ! कि भैया, क्या हो रहा है ?

रामजी भी बोले कि 'अरे हनुमानजी, तुम बंदर के बंदर ही रहे ! तुमसे किसने कहा, अयोध्या जलाने को ?'

हनुमानजी भी गुस्से में आ गये ! उन्होंने कहा कि 'तुम भी समझ लो साफ कि मुझे दूसरी रामलीला में ज्यादा तनख्वाह पर नौकरी मिल रही है ! मैं कुछ डरता नहीं। जला दी। कर लो, जो कुछ करना हो ! बहुत दिन जला चुका लंका। बार-बार लंका ही लंका जलाओ ! मैं भी ऊब गया। कर ले जिसको जो कुछ करना है !'

वह था गांव का पहलवान, उसको कोई क्या करे ! रामजी तो छोटे-से लड़के थे। उसने कहा, 'वह धौल दूंगा एक कि छठी का दूध याद आ जायेगा ! है कोई माई का लाल, जो मुझे रोक ले ! जला दिया अयोध्या—कर ले कोई कुछ !'

बामुश्किल परदा गिरा कर, समझा-बुझा कर उसको कहा कि 'भैया, अब तू घर जा। तुझे दूसरी रामलीला में जगह मिल गयी है, वहां काम कर !'

उस रात गांव में जरा चर्चा रही ! लोगों ने आंख खोल कर देखा। नहीं तो किसको पड़ी है—अब लंका जलती ही रहती है !

आदमी का मन नये की तलाश करता है। विज्ञान के हिसाब से तो नया बहुत दिन बचेगा नहीं। कब तक नया बचेगा ! इसलिए विज्ञान उबा ही देगा। इसलिए

पश्चिम में जितनी ऊब है, पूरब में नहीं है। क्योंकि पूरब विज्ञान में पिछड़ा हुआ है। पश्चिम में जैसी उदासी छायी जा रही है, लोगों को जीवन का अर्थ नहीं दिखायी पड़ रहा है। सब अर्थ खो गये हैं। वैसा पूरब में नहीं हुआ है अभी। लेकिन होगा--आज नहीं कल। पूरब जरा घसिटता है, धीरे-धीरे घसिटता है; पहुंचता वहीं है, जहां पश्चिम। मगर वे जरा तेज गति से जाते हैं; ये बैलगाड़ी में चलते हैं! पहुंच रहे हैं वहीं। हम भी विज्ञान की शिक्षा दे रहे हैं।

मैं कोई विज्ञान के विरोध में नहीं हूं। मैं चाहता हूं, विज्ञान की शिक्षा होनी चाहिए। लेकिन यह भ्रांति होगी कि विज्ञान धर्म का स्थान भरने लगे।

धर्म की तीसरी कोटि तो हमारे खयाल में बनी ही रहनी चाहिए कि कुछ है, जो रहस्यमय है। और कुछ है जो ऐसा रहस्यमय है कि हम जान-जान कर भी न जान पायेंगे। जान लेंगे, और कह न पायेंगे। पहचान लेंगे, और बता न पायेंगे। जानेंगे, कि गूंगे हो जायेंगे--गूंगे का गुड़ हो जायेगा! स्वाद तो आ जायेगा, मगर बोल भी न सकेंगे! जो बोलेंगे--सो गलत होगा।

लाओत्जू ने कहा है, 'मत पूछो मुझसे सत्य की बात। क्योंकि सत्य के संबंध में कुछ भी कहो, कहते से ही गलत हो जाता है; असत्य हो जाता है। क्योंकि सत्य इतना विराट है! और शब्द इतने छोटे हैं!'

निरुक्त कोई धर्म की अनुभूति पर आधारित शास्त्र नहीं है। वह तो भाषा, व्याकरण--उनका गणित है। निश्चित ही गणित तर्क का ही विस्तार होता है। इसलिए इस परोक्ष कथा से निरुक्त यह कह रहा है कि अब ऋषियों की कोई जरूरत नहीं है। जा चुके दिन!

मगर भारतीयों के कहने के ढंग भी बेईमान होते हैं! सीधी बात भी न कहेंगे। नाहक देवताओं को घसीट लाये! यहां कोई सीधी बात कहता ही नहीं! यहां सीधी बात कहो, तो लोगों को जहर जैसी लगती है। यहां तो गोल, घुमा-फिरा कर कहो कि किसी को पता ही नहीं चले--क्या कह रहे हो! और पता भी चल जाये, तो उसके कई अर्थ किये जा सकें!

अब देवताओं की कोई जरूरत नहीं है इसमें। और देवताओं को क्या खाक पता है! कोई देवता ऋषियों से ऊपर है? देवता ऋषियों से ऊपर नहीं हैं। ऋषि से ऊपर तो कोई भी नहीं है।

हमारा देश अकेला देश है इस अर्थ में, जिसके पास कवि के लिए दो शब्द हैं: एक कवि और एक ऋषि। दुनिया की किसी भाषा में कवि के लिए दो शब्द नहीं हैं। क्योंकि कविता का दूसरा रूप ही किसी भाषा में नहीं निखरा। वह बात ही नहीं उतरी पृथ्वी पर। इसलिए एक ही शब्द है--कविता या कवि। ऋचा और ऋषि--बड़ी और बात है! उस भेद को खयाल में लो, तो समझ में बहुत कुछ आ सकेगा।

कवि हम उसे कहते हैं, जिसे कभी-कभी झरोखा खुल जाता--सत्य की थोड़ी-सी झलक मिल जाती--एक किरण। आंख में एक ज्योति जगमगा जाती और तिरोहित हो जाती। फिर गहन अंधेरा हो जाता है। कवि को पता भी नहीं है, यह क्यों होता है, कैसे होता है! यह उसके हाथ के, बस की बात भी नहीं है कि वह जब चाहे, तब हो जाये। यूं अगर कोई कविता लिखने बैठने, तो तुकबंदी होगी--कविता नहीं होगी।

तुकबंदी कोई भी कर सकता है। और इधर तो नयी कविता चली है, उसमें तुकबंदी की भी जरूरत नहीं है! इसलिए कोई भी मूढ़ कवि हो जाता है! अब तो कवि होने में भी अड़चन न रही--ऋषि होना तो दूर बात है। अब तो कवि होने में भी अड़चन नहीं है। अतुकांत कविता! अब तो तुक भी नहीं बिठानी पड़ती! अब तो कुछ भी उल्टा-सीधा जोड़ो! कविता बनाने में कोई अड़चन नहीं है। इसलिए इतने कवि हैं! गांव-गांव मोहल्ले-मोहल्ले इतने कवि-सम्मेलन होते हैं! सुनने वाले नहीं मिलते! और सुनने वाले भी क्या आते हैं! सब गांव के सड़े टमाटर, अण्डे, केलों के छिलके--सब ले आते हैं, क्योंकि कवियों का स्वागत करना पड़ता है!

असल में जिस गांव में कवि-सम्मेलन होता है, कवि पहले जाते हैं सब्जी-मण्डी में और सब खरीद लेते हैं! ताकि फेंकने को कुछ बचे ही नहीं! और जनता केवल एक काम करती है--हूट करने का!

कविताओं में है भी क्या अब! कविता भी नहीं है उसमें। ऋचाओं की तो बात ही बहुत दूर हो गई!

कवि उसको हम कहते थे, जिसके जीवन में अनायास, बिना किसी साधना के, पता नहीं क्यों, एक रहस्य की भांति, कभी-कभी किसी रंध्र से कोई किरण प्रवेश कर जाती है। और वह किरण को बांध लेता है शब्दों में। किरण को धुन दे देता है। किरण को गीत बना लेता है।

कूलरिज मरा, अंग्रेज महाकवि, तो कहते हैं, चालीस हजार कविताएं उसके घर में अधूरी मिलीं। सारा घर अधूरी कविताओं से भरा था। और उसके मित्र जानते थे, और वे मित्र उससे कहते थे कि 'इनको पूरा क्यों नहीं करते!'

लेकिन कूलरिज ईमानदार कवि था। वह कहता, 'मैं कैसे पूरा करूं! कोई कविता उतरती है, कुछ पंक्तियां उतरती हैं, फिर नहीं उतरती आगे, तो मैं अपनी तरफ से नहीं जोड़ूंगा। कविता जब उतरेगी--उतरेगी। जब आयेगी, तब आयेगी। जितनी आ गई, उतनी मैंने लिख दी। अब प्रतीक्षा करूंगा। क्योंकि जब भी मैंने जोड़ा है, तभी मैंने पाया कि कविता खो जाती है। वह जो रहस्य होता है, रस होता है, सूख जाता है। मेरे द्वारा जोड़ा गया अलग दिखाई पड़ता है।'

ऐसा रवींद्रनाथ के जीवन में हुआ। जब उन्होंने गीतांजलि अंग्रेजी में अनुवादित की, तो उन्हें थोड़ा-सा संदेह था कि पता नहीं अंग्रेजी में बात पहुंच पायी या नहीं, जो

बंगला में थी ! तो सी. एफ. एन्ड्रूज को अपनी अंग्रेजी अनुवाद की गीतांजलि दिखाई। एन्ड्रूज ने कहा कि 'और तो सब ठीक है, चार जगह भाषा की भूलें हैं। ये सुधार लें।'

जो एन्ड्रूज ने सुझाया, वह रवींद्रनाथ ने बदल दिया। स्वभावत: वह उनकी मातृभाषा नहीं थी अंग्रेजी। और एन्ड्रूज विद्वान पुरुष थे; भाषा पर उनका अधिकार था। जो कह रहे थे, ठीक कह रहे थे। रवींद्रनाथ को यह बात जंची।

फिर जब उन्होंने योरोप में पहली दफा कवियों की एक छोटी-सी गोष्ठी में जा कर गीतांजलि का अनुवाद सुनाया, तो वे बड़े हैरान हुए। भरोसा न आया। एक युवक कवि खड़ा हुआ, यीट्स उसका नाम था, और उसने कहा कि 'कविता बड़ी मधुर है। अद्‌भुत है। नोबल पुरस्कार इस पर मिलेगा आज नहीं कल।' यीट्स ने यह मिलने के पहले कह दिया था। भविष्यवाणी कर दी थी कि 'इस सदी में अंग्रेजी में कोई इतना अद्‌भुत काव्य नहीं लिखा गया है। लेकिन चार जगह भूल है।'

रवींद्रनाथ ने कहा, 'कौन-सी चार जगह ? सुधार लेता हूं !'

हैरान हुए वे तो। वे ही चार जगह थीं, जहां सी. एफ. एन्ड्रूज ने सुधार करवाया था। रवींद्रनाथ ने कहा, 'आप क्या कह रहे हैं ! ये तो वे जगहें हैं, जहां मैंने भूल की थीं और सी. एफ. एन्ड्रूज ने सुधार करवा दिया है !'

यीट्स ने पूछा कि 'आप बताइये, आपने क्या शब्द पहले रखे थे !' रवींद्रनाथ ने अपने पुराने शब्द बताये। उनको ही काट कर तो उन्होंने नये शब्द लिख दिये थे।

यीट्स ने कहा कि 'आपके शब्द भाषा की दृष्टि से गलत हैं, लेकिन काव्य की दृष्टि से सही हैं। वे चलेंगे। एन्ड्रूज के शब्द भाषा की दृष्टि से सही हैं, लेकिन काव्य की दृष्टि से गलत हैं। वे नहीं चलेंगे। वे पत्थर की तरह पड़े हैं। उनमें आपकी जो सतत धारा है काव्य की, विच्छिन्न हो गई, टूट गई। वे दीवाल की तरह अड़ गये हैं।'

एन्ड्रूज ने भाषा की दृष्टि से बिलकुल ठीक कहा है, लेकिन कविता भाषा थोड़े ही है। भाषा से कुछ ऊपर है। जो भाषा में आ जाता है, उसे तो हम गद्य में लिख देते हैं। जो भाषा में नहीं आता, उसे पद्य में लिखते हैं। पद्य का अर्थ ही यही है कि गद्य में नहीं बंधता। गाना होगा, गुनगुनाना होगा। नृत्य देना होगा। तर्क के जाल को थोड़ा ढीमा करना होगा। व्याकरण की उतनी चुस्ती नहीं रखनी होगी, जितनी गद्य पर होती है। इसलिए कवि को स्वतंत्रता होती है थोड़ी, शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने की; शब्दों को नये अर्थ, नयी भाव-भंगिमाएं देने की। नयी मुद्राएं देने की। शब्दों को नया रस देने की।

यीट्स ने कहा, 'आप अपने शब्द वापस रखें। आपके शब्द प्यारे हैं। वे उतरे हैं।' इसलिए हमने वेदों को अपौरुषेय कहा है। अपौरुषेय का अर्थ है : हमने लिखा जरूर, मगर हम सिर्फ लिखने वाले थे, हम रचयिता न थे, लेखक थे। रचयिता तो परमात्मा था। वह बोला—हमने लिखा। वह गुनगुनाया—हमने भाषा में उतारा। हम तो केवल माध्यम थे, हम स्रष्टा न थे।

यह वेदों के अपौरुषेय होने की बात प्रीतिकर है। सारा काव्य अपौरुषेय होता है। आती है बात किसी अज्ञात लोक से, तुम्हारे प्राणों को थरथरा जाती है। वही थरथराहट जब तुम देने में समर्थ हो जाते हो भाषा को, तो कविता का जन्म होता है।

लेकिन काव्य आकस्मिक है। तुम उसके मालिक नहीं हो।

रवींद्रनाथ महीनों कविता नहीं लिखते थे। और कभी ऐसा होता था कि फिर दिनों लिखते रहते थे। तो द्वार-दरवाजे बंद कर देते थे। तीन-तीन दिन तक खाना नहीं खाते थे, स्नान नहीं करते थे। क्योंकि कहीं धारा न टूट जाये। तो घर के लोगों को सूचना थी कि जब वे द्वार-दरवाजे बंद कर लें, तो कोई दस्तक भी न दे, कि धारा न टूट जाये। क्योंकि नाजुक मामला है ! बड़े सूक्ष्म तंतुओं में उतरती है कविता, जैसे मकड़ी का जाला, जरा से धक्के में टूट जा सकता है। फिर लाख बनाओ, न बनेगा। कौन आदमी है, जो मकड़ी का जाला बना दे ! कितना ही कुशल हो।

तो रवींद्रनाथ भूखे-प्यासे, बिना नहाये-धोये . . . सोते नहीं थे, इस डर से कि पता नहीं, जो धारा बह रही है, वह कहीं रात खो न जाये ! कहीं सपनों के कारण बाधा न आ जाये। लिखते ही रहते थे; लिखते ही जाते थे—पागल की तरह। हां, जब धारा अपने आप रुक जाती थी, तब वे रुकते थे। फिर लौट कर देखते थे कि क्या उतरा। फिर प्रत्यभिज्ञा करते थे कि यह उतरा, ऐसा उतरा।

सच्चा कवि सुधार नहीं करता। क्योंकि सुधार करने वाले तुम कौन हो ! तुमसे जो आया ही नहीं, तुम उसमें कैसे सुधार करोगे ? वह तो अपने हाथ परमात्मा के हाथ में छोड़ देता है, वह जो चाहे लिखवा ले। वह जो चाहे, बोला ले।

लेकिन इसके ऊपर भी एक काव्य का लोक है, जिसको हम ऋचा का लोक कहते हैं—ऋषि का लोक। ऋषि वह है, जिसके जीवन में कविता आकस्मिक नहीं है। जिसके जीवन में कविता शैली हो गई। जिसका उठना काव्य है, जिसका बैठना काव्य है। जो बोले, तो काव्य; जो न बोले, तो काव्य। जिसके मौन में भी काव्य है। जिसके पास तुम बैठो, तो तुम्हारे हृदय की वीणा बजने लगे। जिसका हाथ तुम हाथ में ले लो, तो तुम्हारे भीतर ऊर्जा का एक प्रवाह हो जाये।

कविता पढ़ कर कवि से मिलने कभी मत जाना, क्योंकि अकसर यह होगा कि कविता पढ़ कर तो तुम बहुत आह्लादित हो जाओगे; कवि से मिल कर बहुत उदास हो जाओगे ! क्योंकि काव्य को पढ़ कर तो ऐसा लगेगा कि किसी अपूर्व व्यक्ति से मिलने जा रहे हैं। और जब तुम कवि को मिलोगे, तो तुम बहुत हैरान होओगे। हो सकता है, तुमसे गया-बीता हो। बैठा हो किसी शराबघर में, शराब पी रहा हो। गालियां बक रहा हो। कि नाली में पड़ा हो। कि झगड़ा-झांसा कर रहा हो।

तुम कभी भूल कर भी कविता पढ़ कर कवि से मिलने मत जाना, नहीं तो कविता पर तुम्हें जो आनन्द-भाव जगा था, वह मिट जायेगा। जैसे खलील जिब्रान की अगर

तुमने किताबें पढ़ीं; खलील जिब्रान से मिलने मत जाना। क्योंकि जो भी खलील जिब्रान से मिले, उनको बहुत उदास हो जाना पड़ा। कहां खलील जिब्रान की किताब 'प्रॉफेट', जिसका एक-एक शब्द हीरों में तौला जाये; ऐसा है। लेकिन खलील जिब्रान से मिलोगे, तो वह साधारण आदमी है। वही क्रोध, वही ईर्ष्या, वही वैमनस्य, वही अहंकार, वही झगड़ा-फसाद, वही तिकड़म बाजियां, वही राजनीति--सब वही, जो तुममें है। और उससे भी गया-बीता !

ऐसा अकसर हो जाता है ना ! रास्ते पर तुम जा रहे हो अंधेरे में। अंधेरे में चलते-चलते अंधेरे में भी थोड़ा दिखाई पड़ने लगता है। फिर पास से ही कोई कार गुजर जाये। तेज रोशनी तुम्हारी आंखों में भर जाये। एक क्षण को तुम तिलमिला जाते हो। कार तो गई। आयी और गई। लेकिन एक हैरानी की बात पीछे अनुभव होती है कि कार के चले जाने के बाद अंधेरा, और अंधेरा हो गया ! इतना अंधेरा पहले न था। अंधेरा तो वही है, मगर तुम्हारी आंखों ने रोशनी जो देख ली। अब तुम्हारी आंखों को फिर से इस अंधेरे को देखने में तुलना पैदा हो गई।

तो अकसर यह होता है : कवि उड़ान भरता है आकाश की, क्षण भर को। और फिर जब गिरता है, तो तुमसे भी नीचे के गड्ढे में गिर जाता है ! उसकी आंखों में चकाचौंध भर जाती है। इसलिए कवियों के जीवन बड़े साधारण होते हैं; बड़े क्षुद्र होते हैं।

मैं बहुत कवियों को जानता हूं। उनकी कविताएं प्यारी हैं। उनकी कविताओं के मैं कभी उल्लेख करता हूं, उद्धरण देता हूं। मगर उन कवियों के नाम नहीं लेता। मुझसे कई दफे पूछा गया है कि 'मैं किसी कवि का जब उल्लेख करता हूं, तो नाम क्यों नहीं लेता ?' नाम इसलिए नहीं लेता, कि कविता ही तुम समझो, उतना ही अच्छा है। कवि को भूलो। कवि को बीच में न लाओ। क्योंकि वह कवि किसी क्षण में कवि था, फिर तो वह साधारण आदमी है। क्षण भर को उछला था। पंख लग गये थे। फिर क्षण भर बाद गिर पड़ा है। और जब गिरता है कोई उछल कर, तो हड्डी-पसली टूट जाती है। जब उछल कर कोई गिरता है, तो चारोंखाने चित्त गिरता है। तुम समतल भूमि पर चलते हो। कवि की जिंदगी कभी पहाड़ों पर, और कभी खाइयों में। वह समतल भूमि पर चलता ही नहीं।

ऋषि वह है, जिसने पहाड़ों पर ही चलने की कला सीख ली। जो एक शिखर से दूसरे शिखर पर पैर रखता है। जिसके लिए पहाड़ों की ऊंचाइयां ही अब समतल भूमि हो गई हैं।

कवि की कोई साधना नहीं होती। उसका कोई योग नहीं होता। उसका कोई ध्यान नहीं होता। कोई प्रार्थना नहीं होती। कोई पूजा नहीं, कोई अर्चन नहीं। वह तुम्हारे जैसा ही व्यक्ति है। पता नहीं किन पिछले जन्मों के पुण्य के कारण कभी झरोखें खुल जाते हैं। पता नहीं क्यों। उसे पता नहीं है कि क्यों द्वार खुल जाता है और अचानक

सूरज झांक जाता है ! पानी की बूंदें बरस जाती हैं। आकाश के तारे दिखाई पड़ जाते हैं। कैसे द्वार खुलता है, इसका भी उसे पता नहीं; कैसे द्वार बंद हो जाता है, इसका भी उसे पता नहीं। क्यों उसके जीवन में कभी काव्य का आकाश खुल जाता है और क्यों सब बंद हो जाता है--उसे कुछ भी पता नहीं है।

ऋषि के हाथ में चाबी है। वह जान कर द्वार खोलता है। उसे पता है--आकाश तक जाने का रास्ता। उसकी साधना है। उसने अपने को निखारा है। उसने आकाश और अपने बीच एक तालमेल बिठाया है। उसकी आत्मा और आकाश एक हो गये हैं। भीतर का आकाश बाहर के आकाश से मिल गया है। उसमें कोई भेद नहीं रह गया। अभेद हो गया है, अद्वैत हो गया है।

कवि में से तो कभी-कभी ईश्वर बोलता है; कभी-कभी। जब कवि बोलता है, तो सब साधारण होता है। और जब कभी अपने को मिला देता है, तो कचरा हो जाता है। उसकी श्रेष्ठ कविता में भी कचरा आ जाता है।

ऋषि में से ईश्वर नहीं बोलता; ऋषि ईश्वर के साथ एक हो गया है। ऋषि माध्यम नहीं है। कवि माध्यम है। ऋषि तो स्वयं ईश्वर है। वह भगवद्-स्वरूप है।

इसलिए यह बात तो मैं मानने को राजी नहीं हूं कि ऐसा कोई दिन आया, जिस दिन ऋषिजन इस जगत से जाने लगे। अभी भी नहीं गये। यह मैं अपने अनुभव से कहता हूं।

यह निरुक्त का श्लोक जब लिखा गया, उसके बाद कितने ऋषि हो चुके ! बुद्ध हुए, महावीर हुए, गोरख हुए, कबीर हुए, नानक हुए, फरीद हुए, दादू हुए--यह तो भारत की बात हुई। भारत के बाहर भी हुए। जीसस हुए। मोहम्मद हुए ! मोहम्मद से बड़ा कोई ऋषि हुआ ! कुरान जैसी ऋचाएं उतरीं कहीं ! कुरान की ऋचाओं का जो रस है, जो तरन्नुम है, उनकी जो गेयता है, वह किसी और शास्त्र की नहीं।

तुम कुरान न भी समझो, उसकी एक खूबी, लेकिन अगर कोई कुरान को गा कर तुम्हें सुना दे, तो तुम डोल जाओगे। अब शराब को कोई समझना थोड़े ही पड़ता है कि कैसे बनती है। पी ली--कि डोले। शराब का कोई अर्थ थोड़े ही जानता होता है। कि कैसे अंगूर से ढली ! कि किस देश के अंगूर से ढली ! पिओगे--और जान लोगे--ऐसी कुरान है।

कुरान को पढ़ना नहीं चाहिए। जो कुरान को पढ़ता है, वह चूक जाता है। कुरान तो गायी ही जा सकती है। कुरान को पढ़ा कि मजा ही चला गया। उसका सारा राज गेय में है। 'कुरान' शब्द का भी अर्थ होता है--गा। कुरान शब्द का भी अर्थ होता है--गा, गुनगुना।

मोहम्मद पर जब पहली दफा कुरान उतरी, तो मोहम्मद बहुत घबड़ा गये। क्योंकि आकाश से कोई वाणी जैसे गूंजने लगी कि गा--गुनगुना। उठ--क्या सोया पड़ा है। मोहम्मद ने कहा, 'न मैं पढ़ा हूं न मैं लिखा हूं ! न मुझे शास्त्रों का कुछ पता है !' (वे

बेपढ़े-लिखे आदमी थे ।) 'मैं क्या गुनगुनाऊं, मैं कैसे गाऊं ?'

लेकिन आवाज आयी, 'तू फिक्र छोड़ शास्त्रों की । शास्त्रों को जानने वाले कब गुनगुना पाते हैं ! कब गा पाते हैं ! तू तो गा । अरे, पक्षी गाते हैं । कोयल गाती है । पपीहा गाता है । तू गा । तू गुनगुना । तू संकोच छोड़ ।'

वे तो इतने घबड़ा गये कि घर आ कर उन्होंने पत्नी से कहा कि 'मेरे ऊपर दुलाइयों पर दुलाइयां डाल दो । मुझे बुखार चढ़ा है ! मेरे हाथ-पैर थरथरा रहे हैं । मुझे ठण्ड लग रही है । बहुत शीत लग रही है । मैं कंपा जा रहा हूं ।'

पत्नी ने कहा, 'क्या हुआ ! तुम अभी-अभी ठीक गये थे !'

जो शब्द मोहम्मद ने कहे, वे बड़े प्यारे हैं । अगर वे भारत में हुए होते, तो उन्होंने एक शब्द नहीं कहा होता । लेकिन मजबूरी थी; वे भारत में नहीं पैदा हुए थे ।

उन्होंने कहा कि 'मुझे लगता है, या तो मैं पागल हो गया——या कवि हो गया !'

अगर भारत में पैदा होते, तो वे कहते, 'या तो मैं पागल हो गया——या ऋषि हो गया !'

लेकिन क्या . . . । मजबूरी थी । अरबी में ऋषि के लिए कोई शब्द नहीं है । कवि ही एकमात्र शब्द था । मगर तुम सुनो । उन्होंने कहा कि 'बस, दो में से कुछ एक बात हो गयी है । या तो मैं पगला गया ! मेरे भीतर ऐसी गूंज उठ रही है, जो कि मेरी है ही नहीं ! जो मैंने कभी जानी नहीं; पहचानी नहीं । मेरी तैयारी नहीं ! मगर झरनों पर झरने फूट रहे हैं ! कोई मेरे प्राणों को धक्के दे रहा है । कह रहा है——गा——गुनगुना ! गुनगुनाऊं ! गाऊं ! या तो मैं पागल हो गया——या कवि हो गया !'

मैं तुमसे कहता हूं, अगर वे भारत में यह पैदा होते, तो उन्होंने कहा होता, या तो मैं पागल हो गया——या ऋषि हो गया ! क्योंकि उसके बाद गुनगुनाहट चलती रही, चलती रही । कुरान एक दिन में नहीं लिखी गयी । वर्षों लगे । ऋचायें उतरती रहीं । जिसको मुसलमान आयत कहते हैं, उसको ही हम ऋचा कहते हैं । ऋचायें उतरती रहीं ।

मोहम्मद ऋषि हैं ।

तो कौन कहता है ? लाख निरुक्त कहे, मैं मानने को राजी नहीं । निरुक्त लिखी गई, उसके बाद चीन में लाओत्जू हुआ । च्वांगत्जू हुआ, लीहत्जू हुआ ! क्या अद्भुत लोग हुए ! जिनके एक-एक शब्द में स्वर्ग का राज्य समाया हुआ है ।

और तुम कहते हो, 'ऋषिजन जब जाने लगे . . . !' कभी गये नहीं ।

नानक को तो अभी पांच सौ साल ही हुए हैं । नानक के शब्द-शब्द में ऋचा है, गीत है । नानक तो गलत आदमियों के हाथों में पड़ गये; सैनिकों के हाथ में पड़ गये ! संन्यासियों के हाथ में पड़ना था । कहां तलवारें चमकने लगीं ! नानक के हाथ में कोई तलवार नहीं थी कभी ।

नानक के साथ तो उनका एक शिष्य था——मरदाना——उनका साजिन्दा था वह । उसके हाथ में तो एकतारा था । कहां नानक, कहां उनका साजिन्दा मरदाना——कहां एकतारा——और कहां आज का सिक्ख ! कि जरा कुछ कह दो कि वह एकदम कृपाण निकालने को तैयार है ! जरा में तलवारें चमकाने लगे !

नानक गाते फिरे । उनके शब्द गेय हैं । गाये गा सकते हैं । और बड़े प्यारे हैं । नानक के गाने के कारण एक नयी भाषा पैदा हो गई । क्योंकि नानक जैसा व्यक्ति जब गाता है, तो वह किसी पुरानी भाषाओं के नियम थोड़े ही मानता है । गुरुमुखी पैदा हो गई ।

'गुरुमुखी' शब्द तुम समझते हो——गुरु के मुख से जो निकली । भाषा का नाम भी गुरुमुखी !

शुद्ध हिन्दी कठोर होती है । शुद्ध हिन्दी में कोने होते हैं । पंजाबी में एक माधुर्य है, एक मिठास है । शुद्ध नहीं है पंजाबी; बिलकुल अशुद्ध है । निरुक्त से पूछो, तो अशुद्ध है । लेकिन निरुक्त से पूछो क्यों ? किसी ऋषि से पूछो, तो वह कहेगा, 'भाषा का क्या लेना-देना है ? यह गायक की स्वतंत्रता है । और यह हमेशा दुनिया में रही है ।'

महावीर संस्कृत में नहीं बोले, क्योंकि संस्कृत बड़ी व्याकरणबद्ध है । और इतनी व्याकरण की सीमाएं हैं कि स्वतंत्रता बरतनी बड़ी मुश्किल है । महावीर प्राकृत में बोले ।

प्राकृत और संस्कृत शब्द भी बड़े विचारणीय हैं । 'प्राकृत' का अर्थ होता है, जिसको सहज, साधारण लोग बोलते हैं । जो स्वाभाविक है । संस्कृत का अर्थ होता है : जिसमें स्वाभाविकता को काट-छांट कर संस्कार दे दिया गया । सुधार दे दिया गया; जिसको ढांचा दे दिया गया; जो प्राकृत आदमी की भाषा नहीं है ।

बुद्ध संस्कृत में नहीं बोले; पाली में बोले । पाली का अपना माधुर्य है ।

नानक से एक नयी भाषा का जन्म हो गया——गुरुमुखी । गायी——गुनगुनायी ।

ये ऋषि तो पैदा होते रहे । निरुक्त गलत कहता है ।

सहजानन्द ! मैं निरुक्त से राजी नहीं । तुम कहते हो कि यह सूत्र कहता है, 'इस लोक से जब ऋषिगण जाने लगे . . .।' कभी गये ही नहीं; कभी जायेंगे भी नहीं । जिस दिन इस लोक से ऋषिगण चले जायेंगे, यह लोक ही समाप्त हो जायेगा । फिर इस लोक में क्या नमक रह जायेगा ? क्या स्वाद रह जायेगा ? क्या मिठास रह जायेगी ? इन थोड़े-से लोगों के बल से तो यहां सुगंध है । नहीं तो यहां कांटे ही कांटे हैं । कुछ थोड़े से फूलों के बल तो इस जिंदगी में थोड़ा सौंदर्य है ।

नहीं, ऋषिगण कभी भी नहीं गये । संत फ्रांसिस, इकहार्ट——ये लोग दुनिया के कोने-कोने में होते रहे; कोई भारत का ठेका थोड़े ही है ! कोई ब्राह्मणों का ठेका थोड़े ही है ! ये क्षत्रियों में हुए । महावीर और बुद्ध क्षत्रिय थे । ये वैश्यों में हुए; तुलाधर वैश्य की कथा है उपनिषदों में ।

एक गुरु ने अपने शिष्य को तुलाधर वैश्य के पास ज्ञान लेने भेजा । शिष्य ने कहा

'आप ब्राह्मण हैं। आप महापण्डित हैं और एक बनिये के पास मुझे भेज रहे हैं ज्ञान लेने ?'

तो उसके गुरु ने कहा, 'ज्ञान न तो ब्राह्मण को देखता है, न वैश्य को देखता है, न क्षत्रिय को देखता है। जिसकी पात्रता होती है, उसका पात्र अमृत से भर जाता है। तो तू तुलाधर के पास जा।'

जाना पड़ा; गुरु ने कहा था शिष्य को। तो तुलाधर के पास बैठा। उसे कुछ समझ में न आया कि क्या इस आदमी में...! तुलाधर उसका नाम ही हो गया था कि दिन भर वह तराजू ले कर तौलता रहता, तौलता रहता! उसने पूछा कि 'तुम्हारा राज क्या है ?'

उसने कहा कि 'मैं डांडी नहीं मारता। इतना ही मेरा राज है। चोर नहीं हूं। समभाव से तौलता हूं। समता, समत्व, सम्यक्त्व। मेरे तराजू को देखो, और मुझे पहचान लो। जैसा मेरा तराजू सधा हुआ होता है; जैसे मेरे तराजू का कांटा ठीक मध्य में खड़ा हुआ है, ऐसा मैं भी मध्य में खड़ा हूं। न मेरा तराजू धोखा दे रहा है, न मैं धोखा दे रहा हूं। धोखा छोड़ दिया। पाखण्ड छोड़ दिया। जैसा हूं, वैसा हूं। बस, जिस दिन से जैसा हूं, वैसा ही रह गया हूं, उसी दिन से न मालूम कहां-कहां से लोग आने लगे पूछने--सत्य का राज!'

शूद्रों में भी हुए। सेना नाई हुआ। नाई था, लेकिन ऋषि तो कहना ही होगा उसे। रैदास चमार हुआ। चमार था, लेकिन ऋषि तो कहना ही होगा उसे। गोरा कुम्हार हुआ। उसके पास हजारों लोग दूर-दूर से आते थे पूछने जीवन का सत्य। और कुम्हार था, तो कुम्हार की भाषा में बोलता था। किसी ने पूछा कि 'गुरु करता क्या है ? आखिर गुरु का कृत्य क्या है ?'

तो गोरा कुम्हार उस वक्त अपने चाक पर घड़े को बना रहा था। उसने कहा, 'गौर से देख। एक हाथ मैं घड़े को भीतर से लगाये हुए हूं, और दूसरे हाथ से बाहर से चोटें मार रहा हूं। बस, इतना ही काम गुरु का है। एक हाथ से सम्हालता है शिष्य को, दूसरे हाथ से मारता है शिष्य को। ऐसा भी नहीं मारता कि घड़ा ही फूट जाये। कि सम्हाल ही न दे! और ऐसा भी नहीं सम्हलता कि घड़ा बन ही न पाये! इन दोनों के बीच शिष्य निर्मित होता है। गुरु मारता है; जी भर कर मारता है--और सम्हालता भी है। मार ही नहीं डालता। यूं मिटाता भी है--बनाता भी है। यूं मारता भी है, नया जीवन भी देता है।'

कुम्हार है, कुम्हार की भाषा बोला है, लेकिन बात कह दी। और बात इस तरह से कही कि शायद किसी ने कभी नहीं कही थी।

मैंने दुनिया के करीब-करीब सारे शास्त्र देखे हैं, लेकिन गुरु के कृत्य को जैसा गोरा कुम्हार ने समझा दिया, यूं सरलता से, यूं बात की बात में--ऐसा किसी ने नहीं

समझाया। कि गुरु भीतर से तो सम्हालता है...। भीतर से सम्हालता है, और बाहर से मारता है। बाहर से काटता है, छांटता है। बाहर बड़ा कठोर--भीतर बड़ा कोमल! भीतर यूं कि क्या गुलाब की पंखुड़ी में कोमलता होगी! और बाहर यूं कठोर कि क्या तलवारों में धार होगी!

तो जो मिटने और बनने को राजी हो एक साथ, वही शिष्य है। और जो मिटाने और बनाने में कुशल हो, वही गुरु है।

ऋषि तो होते रहे। होते रहेंगे।

यह बात ही गलत है कि 'मनुष्या वा ऋषिसूत्क्रामत्सु--कि इस लोक से जब ऋषिगण जाने लगे, जब उनकी परम्परा समाप्त होने लगी...।'

पहली तो बात : ऋषियों की कोई परम्परा होती ही नहीं। ऋषियों की तो निजता होती है, परम्परा नहीं होती। प्रत्येक ऋषि अनूठा होता है, उसकी परम्परा हो ही नहीं सकती। कोई तुमने दूसरा बुद्ध होते देखा ? और यूं न सोचना कि बुद्ध होने की कोशिश नहीं की गई है। पच्चीस सौ वर्षों में लाखों लोगों ने कोशिश की है बुद्ध होने की। ठीक बुद्ध जैसे कपड़े पहने हैं। बुद्ध जैसा आसन लगाया है। बुद्ध जैसी आंखें बंद की हैं। बुद्ध जैसे ध्यान में बैठे हैं। बुद्ध जैसा भोजन किया है। बुद्ध जैसे उठे हैं, बैठे हैं, चले हैं--सब किया है। मगर नकल नकल है। एक भी बुद्ध नहीं हो सका। नकल से कभी कोई बुद्ध हुआ है ? बुद्ध की कोई परम्परा होती है ?

कोई जीसस हुआ दूसरा ? कोई महावीर हुआ दूसरा ? कितने जैन मुनि हैं भारत में! कोई है एकात माई का लाल जो कह सके कि मैं महावीर हूं ? और न कह सको, तो क्यों चुल्लू भर पानी में नहीं डूब मरते! क्या कर रहे हो ? क्या भाड़ झोंक रहे हो ?

पच्चीस सौ साल में एक जैन मुनि की हिम्मत नहीं पड़ी कहने की कि मैं महावीर हूं! हिम्मत पड़ती भी कैसे! होते--तो हिम्मत पड़ती। और ऐसा नहीं है कि उन्होंने कुछ नकल करने में कमी की हो। जो-जो महावीर ने किया, वह-वह किया! अगर महावीर नग्न रहे, तो हजारों लोग नग्न रहे। शीत झेली, धूप झेली। मगर महावीर की नग्नता कुछ और थी; इनकी नग्नता कुछ और। नकल कभी भी असल नहीं हो सकती।

मेरे एक मित्र हैं...। जैन संन्यास की पांच सीढ़ियां होती हैं। महावीर ने कोई सीढ़ियां पार नहीं कीं, खयाल रखना! महावीर तो महावीर हो गये। छलांग होती है महावीर की, जैन मुनि की सीढ़ियां होती हैं! बस, वहीं फर्क पड़ जाता है। महावीर ने तो एक दिन कपड़े छोड़ दिये। यूं थोड़े कि धीरे-धीरे अभ्यास किया!

ये दस वर्ष से जैन मुनि हो गये थे। तो मैं पास से गुजर रहा था, कोई पांच-सात मील के फासले पर उनका ठहराव था, तो मैंने ड्राइवर को कहा कि 'ले चलो। एक पांच-सात मील का चक्कर लगा लें। दस साल से उन्हें देखा नहीं।'

हम पहुंचे। मैंने खिड़की से देखा, जब उनके मकान के करीब पहुंच रहा था, कि अंदर वे नग्न टहल रहे हैं! और जब मैंने दरवाजे पर दस्तक दी, तो वे एक तौलिया लपेट कर आ गये! मैंने उनसे पूछा कि 'खिड़की से मैंने देखा कि आप नग्न थे। अब यह तौलिया क्यों लपेट ली?'

उन्होंने कहा, 'अभ्यास कर रहा हूं!'

नग्न होने का अभ्यास!

'मतलब, पहले कमरे में नग्न होंगे, यूं टहलेंगे। कभी कोई खिड़की से देख लेगा। ऐसे धीरे-धीरे सकोच मिटेगा। फिर धीरे-धीरे बाहर भी बैठने लगेंगे तखत पर आ कर। फिर धीरे-धीरे बाजार में भी जाने लगेंगे। ऐसे आहिस्ता-आहिस्ता अभ्यास करते-करते, करते-करते एक दिन नग्न हो जायेंगे!'

मैंने उनसे कहा कि 'जरूर अभ्यास करोगे, तो हो ही जाओगे। मगर सर्कस में भरती हो जाना फिर! क्योंकि अभ्यास से जो नग्नता आये, वह सर्कस में ले जायेगी। महावीर ने कब अभ्यास किया था—मुझे यह तो बताओ? महावीर ने नग्न होने का कब अभ्यास किया था, इसका कोई उल्लेख है?'

बोले, 'नहीं।'

'तो,' मैंने कहा, 'फिर फर्क समझो। महावीर की नग्नता एक छलांग थी। एक निर्दोष भाव था। एक बात समझ में आ गई कि छिपाने को क्या है! जैसा हूं—हूं। उघड़ गये। यह एक क्षण में घटने वाली क्रांति है। यह तुम दस साल से अभ्यास कर रहे हो!'

लेकिन जैन मुनि ने पांच सीढ़ियां बना ली हैं। एक-एक सीढ़ी चलता है। पहली सीढ़ी का नाम ब्रह्मचर्य। तो उसमें तीन चादर रख सकता है या चार चादर रख सकता है। गणित है उसका। फिर दूसरी सीढ़ी आ जाती है, तो छुल्लक हो जाता है। फिर एक चादर कम हो जाती है। फिर तीसरी सीढ़ी आ जाती है, तो इलक हो जाता है!

अभी बम्बई में एक 'इलाचार्य' आये हुए थे ना! और कहां उन्होंने अड्डा जमाया था! चौपाटी पर—जहां 'भेलाचार्य' पहले से ही जमे हुए हैं! मैंने भी सोचा कि ठीक है। इलाचार्य और भेलाचार्य में कोई फर्क है नहीं! कोई भेल बेच रहा है, कोई ऐल बेच रहा है! और चौपाटी पर चौपट लोग ही इकट्ठे होते हैं!

अभी बम्बई का नाम बदलने की इतनी चर्चा चलती है न। इसका नाम चौपट नगरी रख दो! क्या मुंबई, क्या बम्बई, क्या बॉम्बे! छोड़ो यह बकवास। चौपट नगरी अंधेर राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा! और चौपाटी को ही राजधानी बना दो!

फिर इलक हो जाता है आदमी, तो फिर उसकी और कमी हो जाती है। फिर ऐसे बढ़ते-बढ़ते मुनि होता है। जब मुनि होता है, तब सब वस्त्र छोड़ कर नग्न।

यह अभ्यासजन्य नग्नता और एक बच्चे की नग्नता में तुम फर्क नहीं समझोगे! एक बच्चा भी नग्न होता है; वह अभ्यासजन्य नहीं होता। उसकी नग्नता में एक सरलता होती है, एक निर्दोषता होती है। उसे पता ही नहीं कि नग्न होने में कुछ खराबी है। उसे कुछ चिंता ही नहीं। उसे अभी इतनी चालबाजी नहीं।

ऐसे ही एक दिन महावीर पुनः बालवत हो गये। फिर दो हजार, ढाई हजार साल बीत गये, कितने लोग नग्न होते रहे, मगर कोई महावीर नहीं! एक आदमी ने हिम्मत करके घोषणा की, वर्धा के एक स्वामी सत्य भक्त—उन्होंने घोषणा कि कि वे पच्चीसवें तीर्थंकर हैं! तो जैनियों ने उनका त्याग कर दिया फौरन। क्योंकि जैन शास्त्रों में चौबीस के अलावा पच्चीसवां तीर्थंकर हो ही नहीं सकता। एक महाकल्प में, एक सृष्टि में, सृष्टि और प्रलय के बीच में, अनंत काल बीतता है—उसमें सिर्फ चौबीस तीर्थंकर हो सकते हैं। पच्चीसवां हो नहीं सकता। महावीर के बाद उन्होंने चौबीसवें पर ठहरा दी बात। सभी धर्म यह कोशिश करते हैं।

सिक्खों ने दसवें गुरु के बाद बात ठहरा दी कि अब गुरु-ग्रंथ ही गुरु होगा। क्योंकि डर यह लगता है कि बाद में आने वाले लोग कुछ नयी बातें न कह दें! कहीं ऐसा न हो जाये कि बदलाहट कर दें! तो रोक दो दरवाजा। ठहरा दो प्रवाह को।

जैनों ने चौबीसवें तीर्थंकर पर बात रोक दी। मुसलमानों ने मोहम्मद पर ही बात रोक दी! ईसाइयों ने जीसस पर ही बात रोक दी; आगे नहीं बढ़ने दी।

मैं वर्धा गया हुआ था। जिनके घर मैं मेहमान था, वे बोले कि 'स्वामी सत्य भक्त को जैनियों ने तो निकाल बाहर कर दिया, कि उन्होंने अपने को पच्चीसवां तीर्थंकर कह दिया! लेकिन आपकी भी बेबूझ बातें हैं। शायद आप दोनों का मेल बैठ जाये! तो मुलाकात करवा दूं।'

'जरूर मुलाकात करवाइये। मेल तो शायद ही बैठे।'

उन्होंने कहा, 'क्यों?'

मैंने कहा कि 'जो आदमी अपने को पच्चीसवां बता रहा है, उन आदमियों को मैं कोई आदमी नहीं गिनता। मैं भी इसके खिलाफ हूं कि पच्चीसवां नहीं!'

उन्होंने कहा, 'अरे! मैं तो सोचता था कि आप क्रांतिकारी हैं!'

मैंने कहा, 'उनको आने दो।'

वे आये। कहने लगे कि 'आप भी कहते हैं कि कोई पच्चीसवां तीर्थंकर नहीं हो सकता!'

मैंने कहा, 'चौबीस ही नहीं हो सकते; पच्चीस की बात क्या उठा रहे हो! प्रत्येक तीर्थंकर एक ही होता है। उस जैसा दूसरा होता ही नहीं।' और मैंने कहा, 'तुम भी हद गधेपन की बात कर रहे हो। अरे, जब घोषणा ही करनी हो, तो प्रथम होने की घोषणा करो। क्या पच्चीसवां! क्यू में खड़े हैं! कुछ अकल की बात करो। यहां भी

क्यू लगाये हो ! तुम्हें क्यू में खड़े होने की आदत हो गई ! यह कोई बस है ? कि सिनेमा की टिकिट बेचनेवाली खिड़की है—कि खड़े हैं ! चौबीस नंग-धड़ंग पहले खड़े हैं, पच्चीसवें तुम खड़े हो !'

मैंने कहा, 'मुझे घोषणा करनी हो, तो मैं कहूंगा—प्रथम । और प्रथम भी क्या कहना, क्योंकि द्वितीय कोई हो नहीं सकता, इसलिए बकवास में ही क्यों पड़ना ! मैं मैं हूं, तुम तुम हो । महावीर महावीर थे, और सुंदर थे । और मुझे उनसे प्रेम है । लेकिन मैं मैं हूं । और मुझे मुझसे कहीं ज्यादा प्रेम है, जितना किसी और महावीर से होगा । स्वभावतः मुझे मेरी निजता से प्रेम है । मैं पच्चीसवें नम्बर पर अपने को क्यों रखूंगा ?

किसी व्यक्ति को किसी नम्बर पर होने की जरूरत नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति को अपनी निजता . . . यही फर्क तुम समझने की कोशिश करो ।

विज्ञान की परम्परा होती है । तुम चौंकोगे, जब मैं यह कहता हूं कि विज्ञान की परम्परा होती है, धर्म की परम्परा नहीं होती । विज्ञान बिना परम्परा के जिंदा ही नहीं रह सकता । उसका अतीत होता है । जैसे समझो तुम : अगर न्यूटन पैदा न हो, तो आइन्स्टीन कभी पैदा नहीं हो सकता । न्यूटन के बिना आइन्स्टीन के होने की कोई संभावना नहीं है । वह न्यूटन की ईंट चाहिए ही चाहिए । तभी आइन्स्टीन पैदा हो सकता है । अगर न्यूटन को हटा लो, तो आइन्स्टीन के लिए आधार ही नहीं मिलेगा खड़े होने का ।

विज्ञान की परंपरा होती है । हर वैज्ञानिक विज्ञान में कुछ जोड़ता चला जाता है । लेकिन धर्म की कोई परम्परा नहीं होती । बुद्ध हुए हों या न हुए हों, मैं फिर भी हो सकता हूं । क्योंकि बुद्ध के होने से क्या लेना-देना है ! अगर बुद्ध के पहले कृष्ण न भी हुए होते, तो भी बुद्ध होते । क्योंकि कृष्ण से क्या लेना-देना है ? बुद्ध ने अपने को जाना । अपने को जानने में दूसरा कहीं आता नहीं! उसकी कोई अपरिहार्यता नहीं है । आखिर जीसस को तो कृष्ण का कुछ भी पता नहीं था, फिर भी हो सके । और लाओत्जू को तो कुछ भी पता नहीं था कृष्ण का, फिर भी हो सके ! बुद्ध को तो लाओत्जू का कोई पता नहीं था, फिर भी हो सके । जरथुस्त्र को तो कोई पता नहीं था पतंजलि का, फिर भी हो सका । न पतंजलि को जरथुस्त्र का कोई पता था ।

विज्ञान में यह नहीं हो सकता । विज्ञान में पूरा अतीत पता होना चाहिए । जो हो चुका है पहले, उसी की बुनियाद पर तुम आगे काम करोगे । विज्ञान में शृंखला होती है, परम्परा होती है, कड़ियां होती हैं । कड़ियों में कड़ियां जुड़ती चली जाती हैं । लेकिन धर्म में कोई परम्परा नहीं होती । धर्म में प्रत्येक व्यक्ति आणविक होता है । बुद्ध की निजता अपने में है । महावीर न हों तो, कृष्ण न हों तो—हों तो—कोई भेद नहीं पड़ता ।

इसलिए धर्म की कोई परम्परा नहीं होती; ऋषियों की कोई परम्परा नहीं होती ।

तुम कहते हो, 'जब उनकी परम्परा समाप्त होने लगी . . .।' परम्परा ही नहीं

होती, तो समाप्त कैसे होगी ! मैं इस निरुक्त के वचन के बिलकुल विपरीत हूं । मैं इसको कोई समर्थन नहीं दे सकता । क्योंकि यह ऋषि का वचन ही नहीं है ।

लेकिन कुछ लोग ऐसे पागल हैं कि वे भाषा को और व्याकरण को सब कुछ समझते हैं !

जब स्वामी राम अमरीका से भारत वापस लौटे, तो उन्होंने सोचा . . .। इतना प्रेम उन्हें मिला था अमरीका में, कल्पनातीत—इतना समादर हुआ था ! लोगों ने उनकी बातें ऐसे पी थीं कि जैसे अमृत के घूंट । तो सोचा कि अमरीका जैसे भौतिकवादी देश में, नास्तिकों के बीच जब मेरी बातों का इतना मूल्य हुआ है, लोगों ने इस तरह पिया है, तो भारत में तो क्या नहीं होगा ! तो उन्होंने सोचा, भारत चल कर काशी से ही काम शुरू करूं । स्वभावतः । कि काशी से ही शुरू करूं काम को । तो वे काशी ही पहुंचे । और काशी में जो पहला प्रवचन दिया उन्होंने, उसी में गड़बड़ खड़ी हो गई !

एक पण्डित खड़ा हो गया । और उसने कहा, 'पहले रुकिये ।' (आधे ही प्रवचन में !) 'आपको संस्कृत आती है ?'

उनको संस्कृत नहीं आती थी । वे तो पंजाब में पैदा हुए, तो फारसी आती थी । उर्दू आती थी । पंजाबी आती थी । उनको संस्कृत नहीं आती थी । उन्होंने कहा, 'नहीं, मुझे संस्कृत नहीं आती है ।'

वह पण्डित हंसा । उसके साथ और भी पण्डित हंसे । हू-हल्लड़ हो गई । उस पण्डित ने कहा, 'पहले संस्कृत सीखो, फिर ब्रह्मज्ञान की बातें करना ! अरे, जब संस्कृत ही नहीं आती, तो क्या खाक ब्रह्मज्ञान की बातें कर रहे हो !'

स्वामी राम को इतना सदमा पहुंचा—कल्पनातीत ! उन्होंने कभी सोचा न था कि यह दुर्व्यवहार होगा ! उन्होंने प्रवचन पूरा भी नहीं किया । उन्हें भारत में उत्सुकता ही खो गई । भारत में ही उत्सुकता नहीं खो गई, उन्हें भारत के पुराने संन्यास में तक उत्सुकता खो गई । तुम यह जान कर चकित होओगे, हालांकि यह बात आमतौर से कही नहीं जाती, कि स्वामी राम ने उसी दिन अपने गैरिक वस्त्र छोड़ दिये । और वे गढ़वाल चले गये, हिमालय । और फिर कभी भारत में उतरे नहीं ।

क्या जाना ऐसे मूढ़ों के पास ! जिनका खयाल है कि संस्कृत आती हो, तो ब्रह्मज्ञान । तब तो जिन देशों में संस्कृत नहीं है, वहां ब्रह्मज्ञानी हुए ही नहीं ! तो बुद्ध ब्रह्मज्ञानी नहीं ! उनको भी संस्कृत नहीं आती थी । और महावीर भी ब्रह्मज्ञानी नहीं; उनको भी संस्कृत नहीं आती थी ! और जीसस तो कैसे होंगे ! और जरथुस्त्र तो कैसे होंगे ! इन बेचारों का तो कहां हिसाब लगेगा !

मैं तुमसे कहता हूं, भाषा से कुछ लेना-देना नहीं है । ब्रह्मज्ञान भाव की बात है—भाषा की नहीं ।

न तो ऋषियों की कोई परम्परा है; और न ऋषि कहीं चले गये हैं । तुम ऋषि हो

सकते हो। मेरी उद्‌घोषणा सुनो : तुम ऋषि हो सकते हो। तुम्हारे भीतर ऋषि होने का बीज उतना ही है, जितना किसी और ऋषि के भीतर रहा हो।

अपनी ऊर्जा को विकसित होने दो, मौका दो। अपनी ऊर्जा को ध्यान बनने दो, प्रार्थना बनने दो। बीज को फूटने दो, अंकुरित होने दो। तुममें भी फूल लगेंगे। तुममें भी ऋचाएं जगेंगी। तुम्हारे भीतर भी कोई एक दिन पुकारेगा कि गा, गुनगुना। तुमसे भी आयतें उठेंगी। तुमसे भी कुरान बहेगा।

मगर यह सूत्र चालबाजों का सूत्र है। वे कहते हैं, 'जब ऋषिजन जाने लगे, उनकी परम्परा समाप्त होने लगी, तब मनुष्यों ने देवताओं से कहा कि अब हमारे लिए कौन होगा ? उस अवस्था में देवताओं ने तर्क को ही ऋषि-रूप में उनको दिया।'

वह जो गणितज्ञ है, भाषा का हो या किसी और का, जिसके जीवन की शैली गणित है, तर्क उसका प्राण होता है। इसलिए उन्होंने कहा कि तर्क तुम्हारा ऋषि होगा।

अब इससे बेहूदी और कोई बात नहीं हो सकती। क्योंकि ऋषि का जन्म ही तर्कातीत है। जब तुम तर्क के पार जाते हो, तभी तुम्हारे जीवन में परमात्मा का अवतरण होता है। तर्क तो कभी भी धर्म का स्थान नहीं ले सकता। तर्क तुम लाख करो, कुछ पा न सकोगे। तर्क तो बचकानी बात है।

और तर्क तो वेश्या जैसा होता है--क्या ऋषि होगा ! तर्क का कोई ठिकाना है ! तर्क तो पत्नी भी नहीं होता, वेश्या जैसा होता है। किसी के भी साथ हो ले।

मैं सागर विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था। उस विश्वविद्यालय का निर्माण किया सर हरिसिंह गौर ने। वे भारत के बहुत बड़े वकील थे। बड़े तर्क-शास्त्री थे। और भारत में ही उनकी वकालत नहीं थी। वे तीन दफ्तर रखते थे। एक पेकिंग में, एक दिल्ली में, एक लंदन में। सारी दुनिया में उनकी वकालत की शोहरत थी।

मैंने उनसे एक दिन कहा कि 'आपकी वकालत की शोहरत कितनी ही हो, वकील और वेश्या को मैं बराबर मानता हूं !'

उन्होंने कहा, 'क्या कहते हो !'

वे गुस्से में आ गये। वे संस्थापक थे विश्वविद्यालय के। प्रथम उपकुलपति थे। और मैं तो सिर्फ एक विद्यार्थी था। मैंने कहा कि 'मैं फिर कहता हूं कि वकील वेश्या होता है ! अगर वेश्याएं नर्क जाती हैं, तो वकील उनके आगे-आगे झण्डा लिए जायेंगे ! और तुम पक्के--झण्डा ऊंचा रहे हमारा--उन्हीं लोगों में रहोगे।'

उन्होंने कहा, 'तू बात कैसी करता है ? तुझे यह भी सम्मान नहीं कि उपकुलपति से कैसे बोलना !'

मैंने कहा, 'मैं वकील से बात कर रहा हूं, उपकुलपति कहां ! मैं सर हरिसिंह गौर से बात कर रहा हूं।'

वे कहने लगे, 'मैं मतलब नहीं समझा कि क्यों वकील को तू वेश्या के साथ गिनती

करता है !'

मैंने कहा, 'इसीलिए कि वकील को जो पैसा दे दे, उसके साथ। वह कहता है कि तुम्हीं जीत जाओगे।'

मुल्ला नसरुद्दीन एक दफा अपने वकील के पास गया। उसने अपना सारा मामला समझाया। और वकील ने कहा कि 'बिलकुल मत घबड़ाओ। पांच हजार रुपये तुम्हारी फीस होगी। मामला खतरनाक है, मगर जीत निश्चित है।'

उसने कहा, 'धन्यवाद। चलता हूं !'

'जाते कहां हो ? फीस नहीं भरनी ! काम नहीं मुझे देना !'

उसने कहा कि 'जो मैंने वर्णन आपको दिया, यह मेरे विरोधी का वर्णन है। अगर उसकी जीत निश्चित है, तो लड़ना ही क्यों !'

यह मुल्ला भी पहुंचा हुआ पुरुष है !

'जब तुम कह रहे हो खुले आम कि इसमें जीत निश्चित ही है--यह तो मैं अपने विरोधी का पूरा का पूरा ब्यौरा बताया। अपना तो मैंने बताया ही नहीं ! तो अब मेरी हार निश्चित ही है। अब पांच हजार और क्यों गंवाने ! नमस्कार ! तुम अपने घर भले, हम अपने घर भले !'

वकील को भी चकमा दे गया। वकील ने भी सिर पर हाथ ठोंक लिया होगा। सोचा ही नहीं होगा कि यह भी हालत होगी ! वह तो अपना मामला बताता तो उसमें भी वकील कहता कि जीत निश्चित है। आखिर दोनों ही तरफ के वकील कहते हैं, जीत निश्चित है ! वकील को कहना ही पड़ता है कि जीत निश्चित है। तभी तो तुम्हारी जेबें खाली करवा पाता है।

तो मैंने कहा' 'वकील की कोई निष्ठा होती है ? उसका सत्य से कोई लगाव होता है ? तो मैं उसकी वेश्या में गिनती क्यों न करूं ! वेश्या तो अपनी देह ही बेचती है। वकील अपनी बुद्धि बेचता है। यह और गया-बीता है !'

उन्होंने मेरी बात सुनी। आंख बंद कर ली। थोड़ी देर चुप रहे और कहा कि 'शायद तुम्हारी बात ठीक है। मुझे अपनी एक घटना याद आ गई। तुम्हें सुनाता हूं :

प्रीव्ही काउन्सिल में एक मुकदमा था, जयपुर नरेश का। मैं उनका वकील था। करोड़ों का मामला था। जायदाद का मामला था, जमीन का मामला था। और तुम जानते हो कि मुझे शराब पीने की आदत है। रात ज्यादा पी गया। दूसरे दिन जब गया अदालत में, तो नशा मेरा बिलकुल टूटा नहीं था। कुछ न कुछ नशे की हवा बाकी रह गई थी। नशा कुछ झूलता रह गया था। सो मैं भूल गया कि मैं किसके पक्ष में हूं ! सो मैं अपने मुवक्किल के खिलाफ बोल गया। और वह धुआंधार दो घण्टे बोला ! और मैं चौंकूं जरूर कि न्यायाधीश भी हैरान हो कर सुन रहे हैं ! मेरा मुवक्किल तो बिलकुल पीला पड़ गया है ! और वह जो विरोधी है, वह भी चकित है ! विरोधी का

वकील भी एकदम ठण्डा है, वह भी कुछ बोलता नहीं ! और मेरा जो असिस्टेंट है, वह बार-बार मेरा कोट खींचे ! मामला क्या है !

जब चाय पीने की बीच में छुट्टी मिली, तो मेरे असिस्टेंट ने कहा कि 'जान ले ली आपने ! आप अपने ही आदमी के खिलाफ बोल गये ! बरबाद कर दिया केस ! अब जीत मुश्किल है।'

हरिसिंह ने कहा, 'क्या मामला है, तू मुझे ठीक से समझा। बात क्या है ! मुझे थोड़ा नशा उतरा नहीं। रात ज्यादा पी गया एक पार्टी में। चल पड़ा सो चल पड़ा, ज्यादा पी गया।'

तो उसने बताया कि 'मामला यह है कि जो-जो आप बोले हो, यह तो विपरीत पक्ष को बोलना था ! और वे भी इतनी कुशलता से नहीं बोल सकते, जिस कुशलता से आप बोले हो। इसलिए तो बेचारे वे खड़े थे चौंके हुए, कि अब हमें तो बोलने को कुछ बचा ही नहीं। और मुकदमा तो गया अपने हाथ से !'

कहा, 'मत घबड़ाओ।' हरिसिंह गौर ने कहा, 'मत घबड़ाओ।' और जब चाय पीने के बाद फिर अदालत शुरू हुई, तो उन्होंने कहा कि 'न्यायाधीश महोदय ! अब तक मैंने वे दलीलें दीं, जो मेरे विरोधी वकील देने वाले होंगे। अब मैं उनका खण्डन शुरू करता हूं !'

और खण्डन किया उन्होंने। और मुकदमा जीते !

तो वे मुझसे बोले कि 'शायद तुम ठीक कहते हो। यह काम भी वेश्या का ही है।'

तर्क वेश्या है। तर्क कैसे ऋषि होगा ? तर्क तो किसी भी पक्ष में हो सकता है। तर्क की कोई निष्ठा नहीं होती। वही तर्क तुम्हें आस्तिक बना सकता है; वही तर्क तुम्हें नास्तिक बना सकता है। इसलिए तो जो सच्चे धार्मिक हैं, उनकी आस्तिकता तर्क-निर्भर नहीं होती। तर्क पर जिसकी आस्तिकता टिकी है, वह आस्तिक होता ही नहीं। वह तो कभी भी नास्तिक हो सकता है। उसके तर्क को गिरा देना कोई कठिन काम नहीं है।

आस्तिक कहता है कि 'मैं ईश्वर को मानता हूं, क्योंकि दुनिया को कोई बनाने वाला चाहिए।' और नास्तिक भी यही कहता है कि 'अगर यह सच है, तो हम पूछते हैं कि ईश्वर को किसने बनाया ?' तर्क तो दोनों के एक हैं। आस्तिक कहता है, 'ईश्वर बिना बनाया है।' तो नास्तिक कहता है, 'जब ईश्वर बिना बनाया हो सकता है, तो फिर सारी प्रकृति बिना बनायी क्यों नहीं हो सकती ? क्या अड़चन है ? और अगर कोई भी चीज बिना बनायी नहीं हो सकती, तो फिर ईश्वर को भी कोई बनाने वाला होना चाहिए। इसका जवाब दो।'

अब यह तर्क तो एक ही है। अब कौन कितना कुशल है, कौन कितना होशियार है, किसने अपनी तर्क को कितनी धार दी है, इस पर निर्भर करता है। इसलिए आस्तिक

नास्तिकों से बात करने में डरता है। तुम्हारे शास्त्रों में लिखा है : 'नास्तिकों की बात मत सुनना। सुनना ही मत।' ये आस्तिकों के शास्त्र नहीं हैं। ये नपुंसकों के शास्त्र हैं। नास्तिक की बात मत सुनना ? दूसरे धर्म वालों की बात मत सुनना ! क्यों ? क्योंकि डर है कि अपनी ही बात तर्क पर खड़ी है, और उसी तर्क के आधार पर गिराई भी जा सकती है।

जैन शास्त्रों में लिखा हुआ है कि अगर पागल हाथी भी तुम्हारा पीछा कर रहा हो, और खतरा हो कि तुम उसके पैर के नीचे दब कर मर जाओगे, और पास में ही हिन्दू मंदिर हो, तो पैर के नीचे दब कर मर जाना पागल हाथी के, मगर हिन्दू मंदिर में मत जाना, क्योंकि पता नहीं वहां कोई बात सुनाई पड़ जाये, जिससे तुम्हारे धर्म में श्रद्धा का अंत हो जाये ! मर जाना बेहतर है अपने धर्म में रहते हुए, बजाय जीने के, धर्म रूपांतरित करके।

और यही बात हिन्दू ग्रंथों में भी लिखी है, बिलकुल ऐसी की ऐसी ! जरा भी फर्क नहीं ! कि जैन मंदिर में प्रवेश मत करना, चाहे पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना। अरे, अपने धर्म में मर कर भी आदमी स्वर्ग पहुंचता है। 'स्व-धर्मे निधनं श्रेयः--अपने धर्म में मरना तो श्रेयस्कर है।' 'पर धर्मो भयावहः--दूसरे के धर्म से भयभीत रहना।' मगर यही दूसरे भी कह रहे हैं !

दुनिया में तीन सौ धर्म हैं। प्रत्येक धर्म के खिलाफ दो सौ निन्यानबे धर्म हैं ! अब तुम जरा सोचो, जिस धर्म के खिलाफ दो सौ निन्यानबे धर्म हों, उसमें क्या जान होगी ! कितनी जान होगी ! जान इसमें है कि कान बंद रखो ! सुनो मत, बहरे रहो।

तुमने घण्टाकर्ण की तो कहानी सुनी है न, कि वह भक्त था राम का और कृष्ण का नाम नहीं सुन सकता था ! कृष्ण का नाम सुन कर उसको आग लग जाती थी। और स्वभावतः राम का भक्त कृष्ण का नाम कैसे सुने ! कहां राम, मर्यादा पुरुषोत्तम ! और कहां कृष्ण--न कोई मर्यादा, न कोई अनुशासन, न कोई साधना !

कृष्ण से तो मेरी दोस्ती हो सकती है ! किसी और की नहीं हो सकती। राम से मेरा नहीं बन सकता। एक ही कमरे में हम घण्टे भर नहीं ठहर सकते दोनों ! क्योंकि उनकी मर्यादा भंग होने लगेगी ! और मैं तो अपने ढंग से जीऊंगा। कृष्ण के साथ जम सकती है बैठक।

तो घण्टाकर्ण बहुत घबड़ाता था। उसका नाम ही घण्टाकर्ण इसलिए पड़ गया था कि उसने कानों में घण्टे लटका लिए थे। वह घण्टे बजाता रहता था। और राम-राम, राम-राम--घण्टे; राम-राम, राम-राम--घण्टे बजाता रहता और राम-राम करता रहता ! कि कोई दुष्ट कृष्ण का नाम न ले दे !

मेरे गांव में एक सज्जन थे, वे भी राम के भक्त थे, ऐसे ही घण्टाकर्ण जैसे। नदी मेरे गांव से दूर नहीं है। जहां वे रहते थे, वहां से मुश्किल से पांच मिनट का रास्ता।

मगर उसको पार करने में कभी उनको घण्टा लगे, कभी दो घण्टे लग जायें ! आधे नहाते में से बाहर निकल आयें वे, अगर कोई कृष्ण का नाम ले दे। चिढ़ते थे, बस इतना ही कह दो--'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण !' दौड़े डण्डा ले कर पीछे। मेरे पीछे वे इतना दौड़े हैं, इतनी कवायत मैंने उनकी करवायी और उन्होंने मेरी करवायी कि जब भी बाद में मैं कभी गांव जाता था, तो वे मुझसे कहते थे कि 'तुझे देख कर मुझे भरोसा ही नहीं आता कि तू कभी ढंग का आदमी भी हो सकता है ! मुझ बूढ़े को तूने इतना दौड़वाया है !'

खाना खा रहे हैं वे, मैं घर जा कर उनका दरवाजा बजा दूं--'हरे कृष्ण !' वे खाना छोड़ कर आ गये बाहर ! और मुझे आनन्द आता था। उनको गांव भर में दौड़ाना ! और वे गालियां बक रहे हैं, और मैं हरे कृष्ण कह रहा हूं ! वे गालियां बक रहे हैं। और मैं उनसे कहूं, 'तुम यह तो सोचो कि भक्त कौन है !'

वे एकदम मां-बहन की गाली से नीचे नहीं उतरते थे ! तो उनका धर्म भ्रष्ट कर दिया ! वे नदी में नहा रहे हैं, मैं पहुंच जाऊं--'हरे कृष्ण !' वे वैसे ही निकल आयें, कपड़ा-वपड़ा वहीं छोड़ दें। भागें मेरे पीछे !

मेरे पिता जी से आ-आ कर शिकायत करें। मुझे बुलाया जाये, कि 'तुमने क्यों परेशानी की ? क्या बात है ?'

मैं पूछूं उनसे कि 'यह तो बतायें कि मैंने क्या कहा !' वह तो वे कह ही नहीं सकते। 'हरे कृष्ण' शब्द तो वे बोल ही नहीं सकते। तो वे गुमसुम खड़े रहें। मैं कहूं, 'बोलो जी ! कहा क्या मैंने, जिससे आपको तकलीफ हुई !'

वे कहें, 'अबे तू चुप रह ! वह बात मैं कभी मुंह से नहीं कह सकता !'

अब मैं अपने पिता जी से कहूं कि दो। अब यह भी आप सोचो. . . !' 'अच्छा लिख कर बता दो ! पिता जी के कान में कह दो। इतनी बुरी बात हो ! मगर पता तो चले कि मैंने तुमसे कहा क्या है ! अब मुझे ही नहीं मालूम कि मैंने तुमसे क्या कहा है। सजा किस बात की ?'

'अरे तुझे मालूम है ! चौबीस घण्टे मेरी जान खाता है। रात-आधी-रात मैं सो रहा हूं, पहुंच जाता है। और घण्टी बजाता है। और वही बात. . . !'

'कौन-सी बात महाराज !'

वह वे कभी न कहें। कि 'वह बात मैं कभी कह ही नहीं सकता !'

अब ये भक्त हैं ! गालियां दे सकते हैं, लेकिन 'वह' बात कैसे कहें !

जब वे मर रहे थे, तब भी मैं पहुंच गया। मैंने कहा, 'हरे कृष्ण !'

उन्होंने कहा, 'अरे, अब तो तू चुप रह ! अब तो मैं दौड़ भी नहीं सकता। और अब तो मेरे मुंह से गालियां न निकलवा ! तू भैया घर जा ! तू कोई और काम कर। मुझे शांति से मर जाने दे ! नहीं तो मैं तेरी ही भावना से क्रोध में मरूंगा और फल

भोगूंगा ! तू मरते वक्त तो मुझे शांत रहने दे ! जिंदगी भर तूने मुझे सताया !'

मैंने कहा, 'मैंने अभी कुछ आप से कहा नहीं। सिर्फ ईश्वर की याद दिलाने आया, कि जाते-जाते हरे कृष्ण की याद तो कर लो !'

ये जो लोग हैं, ये धार्मिक लोग हैं ! ये आस्तिक हैं ! इनकी आस्तिकता कैसी आस्तिकता है ? ये डरे हुए लोग हैं। ये घबड़ाये हुए लोग हैं, कि कहीं तर्क दिक्कत में न डाल दे ! कहीं अड़चन न खड़ी कर दे !

ये जबरदस्ती विश्वास बिठाये हुए हैं। मगर इनका विश्वास भी किसी तरह के तर्कों पर खड़ा हुआ है। विश्वास का मतलब ही होता है--किसी तरह के तर्कों पर सम्हाल कर बनाया गया मकान। संदेह को दबा लिया है; तर्क को उसकी छाती पर चढ़ा दिया है। अपनी मन पसंद तर्क को छाती पर चढ़ा दिया है। हिन्दू का तर्क है, मुसलमान का तर्क है। सबके तर्क हैं ! और उनके तर्कों के आधार से वे दबे हुए हैं।

धार्मिक व्यक्ति का कोई तर्क नहीं होता--अनुभव होता है, अनुभूति होती है। विश्वास नहीं होता--श्रद्धा होती है। श्रद्धा और विश्वास में जमीन-आसमान का फर्क है। शब्दकोश में तो एक ही अर्थ लिखा हुआ है। क्योंकि शब्द जानने वालों को यह भेद कैसे पता चले !

श्रद्धा का अर्थ है, जिसने जाना, जिसने पहचाना, जिसने अनुभव किया, जिसने जिया, जिसने पिया, जो हो गया। और विश्वास का अर्थ है--जिसने मान लिया किन्हीं तर्कों के सहारे।

यह निरुक्त जो कहता है कि 'देवताओं ने मनुष्यों से कहा कि आगे को तर्क को ही ऋषि-स्थानीय समझो।' यह बात बिलकुल ही गलत है; बुनियादी रूप से गलत है।

तर्क कहीं ऋषि हो सकता है ? तर्क से कहीं काव्य उठेगा ? तर्क से कहीं अतर्क की तरफ आंख उठेगी ? असंभव। तर्क से तो मुक्त होना है। संदेह से भी मुक्त होना है, तर्क से भी मुक्त होना है। विश्वास से भी मुक्त होना है। धारणाओं मात्र से मुक्त होना है। शून्य में उतरना है। निर्विचार में उतरना है, निर्विकल्प में उतरना है। जहां कोई विचार न रह जाये, वहां कैसा कोई तर्क ? जहां कोई पक्ष न रह जाये, वहां कैसा कोई तर्क ?

चुनावरहित शून्य में प्रभु मिलन है। चाहे 'प्रभु' कहो—यह नाम की बात है। चाहे ईश्वर का राज्य कहो, चाहे मोक्ष कहो, कैवल्य कहो, निर्वाण कहो--जो मर्जी हो--सत्य कहो--लेकिन विचारशून्य अवस्था में पूर्ण का साक्षात्कार है। और जैसे ही तुम विचारशून्य हुए, पूर्ण उतरा। पूर्ण उतरा, कि तुम ऋषि हुए, कि तुम फिर जो बोलोगे, वही ऋचा है। तुम जहां बैठोगे, वहां तीर्थ बन जायेंगे। तुम जहां चलोगे, वहां मंदिर खड़े हो जायेंगे। तुम्हारी मस्ती जहां झरेगी—वहां काबा, वहां काशी।

सिर्फ विक्षिप्त लोग काशी और काबा जाते हैं। जिनको परमात्मा के संबंध में

थोड़ा भी अनुभव है, वे क्यों कहीं जायेंगे ? अपने भीतर उसे पाते हैं। और निश्चित ही तर्क पर उनका आधार नहीं होता।

रामकृष्ण के पास बंगाल के बड़े तार्किक मिलने गये थे। महा पण्डित थे। रामकृष्ण को हराने गये थे। केशवचंद्र सेन उनका नाम था। बंगाल ने ऐसा तार्किक फिर नहीं दिया। केशवचंद्र अद्वितीय तार्किक थे। उनकी मेधा बड़ी प्रखर थी। सब को हरा चुके थे। किसी को भी हरा देते थे। सोचा, अब इस गंवार रामकृष्ण को भी हरा आयें। क्योंकि ये तो बेपढ़े-लिखे थे। दूसरी बंगाली तक पढ़े थे। न जानें शास्त्र, न जानें पुराण—इनको हराने में क्या देर लगेगी ! और भी उनके संगी-साथी देखने पहुंच गये थे कि रामकृष्ण की फजीहत होते देख कर मजा आयेगा। लेकिन फजीहत केशवचंद्र की हो गई।

रामकृष्ण जैसे व्यक्ति को तर्क से नहीं हराया जा सकता, क्योंकि रामकृष्ण जैसे व्यक्ति का आधार ही तर्क पर नहीं होता। तर्क पर आधार हो, तो तर्क को खींच लो, तो गिर पड़ें। तर्क पर जिसका आधार ही नहीं है, तुम क्या खींचोगे ?

केशवचंद्र ने तर्क पर तर्क दिये और रामकृष्ण उठ-उठ कर उनको छाती से लगा, लें ! और कहें, 'क्या गजब की बात कही ! वाह ! वाह ! अहा ! आनन्द आ गया !'

वे जो साथ गये थे, वे भी हतप्रभ हो गये, और केशवचंद्र भी थोड़ी देर में सोचने लगे कि मामला क्या है ! मैं भी किस पागल के चक्कर में पड़ गया ! मैं इसके खिलाफ बोल रहा हूं, ईश्वर के खिलाफ बोल रहा हूं, शास्त्रों के खिलाफ बोल रहा हूं, और यह किस तरह का पगला है ! कि यह उठ-उठ कर मुझे गले लगाता है !

केशवचंद्र ने कहा, 'एक बात पूछूं ! कि मैं जो बोल रहा हूं, यह धर्म के विपरीत बोल रहा हूं; ईश्वर के विपरीत बोल रहा हूं; शास्त्र के विपरीत बोल रहा हूं। मैं आपको उकसा रहा हूं—आप विवाद करने को तत्पर हो जायें। और आप क्या करते हैं ! आप मुझे गले लगाते हैं ! और आप कहते हैं : अहा, आनन्द आ गया !'

रामकृष्ण ने कहा, 'आनन्द आ रहा है—कहता नहीं हूं। बड़ा आनन्द आ रहा है। थोड़ा-बहुत अगर संदेह भी था परमात्मा में, वह भी तुमने मिटा दिया !'

केशवचंद्र ने कहा, 'वह कैसे ?'

तो कहा कि 'तुम्हें देख कर मिट गया। जहां ऐसी प्रतिभा मनुष्य में हो सकती है, जहां ऐसी अद्‌भुत चमकदार प्रतिभा हो सकती है, तो जरूर किसी महास्रोत से आती होगी। इस जगत के स्रोत में महा प्रतिभा होनी ही चाहिए, नहीं तो तुममें प्रतिभा कहां से आती ? जब फूल खिलते हैं, तो उसका अर्थ है कि जमीन गंध से भरी होगी। छिपी है गंध, तभी तो फूलों में प्रगट होती है। तुम्हारी गंध को देख कर. . . मैं तो बेपढ़ा-लिखा आदमी हूं', रामकृष्ण कहने लगे, 'मेरी तो क्या प्रतिभा है ! कुछ प्रतिभा नहीं। लेकिन तुम्हें तो देख कर ही ईश्वर प्रमाणित होता है !'

केशवचंद्र का सिर झुक गया। चरण पर गिर पड़े। और कहा, 'मुझे क्षमा कर दो। मैं तो सोचता था, तर्क ही सब कुछ है। लेकिन आज मैंने प्रेम देखा। मैं तो सोचता था—तर्क ही सब कुछ है—आज मैंने अनुभव देखा। आपने मुझे हराया भी नहीं, और हरा भी दिया ! यूं तो मुझे हारने का कोई कारण नहीं था, अगर आप तर्क करते तो। मगर आपने अतर्क्य बात कह दी। अब मैं क्या करूं ! मेरी जबान बंद कर दी।'

रामकृष्ण जैसे व्यक्ति को मैं धार्मिक कहता हूं। मैं विवेकानन्द को भी धार्मिक नहीं कहता। क्योंकि विवेकानन्द मूलतः तार्किक ही रहे। उनको केशवचंद्र की परम्परा में ही गिना जाना चाहिए। रामकृष्ण की परम्परा में नहीं। रामकृष्ण बात और। कहां रामकृष्ण—और कहां विवेकानन्द ! रामकृष्ण कोहेनूर हीरा हैं; विवेकानन्द तो दो कौड़ी की बात है। मगर लोगों को विवेकानन्द जंचते हैं, क्योंकि वे तर्क में जी रहे हैं। रामकृष्ण की बात तो बेबूझ लगेगी। अतर्क्य है।

लेकिन धर्म ही अतर्क्य है। तर्क के पार जाने में ही धर्म है।

दूसरा प्रश्न, जो कि इससे ही संबंधित है और समझना उपयोगी होगा।

भगवान, इस संसार की उत्पत्ति की घटना किस प्रकार घटी ? पृथ्वी पर पहले पुरुष आया कि पहले स्त्री ? कृपया हम अज्ञानियों को विस्तारपूर्वक समझाइये !

एच. एल. जोगन !

तुमने तो सोचा होगा कि बड़ा दार्शनिक प्रश्न पूछ रहे हो। यह दार्शनिक प्रश्न नहीं है; यह बहुत बचकाना प्रश्न है। यह छोटे-छोटे बच्चों की बातें हैं।

अगर कोई तुमसे कह भी दे कि संसार की घटना यूं घटी, तो तुम पूछोगे कि यूं ही क्यों घटी ! और तरह क्यों न घटी ? कोई कहे कि संसार को परमात्मा ने बनाया, तो प्रश्न का हल हो जायेगा ! तुम पूछोगे, 'क्यों बनाया ? किसलिए बनाया ? क्या परमात्मा लोगों को कष्ट देना चाहता है, दुख देना चाहता है ? क्यों बनाया ?'

और धर्मगुरु तो कहते हैं कि संसार से मुक्त होना है, भवसागर से मुक्त होना है—और यह परमात्मा क्या अधार्मिक है, जो संसार बनाता है ? परमात्मा संसार बनाता है; महात्मा समझाते हैं, संसार से मुक्त होना है ! कौन सच्चा है ? महात्माओं की सुनें, कि परमात्मा की मानें ?

और फिर परमात्मा इतने दिन क्या करता रहा ! संसार नहीं बनाया होगा, फिर एक दिन बना दिया एकदम ! एकदम झक आ गई; क्या हुआ ! किस कारण झक आयी ? भांग पी गया था ? भांग कहां से आयी ?

सवाल पर सवाल उठते चले आयेंगे। इससे कुछ हल नहीं होगा। यह बच्चों जैसी बातें हैं। इसमें दर्शन कुछ भी नहीं है। मगर बहुत से लोग इन्हीं बातों को दार्शनिक ऊहापोह समझते हैं! यह शेखचिल्लियों की बकवास है। इसमें मत पड़ो।

'यह गाय और बछड़ा किसका है?' पुलिस वाले ने गांव वालों से पूछा।

'गाय का पता नहीं साहब, पर बछड़ा किसका है, यह बता सकता हूं'—एक बच्चे ने कहा।

'किसका है?'

बच्चे ने कहा, 'गाय का! गाय किसकी है यह मुझे पता नहीं!'

एक गांव में चोरी हो गई। बहुत लोगों ने खोजबीन की। पुलिस इंस्पेक्टर आये; यह हुआ, वह हुआ; पता ही न चले चोर का। आखिर गांव के लोगों ने कहा, कि 'हमारे गांव में लाल बुझक्कड़ जी रहते हैं, वे हर चीज को बूझ दें! जिसको बूझ सके न कोय—उसको लाल बुझक्कड़ तत्क्षण बूझ देते हैं। अरे, एक दफे गांव से हाथी निकल गया था। गांव वालों ने कभी हाथी देखा नहीं था; रात निकल गया। सुबह उसके पैर के चिह्न दिखाई पड़े। बड़ी गांव में चिंता फैली कि किसके पैर हैं! इतने बड़े पैर! तो जानवर कितना बड़ा होगा!

फिर लाल बुझक्कड़ ने सूझा दिया। उसने कहा कि 'कुछ घबड़ाने की बात नहीं। अरे हरिणा चक्की पैर में बांध कर...। सीधी-सी बात है; चक्की के निशान हैं। और उछला है, तो हरिण रहा होगा। पैर में चक्की बांध कर हरिणा उछला होय!'

'हल कर दिया मामला लाल बुझक्कड़ ने! आप क्या इधर-उधर पूछ रहे हैं; लाल बुझक्कड़ से पूछ लो!'

इंस्पेक्टर ने कहा, 'यह भी ठीक है। चलो, देखें। शायद कुछ बता दे!'

लाल बुझक्कड़ ने कहा, 'बता तो सकता हूं, मगर सब के सामने नहीं बताऊंगा। क्योंकि मैं झंझट नहीं लेना चाहता। मैं तो बता दूं फिर कल मैं मुसीबत में पड़ूं! अरे, किसने चोरी की है, मुझे मालूम है। मगर उसका मैं नाम लूं, तो फिर मेरी जान आफत में आये। मैं सीधा-सादा आदमी, मैं झंझट में नहीं पड़ना चाहता। कान में कहूंगा, एकांत में कहूंगा। और कसम खाओ कि किसी को कहोगे नहीं।'

इंस्पेक्टर ने स्वीकृति दी कि 'किसी को कहूंगा नहीं; कसम खाता हूं। मगर तुम बता तो दो भैया!'

उसको ले कर लाल बुझक्कड़ एकांत में गये, गांव के बाहर जंगल में ले गये। वे बोले कि 'अब बता दो। यहां कोई भी नहीं है। पशु-पक्षी तक नहीं हैं सुनने को!'

तो कान में फुसफुसा कर कहा कि 'मैं पक्का कहता हूं; देखो बताना मत। किसी चोर ने चोरी की है!'

इस तरह की बकवास में न पड़ो। ये छोटे-छोटे बच्चों की बातें हैं।

अध्यापक ने पूछा, 'राजेश, बताओ, सारस एक टांग पर क्यों खड़ा होता है?'

राजेश ने कहा, 'सर उसे पता है कि अगर वह दूसरी टांग उठायेगा, तो गिर पड़ेगा!'

सेठ चंदूलाल गांव में आये एक महात्मा के पास गये थे। पूछने लगे, 'महात्मा जी; क्या यह सही है कि हर व्यक्ति को मरना है?'

महात्मा ने कहा कि 'हां, यह तो निश्चित ही है। अरे, मृत्यु से कौन बचा है! सभी को मरना है। प्रत्येक मरणधर्मा है।'

चंदूलाल ने सिर खुजलाया और कहा कि 'मैं सोचता हूं कि जो व्यक्ति आखीर में मरेगा, उसे श्मशानघाट कौन ले जायेगा?'

देखते हो, कैसे-कैसे कठिन सवाल उठते हैं आदमियों के दिमाग में! यह बात तो बड़े पते की है!

एक मित्र दूसरे से कह रहा था, 'तुम्हारे उस वैवाहिक विज्ञापन का कोई जवाब आया? जिसमें तुमने छपवाया था कि एक सुंदर, सुशील और कमायू युवक जिंदगी में रोशनी की एक किरण चाहता है!'

दूसरे ने कहा, 'हां, आया। एक जवाब आया था—बिजलीघर के दफ्तर से!'

इस तरह के प्रश्न...! तुम पूछते हो कि 'इस संसार की उत्पत्ति की घटना किस प्रकार घटी?'

एक बात पक्की समझो कि शिवजी का धनुष मैंने नहीं तोड़ा!

मैंने नहीं बनाया यह संसार! मैं पहले ही अपने को अलग कर लेता हूं! नहीं तो लोग तरह-तरह के इल्जाम मेरे ऊपर लगाते हैं! कोई यही कहने लगे कि इसी की हरकत! कि इसी ने उपद्रव किया होगा!

तो एच. एल. जोगन, इतना मैं पक्का कह देता हूं, जितना मैं पक्का कह सकता हूं; कि मैंने बिलकुल... मेरा हाथ ही नहीं है इसमें। दूर का नाता-रिश्ता भी नहीं है इसके बनाने में। न मुझे इसके बनने में उत्सुकता है, न इसके मिटने में उत्सुकता है। जब नहीं था, तब मुझे कोई अड़चन नहीं थी। जब नहीं हो जायेगा, तब मुझे कुछ अड़चन नहीं होगी। है—तो मुझे कोई अड़चन नहीं है। मैं पूरे मजे में हूं। रहे, तो ठीक। न रहे, तो ठीक।

तुम कैसी चिंताओं में पड़े हो! और तुम सोचते हो कि इन बातों को जान लोगे; तो तुम्हारा अज्ञान मिट जायेगा? इन बातों को जान लिया, तो उससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होगा कि तुम सच्चे ही पक्के अज्ञानी हो। ये बातें कुछ जानने की नहीं हैं।

बुद्ध जिस गांव में आते थे, पहले खबर करवा देते थे कि ग्यारह प्रश्न कोई मुझसे न पूछे। उनमें से एक प्रश्न यह भी था कि संसार की उत्पत्ति किसने की! पूछे ही नहीं कोई। क्योंकि ये बुद्धुओं के प्रश्न हैं; और बुद्ध इनके उत्तर नहीं देते।

मेरे दादा मुझसे पूछा करते थे अकसर; औरों से भी पूछा करते थे। लेकिन जब

उन्होंने मुझसे पूछा, तो फिर पूछना बंद कर दिया। वे पूछा करते थे कि 'अक्ल बड़ी कि भैंस ?

अब उनको कौन उत्तर दे ! मुझसे एक दिन पूछ बैठे। मैंने कहा, 'भैंस।'

उन्होंने कहा, 'क्यों ?'

मैंने कहा, 'क्योंकि भैंस यह सवाल नहीं पूछती ! यह खुजली तुम्हारी अक्ल में ही चलती है। भैंस तो बिलकुल परमहंस दशा में है ! मैं कई भैंसों के पास जा कर कई घण्टे खड़ा रहा। कोई भैंस नहीं पूछती कि अक्ल बड़ी की भैंस ! अरे, भैंस को पता ही है कि हम बड़े हैं। क्या पूछना !'

फिर उनने नहीं पूछा। फिर मैं कई दफे उनसे पूछता था कि 'पूछो ना ! अक्ल बड़ी कि भैंस !'

वे कहते, 'तू चुप रह !'

वे मुझे कहीं नहीं ले जाते थे। वे बड़ा सत्संग करते थे; महात्माओं के पास जाते थे। वे जब भी जायें, मैं बैठा रहता था कि 'आया मैं भी !'

कहते कि 'नहीं, तुझे ले जाना नहीं। तू कुछ न कुछ उलटी-सीधी बात कह देगा !'

मैंने कहा, 'उलटी-सीधी बातें तुम लोग करते हो ! मैं सीधी-सादी बात करता हूं। अब तुम यह बात पूछते हो कि अक्ल बड़ी कि भैंस ! और मैंने सीधा उत्तर दे दिया कि भैंस--तो तुमको लगता है कि उलटी-सीधी बातें कर रहा हूं ! अरे, आने दो, मैं भी तुम्हारे महात्मा को जरा देख आऊंगा।

एक दफा मुझे ले गये; सिर्फ एक दफा ले गये। एक महात्मा के पास गये वे मिलने। मुझे ले गये। महात्मा की उम्र रही होगी कोई तीस साल। मेरी उम्र रही होगी मुश्किल से कोई पंद्रह साल। और मेरे दादा की उम्र रही होगी कम से कम साठ साल। महात्मा ने उनसे कहा, 'आओ बच्चा, बैठो ! मैंने कहा--'ठीक !'

मेरे दादा ने मुझसे कहा, 'तुम्हें कुछ पूछना हो, तुम पहले ही पूछ लो। नहीं तो फिर गड़बड़ हो जायेगी। फिर मैं पूछ लूं !'

मैंने उनसे पूछा कि 'बच्चा, एक जवाब दो !'

महात्मा बहुत नाराज हुए। कहने लगे, 'मुझसे बच्चा कहते हो !'

मैंने कहा, 'तुम मेरे दादा को बच्चा कह रहे हो, हरामजादे ! साठ साल की उम्र के बूढ़े को बच्चा कह रहे हो ! तीस साल के तुम हो, पंद्रह साल का मैं हूं, तो कोई गणित में गलती कर रहा हूं ? तुम बच्चा नहीं, महा बच्चा हो !'

मेरे दादा ने मुझे फौरन बाहर निकाला कि 'तू जा भैया ! तू घर जा, और कभी मेरे साथ मत आना !'

क्या बातें पूछ रहे हो ! 'सृष्टि को किसने बनाया ?' जान भी लोगे, तो क्या करोगे ! क्या फिर से बनाना है ? एक से ही मन नहीं भरा !

अरे इतना ही जान लो कि अपना अज्ञान कैसे मिटे ! यह जानने से नहीं मिटेगा। ध्यान का दीया जला लो, अज्ञान मिट जाता है। यह सारी जानकारी तुम्हारे अज्ञान को नहीं मिटा पायेगी; अज्ञान को और बूढ़ा बना देगी। पण्डित हो जाओगे। पण्डित यानी महा अज्ञानी।

पापी तो पहुंच भी जायें परमात्मा तक, पण्डित कभी नहीं पहुंचते।

आज इतना ही।

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक २६ जुलाई, १९८०

धर्म और सद्गुरु
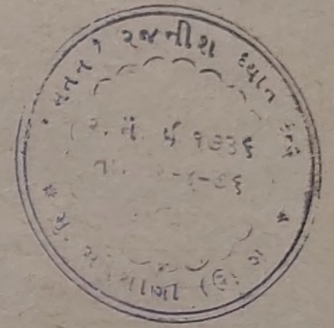
पहला प्रश्न : भगवान, गुरु पूर्णिमा के इस पुनीत अवसर पर हम सभी शिष्यों के अत्यंत प्रेम व अहोभावपूर्वक दण्डवत् प्रमाण स्वीकार करें। साथ ही गुरु-प्रार्थना के निम्नलिखित श्लोक में गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों का रूप बताया है, परन्तु इसके आगे उसे 'साक्षात् परब्रह्म' भी कहा है ! कृपा करके गुरु के इन विविध रूपों को हमें समझाने की अनुकम्पा करें। श्लोक है :

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

सत्य वेदान्त !

यह सूत्र अपूर्व है। थोड़े से शब्दों में इतने राजों को एक साथ रख देने की कला सदियों-सदियों में निखरती है। यह सूत्र किसी एक व्यक्ति ने निर्माण किया हो, ऐसा नहीं। अनन्त काल में न मालूम कितने लोगों की जीवन-चेतना से गुजर कर इस सूत्र ने यह रूप पाया होगा। इसलिए कौन इसका रचयिता है, कहा नहीं जा सकता।

यह सूत्र किसी एक व्यक्ति का अनुदान नहीं है, सदियों के अनुभव का निचोड़। जैसे लाखों-लाखों गुलाब के फूल से कोई इत्र की एक बूंद निचोड़े, ऐसा यह अपूर्व, अद्वितीय सूत्र है। सुना तुमने बहुत बार है, इसलिए शायद समझना भी भूल गये होओगे। यह भ्रांति होती है। जिस बात को हम बहुत बार सुन लेते हैं, लगता है : समझ गये— बिना समझे !

और यह सूत्र तो कण्ठ-कण्ठ पर है। और आज तो इस देश के कोने-कोने में दोहराया जायेगा। लेकिन अकसर लोग इन सूत्रों को बस तोतों की भांति दोहराते हैं। तोतों से ज्यादा उनके दोहराने में अर्थ नहीं होता। तोतों को तो जो सिखा दो, वही दोहराने लगते हैं।

और इस सूत्र को समझने के लिए प्रज्ञा चाहिए, बोध चाहिए, निखार चाहिए चेतना का; ध्यान की गरिमा चाहिए। समझने की कोशिश करो।

ईसाइयत ने परमात्मा को तीन रूप वाला कहा है। पता नहीं क्यों! लेकिन पृथ्वी के कोने-कोने में, जहां भी धर्म का कभी भी अभ्युदय हुआ है, तीन का आंकड़ा किसी न किसी कोने से उभर ही आया है।

ईसाई कहते हैं उसे 'ट्रिनिटि'। वह पिता-रूप है, पुत्र-रूप है और दोनों के मध्य में पवित्र-आत्मा-रूप है। लेकिन तीन का आंकड़ा तो ठीक पकड़ में आया। मगर तीन को जो शब्द दिये, वे बहुत बचकाने हैं। जैसे छोटा-सा बच्चा परमात्मा के संबंध में सोचता हो, तो वह पिता के अर्थों में ही सोच सकता है। उसकी कल्पना उसकी मनो-चेतना से बहुत दूर नहीं जा सकती। इसलिए ईसाइयत में थोड़ा बचकानापन है। उसकी धारणाओं में वह परिष्कार नहीं है...।

भारत ने भी इस तीन के आंकड़े को निखारा है! सदियों-सदियों में इस पर धार रखी है। हम परमात्मा को त्रिमूर्ति कहते हैं। उसके तीन चेहरे हैं। वह तो एक है, लेकिन उसके तीन पहलू हैं। वह तो एक है, लेकिन उसके तीन आयाम हैं। उसके मंदिर के तीन द्वार हैं।

और त्रिमूर्ति की धारणा में और विकास नहीं किया जा सकता। वह पराकाष्ठा है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश--ये तीन परमात्मा के चेहरे हैं। ब्रह्मा का अर्थ होता है, सर्जक, स्रष्टा। विष्णु का अर्थ होता है--सम्हालने वाला। और महेश का अर्थ होता है--विध्वंसक।

यह विध्वंस की धारणा भी परमात्मा में समाविष्ट की जा सकती है, यह सिवाय इस देश के और कहीं भी घटी नहीं। स्रष्टा तो सभी संस्कृतियों ने उसे कहा है, लेकिन विध्वंसक केवल हम कह सके। सृजन तो आधी बात है; एक पहलू है। जो बनायेगा, वह मिटाने में भी समर्थ होना चाहिए। सच तो यह है : जो मिटा न सके, वह बना भी न सकेगा। जैसे कोई मूर्तिकार मूर्ति बनाये। तो मूर्ति का निर्माण ही विध्वंस से शुरू होता है। उठाता है छेनी-हथौड़ी, तोड़ता है पत्थर को! अगर पत्थर में प्राण होते, तो चीखता कि क्यों मुझे तोड़ते हो! यूं टूट-टूट कर पत्थर में से प्रतिमा प्रगट होती है--बुद्ध की, महावीर की, कृष्ण की।

विध्वंस के बिना सृजन नहीं है। और जो चीज भी बनेगी, उसे मिटना भी होगा। क्योंकि बनने की घटना समय में घटती है, और समय में शाश्वत कुछ भी नहीं हो सकता। जो बना है, उसे मिटना ही होगा।

होने में एक तरह की थकान है। हर चीज थक जाती है! यह जान कर तुम चकित होओगे कि आधुनिक विज्ञान कहता है कि धातुएं भी थक जाती हैं। सर जगदीशचंद्र बसु की बहुत-सी खोजों में एक खोज यह भी थी, जिन पर उनको नोबल पुरस्कार मिला

था, कि धातुएं भी थक जाती हैं। जैसे कलम से तुम लिखते हो, तो तुम्हारा हाथ ही नहीं थकता; कलम भी थक जाती है। जगदीशचंद्र बसु ने तो इसे मापने की भी व्यवस्था खोज ली थी। और अब तो जगदीशचंद्र को हुए काफी समय हो गया, आधी सदी बीत गई। इस आधी सदी में बहुत परिष्कार हुआ विज्ञान का। अब तो पता चला है, हर चीज थक जाती है; मशीनें थक जाती हैं, उनको भी विश्राम चाहिए!

विध्वंस विश्राम है। जन्म एक पहलू। जीवन दूसरा पहलू। मृत्यु तीसरा पहलू। जीवन तो थकायेगा। इसलिए मृत्यु को कभी हमने बुरे भाव से नहीं देखा। हमने यम को भी देवता कहा। हमने उसे भी 'शैतान' नहीं कहा। वह भी दिव्य है। मृत्यु भी दिव्य है।

कठोपनिषद की तो प्यारी कथा है कि नचिकेता अपने पिता के पास बैठा है। छोटा-सा बच्चा है। और पिता ने एक महान यज्ञ किया है और वह गौवें बांट रहा है। पिता तो बूढ़ा होगा, तो बेईमान होगा! बूढ़ा आदमी--और बेईमान न हो, जरा मुश्किल! बेटा--और बेईमान हो, यह भी जरा मुश्किल। छोटा बच्चा--अभी अनुभव ही क्या है कि बेईमान हो जाये! बेईमानी के लिए अनुभव चाहिए। ईमानदारी के लिए अनुभव की कोई जरूरत नहीं। ईमानदारी स्वाभाविक है। इसलिए हर बच्चा ईमानदार पैदा होता है। और धन्यभागी हैं वे, जो मरते समय पुनः ईमानदारी को उपलब्ध हो जाते हैं। वही ऋषि हैं, वही संत हैं। वही गुरु हैं--जो पुनः बच्चे जैसी सरलता को उपलब्ध हो जाते हैं।

ऐसी सरलता तथाकथित अनुभवी आदमी में नहीं होती। अनुभव का अर्थ ही यह होता है कि देखीं दुनिया की चालबाजियां; पहचाने दुनिया के ढंग। और हर ढंग से, हर पहचान से चतुरता सीखी। चतुरता का मतलब होता है कि अब हम भी गला काटने में कुशल हो गये। यूं काटेंगे कि कानों कान पता भी न चले! यूं काटेंगे कि जिसका गला काटें, उसे भी पता न चले!

बाप तो बूढ़ा था, सम्राट था, गौवें बांट रहा था। बेटा देख रहा था। बेटे को समझ नहीं आ रहा था! बिलकुल मर गई सी गौवें, जिन्होंने वर्षों हो गये, तब से दूध देना बंद दिया। ये क्यों बांटी जा रही हैं! तो वह पूछने लगा अपने पिता से कि 'इन मुरदा गौवों को बांट रहे हो! न ये दूध देती हैं, न ये दूध देने वाली हैं! न बच्चे इनके पैदा होंगे! और जिनको तुम दे रहे हो, इन गरीबों को तुम सोच रहे हो, दान दे रहे हो! ये इनका पालन-पोषण करने में और दीन-हीन हो जायेंगे! ये मृत गौवें किसलिए भेंट कर रहे हो?'

छोटे बच्चों को बहुत-सी बातें दिखाई पड़ जाती हैं, जो बूढ़ों को नहीं दिखाई पड़तीं। बूढ़ों की आंख पर तो धुंध की पर्त हो जाती है!

इसलिए जो संस्कृति, जो देश जितना बूढ़ा हो जाता है, उतना बेईमान हो जाता

है। इस देश की बेईमानी का बुनियादी आधार यही है। हमसे पुराना कोई देश नहीं; हमसे बूढ़ा कोई देश नहीं। हम मरना ही भूल गये हैं। हम ब्रह्मा में ही अटके हैं; हमें महेश की याद ही नहीं रही।

कितनी संस्कृतियां पैदा हुईं! बेबीलोन, असीरिया, मिश्र, रोम, एथेंस—सब खो गये!

मेरे पास भारत के एक राजनीतिज्ञ सेठ गोविंददास अकसर आते थे। तो वे अकसर कहते थे: 'हमारी संस्कृति अद्भुत है! सारी संस्कृतियां पैदा हुईं और मर गईं; सिर्फ हम जिंदा हैं!' बहुत बार मैंने सुना। बूढ़े आदमी थे। मैंने उनसे कहा कि इसको गौरव मत समझो। जीना जितना महत्वपूर्ण है, मरना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। मरना भी आना चाहिए उसकी भी कला होती है। इस देश को मरना ही भूल गया है। और जब कोई देश मरना भूल जाये, तो थक जाता है, ऊब जाता है, बेईमान हो जाता है। उदास हो जाता है। उसका नृत्य खो जाता है। उसके पैरों में घूंघर नहीं बजते। उसके ओठों से बांसुरी छिन जाती है। यौवन ही गया, तो बांसुरी कहां! घूंघर कैसे बंधें? लाश रह जाती है, जिसमें से सिर्फ दुर्गंध उठती है। मरना भी चाहिए, क्योंकि मरने के बाद पुनर्जन्म है।

मृत्यु तुम्हें छुटकारा दिला देती है सब सड़े-गले से, सब बेईमानियों से, सब पाखण्ड से; फिर तुम्हें नया कर देती है। मृत्यु की कला यही है; मृत्यु का वरदान यही है। मृत्यु अभिशाप नहीं है:

जरा सोचो, अगर सारे लोग मरना भूल जायें, तो किसी भी घर में जीना मुश्किल हो जायेगा। यूं ही हो गया है। अगर घर में बूढ़े ही बूढ़े इकट्ठे हो जायें, यूं तुम रोते हो पितृपक्ष में; जो मर गये, उनको तुम भेंट चढ़ा देते हो, मगर जरा सोचो कि अगर जिंदा होते, तो गरदनें काटनी पड़तीं! एक घर में अगर हजार, दो हजार साल से कोई मरा ही न होता, तो क्या गति हो जाती! क्या दुर्गति हो जाती! महा रौरव नर्क पैदा हो जाता। उस घर में बच्चे तो फिर सांस ही नहीं ले सकते थे। वे तो सांस लेते ही मर जाते। इतने बूढ़े जहां सांस ले रहे हों...!

मुल्ला नसरुद्दीन अखबार पढ़ रहा था। अखबार में खबर छपी थी। किसी वैज्ञानिक ने हिसाब लगाया था कि जब भी तुम एक सांस लेते हो, उतनी देर में पृथ्वी पर पांच आदमी मर जाते हैं!

मुल्ला ने अपनी पत्नी को कहा, जो भोजन पका रही थी, कि 'सुनती हो, फजलू की मां, जब भी मैं एक बार सांस लेता हूं, पांच आदमी मर जाते हैं!'

फजलू की मां ने कहा, 'मैंने तो कई दफे कहा कि तुम सांस लेना बंद क्यों नहीं करते! अब कब तक सांस लेते रहोगे और लोगों को मारते रहोगे?'

जिस घर में हजारों साल से बूढ़े सांस ले रहे हों, उस घर में हवाओं में जहर होगा। हमारे घर में तो यह हो गई है हालत। यहां बूढ़े सांस ले रहे हैं; मरते ही नहीं! विदा ही नहीं होते!

हम तो अतीत को ऐसा छाती से लगाये हुए हैं! कब्रों को ढो रहे हैं। कब्रों के नीचे दबे जा रहे हैं! लाशों को ढो रहे हैं। लाशों के नीचे जो जीवित है, वह कहां खो गया, पता लगाना मुश्किल हो गया!

हम ऐसे परम्परावादी! हम ऐसे जड़वादी!

मृत्यु उपयोगी है उतनी ही, जितना जन्म। जन्म जगाता है तुम्हें; मिट्टी में प्राण फूंक देता है। फिर थक जाओगे—सत्तर साल, अस्सी साल, नब्बे साल, सौ साल...! फिर वापस लौट जाना है मूलस्रोत को। हवा हवा में मिल जाये। पानी पानी में मिल जाये। मिट्टी मिट्टी में मिल जाये। आकाश आकाश में मिल जाये। प्राण महाप्राण में मिल जाये—मूल स्रोत में, ताकि तुम फिर पुनरुज्जीवित हो सको, नयी ऊर्जा ले कर।

ये सारी संस्कृतियां जो मर गईं, ये फिर से पुनरुज्जीवित होती रहीं। हम मरे नहीं, तो सड़े। हम पुनरुज्जीवित नहीं हो पाये।

मैं चाहूंगा कि भारत मरना सीखे, ताकि फिर से जीवित हो सके; ताकि फिर से यौवन का संचरण हो; ताकि फिर बच्चों की किलकारी सुनाई पड़े। बूढ़ों की बकवास सुनते-सुनते बहुत समय हो गया।

हम लेकिन अकेले हैं, जिन्होंने यह बात पहचानी थी कि जीवन मूल्यवान है, जन्म मूल्यवान है—मृत्यु भी मूल्यवान है। और इन तीनों को दिव्य कहा; परमात्मा के तीन रूप कहा—ब्रह्मा, विष्णु, महेश।

यह जान कर तुम चकित होओगे कि भारत में, पूरे भारत में, ब्रह्मा को समर्पित केवल एक मंदिर है! यह बात महत्वपूर्ण है। क्योंकि ब्रह्मा का काम तो हो चुका। यह तो प्रतीकरूप से एक मंदिर समर्पित कर दिया है; यूं ब्रह्मा का काम पूरा हो चुका।

हां, विष्णु के बहुत मंदिर हैं। सारे अवतार विष्णु के हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध, परशुराम—ये सब विष्णु के अवतार हैं। इनमें कोई भी ब्रह्मा का अवतार नहीं है। ये सम्हालने वाले हैं। जैसे घर में कोई बीमार हो, तो डॉक्टर को बुलाना पड़ता है, ऐसे आदमी बीमार है, तो जीवन के विराट स्रोत से चिकित्सक पैदा होते रहे। बुद्ध ने कहा है कि 'मैं वैद्य हूं—विद्वान नहीं।' और नानक ने भी कहा है कि 'मैं वैद्य हूं। मेरा काम है, तुम्हारे जीवन को रोगों से मुक्त कर देना; तुम्हारे जीवन को स्वास्थ्य दे देना; तुम्हें जीवन को जीने की जो कला है, वह सिखा देना।'

तो विष्णु के बहुत मंदिर हैं। राम का मंदिर हो, कि कृष्ण का मंदिर हो, कि बुद्ध का मंदिर हो—सब विष्णु के मंदिर हैं। ये सब विष्णु के अवतार हैं। विष्णु का काम बड़ा है। क्योंकि जन्म एक क्षण में घट जाता है; मृत्यु भी एक क्षण में घट जाती है;

जीवन तो वर्षों लम्बा होता है !

और तीसरी बात भी खयाल रखना कि विष्णु से भी ज्यादा मंदिर शिव के हैं, महेश के हैं। इतने मंदिर हैं कि मंदिर बनाना भी हमें बंद करना पड़ा। अब तो कहीं भी एक शंकर की पिण्डी रख दी झाड़ के नीचे——मंदिर बन गया ! कहीं से भी गोल-मटोल शंकर को ढूंढ लाये; बिठा दिया; दो फूल चढ़ा दिये ! फूल भी कितने चढ़ाओगे ! इसलिए शंकर पर पत्तियां ही चढ़ा देते हैं, बेल पत्री ! फूल भी कहां से लाओगे ! इतने शंकर के मंदिर हैं——हर झाड़ के नीचे ! गांव-गांव में ! वह भी प्रतीक उपयोगी है।

जन्म हो चुका; सृष्टि हो चुकी; ब्रह्मा का काम निपट गया। जीवन चल रहा है, इसलिए विष्णु का काम जारी है। लेकिन बड़ा काम तो होने को है, वह महेश का है; वह है जीवन को फिर से निमज्जित कर देना; असृष्टि; जीवन को विसर्जित कर देना; महा प्रलय, जिसमें कि सब खो जायेगा, और फिर सब जागेगा——ताजा हो कर जागेगा।

हम निद्रा को भी छोटी मृत्यु कहते हैं। उसका भी कारण यही है कि प्रति रात्रि, जब तुम गहरी निद्रा में होते हो, तो छोटी-सी मृत्यु घटती हैं; छोटी-सी, आण्विक। जब चित्त बिलकुल शून्य हो जाता है, निर्विचार, इतना निर्विचार कि स्वप्न की झलक भी नहीं रह जाती, तब तुम कहां चले जाते हो ! तब तुम मृत्यु में लीन हो जाते हो; तुम वहीं पहुंच जाते हो, जहां मर कर लोग पहुंचते हैं।

सुषुप्ति छोटी-सी मृत्यु है, इसीलिए तो सुबह तुम ताजे मालूम पड़ते हो। वह ताजगी, रात तुम जो मरे, उसके कारण होती है। सुबह तुम जो प्रसन्न उठते हो, प्रमुदित——चेहरे पर जो झलक होती है, फिर जीवन में रस आ गया होता है, फिर पैरों में गति आ गई होती है, फिर तुम काम-धाम के लिए तत्पर हो गये होते हो——वह इसीलिए कि रात तुम मर गये।

जो व्यक्ति रात स्वप्न ही स्वप्न देखता रहा है, वह सुबह थका-मांदा उठता है। वह सुबह और भी थका होता है, । जितना कि रात जब सोने गया था——उससे भी ज्यादा थका होता है क्योंकि रात भर और सपने देखे ! सपनों में जूझा। दुख-स्वप्न ! पहाड़ों से पटका गया, घसीटा गया ! भूत-प्रेतों ने सताया ! छाती पर राक्षस नाचे ! क्या-क्या नहीं हुआ !

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात सोया है और सपना देख रहा है कि भाग रहा हूं, भाग रहा हूं, भाग रहा हूं——तेजी से भाग रहा हूं ! एक सिंह पीछे लगा हुआ है ! और वह करीब आता जा रहा है ! इतना करीब कि उसकी सांस पीठ पर मालूम पड़ने लगी। तब तो मुल्ला ने सोचा कि मारे गये ! अब बचना मुश्किल है। और जब सिंह ने पंजा भी उसकी पीठ पर रख दिया, तो घबड़ाहट में उसकी नींद खुल गई। देखा, तो और कोई नहीं——पत्नी...! हाथ उसकी पीठ पर रखे है...!

पत्नियां नींद में भी ध्यान रखती हैं कि कहीं भाग तो नहीं गये ! कहीं पड़ोसी के

घर में तो नहीं पहुंच गये !

मुल्ला ने कहा कि 'माई ! कम से कम रात तो सो लेने दिया कर ! दिन में जो करना हो, कर। और क्या मेरी पीठ पर सांसें ले रही थीं कि मेरी जान निकली जा रही थी ! यह कोई ढंग है !'

एक दिन सुबह-सुबह बैठ कर अपने मित्रों को सुना रहा था कि शेर के शिकार को गया था। घण्टों हो गये, शिकार मिले ही नहीं। सब मित्र थक गये। मैंने कहा, मत घबड़ाओ। मुझे आवाज देनी आती है, जानवरों की। तो मैंने सिंह की आवाज की, गर्जना की। क्या मेरी गर्जना करनी थी कि फौरन एक गुफा में से सिंहनी निकल कर बाहर आ गई ! धड़ा-धड़ हमने बंदूक मारी, सिंहनी का फैसला किया।

मित्रों ने कहा, 'अरे, तो तुम्हें इस तरह की आवाज करनी आती है ! जरा यहां करके हमें बताओ तो, कैसी आवाज की थी !'

मुल्ला ने कहा, 'भाई, यहां न करवाओ तो अच्छा।'

नहीं माने मित्र कि 'नहीं, जरा करके जरा-सा तो बता दो।'

जोश चढ़ा दिया, तो उसने कर दी आवाज। और तत्काल उसकी पत्नी ने दरवाजा खोला और कहा, 'क्यों रे, अब तुझे क्या तकलीफ हो गई ?'

मुल्ला बोला, 'देखो ! सिंहनी हाजिर ! इधर आवाज दी, तुम देख लो; खुद अपनी आंखों से देख लो !' पत्नी खड़ी है विकराल रूप लिये वहां ! हाथ में अभी भी बेलन उसके !

मुल्ला ने कहा, 'अब तो मानते हो ! कि मुझे आती है जानवरों की आवाज !'

रात तुम अगर ऐसे सपने देखोगे, ऐसी आवाजें बोलोगे, ऐसी आवाजें निकालोगे.. रात देखो, लोग क्या-क्या आवाजें निकालते हैं ! कभी उठ कर बैठ कर निरीक्षण करने जैसा होता है !

मैं वर्षों तक सफर करता रहा, तो मुझे अकसर यह झंझट आ जाती थी। रात एक, ही डिब्बे में किसी के साथ सोना ! एक बार तो यूं हुआ, चार आदमी डिब्बे में, मगर अद्‌भुत संयोग था, चमत्कार कहना चाहिए, कि पहले आदमी ने जो घुर्राहट शुरू की, तो मैंने कहा कि आज सोना मुश्किल। मगर उसके ऊपर की बर्थ वाले ने जवाब दिया तो मैंने कहा, पहला तो कुछ नहीं है——नाबालिग ! दूसरा तो गजब का था ! मैंने कहा, आज की रात तो बिलकुल गई !

और उनमें ऐसे जवाब-सवाल होने लगे ! संगत छिड़ गई ! तीसरा थोड़ी देर चुप रहा, जो मेरे ऊपर की बर्थ पर था, जब उसने आवाज दी, तब तो मैं उठ कर बैठ गया। मैंने कहा, अब बेकार है; अब चेष्टा ही करनी बेकार है। और उन तीनों में क्या साज-सिंगार छिड़ा !

थोड़ी देर तक तो मैंने सुना। मैंने कहा कि यह तो मुश्किल मामला है; यह पूरी

रात चलने वाला है। तो मैंने भी आंखें बंद कीं और फिर मैं भी जोर से दहाड़ा। वे तीनों उठ कर बैठ गये ! बोले कि 'भाईजान, अगर आप इतनी जोर से नींद में और घुरायेंगे, तो हम सोयेंगे कैसे ?'

मैंने कहा, 'सो कौन रहा है मूरख ! मैं जग रहा हूं। और तुम्हें चेतावनी दे रहा हूं कि अगर तुमने हरकत की—न मैं सोऊंगा, न तुम्हें सोने दूंगा। सो तुम रहे हो, मैं जग रहा हूं। मैं बिलकुल जग कर आवाज कर रहा हूं। नींद में मैं आवाज नहीं करता। तुम सम्हल कर रहो, नहीं तो मैं . . . रात भर मैं भी तुम्हें नहीं सोने दूंगा !'

लोग सोते क्या हैं, रात में भी सुर-सिंगार चलता है। और क्या जवाब-सवाल ! और फिर उनके भीतर क्या चल रहा है, वह तुम सोच सकते हो। कैसी-कैसी मुसीबतों में से गुजर रहे होंगे ! फिर सुबह अगर थके-मांदे उठें, तो आश्चर्य क्या ! सोये ही नहीं।

सुषुप्ति, स्वप्नरहित निद्रा अगर सिर्फ आधा घड़ी को भी रात मिल जाये, तो पर्याप्त है; तो तुम्हें चौबीस घण्टे के लिए ताजा कर जाती है। रात वृक्ष भी सो जाते हैं, तभी तो सुबह उनके फूल फिर खिल आते हैं, और फिर सुगंध उड़ने लगती है। रात पक्षी भी सो जाते हैं, तभी तो सुबह फिर उनके कण्ठों से गीत झरने लगते हैं। उन गीतों को मैं साधारण गीत नहीं कहता; श्रीमद्भगवद्गीता कहता हूं। वे वही गीत हैं, जो कृष्ण के। उनके कण्ठों से कुरान की आयतें उठने लगती हैं। लेकिन यह सारा चमत्कार घटता है, रात छोटी-सी मृत्यु के कारण।

तुम देखते हो, जब छोटे बच्चे पैदा होते हैं, उनकी सरलता, उनका सौंदर्य, उनकी सौम्यता, उनका प्रसाद ! यह कहां से आया ! ये भी बूढ़े थे; मर गये; फिर पुनरुज्जीवित हुए हैं।

धर्म जीते जी मरने की और पुनरुज्जीवित होने की कला है। इसलिए गुरु को हमने तीनों नाम दिये हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश। ब्रह्मा का अर्थ है : जो बनाये। विष्णु का अर्थ है, जो सम्हाले। महेश का अर्थ है—जो मिटाये। सद्गुरु वही है, जो तीनों कलाएं जानता हो।

तुम तो उन गुरुओं को खोजते हो, जो तुम्हें मिटायें ना—जो तुम्हें संवारें। मगर जिसे मिटाना नहीं आता, वह क्या खाक संवारेगा ? बिना मिटाये, इस जीवन में कुछ निर्मित होता है ?

तुम तो उन गुरुओं के पास जाते हो, जो तुम्हें सांत्वना दें। सांत्वना यानी सम्हालें। तुम्हारी मलहम-पट्टी करें। तुम्हें इस तरह के विश्वास दें, जिससे तुम्हारे भय कम हो जायें, चिंताएं कम हो जायें। ये सद्गुरु नहीं हैं।

सद्गुरु तो वह है, जो तुम्हें नया जन्म दे। लेकिन नया जन्म तो तभी संभव है, जब गुरु पहले तुम्हें मारे, मिटाये, तोड़े।

एक बहुत प्राचीन सूत्र है : 'आचार्यो मृत्युः।' वह जो आचार्य है, वह जो गुरु है,

वह मृत्यु है। जिसने भी कहा होगा, जान कर कहा होगा, जी कर कहा होगा। पृथ्वी के किसी और कोने में किसी ने भी गुरु को मृत्यु नहीं कहा है। हम ने गुरु को मृत्यु कहा; मृत्यु को गुरु कहा।

नचिकेता की मैं तुमसे कहानी कह रहा था। जब उसने पिता से कहा कि 'क्या इन मुरदा गौवों को तुम दे रहे हो ?' उसे साफ दिखाई पड़ने लगा, कि यह क्या मजाक हो रहा है ! इसको दान कहा जा रहा है ! और मूढ़ पुरोहित बड़ी प्रशंसा और स्तुति कर रहे हैं उसके पिता की कि 'अहा, महादानी हो तुम ! महादाता हो ! तुम जैसा दाता कब हुआ, कब होगा ! अरे सदियों में ऐसा आदमी होता है !' और दे रहा है—मरी-मरायी गौवें !

बच्चे तो जल्दी पहचान लेते हैं। उनमें अभी कोई चालबाजी नहीं है। आंख साफ-सुथरी होती है। धुआं नहीं है अभी। अभी न विचारों का धुआं है, न धारणाओं का धुआं है। न अभी हिंदू हैं, न मुसलमान हैं, न ईसाई हैं। अभी कुछ उपद्रव हुआ नहीं। अभी तो स्लेट कोरी है। इसलिए साफ उन्हें दिखाई पड़ता है।

एक बच्चा अपने चाचा के घर रहता था। चाचा उसे खाना न दे। या इतना कम दे कि बस, किसी तरह जी रहा था। फटे-पुराने कपड़े पहनाये। खरीद लाये पुराने, चोर-बाजार से। पैजामे की टांगें लम्बी, कोट के हाथ छोटे; टोपी ऐसी कि जिसकी खोपड़ी पर बिठा दो, वही सरदार हो जाये ! खोपड़ी बिलकुल बंद ही कर दे। यह कस कर साफा बांधने से ही तो आदमी सरदार होता है। नहीं तो कोई हो सकता है ! ऐसा कस कर बांधते हैं कि भीतर कुछ बचता ही नहीं फिर !

तो बच्चा बड़ी तकलीफ में था। लेकिन अब करे क्या ! बाप मर गया; मां मर गई; चाचा के पास, चाचा के पल्ले पड़ गया।

एक दिन दोनों बैठे थे। यह गरीब बच्चा भी बैठा था और चाचा भी अखबार पढ़ रहे थे और हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। तभी एक बिलकुल मुरदा कुत्ता, बिलकुल मुरदार, खांसता-खखारता, खुजली-खुजली, शरीर बिलकुल हड्डी-हड्डी—घर में घुस आया। चाचा ने कहा कि 'अरे भगा इसको ! यह मुरदार कुत्ता यहां कहां से आ गया ! हड्डी-हड्डी हो रहा है !'

उस बेटे ने कहा कि 'मालूम होता है, यह भी अपने चाचा के पास रहता है ! इसकी हालत तो देखो !'

छोटे बच्चों को चीजें साफ दिखाई पड़ती हैं कि अब यह मामला साफ ही है ! 'हुक्का गुड़गुड़ा रहे हो; इसका मुरदापन दिखाई पड़ रहा है; मेरी हालत नहीं देख रहे !'

ऐसा ही नचिकेता ने अपने पिता से पूछा कि 'मरी हुई, मुरदा गौवों को तुम भेंट कर रहे हो, शर्म नहीं आती !'

बाप को गुस्सा आ गया। बाप ही क्या, जिसको गुस्सा न आ जाये!

उसने कहा, 'तू चुप रह! नहीं तो तुझको भी भेंट कर दूंगा!'

तो बेटे को तो बड़ा आनन्द आया। बेटे ने सोचा: यह बड़े मजे की बात है! उसको तो मन में बड़ा कुतूहल जगा, जिज्ञासा जगी कि किसको भेंट करेगा! सो वह पूछने लगा बार-बार कि 'अब फिर कब भेंट करियेगा! अब तो महोत्सव भी समाप्त हुआ जा रहा है; मुझको कब भेंट करियेगा? मुझको किसको भेंट करियेगा?'

बाप और गुस्से में आ गया। कहा कि 'तुझे तो मृत्यु को ही भेंट कर दूंगा। यम को दे दूंगा तुझे।'

तो उसने कहा, 'दे ही दो!'

ऐसी यह नचिकेता की प्यारी कथा है कि बाप ने कहा, 'जा, दिया तुझे मृत्यु को।' यह तो वह गुस्से में ही कह रहा था। कौन किसको मृत्यु को देता है! कब नहीं मां-बाप गुस्से में आ कर बेटे से कह देते हैं कि 'तू पैदा ही न होता तो अच्छा था। अरे, जा मर ही जा! शकल मत दिखाना अब दुबारा!'

मगर नचिकेता भी एक था। वह चल पड़ा मृत्यु की तलाश में, कि बाप ने तो भेंट कर दिया; मृत्यु है कहां? और कहती है कहानी कि वह पहुंच गया यम के द्वार पर। यम बाहर गये थे। फुर्सत कहां उनको; इतने लोग मरते रहते हैं! जगह-जगह लटके हैं अस्पतालों में! तरह-तरह की तरकीबें कर रहे हैं––मरने की, जीने की! भागते फिरते हैं। पुराने जमाने में तो वे भैंसे पर ही चलते थे; अब लेकिन हवाई जहाज में जाते होंगे, क्योंकि अब तो––भैंसों पर जाओगे, तो कहां पूरा कर पाओगे! एक को ढो कर पहुंचोगे, तब तक लाख यहां मर जायेंगे! वह पुरानी बात––भैंसे पर चलते थे; अब नहीं! अब चलते भी होंगे तो, अगर तुमको काला ही रंग पसंद हो, और भैंसे ही जैसा––तो रेलगाड़ी समझो! और नये ढंग की रेलगाड़ी नहीं––वही पुरानी कोयले से चलने वाली। उसका एन्जिन लगता भी यमदूत जैसा था! एकदम छाती दहलाता हुआ आता।

पहली बार तो जब रेलगाड़ी चली, तो इंग्लैण्ड में कोई सवार होने को राजी नहीं था, कि लोगों ने अफवाह उड़ा दी कि यह शैतान की ईजाद है! इसकी शकल ही देख लो! और लोग शकल देख कर भाग गये, कि अरे, बिलकुल सच कह रहे हैं। कोई आदमी ऐसी चीज ईजाद करे, जिसकी शकल तो देखो पहले! और पादरियों ने ही यह अफवाह उड़ा दी कि जो इसमें बैठेगा, वह समझ ले कि गया! क्योंकि यह चलेगी, तो फिर रुकेगी नहीं! कोई बैठने को राजी नहीं था।

पहली दफे जो लोग रेल में बैठे थे, कुल बीस-पच्चीस आदमी। रेल थी तीन सौ आदमियों को बिठालने वाली, और बीस-पच्चीस को भी जबरदस्ती बिठाया गया था। कुछ तो उसमें अपराधी थे, जिनको मजिस्ट्रेटों ने कहा कि 'जाओ, रेल में बैठो। तुमको

सजा नहीं होगी।' उन्होंने कहा, 'चलो मरना ही है। जेल में मरे कि इसमें मरे! यात्रा भी हो जायेगी। चलो देखें!' कुछ ऐसे थे, जिनको देश-निकाला दिया जाने वाला था। उनसे कहा कि 'तुम बैठ जाओ रेलगाड़ी में, तो देश-निकाला नहीं दिया जायेगा।' मतलब प्रयोग करके देखना था कि होता क्या है!

और कुछ हिम्मतवर लोग थे, मगर उनने भी पैसा लिया था बैठने का। कि 'भई, अपनी जान जोखम में डाल रहे हैं; अगर हम मर जायें, या रेलगाड़ी न रुके, तो हमारे पत्नी-बच्चों की कौन देख-भाल करेगा!' तो उनको गारंटी लिख कर दी गई थी कि उसकी देख-भाल की फिक्र सरकार की होगी। तब कहीं बीस-पच्चीस आदमी रेलगाड़ी में चले। और उनके घर वाले उन्हें विदा करने आये थे, तो बिलकुल आखिरी विदा दे गये थे, कि 'भैया, अब जा ही रहे हो, अब क्या मिलना होगा! अब के बिछड़े पता नहीं कब मिलें! जैसे किताबों में सूखे हुए गुलाब मिलें...। पता नहीं कब––अब यह कब घटना घटेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता।' आखिरी नमस्कार करके चले गये थे। रो रही थीं पत्नियां; बच्चे रो रहे थे। क्या करें!

और रेलगाड़ी जिस गांव से निकली, उस गांव से लोग भाग गये! कि रेलगाड़ी जा रही है! बामुश्किल जब रेलगाड़ी रुक गई, तब लोगों को भरोसा आया कि अरे, नहीं, यह रुकना भी जानती है!

यमदूत तीन दिन बाद लौटे। भैंसे की यात्रा, और ढोते-फिरते रहे होंगे। यम की पत्नी ने बहुत समझाया नचिकेता को कि 'बेटा, तू भोजन तो कर ले।' उसने कहा कि 'मैं भोजन न करूंगा। जब तक यम से मेरा मिलना न हो जाये, मैं ऐसा ही भूखा बैठा रहूंगा।' वह बैठा ही रहा। वह पहला सत्याग्रही था!

यमदूत थके हुए आये। भैंसे से उतरे। देखा, यह लड़का बिलकुल सूखा जा रहा है, तीन दिन से। कहा, 'तुझे क्या हुआ बेटा?'

कहा, 'मेरे बाप ने कहा कि मौत को देता हूं, तो मैं आपकी बड़ी तलाश करके यहां तक पहुंचा। आप मिले नहीं। न मिले––तो मैंने भोजन नहीं किया। सोचा, जब मिलेंगे तभी भोजन करूंगा।'

यम बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि 'तू तीन वर मांग ले। तू तीन वरदान मांग ले। धन मांग ले, पद मांग ले, प्रतिष्ठा मांग ले।'

उसने कहा कि 'उस सब में तो कुछ सार नहीं। वह मैं पिता के पास देख चुका। धन भी देख चुका; पद भी देख चुका; प्रतिष्ठा भी देख चुका। उससे अक्ल भी नहीं आती, और तो क्या खाक आयेगा! मुझे तो मृत्यु का राज समझा दो। मुझे तो बता दो, यह मृत्यु क्या है!'

यम ने कहा कि 'यह जरा कठिन है, क्योंकि मृत्यु का जिसने राज जान लिया, उसने अमृत का राज जान लिया! तू तो बड़ा होशियार है! तू पूछ तो रहा है मृत्यु के

लिए, लेकिन मृत्यु की बताने में मुझ तुझे अमृत की बतानी पड़े !'

लेकिन नचिकेता तो रुका ही रहा । उसने कहा, 'फिर मैं भोजन नहीं करूंगा । मैं यूं ही मर जाऊंगा । यहीं सत्याग्रह करता हुआ मर जाऊंगा !'

यम को बहुत दया आयी । उसे मृत्यु का राज बताया । मृत्यु का राज जानते ही उसे अमृत का सूत्र उपलब्ध हो गया ।

मृत्यु को जिसने पहचान लिया, उसने अमृत को पहचान लिया ।

सद्गुरु के पास मृत्यु को जानना, मृत्यु को जीना, मृत्यु में गुजरना——यही साधना है।

हमने ये तीनों रूप सद्गुरु को दिये । वह बनाता है; वह सम्हालता है, वह मिटाता है । वह मिटा ही नहीं डालता । वह सिर्फ बना कर ही नहीं छोड़ देता । वह सिर्फ सम्हालता ही नहीं रहता । इसलिए तो सदगुरु के पास तो सिर्फ हिम्मतवर लोग ही जा सकते हैं, जिनकी मरने की तैयारी हो, जो मिटने को राजी हों ।

सांत्वना के लिए जो जाते हैं सद्गुरु के पास उनको पण्डित-पुरोहितों के पास जाना चाहिए । वह उनका धंधा है । कि तुम रोते गये, उन्होंने तुम्हारे आंसू पोछ दिये, पीठ थपथपा दी कि मत घबड़ाओ, सब ठीक हो जायेगा ! कुछ सिद्धांत पकड़ा दिये कि यह तो दुख था, कट गया । अच्छा ही हुआ । पिछले जन्म का कर्म कट गया । एक कर्म से छुटकारा हो गया । और आगे सब ठीक ही ठीक है । और यह ले जाओ, हनुमान चालीसा पढ़ना । और बजरंगबली प्रसन्न रहें, तो सब ठीक है ! कुछ मंत्र वगैरह पकड़ा दिया कि 'राम-राम जपते रहना । यह माला फेरते रहना । यह रामनाम की चदरिया ओढ़ लो । घबड़ाओ मत । अगर मरते दम भी उसका एक दफे नाम ले लिया, तो अजामिल जैसे पापी भी तर गये । तुमने क्या पाप किया होगा ! बस, एक दफे नाम ले लेना मरते वक्त । गंगाजल पी लेना मरते वक्त । बोतल में बंद रख लो गंगाजल घर में । नहीं तो काशी करवट ले लेना । चले गये काशी, वहीं मर जाना । कुछ भी न हो सके, तो मरते वक्त किसी पण्डित से कान में गायत्री पढ़वा लेना; नमोकार मंत्र पढ़वा लेना । तुमसे न कहते बने अब, जबान लड़खड़ाये जाये, बिलकुल मौत दरवाजे पर खड़ी हो गई हो, तो पण्डित तो कान में दोहरा देगा, वही सुन लेना । तुमने तो नहीं कहा जिंदगी में कभी कि बुद्धं शरणं गच्छामि । संघं शरणं गच्छामि । धम्मं शरणं गच्छामि । कोई तुम्हारे कान में कह देगा, वही सुन लेना ! उससे ही काम हो जायेगा !'

ये सब तरकीबें हैं——बेईमानों की, बेईमानों के लिए ईजाद की गई । ये जीवन के रूपांतरण की कीमिया नहीं हैं ।

सद्गुरु के पास तो मरना भी सीखना होता है, और जीना भी सीखना होता है । और जीते जी मर जाना——यही ध्यान है; यही संन्यास है । जीते जी ऐसे जीना जैसे यह जीवन खेल है, अभिनय है, इससे ज्यादा नहीं । नाटक है, इससे ज्यादा नहीं । इसको गंभीरता से न लेना ।

लेकिन बड़ी अजीब दुनिया है ! यहां जिनको तुम भोगी कहते हो, वे भी बड़ी गंभीरता से लिये हैं ! और जिनको तुम योगी कहते हो, वे भी बड़ी गंभीरता से लिये हुए हैं ! दोनों बड़े गंभीर है ! योगी और भी गंभीर हैं । भोगी तो कभी हंसे भी, योगी तो बिलकुल ही हंसता नहीं । उसको तो भव-सागर से पार होना है ! हंसने की फुर्सत कहां है ! और जोर से हंस दे——और भव-सागर का पानी भीतर चला जाये ! तो यही खात्मा ! तो वह तो बिलकुल मुंह बंद रखता है ! मुस्कुराता ही नहीं ! उसकी तो जान बिलकुल अटकी है । वह तो किसी तरह राम-राम कह कर समय गुजार रहा है कि 'हे प्रभु कब उठाओगे ! कब इस संसार-सागर से छुटकारा होगा! कब आवागमन बंद करवाओगे !' और प्रभु भी एक है कि वह आवागमन करवाये ही जाता है ! तुम्हारे महात्माओं की सुनता ही नहीं ! महातमा लाख चिल्लायें, वह फिर आवागमन करवा देता है !

परमात्मा सृष्टि के विरोध में नहीं है । सृष्टि उसकी है, कैसे विरोध में हो सकता है ? सृष्टि तो एक अवसर है, मंच है, जिस पर तुम जीवन के अभिनय की कला सीखो—और यूं जीयो, जैसे कमल के पत्ते पानी में——पानी में भी और पानी छुए भी ना ।

सदगुरु तुम्हें यही सिखाता है । और ये तीन घटनाएं सद्गुरु के पास घट जायें, तो चौथी घटना तुम्हारे भीतर घटती है । इसलिए उस चौथे को भी हमने सद्गुरु के लिए स्मरण में कहा है ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः । ये तो तीन चरण हुए । फिर जो अनुभूति तुम्हारे भीतर इन तीन चरणों से होगी. . .। ये तो तीन द्वार हुए । इनसे प्रवेश करके मंदिर की जो प्रतिमा का मिलन होगा, वह चौथा, तुरीय, चौथी अवस्था——गुरुः साक्षात् परब्रह्म । तब तुम जानोगे कि जिसके पास बैठे थे, वह कोई व्यक्ति नहीं था । जिसने सम्हाला, मारा-पीटा-तोड़ा, जगाया——वह कोई व्यक्ति नहीं था । वह तो था ही नहीं; उसके भीतर परमात्मा ही था ।

और जिस दिन तुम अपने गुरु के भीतर परमात्मा को देख लोगे, उस दिन अपने भीतर भी परमात्मा को देख लोगे । क्योंकि गुरु तो दर्पण है, उसमें तुम्हें अपनी ही झलक दिखाई पड़ जायेगी । आंख निर्मल हुई कि झलक दिखाई पड़ी ।

तीन चरण हैं, चौथी मंजिल है । और सद्गुरु के पास चारों कदम पूरे हो जाते हैं । 'तस्मै श्री गुरुवे नमः——इसलिए गुरु को नमस्कार ।' इसलिए गुरु को नमन । इसलिए झुकते हैं उसके लिए ।

और पूर्णिमा का दिन ही चुना है उसके लिए, सत्य वेदान्त, क्योंकि हमारा जीवन दिन की तरह नहीं है——रात की तरह है । और रात में सूरज नहीं उगा करते । रात में चांद उगता है । हम हैं रात——अंधेरी रात । और गुरु हमारे जीवन में जब जा जाता है, तो जैसे पूर्णिमा की रात आ गई । जैसे पूनम का चांद उतर आया ।

चंद्रमा प्रतीक है बहुत-सी चीजों का। एक तो यह कि वह रात में रोशनी देता है। और तुम अंधेरी रात हो, और तुम्हें चांद चाहिए—सूरज नहीं। सूरज का क्या करोगे! सूरज से तो तुम्हारा मिलन ही नहीं होगा। तुम तो अंधेरी रात हो, तुम्हें तो सूरज की कोई खबर नहीं। तुम्हें तो चांद ही मिल सकता है।

और चांद की कई खूबियां हैं। पहली तो खूबी यह कि चांद की रोशनी चांद की नहीं होती; सूरज की होती है। दिन भर चांद सूरज की रोशनी पीता है, और रात भर सूरज की रोशनी को बिखेरता है। चांद की कोई अपनी रोशनी नहीं होती। जैसे तुम एक दीया जलाओ और दर्पण में से दीया रोशनी फेंके। दर्पण की कोई रोशनी नहीं होती; रोशनी तो दीये की है। मगर तुम्हारा दीये से अभी मिलना नहीं हो सकता। और अभी दीये को देखोगे, तो जल पाओगे। आंखें जल जायेंगी। अभी रोशनी को सामने से तुम सीधा देखोगे, सूरज को, तो आंखें फूट जायेंगी। यूं ही अंधे हो—और आंखें फूट जायेंगी!

अभी परमात्मा से तुम्हारा सीधा मिलन नहीं हो सकता। अभी तो परमात्मा का बहुत सौम्यरूप चाहिए, जिसको तुम पचा सको। चंद्रमा सौम्य है। रोशनी तो सूरज की ही है। गुरु में जो प्रगट हो रहा है, वह तो सूरज ही है, परमात्मा ही है। मगर गुरु के माध्यम से सौम्य हो जाता है।

चंद्रमा की वही कला है, कीमिया है। वह उसका जादू! कि सूरज कि रोशनी को पी कर और शीतल कर देता है। सूरज को देखोगे, तो गर्म है, उत्तप्त है; और चांद को देखोगे, तो तुम शीतलता से भर जाओगे।

सूरज पुरुष है, पुरुष है। चंद्रमा स्त्रैण है, मधुर है, प्रसादपूर्ण है। परमात्मा तो पुरुष है, कठोर है, सूरज जैसा है। उसको पचाना सीधा-सीधा, आसान नहीं। उसे पचाने के लिए सद्गुरु से गुजरना जरूरी है। सद्गुरु तुम्हें वही रोशनी दे देता है, लेकिन इस ढंग से कि तुम उसे पी लो। जैसे सागर से कोई पानी पिये, तो मर जाये। हालांकि कुए में भी जो पानी है, है सागर का ही। मगर बदलियों में उठ कर आता है। नदियों में झर कर आता है। पहाड़ों पर से गिर कर आता है। है तो सागर का ही। पानी तो सब सागर का है। गंगा में हो, कि यमुना में हो, कि नर्मदा में हो, कि तुम्हारे कुए में हो, किसी पहाड़ के झरने में हो, है तो सब सागर का। लेकिन सागर का पानी पिओगे, तो मर जाओगे। लेकिन झरने में कुछ बात है, कुछ राज है; उसी पानी को तुम्हारे पचाने के योग्य बना देता है!

सद्गु की वही कला है। उसके भीतर से परमात्मा गुजर कर सौम्य हो जाता है; स्त्रैण हो जाता है; मधुर हो जाता है; प्रीतिकर हो जाता है। उसके भीतर से तुम्हारे पास आता है, तो तुम पचा सकते हो। और एक बार पचाने की कला आ गई, तो गुरु बीच से हट जाता है।

गुरु तो था ही नहीं, सिर्फ यह रूपांतरण की एक प्रक्रिया थी। जिस दिन तुमने पहचान लिया गुरु की अंतरात्मा को, उस दिन तुमने सूरज को पहचान लिया। तुमने चांद में सूरज को देख लिया; फिर रात मिट गई, फिर दिन हो गया।

इसलिए गुरु पूर्णिमा को हमने चुना है प्रतीक की तरह। ये सारे प्रतीक हैं। इन प्रतीकों का एक पहलू और खयाल में ले लो।

तुम जब सद्गुरु के पास जाओ, तो जाने के चार ढंग हैं। एक तो है कुतूहलवश; यूं ही जिज्ञासा से कि देखें, क्या है! देखें क्या हो रहा है! देखें क्या कहा जा रहा है! वह सबसे उथला पहलू है।

दूसरा पहलू है विद्यार्थी का, कि कुछ सीख कर आयें; कुछ सूचनाएं ग्रहण करें; कुछ ज्ञान संगृहीत करें। वह थोड़ा गहरा है, मगर बहुत गहरा नहीं। चमड़ी जितनी गहरी, बस इतना गहरा है। तुम कुछ सूचनाएं इकट्ठी करोगे और लौट जाओगे।

तीसरा पहलू है शिष्य का। जिज्ञासु को जोड़ो ब्रह्मा से। विद्यार्थी को जोड़ो विष्णु से। शिष्य को जोड़ो महेश से।

शिष्य वह है, जो मिटने को तैयार है। विद्यार्थी वह है, जो अपने को सजाने-संवारने में लगा है। थोड़ा ज्ञान और, थोड़ी जानकारी और, थोड़ी पदवियां और, थोड़ी डिग्रियां और। थोड़े सर्टिफिकेट, थोड़े प्रमाणपत्न, थोड़े तगमे!

जिज्ञासु तो वह है, जो अपने को संवारने में लगा है। और जो कुतूहल से भरा है, उसने तो अभी यात्रा ही शुरू की; अभी तो ब्रह्मा का ही काम शुरू हुआ; बीज बोया गया। अभी सृजन की शुरुआत हुई। विद्यार्थी जरा आगे बढ़ा, उसमें दो पत्ते टूटे; अंकुर फूटे। शिष्य वह है, जो मिटने को तैयार है, मरने को तैयार है; जो कहता कि गुरु के लिए सब कुछ समर्पित करने को तैयार हूं। उस तैयारी से शिष्य बनता है।

सभी विद्यार्थी शिष्य नहीं होते। विद्यार्थी की उत्सुकता ज्ञान में होती है; शिष्य की उत्सुकता ध्यान में होती है। ज्ञान से तुम्हारा अहंकार भरता है और संवरता है। ध्यान से तुम्हारा अहंकार मरता है और मिटता है।

और चौथी अवस्था है भक्त की। भक्त का अर्थ होता है, जो मिट ही चुका। शिष्य ने शुरुआत की; भक्त ने पूर्णता कर दी। भक्त जान पाता है परब्रह्म की अवस्था को। जो गुरु के सामने मिट ही गया; मिटने को भी कुछ न बचा अब; जो यह भी नहीं कह सकता कि मैं मिटना चाहता हूं; जो इतना भी नहीं है, वही भक्त है। और जहां भक्ति है, वहां परात्पर ब्रह्म का साक्षात्कार है।

इसका तीसरा अर्थ भी समझ लो।

मनुष्य के जीवन की तीन अवस्थाएं हैं। एक जागरण, एक स्वप्न, एक सुषुप्ति और चौथी समाधि। जागरण का संबंध ब्रह्मा से। क्योंकि जाग कर तुम काम-धाम में लगते हो; निर्माण में लगते हो, सृजन में लगते हो। यह बनाना, वह बनाना, मकान

बनाना, दुकान चलाना, धन कमाना ! स्वप्न में तुम संवारने में लगते हो; जो-जो दिन में रह गया है अधूरा, स्वप्न में तुम्हारे संवरता है । इसलिए हर आदमी के स्वप्न अलग-अलग होते हैं । मनोवैज्ञानिक लोगों की जानकारी के लिए उनके स्वप्नों का निरीक्षण करते हैं । उनके स्वप्नों को जानना चाहते हैं । क्योंकि स्वप्न बताते हैं, क्या-क्या अधूरा है; कहां-कहां सम्हाल की जरूरत है !

अब जो आदमी रात-रात धन ही धन के सपने देख रहा है, वह खबर दे रहा है एक बात की कि उसकी जिंदगी में धन की कमी है । जिसकी कमी है, उसके स्वप्न होते हैं । जिसको कोई कमी नहीं रह जाती, उसके स्वप्न तिरोहित हो जाते हैं । उसको स्वप्न बचते ही नहीं । बुद्धपुरुष स्वप्न नहीं देखते । क्या है देखने को वहां !

जिसके स्वप्न में स्त्रियां ही स्त्रियां तैर रही हैं, अप्सराएं उतरती हैं, उर्वशियां और मेनकाएं उतरती हैं, उसका अर्थ है कि उसके जीवन में अभी स्त्री के अनुभव से तृप्ति नहीं हुई, या पुरुष के अनुभव से तृप्ति नहीं हुई । अभी वहां अतृप्ति है, वासना दमित पड़ी है, इसलिए वासना सपने में सिर उठा रही है । सपना कहता है--यहां सम्हालो ! यहां कमी है ।

मनोवैज्ञानिक कहता है कि तुम्हारा सपना मैं जान लूं, तो तुम्हें जान लूं । क्योंकि तुम्हारी कमी पता चल जाये, तो मैं तुमसे कह सकूं कि कहां भरो; गड्ढा कहां है; कहां मुश्किल आ रही है ।

और तीसरी अवस्था है सुषुप्ति । सुषुप्ति यानी महेश, मृत्यु । छोटी-सी मृत्यु रात घट जाती है, जब स्वप्न भी खो जाते हैं, तुम भी नहीं बचते । तुम कहां चले जाते हो, कुछ पता नहीं ! होते ही नहीं । सब शून्य हो जाता है ।

और चौथी अवस्था को हमने 'तुरीय' कहा है । तुरीय का अर्थ ही होता है, सिर्फ चौथी अवस्था । उस शब्द का और कोई अर्थ नहीं होता; चौथी--इतना ही अर्थ होता है--द फोर्थ, तुरीय, समाधि ।

जो व्यक्ति सुषुप्ति में जाग जाता है, सपने चले गये, गहरी नींद आ गई, सपने बिलकुल नहीं हैं, लेकिन होश का दीया जल रहा है, उसको समाधि मिलती है । उस चौथी अवस्था में परब्रह्म का साक्षात्कार होता है ।

सद्गुरु के पास तुम जब जाते हो, तो पहले तो तुम जाग्रत अवस्था में जाते हो, जिसको तुम जागरण कहते हो । उसमें कुतूहल होता है । अगर उसके पास रुके थोड़ी देर, तो विद्यार्थी बने बिना नहीं लौटोगे । उसमें सपने होते हैं । ज्ञान क्या है ? सिवाय सपने के और कुछ भी नहीं है ! पानी पर खींची गई लकीरें, कि कागज पर खींची गई लकीरें । ज्ञान सिर्फ सपना है ।

अगर और रुक गये, तो सब सपने मिट जाते हैं, ज्ञान मिट जाता है; ध्यान का आविर्भाव होता है । ध्यान सुषुप्ति है । अगर और रुके रहे, तो सुषुप्ति भी खो जाती है;

फिर बोध का, बुद्धत्व का जन्म होता है । और जब बुद्धत्व का जन्म होता है, तब तुम जान पाते हो कि जो गुरु बाहर था, वही तुम्हारे भीतर है । जो तुम्हारे भीतर है, वही समस्त में व्याप्त है । वही परब्रह्म फूलों में है, वही पक्षियों में है, वही पत्थरों में है, वही लोगों में है--वही सब में व्याप्त है । सारी तरंगें उसी एक सागर की हैं । और जिन्होंने इस अनुभव को जान लिया, वे धन्यभागी हैं । वे ही धार्मिक हैं । वे न हिन्दू हैं, न मुसलमान न ईसाई, न बौद्ध, न जैन--वे सिर्फ धार्मिक हैं ।

और मैं चाहूंगा कि जो लोग मेरे पास इकट्ठे हुए हैं, वे सिर्फ धार्मिक हों । ये हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी की बीमारियां विदा करो । ये सब बीमारियां हैं ।

आ गये हो अगर वैद्य के पास, तो इन सारी बीमारियों से मुक्त हो जाओ; स्वस्थ बनो । और तब तुम्हारे भीतर नमन उठेगा--तस्मै श्री गुरुवे नमः । तब तुम्हारे भीतर पहली दफा अहोभाव में, धन्यवाद में नमन उठेगा । तुम पहली बार झुकोगे इस विश्व के प्रति, इस अस्तित्व के प्रति । तुम्हारा प्राण गदगद हो उठेगा कृतज्ञता से, अनुग्रह से । तुम्हारे जीवन में एक सुगंध उठेगी, जो समर्पित हो जायेगी अस्तित्व के चरणों में ।

यह जीवन का चरम शिखर है । जो यहां तक बिना पहुंचे मर गया, वह यूं ही जिया, यूं ही मर गया । न जिया--न मरा ! व्यर्थ ही धक्के खाये ! व्यर्थ धक्के मत खाते रहना । तुम्हारे जीवन में भी यह पूनम आ सकती है । तुम इस पूनम के अधिकारी हो । पुकारो । आह्वान करो । यह तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है ।

दूसरा प्रश्न : भगवान, 'मैं सत् चित् आनन्द हूं ! शुद्ध बुद्ध आत्मन् हूं ! मुझे संसार के क्रिया-कलापों से क्या ? जगत के सब व्यापार मायावी हैं । मुझे किसी की निन्दा नहीं छूती--और न स्तुति । मैं अमृत-पुत्र हूं ।' यह मेरी अपनी अनुभूति है, जो सदा बनी रहती है । आपके इस धर्म-चक्र-प्रवर्तन के महत कार्य में मैं आपको सहयोग देना चाहता हूं और जगती के क्षितिज पर धर्म-ध्वज को लहराते देखना चाहता हूं । अतः आपसे एकांत में भेंट की आकांक्षा है ।

पण्डित मनसाराम शास्त्री !

कमाल कर दिया ! अब जब सारा जगत माया ही है, तो तुम किस जगती के क्षितिज पर धर्म-ध्वज को लहराते हुए देखना चाहते हो ? जब सारा जगत माया ही है, तो मुझसे क्या करोगे एकांत में मिल कर ? फिर क्या एकांत और क्या भीड़--सब माया है !

कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो !

मगर काशी निवासी हैं पण्डित मनसाराम शास्त्री। काशी-निवासियों से और इससे बेहतर कुछ आशा नहीं !

क्या गजब की बातें कहीं पहले, लेकिन पीछे. . . ! ढोल अपनी पोल खुद ही उघाड़ गया !

एक युवती मनोवैज्ञानिक के पास पहुंची और कहने लगी, 'मैं परेशान हो गई हूं, लोग मुझे निर्लज्ज कहते हैं ! और मैं तो कोई कारण नहीं देखती ! और जहां जाओ, वहीं; जो देखो वही—मुझे निर्लज्ज बतलाता है ! तो आप मुझे बतायें कि क्या मेरी निर्लज्जता है ! क्या मुझमें कमी है ? मैं सुधार करने को तैयार हूं। मेरी जिंदगी दूभर कर दी इन लोगों ने !'

उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, 'देवी ! पहले मेरी गोदी से उतर कर सामने की कुर्सी पर बैठो। फिर आगे बात हो !'

पण्डित मनसाराम शास्त्री ! थोड़ी तो अकल का उपयोग करो ! तुम्हीं सब को देख कर तो मैं भैंस को बड़ा कहने लगा ! अकल से भी बड़ी भैंस !

क्या प्यारे-प्यारे शब्द तुमने कहे—सब उधार ! 'मैं सत् चित् आनन्द हूं !' भैया, यहां कैसे आये, काहे के लिए आये ? काशी से यहां तक का कष्ट किया ! माया में यात्रा करते शर्म नहीं आती ? माया की रेलगाड़ी में बैठे; माया की टिकिट खरीदी ! रास्ते में माया का भोजन किया होगा ! तरह-तरह की मायाएं रास्ते में पड़ी होंगी; आंखें बंद रखनी पड़ी होंगी !

कहां काशी नगरी—त्रिलोक में न्यारी—उसको छोड़ कर कहां चले आये तुम ! यहां पूना में क्या कर रहे हो ? पूना में तो और सींग लग गये—'पुणे' ! जैसे गधे के सिर पर सींग ऊग आयें ! इधर कोई सींग-वींग मार दे—सब माया बिखर जाये ! यह तुम आये कहां !

कहते, 'मैं सत् चित् आनन्द हूं !' अब क्या कमी रही ? 'शुद्ध-बुद्ध आत्मन् हूं। मुझे संसार के क्रिया-कलापों से क्या ? जगत के सब व्यापार मायावी हैं ! मुझे किसी की निन्दा नहीं छूती—और न स्तुति। मैं अमृत-पुत्र हूं !'

क्या कहूं तुम्हें ! पण्डित मनसाराम शास्त्री कहूं—कि पण्डित तोताराम शास्त्री कहूं ! और फिर पीछे से सारी बात गड़बड़ हो गई। वह हो ही जाती है। लाख छिपाओ, बात खुल ही जाती है। हाथी भी निकल जाये, तो पूंछ अटक जाती है !

एक महिला अपने बीमार पति को देखने अस्पताल गई और उसकी तबीयत का हाल पूछा। पति ने कहा, 'बुखार तो टूट गया; अब टांग में दर्द है।'

पत्नी बोली, 'लल्लू के पापा ! घबड़ाओ मत जी। अरे जब बुखार ही टूट गया, तो टांग भी टूट जायेगी।'

एक पण्डित ने विवाह किया। ऐसे तो सब माया है, मगर सोचा होगा कि कम से कम माया से इस महिला को मुक्त करें ! सो विवाह किया। विवाह के बाद सुहागरात के दिन. . .। पाण्डित्य तो भरा ही हुआ था; सो चर्चा ही यूं शुरू हुई : बोले अपनी पत्नी से, 'प्रेम अंधा होता है।' यूं बोलते जा रहे हैं—प्रेम अंधा होता है—और कपड़े उतारते जा रहे हैं !

पत्नी ने कहा, 'होता होगा जी। पर पड़ोसी तो अंधे नहीं ! पहले खिड़की का परदा तो गिरा दो !'

एक युवती एक साधु के पास गई और बोली, 'महाराज, आपने एक प्रवचन में कहा था—अहंकार ही सबसे बड़ा पाप है। पर जब मैं शीशा देखती हूं, तो सोचती हूं—मैं कितनी सुंदर हूं। तो मुझे बहुत अहंकार हो जाता है। मैं क्या करूं ?'

साधु ने कहा, 'बच्चा, गलतफहमी कोई पाप नहीं !'

पण्डित मनसाराम शास्त्री ! हे काशी-निवासी तोताराम ! यह सब ज्ञान का कचरा हटाओ। इसमें तुम्हारा कोई भी अनुभव नहीं है। रत्ती भर अनुभव नहीं है।

और नाराज मत होना। यह मेरा शिवजी वाला रूप है ! ऐसे तोड़ूंगा। और पण्डितों को तो छोड़ता ही नहीं। उनसे मेरा प्रेम है ! और प्रेम तो अंधा होता ही है ! पण्डित मेरे हाथ में पड़ जाये, तो मैं उसके साथ वही व्यवहार करता हूं, जो हीरा जब जौहरी के हाथ में पड़ जाये—कि उठाई छैनी और लगे. . .। अच्छे आ गये। एकांत में तो देखेंगे, पहले यहां भीड़ में तो देख लें! अगर बचे रहे तुम, तो एकांत में भी देखेंगे!

कहां कि बातें कर रहे हो कि 'आपके इस धर्म-चक्र-परिवर्तन के इस महत कार्य में. . . !' अरे, इस मायावी संसार में कोई महत कार्य होता है, कि कोई धर्म-चक्र-प्रवर्तन होता है ? सब खेल है भैया !

मैं कोई धर्म-चक्र-प्रवर्तन वगैरह नहीं कर रहा। ऐसी झंझटों में कौन पड़े ! अब चका ही घुमाते रहो ! सुदर्शन-चक्र-धारी बन जाओ ! कि अब चौबीस घण्टे मुरली बजाओ—मुरली वाले बन जाओ !

सब माया है—इसमें क्या झंझट है ! किसको छुटकारा दिलवाना है ? किस चीज से छुटकारा दिलवाना है ? कुछ बंधन हो, तो छुटकारा हो। यहां बंधन ही नहीं है। लोग तो मुक्त हैं ही। ये सब मुक्त-पुरुष बैठे हुए हैं ! तुम किसी से भी पूछ लेना; कोई भी कह देगा—मैं सत् चित् आनन्द हूं ! शुद्ध-बुद्ध आत्मन् हूं ! यहां मेरे पास बुद्धों की जमात है ! यहां कभी-कभी कोई बुद्धू काशी से आ जाता है—बात अलग ! मगर वह अपवाद है ! अन्यथा यहां बुद्ध-पुरुष बैठे हुए हैं ! अब यह देखते हो, कैसे प्रसन्न हो रहे हैं वे देख कर. . . !

दोहराओ मत। दोहराने से कुछ भी नहीं होगा।

किसी महिला के आठ बच्चे थे। जब भी कोई बच्चा किसी वजह से रोता, तो वह उसे मनाते हुए कहती, 'देखो बेटा, गलती करके रोते नहीं।'

एक दिन बच्चों की शरारत से तंग आ कर वह रोने लगी और कहने लगी, 'ऐसे बच्चों से तो बगैर बच्चे अच्छे थे !'

तभी उसकी छोटी पुत्री उसे मनाती हुई बोली, 'देखो मम्मी ! गलती कलके लोते नहीं !'

सुनते-सुनते बेटी भी सीख गई ज्ञान की बातें !

अब काशी में तो ये वचन हवा में डोल रहे हैं। जहां जाओ, वहीं--बच ही नहीं सकते ! 'मैं अमृत-पुत्र हूं। न निन्दा छूती--न स्तुति !' तो क्या छूता है तुम्हें ? कुछ छूता है कि नहीं ? नहीं तो मेरे पास यहां एक से एक गजब की महिलाएं हैं, किसी को पीछे लगा दूं ! और फौरन कहोगे, 'ऐ बाई दूर रह ! छूना मत !' तब तुम्हें पता चल जायेगा कि निन्दा-स्तुति छोड़ो, अभी कोई बाई भी छू देगी तो बस, प्राण संकट में पड़ जायेंगे ! कि यह माया कहां पीछे लग गई ! और मेरे पास इतनी देवियां हैं ! छोटी-मोटी देवियां भी नहीं; चण्डीगढ़ से आयी हुई चण्डियां भी हैं ! पीछे लगा दूंगा; काशी तक पीछा करेंगी ! और जब तक पैर छूकर न कहोगे--श्री गुरुवे नमः--तब तक पीछा नहीं छोड़ेंगी।

तोतों की तरह दोहराओ मत ! आदमी की तरह बातें करो। मुझे धोखा न दे सकोगे; ये धोखे काशी में चलते हैं, क्योंकि वहां बाकी भी तोते हैं।

प्रेम के बारे में
राधा की-सी तन्मयता पा कर
एक प्रेमिका ने प्रेमी को लिखा,
'अब दशा वह हो चुकी है
कि मुझे हर आदमी में
तुम दिखाई देते हो
इसीलिए बौराई स्थिति में
मुझसे मत पूछो,
मैं क्या कर रही हूं
विवश हो कर--
मैं किसी और से
विवाह कर रही हूं !'

अब जब सब में कृष्ण ही कृष्ण दिखाई पड़ने लगे, तो अब क्या कृष्ण कन्हैया का ही रास्ता देखो ! यह राधा वगैरह कहती हैं कि हमको सब में कृष्ण दिखाई पड़ते हैं, बात सच नहीं है। ये गोपियां कहती थीं कि हमको दिखाई पड़ते हैं। जब कृष्ण द्वारका चले गये, तो फिर काहे को रोआई-धोआई मचाई हुई थी ! तो कोई ग्वालों की कमी थी ! अरे, कई बांसुरी बजा रहे थे; किसी को भी पकड़ लेतीं, कि हाय दैया ! कहां

चले गये थे ! हे भैया, बहुत दिनों बाद मिले ! कि आओ, रास रचायें !

यह सब बातचीत है कि सब में कृष्ण कन्हैया ही दिखाई पड़ रहे हैं।

तुम जब तक अपने इस व्यर्थ के ज्ञान से मुक्त न होओगे, तब तक सार्थक दिशा में कोई यात्रा नहीं हो सकती।

इस जीवन में अज्ञान नहीं भटकाता लोगों को, मेरे देखे, ज्ञान भटकाता है। और तुम्हें उपनिषद का वचन याद दिलाऊं। पण्डित हो, तुमने पढ़ा होगा, मगर समझा नहीं होगा। पण्डित कभी समझते ही नहीं। उनका काम पढ़ना--यंत्रवत।

उपनिषद का वचन है : 'अज्ञान तो भटकाता ही है, लेकिन ज्ञान महा अंधकार में भटका देता है।' क्या अद्भुत लोग रहे होंगे ! अब इस उपनिषद के ऋषि को अगर कच्छ जाना होता--बिलकुल नहीं जा सकता ! कि यहां कहां चले आ रहे हो ! खतरा पैदा हो जायेगा संस्कृति को। इस उपनिषद के ऋषि को तुम जीने देते ! जो कह रहा है कि अज्ञान तो निश्चित ही अंधकार में भटकाता है। लेकिन ज्ञान महा अंधकार में भटका देता है ! और इससे बड़ी क्रांति की क्या बात हो सकती है !

क्यों अज्ञान से भी ज्यादा बड़ी भटकन ज्ञान से पैदा हो जाती है ? अज्ञानी को कम से कम इतना बोध तो होता है कि मैं अज्ञानी हूं, तो एक विनम्रता होती है, एक सरलता होती है, एक सहजता होती है। अज्ञानी में एक भलापन होता है, निर्मलता होती है; अकड़ नहीं होती। वह कहता है, 'मैं जानता ही नहीं कुछ तो अकड़ूं भी क्या ! ज्ञान अकड़ लाता है--और थोथी अकड़। क्योंकि तुमने सीख लिया है; शास्त्र कण्ठस्थ कर लिए हैं; अब उनको दोहरा रहे हो।

एक पण्डित एक तोता खरीदने गये, क्योंकि उनके विरोधी पण्डित ने अपने घर के सामने एक तोता लटका रखा था, जो गायत्री का मंत्र बोलता था। उससे उनकी प्रतिष्ठा को धक्का लग रहा था। उनके ग्राहक छिने जा रहे थे ! ग्राहक कहते थे, 'महाराज, तुम्हें क्या पता; अरे वहां देखो ! वह है महा पण्डित। उसके तोते भी गायत्री बोलते हैं !'

सो वे भी बेचारे गये तोते की दूकान पर कि 'भैया, कोई तोता दो। कुछ ऐसा तोता दो कि गायत्री को भी मात कर दे।'

उसने कहा, 'है एक तोता मेरे पास। और ऐसा तोता कि हिन्दू को भी फांसे, मुसलमान को भी फांसे ! अरे, ऐसे गजब का तोता, बिलकुल गांधीवादी तोता ! अल्ला-ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान ! आधुनिक तोता। यह कहां गायत्री मंत्र लगा रखा है !'

कहा, 'दिखाओ, कहां है तुम्हारा तोता ?'

ले गया उसे अंदर। तोता बिलकुल बैठा हुआ था--खादी के कपड़े पहने हुए ! गांधीवादी टोपी लगाये हुए ! पास ही एक छोटा-सा चरखा रखा हुआ था। पण्डित ने

भी कहा कि 'श्री गुरुवे नमः ! गजब का तोता है ! एकदम शुद्ध खादी पहने है ! और सामने ही रखा हुआ है चरखा । इसके संबंध में कुछ और समझाओ !'

उस दुकानदार ने कहा, 'इसके पैर में देखते हैं आप, बायें पैर में एक धागा बंधा है, इसको खींच दो कि एकदम उपनिषद के सूत्रों पर सूत्र बोलने लगता है । और इसके दूसरे पैर में देख रहे हो, दूसरा धागा बंधा हुआ है, किसी को दिखाई भी नहीं पड़ेगा; बिलकुल महीन धागा । अगर उसको खींच दो––एकदम कुरान की आयतें बोलता है । मुसलमान आये, तो यह खींच देना । हिन्दू आये, तो वह खींच देना । दोनों पर तुम्हारा कब्जा हो जायेगा । हिन्दू भी आयेंगे, मुसलमान भी आयेंगे ।'

'तोता तो गजब का है ! एक बात पूछूं ? अगर दोनों धागे एक साथ खींच दूं, तो ?'

तोता बोला, 'उल्लू के पट्ठे ! अगर दोनों धागे एक साथ खींचोगे, तो धड़ाम से नीचे न गिर पड़ूंगा !'

तोतों में भी थोड़ी ज्यादा अकल है !

तुम भी क्या बात कर रहे हो ! यहां कोई धर्म-चक्र-प्रवचर्तन वगैरह नहीं हो रहा है । यहां तो मौज है, मस्ती है । यह तो मैखाना है, मधुशाला है । यहां तो पियक्कड़ों की जमात है । ये रिंद बैठे हैं । यहां तो अदृश्य शराब पीयी जा रही है, पिलाई जा रही है । अगर पीना हो, तो पीओ । और अगर हिम्मत हो, तो ही पी पाओगे । क्योंकि यहां किसी परम्परा की बात नहीं हो रही है । यहां शुद्ध सत्य की बात हो रही है । यहां किसी परम्परा का पोषण नहीं है । क्योंकि मैं मानता ही नहीं कि परम्परा और सत्य का कभी कोई संबंध होता है । सत्य तो सदा नूतन होता है; नित नूतन होता है––जैसे सुबह की ओस के कण––इतना ताजा होता है ।

यह तुम बकवास छोड़ दो कि 'मैं सत् चित् आनन्द हूं । शुद्ध-बुद्ध आत्मन् हूं । मुझे संसार के क्रिया-कलापों से क्या!' अभी बहुत है तुम्हें संसार के क्रिया-कलापों से मतलब । अभी तुम जगती के क्षितिज पर धर्म-ध्वज को लहराते देखना चाहते हो ! अभी 'झण्डा ऊंचा रहे हमारा !' तुम्हारी बुद्धि वहीं अटकी है । और झण्डा-वण्डा किसको ऊंचा करना है ? डण्डा ऊंचा करना रहता है लोगों को; झण्डा तो बहाना है ।

पहले तो तुम यह कचड़ा छोड़ो । अगर मेरे पास आना है, तो इस कचड़े को छोड़ कर आओ । अज्ञानी हो कर आओ; मेरे द्वार खुले हैं । ज्ञानी हो कर आओ, बिलकुल द्वार बंद हैं ।

मैं द्वार पर इस पूरे आश्रम में एक ही आदमी को संत कहता हूं; उसको द्वार पर ही बिठा रखा है । यहां पांच हजार पियक्कड़ों में एक ही संत है ! उनको बाहर बिठा रखा है । तुम पूछोगे––क्यों ? क्योंकि वे बिलकुल अंटशंट हैं ! और अंटशंट दूसरे अंटशंटों को फौरन पहचान लेता है ! तरबूजा तरबूजे को पहचान लेता है ! तो उनको मैं कहता हूं––'संत महाराज !' उनको द्वार पर बिठा रखा है । वहीं देख लेते हैं कि

आ रहा है अंटशंट ! वहीं से विदा कर देते हैं । उनने तुम्हें कैसे घुस आने दिया, यही आश्चर्य है ! कभी-कभी भांग वगैरह पी जाते हैं वे । अब संत ही हैं, तो संतों का क्या ! संत और भांग न पियें ? भांग वगैरह पी गये दिखता है वे, कि तुम भीतर घुस आये । नहीं तो वे पहले ही तुम्हें वहीं से विदा कर देते !

ज्ञानियों के लिए दरवाजा बंद है । अज्ञानियों के लिए द्वार खुला है मेरा, मेरा हृदय खुला है, क्योंकि अज्ञानियों को बदला जा सकता है; ज्ञानियों के साथ तो फिजूल मेहनत होती है !

पश्चिम का बहुत बड़ा संगीतज्ञ वेजनर जब भी किसी को शिष्य की तरह स्वीकार करता था, तो कहता था, 'पहले कहीं संगीत तो नहीं सीखा ? अगर संगीत सीखा हो, तो रस्ता लगो ! बाहर निकलो । और अगर जिद्द करोगे, तो दुगनी फीस लूंगा । जिसने संगीत नहीं सीखा, उसको मैं सिखाता हूं ।'

स्वभावतः जो लोग संगीत सीखे होते, वे कहते, 'यह तो उलटी बात कर रहे हैं आप ! हमने वर्षों मेहनत करके सीखा है । हम से तो कम फीस लेनी चाहिए !'

वह कहता, 'पहले भुलाना भी तो पड़ेगा । वह मेहनत कौन करेगा ?'

पण्डित मनसाराम शास्त्री ! पहले तो तुम्हारा शास्त्रीपन मिटाना पड़ेगा, पण्डित-पन मिटाना पड़ेगा, तब कहीं जा कर कुछ बात बन सकती है । अभी तुम धर्म-ध्वज वगैरह न फहराओ ! अभी तो तुम्हारे जीवन में दीया जल जाये, यही काफी है ।

तीसरा प्रश्न : भगवान, ध्यान से यदि कई रोगों का इलाज हो सकता है, तो क्यों नहीं विश्व स्वास्थ्य संगठन को समझा कर इस संघ से ध्यान विधियों के प्रचार में सहायता ली जाती है ?

शील बहादुर वज्राचार्य !

ध्यान से निश्चित ही बीमारियों से छुटकारा हो जाता है, लेकिन शारीरिक बीमारियों की बात नहीं कर रहा हूं । आध्यात्मिक बीमारियों से छुटकारा हो जाता है । शारीरिक बीमारियों से छुटकारे से ध्यान का कोई संबंध नहीं है । परोक्ष रूप से परिणाम होगे, लेकिन सीधा-सीधा कोई संबंध नहीं है । अन्यथा रमण महर्षि कैंसर से न मरते । न रामकृष्ण कैंसर से मरते ! महावीर की मृत्यु पेचिश की बीमारी से हुई । बुद्ध की मृत्यु विषाक्त भोजन से हुई । ध्यान शरीर में फैलते विष को न रोक सका ! और बुद्ध से बड़ा कौन ध्यानी ? महावीर का ध्यान––उतना शुक्ल ध्यान किसका कब हुआ ! उतना शुद्ध ध्यान––वैसी समाधि ! मगर पेचिश की बीमारी को नहीं बदल

सका। छह महीने दस्त पर दस्त लगते रहे––खून के दस्त !

अगर ध्यान से शरीर को कुछ ऐसा स्वास्थ्य मिलता होता, तो शंकराचार्य तैंतीस साल की उम्र में मर न जाते ! यह भी कोई वक्त मरने का था !

लेकिन तुमने बात कुछ गलत समझ ली होगी। निश्चित मैं कहता हूं कि ध्यान से स्वास्थ्य मिलता है। लेकिन स्वास्थ्य से मेरा अर्थ होता है––स्वयं में स्थित होना। स्वास्थ्य का अर्थ ही वही होता है। स्वयं में स्थित हो जाना। ध्यान से स्वास्थ्य मिलता है।

और ऐसा नहीं है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन को मेरी बातों में उत्सुकता न हुई हो। एक बार तो उनका एक प्रतिनिधि मण्डल मेरे ध्यान-शिविर में सम्मिलित भी हुआ। डब्ल्यू एच ओ––वह जो आर्गनाइजेशन है, विश्व स्वास्थ्य संगठन का, उसने पांच-सात लोगों को आजोल ध्यान-शिविर में देखने भेजा, निरीक्षण करने कि क्या हो रहा है ! लेकिन उन्होंने जो देखा, जो समझा, मुझसे जो बात की––वे उससे इतने ज्यादा चौंके कि फिर मुझे पता ही नहीं चला कि उन्होंने क्या रिपोर्ट दी, क्योंकि दुबारा फिर कभी उनकी तरफ से न कोई पत्र आया, न कोई खबर आयी !

लेकिन मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। यही संभावित था। ये सारे के सारे संगठन मूलतः राजनीति के हिस्से हैं। और ध्यान पहली तो बीमारी यह छुड़ा देता है––राजनीति !

मुझसे जब ये अधिकारी मिले डब्ल्यू एच ओ के, वर्ल्ड हेल्थ आर्गनाइजेशन के, तो मैंने उनसे कहा, 'पहला छुटकारा तो राजनीति !'

उन्होंने कहा, 'क्या !'

ध्यानी राजनीति से मुक्त हो जाता है; हो ही जायेगा। राजनीति का अर्थ है : जमाने भर की चालबाजियां, जमाने भर की चोरबाजारियां, जमाने भर की बेईमानियां। राजनीति का अर्थ है : प्रतिस्पर्धा, जलन, ईर्ष्या। राजनीति का अर्थ है : दूसरे पर कब्जा करने की कोशिश। और ध्यान तो अपना मालिक है। और जो अपना मालिक है, उसे किसी का मालिक होने की कोई आकांक्षा ही नहीं रह जाती। उसने तो मालकियत की मालकियत पा ली।

इसलिए मेरी बातों में राजतनीतिज्ञ उत्सुक नहीं हो सकते। मेरी बातों में उनको घबड़ाहट लगेगी। मेरी बातों से पण्डित घबड़ायेंगे, धर्मगुरु घबड़ायेंगे, राजनीतिज्ञ घबड़ायेंगे, शिक्षा-शास्त्री घबड़ायेंगे। मेरी बातों से इन सारे लोगों को घबड़ाहट पैदा हो जायेगी, क्योंकि इनके सब के जाल अगर मेरी बात सही है, तो टूट जा सकते हैं।

तुम्हारी पूरी शिक्षा महत्वाकांक्षा पर खड़ी है। लोगों के भीतर महत्वाकांक्षा का ज्वर पैदा करो। लोगों को दौड़ाओ––धन की तरफ, पद की तरफ। 'दिल्ली चलो !' यह नारा हर एक की आत्मा में गूंज जाना चाहिए ! बस, यही उनका मूल मंत्र हो जाये ! और जब तक प्रधानमंत्री न बन जाओ, राष्ट्रपति न बन जाओ, तुम्हारा जीवन अकारथ है !

छोटे-छोटे बच्चों को हम यही जहर पिला रहे हैं : प्रथम आओ अपनी कक्षा में ! यह जो प्रथम की दौड़ है, हिंसा है।

जीसस का वचन है : 'धन्य हैं वे जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं। क्योंकि प्रभु का राज्य उन्हीं का है।' जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं ! और यहां तो सारी दौड़ प्रथम होने की है ! यहां अंतिम तो कोई खड़ा होना ही नहीं चाहता !

जार्ज बर्नार्ड शॉ से कोई पूछा कि 'आप स्वर्ग जाना पसंद करेंगे कि नर्क ?'

उसने कहा कि 'जहां भी मैं प्रथम हो सकूं––वहीं ! नम्बर दो भी मुझे बरदाश्त नहीं। मैं नर्क ही चला जाऊंगा, मगर रहूंगा नम्बर एक !'

तुम खुद भी पूछो अपने से बहुत शांति में कि अगर नर्क में तुम्हें राष्ट्रपति होने का मौका मिले, तो तुम नर्क जाओगे; कि स्वर्ग में जहां चपरासी होने का मौका शायद मिले ? क्योंकि वहां क्यू लगी होगी ! बड़े-बड़े संत-महंत पहले से ही चपरासी होने की दरख्वास्त दिये बैठे होंगे ! सो तुम्हें लगेगा, मुझ गरीब का वहां क्या ठिकाना लगेगा ! और यहां राष्ट्रपति होने का मौका मिल रहा है। कौन चूके ! नर्क है, तो नर्क सही; अरे, राष्ट्रपति होने की बात ही और !

तुम्हारा पूरा चित्त रुग्ण है महत्वाकांक्षा से। ध्यान तुम्हें इस रोग से मुक्त करा देगा।

तुम बीमार हो अहंकार से। तुम्हारी बीमारी क्या है ? तुम्हारी छाती पर पत्थर किस बात का है ?––एक अहंकार का। और तो कोई पत्थर नहीं है। ध्यान तुम्हें अहंकार से मुक्ति दिला देगा, क्योंकि ध्यान तुम्हें बतायेगा कि तुम अलग नहीं हो; इस विश्व के अनिवार्य अंग हो। जैसे समुद्र की लहर समुद्र का अंग है, ऐसे तुम इस विराट चैतन्य के अंग हो; भिन्न नहीं हो।

तुम्हारे धर्मगुरु ध्यान में उत्सुकता नहीं ले सकते, क्योंकि ध्यान तुम्हें बतायेगा––कौन हिन्दू, कौन मुसलमान, कौन ईसाई ! ध्यान तो बतायेगा कि तुम शुद्ध चैतन्य हो। और चेतना न हिन्दू होती, न मुसलमान होती, न ईसाई होती।

क्यों मेरे खिलाफ सारे लोग हैं ? ईसाई भी खिलाफ, हिन्दू भी खिलाफ, जैनी भी खिलाफ, मुसलमान भी खिलाफ ! आखिर मैंने क्या इन सबका कसूर किया है ? मैं तुम्हें जो सिखा रहा हूं, इनको समझ में आ रही है बात कि उससे इनकी जड़ें कट जायेंगी।

ध्यानी तो सिर्फ ध्यानी होता है।

इसलिए अभी मैं कच्छ गया भी नहीं, और मेरे तीर कच्छ में लोगों को लगने लगे ! पहले जैन मुनि भद्रगुप्त गिरे। धड़ाम से गिरे ! अभी मैं कच्छ पहुंचा नहीं ! पहुंच कर तो कितने लोग एकदम से मर ही जायेंगे, कहना ही मुश्किल है ! अभी पहुंचा ही नहीं; अभी बात ही चली। अभी एक कदम भी नहीं उठाया। अभी दरवाजे के

बाहर भी नहीं गया। अभी बात ही चल रही है। मगर इस देश में तो बात में से बात—और फिर बतंगड़ बन जाता है।

भद्रगुप्त मुनि गिरे पहले। उन्होंने सारे जैनियों को इकट्ठा करके, सात जैनियों के सम्प्रदायों को इकट्ठा कर लिया और घोषणा कर दी कि चाहे जीवन रहे कि जाये, सब कुछ कुरबानी के लिए तैयार हो जाओ, मगर इस व्यक्ति को कच्छ में नहीं घुसने देना!

मैं क्या बिगाड़ूंगा तुम्हारा! तुम्हें क्या तकलीफ हो गई?

फिर कल स्वामिनारायण सम्प्रदाय के महंत हरिदासजी गिर पड़े! चारों खाने चित्त! कि 'मेरा कच्छ में आगमन कच्छ की संस्कृति पर आक्रमण है। इस आक्रमण का विरोध करना होगा।'

राजनेताओं में तो बड़ी चहल-कदमी मची हुई है। सभाएं शुरू हो गईं; प्रतिनिधि मण्डल पहुंचने लगे सरकारों के पास; प्रधान मंत्री के पास! दरखास्तें पहुंचने लगीं कि मुझे प्रवेश न दिया जाये। और मैं किसी से क्या छीन रहा हूं! सिखा क्या रहा हूं तुमको?—सिर्फ इतना कि अहंकार छोड़ो। यही कि महत्वाकांक्षा छोड़ो। यही कि थोथा ज्ञान गिर जाने दो, ताकि तुम्हारे भीतर जो चैतन्य की ऊर्जा दबी पड़ी है, वह प्रगट हो। ये चट्टानें हटाओ, ताकि झरना बहे।

इन सब को क्या बेचैनी हो रही है?

तुम पूछते हो शील बहादुर वज्राचार्य, कि 'क्या कारण है, जब ध्यान से सभी रोगों का इलाज हो सकता है, तो क्यों नहीं विश्व स्वास्थ्य संगठन को समझा कर इस संघ से ध्यान विधियों के प्रचार में सहायता ली जाती?' कम से कम मैं जिसे ध्यान कहता हूं, उसमें ये कोई लोग साथ नहीं दे सकते। असंभव। क्योंकि मैं इनकी जड़ें काट डालूं, तब तो ध्यान बने! ये अपने हाथ से अपनी जड़ें कटवायेंगे?

फिर मैं कुछ कहता हूं, ये तत्क्षण कुछ और समझते हैं। क्योंकि इनके सबके न्यस्त स्वार्थ हैं। न्यस्त स्वार्थ बातों को सीधा-सीधा नहीं समझने देते। न्यस्त स्वार्थ से भरा आदमी अपने ही हिसाब से सोचता है!

पिछली बार तुमको दो महीने की सजा मिली थी इस अदालत से!'

कैदी ने कहा, 'हां सरकार!'

इस बार तुमको छोड़ रहा हूं। गवाहों की कमजोरी के कारण तुम बच गये। इतना सूद लेना जुर्म है। समझे!'

'हजूर, आठ दिन के लिए तो भेज ही दीजिए,' कैदी ने कहा।

'लेकिन क्यों!' न्यायाधीश चकित हुआ। यह पहला मौका था कि कोई आदमी खुद ही प्रार्थना करे कि कम से कम आठ दिन के लिए तो भेज ही दीजिए!

कैदी ने कहा, 'अब आपसे क्या छिपाना। कैदियों पर मेरा पैसा उधार है, उसकी वसूली करनी है! बस, आठ दिन के लिए भेज दीजिए!'

वह, तुम जेल भेज रहे हो, वह जेल में भी वही धंधा कर रहा है! बाहर रहेगा, तो सूद लेगा। भीतर रहेगा तो सूद लेगा।

वह राजनीति में रहेगा महत्वाकांक्षी व्यक्ति तो शोषण करेगा; धर्म में रहेगा, तो शोषण करेगा। शोषण, महत्वाकांक्षी किये बिना नहीं रह सकता। उसके न्यस्त स्वार्थ हैं।

एक औरत सड़क पर जा रही थी। बाल-बच्चा पेट में था। एक रिक्शेवाला बोला, 'बहनजी, रिक्शा होगा?'

बहनजी गुस्से में आ कर बोलीं कि 'रिक्शा होगा तेरी घरवाली के; मेरे तो लड़का होगा!'

अपने अपने स्वार्थ; अपनी अपनी दृष्टि; अपने अपने देखने के ढंग! कोई सुनता है, जो कहा जाता है उसको? लोग अपने हिसाब से सुनते हैं!

पण्डित जवाहरलाल नेहरू जब प्रधान मंत्री थे, वे एक पागलखाना देखने गये। पागलखाने की बड़ी सफाई की गई, सजावट की गई। यह सब देख कर एक पागल ने अपने दोनों हाथ ऊपर उठा कर कहा, 'हे भगवान, उनको शीघ्र चंगा कर देना!'

पण्डित नेहरू ने सुना। उन्होंने कहा, 'यह पगला क्या कह रहा है!'

उस पगले से पूछा कि 'तू क्या कह रहा है?'

उसने कहा, 'आपके लिए प्रार्थना कर रहा हूं कि हे प्रभु, इनको चंगा कर देना—जल्दी चंगा कर देना। अच्छे आदमी! देखो, इनकी वजह से पागलखाने की सजावट हो रही, सफाई हो रही है!'

पण्डित नेहरू ने कहा, 'लेकिन क्या मैं पागल हूं?'

उस पागल ने कहा, 'जब मैं पहली दफा तीन साल पहले यहां आया था, तो मैं भी सोचता था कि मैं पण्डित जवाहरलाल नेहरू हूं! अरे, तीन साल यहां रहो, ठीक हो जाओगे! ये पागलखाने के हरामजादे, ये सुपरिन्टेन्डेन्ट इत्यादि जिसको ठीक न कर दें, सो ठीक है! वो पिटाई देते हैं कि अगर असली जवाहरलाल नेहरू भी आ जायें, तो भी ठीक हो जायेंगे!'

पागल के सोचने का अपना ढंग है। वह बेचारा गलती नहीं कह रहा है। वह भी जब आया था, तो जवाहरलाल नेहरू समझता था अपने को। जब जवाहरलाल भारत में थे, तो कम से कम बीस आदमी तो जाहिर हिन्दुस्तान में ऐसे पागल थे, जो अपने को जवाहरलाल समझते थे।

जब विन्स्टन चर्चिल प्रधान मंत्री था योरोप में, तो इंग्लैण्ड में ही ऐसे कोई दस-बारह लोग थे, जो अपने को विन्स्टन चर्चिल समझते थे! जिनको पागलखानों में रखा गया था। मगर तुम उनको पागलखानों में रख कर भी ठीक कर लो, इतना आसान नहीं।

बगदाद में ऐसा हुआ, एक आदमी ने घोषणा कर दी कि मैं पैगम्बर हूं। और परमात्मा ने मुझे भेजा है कि अब मोहम्मद को काफी दिन हो गये, चौदह सौ साल पुरानी किताब हो गई कुरान, अब तू नया संशोधित संस्करण ले जा! पॉकेट एडिशन! अब लोग इतनी-इतनी मोटी किताबें नहीं पढ़ सकते! जमाना बदल गया। पेपर बैक!

उसको पकड़ कर लाया गया बगदाद के खलीफा के पास और कहा गया कि 'यह बदमाश है। अपने को कह रहा है कि मैं नया पैगम्बर हूं! और परमात्मा ने भेजा है!,

खलीफा ने देखा, उसने कहा कि 'इसको बंद करो; सात दिन इसकी अच्छी पिटाई करो। सात दिन बाद मैं देखूंगा।'

सात दिन बाद खलीफा गया। उसको एक खंबे से बांध रखा था; खाना दिया नहीं था; और ऐसी पिटाई की गई थी कि लहूलुहान था। खलीफा उसके पास पहुंचा और बोला, 'कहो, अब क्या विचार है हजरत! अकल आयी?'

वह हंसने लगा। उसने कहा कि 'यह तो जब मैं चलने लगा था परमात्मा के घर से तो उन्होंने कहा था कि बड़ी मुसीबतें आयेंगी! पैगम्बरों पर सदा आती रहीं! अरे इससे तो सिद्ध हो गया कि मैं पैगम्बर हूं! मैं किसी वहम में नहीं था। पहले मुझे कभी-कभी शक भी होता था कि कोई वहम तो नहीं है। अब तो अखण्ड विश्वास आ गया!

तभी एक आदमी जो दूसरे खंबे से बंधा था, वह चिल्लाया कि 'बंद करो यह बकवास। यह आदमी सरासर झूठ बोल रहा है!'

खलीफा भी चौंका; वह पगला आदमी भी चौंका।

खलीफा ने कहा, 'तू कैसे कहता है कि यह झूठ बोल रहा है?'

वह बोला, 'मैंने मोहम्मद के बाद किसी को पैगम्बर बना कर भेजा ही नहीं!'

वह एक महीने पहले पकड़ा गया था! वह कहता था, मैं खुदा हूं! मैं खुद खुदा हूं! और यह आदमी सरासर झूठ बोल रहा है। मैंने इसको भेजा ही नहीं! इसको मैं सात दिन से समझा रहा हूं कि अरे, नालायक, तू पहले मेरी तरफ तो देख। मैंने तुझे कभी भेजा ही नहीं। यह सुनता ही नहीं! मैंने तो भेज दिया आखिरी पैगम्बर मोहम्मद। अब किसी और मोहम्मद की जरूरत नहीं; न किसी और कुरान की जरूरत है।

पागलों की एक दुनिया है; वे अपनी दुनिया में रहते हैं।

राजनीति एक तरह का पागलपन है; बड़ा सूक्ष्म पागलपन है।

तुम समझो कि मेरा जो ध्यान का प्रयोग है, उससे कोई राजनीतिज्ञ राजी होंगे, तो तुम गलती में हो। और जो राजी हो जायेगा, वह तत्क्षण राजनीतिज्ञ नहीं रह जायेगा। क्योंकि राजनीति और ध्यान में कोई मेल नहीं हो सकता।

राजनीति तुम्हारी मूढ़ता का बिस्तार है, तुम्हारे अज्ञान का; तुम्हारी सब तरह की बेवकूफियों को बढ़ा-चढ़ा कर खड़ा करने का; रंग-रोगन देने का ढंग है। लेकिन ध्यान तुमसे तुम्हारे सारे झूठ, तुम्हारी सारी मूढ़ताएं, तुम्हारा सारा थोथा ज्ञान छीन

लेने की प्रक्रिया है।

कौन राजी है शून्य होने को! जो शून्य होने को राजी है, वही ध्यान में उत्सुक हो सकता है।

एक लाला जी के घर खीर पकाई गई। जब खीर थाली में परोसी गई, तो लाला जी की पत्नी से अपने लड़के की थाली में ज्यादा खीर पड़ गई। इस पर सेठ जी नाराज हो कर अपनी सेठानी से बोले, 'तेरा पति मैं हूं या यह? जिसको तू अधिक खीर देती है?'

इस पर उस बच्चे को गुस्सा आया और बोला कि 'यह मां मेरी है या तेरी? जो तुझे ज्यादा देती?'

बाप और बेटे की इस बात से आखिर सेठानी भी कैसे पीछे रह सकती थी। वह भी कैसे चूकने वाली थी! उसने भी झुंझला कर कहा, 'यह मेरा लड़का है या तेरा? जो तुम्हें ज्यादा देती?'

बात बिगड़ती ही चली गई!

राजनीतिज्ञों की बातें तो तुम सुनो! इनको तुम सोचते हो ध्यान में उत्सुकता होगी! इनको कहां ध्यान की पड़ी। इनको कहां ध्यान में रस! हां, ये जाते हैं पण्डित-पुजारियों के पास, मंदिर-मस्जिदों में भी जाते हैं—चुनाव के समय! फूल-पत्ती भी चढ़ाते हैं; प्रसाद भी ले जाते हैं; पूजा भी करते हैं; गंगा-स्नान भी कर आते हैं; व्रत-उपवास भी कर लेते हैं! मगर चुनाव के लिए!

इनको अगर भगवान भी मिल जाये, तो तुम सोचते हो, ये उससे मोक्ष मांगेंगे? कभी नहीं। वैकुण्ठ?—कभी नहीं। ये कहेंगे कि 'महाराज, इस चुनाव में टिकिट मिल जाये! कि यह एक दफे जिता दो; अरे, बस, एक दफे जिता दो! और तुम तो पतित-पावन हो। और तुम्हारे किये क्या नहीं हो सकता! तुम तो सर्वशक्तिमान हो।'

एक राजनेता चुनाव हारता गया, हारता गया, हारता गया। सात दफे चुनाव हार गया। घबड़ा गया। एक रात जा कर कूद कर आत्महत्या करना चाहता था नदी में। जैसे ही कूदने को था कि एक बुढ़िया ने उसके कंधे पर हाथ रखा। उसने लौट कर देखा। ऐसी भयानक औरत उसने कभी देखी नहीं थी! तिलमिला उठा। एकदम उबकाई आने लगी कि अभी उल्टी होती है! ऐसी सड़ी-गली औरत, और ऐसी बास उठ रही है उससे! सब दांत गिरे हुए। चेहरा ऐसा कुरूप और भयंकर कि उसने कहा कि 'बाई, जल्दी छोड़। मैं वैसे ही मरने के लिए आया था; तुझे देख कर और पक्का हो गया कि अब मर ही जाना चाहिए, अब कोई सार नहीं। छोड़ मुझे।'

उसने कहा, 'पहले मेरी बात सुन। तुझे पता है मैं कौन हूं?'

'मुझे कुछ पता नहीं। मुझे कुछ पता करना भी नहीं है,' उस नेता ने कहा, 'अब मुझे जीना ही नहीं है।'

उस स्त्री ने कहा, 'पहले तो तू सुन ले, नहीं तो पछतायेगा; मर कर पछताये; कब्र में पछतायेगा। मैं एक अभिशापित अप्सरा हूं।'

राजनेता थोड़ा ढीला पड़ा कि 'अरे, अप्सरा!'

उसने कहा कि 'मुझ पर इंद्र नाराज हो गया और उसने मुझे अभिशाप दे दिया और कहा कि जब तक तू किसी मरते व्यक्ति को न बचायेगी, तब तक तुझे इसी हालत में रहना पड़ेगा। लेकिन सौदा महंगा नहीं है। तुम जो चाहो, तीन वरदान, तीन वचन मैं देने को राजी हूं। तुम मांग लो तीन वरदान।'

राजनेता तो वहीं गिर पड़ा उसके पैरों में। फिर तो बदबू नहीं, एकदम सुगंध आने लगी! स्त्री एकदम ऐसी सुंदर दिखाई पड़ने लगी कि ऐसी सुंदर स्त्री देखी ही नहीं थी उसने। उसने कहा, 'अरे, मालूम होता है, तू उर्वशी है! अप्सरा है—निश्चित है, अप्सरा है! बस, तीन वरदान दे दे। एक तो टिकिट मेरा मिल जाये। और इस बार चुनाव जीत जाऊं। और इस बार प्रधान मंत्री हो जाऊं।'

उसने कहा, 'तीनों चीजें पूरी हो जायेंगी, मगर एक शर्त—रात भर मेरे साथ प्रेम करना पड़ेगा!'

राजनेता की छाती धड़की! इस बुढ़िया के साथ प्रेम करना—रात भर! एक-दफा खयाल उठा कि कूद कर मर ही जाऊं। ऐसे जिंदगी में बहुत दुख देखे; अब और यह दुख क्यों देखना। और रात भर...! मगर लालच भी पकड़ा कि जिंदगी भर जिसमें गंवाया है, अरे, तपस्या थोड़ी-सी कर ले। सोचा कि तपस्वी तो क्या-क्या नही कर गये; महात्मा तो क्या-क्या नहीं कर गये! अरे, तू भी तो आखिर संत-महात्माओं की संतान है। अरे, शुद्ध भारतीय है। संत-महात्माओं ने कैसे-कैसे कष्ट नहीं झेले!' धप में अंगीठी लगा कर बैठे रहे। कांटे बिछा कर सोये। भूखे रहे महीनों। अंगारों पर चले। उठ, हिम्मत कर! मत चूक चौहान! रात भर की ही बात है; अरे गुजार देंगे किसी तरह। आंख बंद करके एकदम गुजार देंगे!

कहा, 'ठीक है, राजी हूं।'

बुढ़िया ने उसका हाथ पकड़ा और ले गई। पास ही उसका झोपड़ा था। रात भर बुढ़िया के साथ प्रेम करना पड़ा। उसकी जो हालत हुई रात भर में, वह तुम सोच सकते हो! मर के भी वह दुर्दशा न होती, जो सुबह उसकी हालत थी! मगर एक आशा थी कि बस, अब सुबह हुई, अब सुबह हुई, अब सुबह हुई! रात ऐसी लम्बाती गई, लम्बाती गई! पहली दफे उसको आइंस्टीन का सापेक्षता का सिद्धांत समझ में आया; कि समय लम्बा हो जाता है, समय छोटा हो जाता है। समय लचकदार, लोचपूर्ण है। कभी समझ में नहीं आया था कि समय में कैसे लोच होती है। आज समझ में आया। बार-बार घड़ी देखे, मगर ऐसा लगे कि घड़ी ठहरी हुई है। दो-तीन दफे बुढ़िया से पूछा भी कि 'यह घड़ी चल रही है कि नहीं। सुबह होगी कि नहीं?'

बुढ़िया ने कहा, 'होगी, सुबह भी होगी। घड़ी भी चल रही है। घबड़ा मत।'

रात भर प्रेम करने के बाद उठा बिस्तर से, प्रफुल्लित हो रहा था कि अब तीनों इच्छाएं पूरी हो जायेंगी। बुढ़िया से बोला कि 'माताराम, अब सिर पर हाथ रख और वचन दे कि तीनों पूरे हो जायेंगे!'

बुढ़िया बोली कि 'बेटा, तू सतयुगी मालूम होता है। अरे, कलयुग में कहां की अप्सराएं! अरे मूरख, मैं कोई अभिशापित अप्सरा वगैरह नहीं हूं। मैं तो प्रेमी की तलाश में थी। और मैंने देखा कि अब और कौन फंसेगा सिवाय राजनेता के! सो बेटा घर जाओ। दूध जलेबी खाओ। वरदान वगैरह कुछ पूरा होने वाला नहीं। और मरना हो, तो मर जाओ!'

उसने कहा, 'अब मर कर भी क्या करूंगा! अब तो जो दुख देख लिया, इसके सामने नर्क भी फीका पड़ जायेगा।'

ये आकांक्षाओं-अभीप्साओं से भरे हुए लोग, ये महत्वाकांक्षा-अहंकार से भरे हुए लोग—इनको तुम सोचते हो ध्यान सूझेगा?

नहीं वज्राचार्य, असंभव है। इनकी पूरी चेष्टा एक ही है कि किसी तरह नाम रोशन हो जाये! इनको भीतर रोशनी चाहिए ही नहीं।

एक राजनेता अपने घर के दरवाजे पर नाम की तख्ती जड़ने के बाद उस पर बिजली का बल्ब लगा रहा था। उसके एक मित्र ने, जो पास से गुजरा, पूछा, 'भइया, यह क्या कर रहे हो?'

'अपना नाम रोशन करने की कोशिश कर रहा हूं', राजनेता ने कहा।

इनको क्या पड़ी कि भीतर रोशनी हो! नाम रोशन होना चाहिए!

एक लड़के वाला
जो नेता था
अपने लड़के के लिए
लड़की देखने गया।
लड़की वाले से बोला—
व्यक्तित्व उसका ऐसा हो
जैसा इंदिरा गांधी का;
कुंवारापन अटल बिहारी जैसा;
धर्म में विश्वास मौलाना बुखारी जैसा;
विद्याभूषण जैसा भाग्य हो भाई,
धीरे-धीरे बोलती हो
जैसे मोरारजी देसाई;
तारकेश्वरी सिन्हा जैसा

शायराना अंदाज हो,
जनता पार्टी की दुल्हन जैसी लाज हो;
जार्ज फर्नान्डिस जैसे बाल हो;
जगजीवन राम के समान गाल हों,
राजनारायण जैसी चाल हो,
सादगी से ऐसी हो जैसे
हेमवती नन्दन बहुगुणा...
लड़के की फर्माइश कुछ नहीं।
लड़की वाला बोला—बस, बस
और सुनने की गुंजाइश नहीं
जो कुछ अब तक खाया है
उसका कर दीजिए पेमेण्ट
तुम्हें लड़की नहीं, चाहिए पार्लियामेण्ट !

राजनेताओं की बेचारों की स्थिति ! इनको कहां ध्यान वगैरह से रस है ! सत्य से इन्हें कुछ लेना-देना है ? ये झूठ की दुनिया के सौदागर !

शाहजहां अली नाई की पत्नी
मुमताज जब बीमार पड़ी
और आ गई उसकी अंतिम घड़ी
तो
देख कर पत्नी की उखड़ती सांस
नाई आया उसके पास
और बोला
डार्लिंग, क्यों हो उदास ?
मुमताज ने कहा
डियर वायदा करो आज
मेरे मर जाने पर
तुम भी बनवाओगे ताज
नाई ने करके वायदा
किया पत्नी का मन शान्त
और कुछ देर बाद
मुमताज का हो गया देहान्त
पत्नी की मृत्यु के बाद
शाहजहां अली नाई ने

एक दिन भी बरबाद नहीं किया
और फौरन
उसने अपनी दुकान का नाम
ताज महल हेयर कटिंग सैलून रख दिया !

और क्या करेंगे ये बेचारे !

नहीं। कोई राजनैतिक संगठन, वह चाहे संयुक्त राष्ट्र संघ ही क्यों न हो, ध्यान में उत्सुक हो सकता है, इसकी कोई संभावना नहीं है। ध्यान तो व्यक्तियों की उत्सुकता है। और बहुत हिम्मतवर व्यक्तियों की--बहुत साहसी, दुस्साहसी व्यक्तियों की, क्योंकि इसमें मृत्यु पहली शर्त है--अहंकार की मृत्यु। उस मृत्यु के बाद ही पुनर्जीवन है।

सद्गुरु के पास मृत्यु घट सकती है; ध्यान फल सकता है; समाधि के फूल लग सकते हैं; मगर उनमें ही जो तैयार हैं, उनमें ही जिनमें दम है। 'दम मारो दम' वाला दम नहीं; वैसे में तो दम और उखड़ जाती है !

जिनके भीतर आत्मा है, छाती है...।

मेरे पास छाती वाले लोग इकट्ठे हो रहे हैं; मैं क्या फिक्र करूं इन संगठनों की ! मेरे पास लाखों हिम्मतवर लोग इकट्ठे होने वाले हैं। यहां खड़ा करेंगे--विश्व स्वास्थ्य संगठन ! यहां निर्माण करेंगे, पहले अर्थों में, एक जागतिक भाईचारा। वह तो संयुक्त राष्ट्र संघ भी--उन्हीं लुच्चों की भीड़ इकट्ठी है वहां, जिनकी वजह से दुनिया परेशान है ! वे ही वहां इकट्ठे हैं; उनसे कुछ हल होने वाला नहीं।

तुम यहां देखो। यहां पहली दफा आदमी आदमी की तरह उपस्थित है। किसी को पता नहीं चलता--कौन हिन्दू, कौन मुसलमान, कौन ईसाई, कौन जापानी, कौन कोरियन, कौन चीनी, कौन रूसी, कौन इटैलियन, कौन जर्मन--किसी को कुछ पता नहीं। किसी को कुछ लेना नहीं, कुछ देना नहीं। कौन यहूदी, कौन जैन, कौन बौद्ध—किसी को कोई प्रयोजन नहीं। यहां एक भाईचारा पैदा हो रहा है।

मैं ऊपर से थोपने का आदी नहीं हूं किसी चीज को। यहां हम बीज बो रहे हैं, बगिया बना रहे हैं। और एक बीज भी अगर ठीक-ठीक काम कर जाये, तो सारी पृथ्वी को हरा कर सकता है।

और यहां तो हम हजारों बीज बो रहे हैं। इस पृथ्वी के हरे होने की संभावना है, आशा है।

तुम सब प्रार्थना करो उस घड़ी की, जब और-और लोग, व्यक्ति—संगठन नहीं, संस्थाएं नहीं--व्यक्ति ध्यान में आतुर होंगे, ध्यान में उत्सुक होंगे; सत्य की खोज में, सौंदर्य की खोज में, आनन्द की खोज में निकलेंगे। निकल पड़े हैं दीवाने। और पुकार दूर-दिगंत तक सुनाई पड़ने लगी है। कोई इस यात्रा को रोक नहीं सकेगा। यह गैरिक अग्नि सारी पृथ्वी को घेर लेने वाली है; लेकिन व्यक्ति-व्यक्ति के द्वारा घेरेगी। दीये से

दीया जलेगा। पूरी पृथ्वी को दीवाली बनाना है। दिन होली--रात दीवाली !

आज इतना ही।

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक २७ जुलाई, १९८०
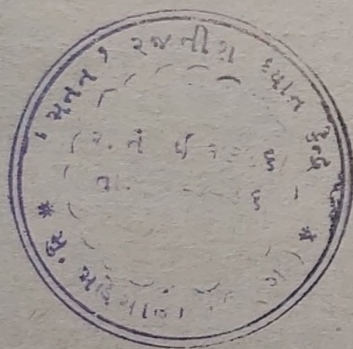
प्रेम है धर्म का शिखर

पहला प्रश्न : भगवान, भगवान श्री कृष्ण ने महाभारत में आततायियों के खिलाफ सुदर्शन चक्र उठाया था। हजरत मोहम्मद साहब को भी धर्म के खातिर तलवार उठानी पड़ी थी। ईश्वर-पुत्र जीसस को भी अपने हाथों में कोड़ा उठाना पड़ा था। भगवान बुद्ध और महावीर की 'अहिंसा परमो धर्मः' उनके मार्ग में आ गई होगी, और लोगों ने उन पर हिंसाएं कीं।

प्रभु, क्या समय की अब भी यही पुकार है ? क्या विधान ऐसा ही है ?

भगवान,

इश्क में कुरबान जब तक जिंदगी होती नहीं
मेरी नजरों इससे पहले बंदगी होती नहीं।

भगवान,

जान निकले तुम्हारे पहलू में, दिल है बेचैन उस घड़ी के लिए
इश्क होता नहीं सभी के लिए, है यह उलफत किसी किसी के लिए।

भगवान,

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है जोर कितना बाजू-ए-कातिल (कच्छ) में है।

स्वभाव !

यह प्रश्न तुम्हारे लिए स्वाभाविक है। पंजाबी हो ना ! यह पंजाबी होने का रोग जाते-जाते भी नहीं जाता ! सांप तो निकल गया, लेकिन धूल पर चिह्न रह गये हैं। इन्हें भी पोंछ डालो।

यह जो तुम कह रहे हो, ठीक ही है, कि कृष्ण ने आततायियों के खिलाफ सुदर्शन चक्र उठाया। मगर क्या आततायी मिटे ? सवाल यह महत्वपूर्ण है। कृष्ण का सुदर्शन

चक्र उठाना, न उठाना गौण बात है। आततायी थे, सुदर्शन चक्र के पहले--और सुदर्शन चक्र के बाद भी। सुदर्शन चक्र उठाना व्यर्थ गया। नाहक कृष्ण ने मेहनत की। वह श्रम सार्थक नहीं हुआ। नहीं तो पांच हजार साल हो गये अब तो, आततायियों का कहीं पता न होना चाहिए था!

फिर यह भी समझ लेने जैसा है कि जो जीत जाता है, उसे हम अकसर आततायी नहीं कहते; क्योंकि उसकी स्तुति, उसकी प्रशंसा में गीत लिखे जाते हैं। समझो कि कृष्ण हार गये होते, तो तुम शायद ही कृष्ण को भगवान कहते! तो शायद ही तुम यह कहते कि उन्होंने आततायियों के खिलाफ चक्र उठाया। तब जो आततायी अभी मालूम होते हैं, वे धर्म के रक्षक होते और कृष्ण आततायी होते!

कहने को तो हम यही कहते हैं--'सत्यमेव जयते--सत्य की सदा विजय होती है'; मगर क्या खाक तुम्हें सत्य का पता है, या विजय का? हालात उलटे हैं; यहां जो जीत जाता है, वही सत्य मालूम होता है। सत्य की विजय नहीं होती; यहां जीता हुआ आदमी सिद्ध कर देता है कि सत्य है। और हारा हुआ आदमी मजबूरी में सिकुड़ कर रह जाता है। कोई उपाय नहीं बचता उसके पास; जब हार ही गया, तो अब सत्य भी अपने को किस आधार पर सिद्ध करे:

कौन था आततायी महाभारत में? कैसे निर्णय होगा? तौल कर गौर से देखो; पक्षपात हटा कर देखो, तो युधिष्ठिर कुछ बहुत भले आदमी मालूम नहीं होते! कोई दुर्योधन से कम नहीं मालूम होते! वही जुआड़ीपन है; वही झगड़ैल वृत्ति है; वही महत्वाकांक्षा है।

पाण्डवों की ऐसी कुछ खूबी नहीं है--कौरवों के विपरीत। जीत गये--सो फिर तुमने खूबियां चुन ली हैं। हार जाते, तो तुम कांटे बीन लेते! उसी गुलाब की झाड़ी में कांटे भी हैं, और फूल भी हैं। जीत जाये, तो फूल चुन लेना; हार जाये तो कांटे गिन लेना, और अपने मन को समझा लेना!

कृष्ण आततायियों को मिटा पाये?--यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। नहीं मिटा पाये। सच तो यह है कि कृष्ण के कारण भारत की रीढ़ टूट गई। पांच हजार सालों में फिर भारत कभी उठ न सका। इन पांच हजार सालों में भारत फिर दुबारा खड़ा न हो सका--इतना भयंकर हत्यापात हुआ; इतनी हिंसा हुई! शास्त्रों के अनुसार करीब एक अरब पंद्रह करोड़ लोग मरे। इतना बड़ा युद्ध कभी हुआ नहीं, तभी तो हमने उसे महाभारत कहा। और सब छोटी लड़ाइयां फीकी पड़ गईं। परिणाम क्या हुआ? जो जीते थे, वे क्या कर पाये?

धर्म, कहते हो, जीत गया था, तो फिर धर्म स्थापित तो होना था! वह तो स्थापित हुआ नहीं। खुद कृष्ण के अनुयायी, उनके पीछे चलने वाले लोग आपस में कट मरे! कृष्ण की खुद हत्या हुई, एक शिकारी के बाण से! कौन जाने, आज कहना मुश्किल है

कि हत्या की गई थी या जैसा कि कहा जाता है कि आकस्मिक रूप से हो गई थी। मगर हत्या तो हिंसा में ही हुई।

कृष्ण जैसे व्यक्तियों के संबंध में बाद में जो हम लिखते हैं, वह कितना सच होता है और कितना कल्पना, तय करना बहुत मुश्किल हो जाता है। उनका ऐतिहासिक रूप तो खो ही जाता है। एक पौराणिक आभा उन्हें घेर लेती है। कृष्ण मरे तो हत्या में ही। और कृष्ण के मरने के बाद जो स्थिति हुई कृष्ण के शिष्यों की, वह सबको ज्ञात है। शराब पी-पी कर, मतांध एक दूसरे की गरदनें काट दीं! कहते हैं, इतना रक्तपात हुआ द्वारका में, कि समुद्र लाल हो गया! लाशों ही लाशों से सब पट गया समुंद्र!

इतने सब के बाद परिणाम क्या हाथ आया? क्योंकि असली बात तो परिणाम की है। परिणाम तो शुभ नहीं हुआ।

तुम कहते हो, 'हजरत मोहम्मद ने भी धर्म के खातिर तलवार उठायी।' जरूर उठाई, मगर धर्म कहां बचा! धर्म कहां है? उनकी तलवार का ही तो यह परिणाम हुआ कि मुसलमान खूंखार हो गये। उनकी तलवार का ही तो यह परिणाम हुआ कि आज चौदह सौ वर्षों से मुसलमानों के कारण सारी पृथ्वी पर रक्तपात हुआ; गले कटे; लोग मरे--अब भी जारी है!

और धर्म के नाम पर जब हत्याएं होती हैं, तो हम गुपचुप पी जाते हैं; जहर को यूं पी जाते हैं, जैसे अमृत पी रहे हों! अयातुल्ला खोमैनी ने, जो कि हजरत मोहम्मद के प्रतिनिधि हैं अब, इमाम हैं--इस एक वर्ष में कितने लोग मारे! कुछ हिसाब है! और दुनिया में कोई विरोध भी नहीं करता! सब की जबानें बंद हैं।

रोज ईरान में लोग सूली पर लटकाये जा रहे हैं। रोज लोग मारे जा रहे हैं। लेकिन धर्म के लिए हो रहा है, तो शुभ हो रहा है! हत्याओं पर हत्याओं का सिलसिला जारी है।

अभी परसों मैंने अखबार में खबर पढ़ी कि पाकिस्तान में जनरल जिया-उल हक ने...। अभी रमजान का महीना होगा--तो पाकिस्तान में कोई दिन में भोजन नहीं कर सकता अब! दिन में अगर कोई भोजन करेगा, तो उसको कोड़े मारे जायेंगे! यह भी खूब रहा!

मुसलमान मानते हैं कि दिन में उपवास होना चाहिए; रात्रि में भोजन कर सकते हो। मगर ठीक है, जिसकी मान्यता हो, वह करे। लेकिन धर्म भी कोई जबरदस्ती है? कोड़े मारे जा रहे हैं पाकिस्तान में। लाहौर में चौदह आदमी पकड़े गये, क्योंकि दिन में भोजन करते हुए मिल गये! उनकी कोड़ों से पिटाई की गई। उनको लहूलुहान किया गया।

पाकिस्तान में कानूनी रूप से दिन में होटलें बंद कर दी गई हैं, रेस्तरां बंद कर दिये गये हैं। कोई भोजन का सामान कहीं मिल नहीं सकता! देखो, कैसे धर्म की स्थापना

हो रही है !

धर्म संस्थापनाय--धर्म की संस्थापना के लिए कैसे-कैसे अवतार पैदा हो रहे हैं ! यह धर्म हुआ ?

अगर दिन में किसी आदमी को भोजन करना है, तो यह उसकी मरजी । कोई उपवास जबरदस्ती है ? उसे नहीं जाना स्वर्ग, तो जबरदस्ती स्वर्ग भेजोगे ? उसने तय कर रखा है नर्क जाने का, तो तुम कौन हो . . . !

और क्या मजा ! दिन में भोजन किया, तो स्वर्ग छिन जायेगा, और रात्रि भोजन किया, तो स्वर्ग पहुंच जाओगे ! जैनियों से तो पूछो कुछ ! वहां रात्रि भोजन करो, तो बस नर्क गये ! यह नर्क-स्वर्ग का गणित है कुछ--या कि जिस आदमी की जो मरजी है, वही गणित बन जाये !

अगर जैनियों से पूछो, तो रात्रि में भोजन पाप है । दिन में भोजन तो ठीक है । लेकिन मुसलमानों के हिसाब से रात्रि भोजन ठीक है; दिन में भोजन पाप है ।

खैर तुम्हारी जो मरजी जिसकी हो, माने; मगर किसी दूसरे को कोड़े मरवा कर उपवास करवाओगे ? तब तो खूब धर्म की स्थापना हो जायेगी !

लेकिन जिया-उल हक ने कहा कि 'पाकिस्तान तो धार्मिक राज्य है, इस्लामिक राज्य है, तो यहां इस्लाम के खिलाफ कोई कृत्य नहीं हो सकता । यह इस्लाम के खिलाफ है, दिन में भोजन, रमजान के महीने में ।' तो अब पाकिस्तान में कोई दिन में भोजन नहीं कर सकता । और कोई करेगा बेचारा . . . । छोटे बच्चे, या कोई अगर दिन में छिप कर भोजन कर लेंगे या घर में कोई करा देगा, तो अपराध के भाव से भर जायेंगे । पकड़े गये, तो कोड़े पड़ेंगे, बदनामी होगी । अगर नहीं पकड़े गये, तो भी अपराध से भीतर प्राण कंपते रहेंगे, कि अब नर्क का इंतजाम हुआ !

और तुम समझ सकते हो कि जब मुसलमान जमीन पर यह हालत कर देते हैं, तो नर्क में क्या नहीं हालत करते होंगे ! इनका नर्क तो बड़ा ही खतरनाक होगा ! इनके नर्क से तो किसी और के नर्क में चले जाना ! इनके तो नर्क से भी सावधान रहना । इनका तो स्वर्ग भी खतरनाक होगा ! वहां अगर ये देवी-देवताओं को भी कोड़े मारते हों, तो कुछ आश्चर्य नहीं ।

धर्म को हिंसा की कोई आवश्यकता नहीं है । और ऐसे धर्म स्थापित नहीं होता है ।

तुम कहते हो, 'ईश्वर-पुत्र जीसस को भी अपने हाथों में कोड़ा उठाना पड़ा था !' जरूर उठाया था कोड़ा, मगर हुआ क्या ? ये सब हार गये । ये तलवारें, ये कोड़े, ये सुदर्शन चक्र--ये सब हार गये । ईसाइयत कहीं मनुष्य को ले नहीं गई । ईसा ने कोड़ा उठाया, या मोहम्मद ने तलवार उठायी, या कृष्ण ने सुदर्शन चक्र उठाया--इससे इतना ही सिद्ध होता है कि इन्होंने देख लिया प्रयोग करके, और प्रयोग अफसल हो गया है ।

तुम कहते हो, 'बुद्ध और महावीर की अहिंसा परमो धर्मः उनके मार्ग में आ गई होगी । और लोगों ने उन पर हिंसाएं कीं ।' वह ज्यादा बेहतर है । हिंसा करने की बजाय हिंसा सह लेना ज्यादा बेहतर है । पाप करने की बजाय पाप सह लेना ज्यादा बेहतर है ।

बुद्ध और महावीर की गरिमा को कोई दूसरा छू नहीं पाता । उस महिमा के करीब भी नहीं आ पाता । उनकी दृष्टि की निर्मलता समझो । कोड़ा उठाना आसान था; कोई भी उठा ले । कोई जीसस की खूबी नहीं । यह तो तुम भी कोड़ा उठाना चाहते हो । तलवार उठाना भी कोई कठिन नहीं । कौन तलवार नहीं उठाना चाहता ! हर कोई उठाने को तैयार है ।

मगर ये सामान्य आदमी की वृत्तियां हैं । और शायद तात्कालिक रूप से सफलता मिलती भी दिखाई पड़े, लेकिन इनसे कोई मनुष्य के जीवन में क्रांति पैदा नहीं होती ।

यह सच है कि महावीर और बुद्ध को हिंसा झेलनी पड़ी, तो क्या तुम सोचते हो--जीसस को हिंसा नहीं झेलनी पड़ी ? तो सूली पर कौन मरा ? इससे तो महावीर और बुद्ध को ज्यादा हिंसा नहीं झेलनी पड़ी । कम से कम सूली पर तो नहीं मरे ! तुम सोचते हो, मोहम्मद को कुछ कम हिंसा झेलनी पड़ी ? जिंदगी भर कौन भागता फिरा--मक्का से मदीना, मदीना से मक्का; यहां से वहां ! भागना पड़ा, क्योंकि तलवार उठायी थी; दूसरे भी तलवार उठाये हुए थे । कोई मोहम्मद की जिंदगी में खोजे तो, कि हिंसा का परिणाम क्या हुआ ! एक दिन शांति से बैठ नहीं सके, उठ नहीं सके । भागते ही रहे, बचते ही रहे, लड़ते ही रहे । और सारी लड़ाई का परिणाम यह हुआ कि इस्लाम धर्म मूलतः राजनैतिक हो गया । उसका ढांचा और ढर्रा राजनीति का हो गया ।

और जीसस का कोड़ा उठा लेना, जीसस की कमजोरी साबित कर गया, और कुछ भी नहीं । मेरे हिसाब में जिस दिन जीसस ने कोड़ा उठाया था, तब तक वे क्राइस्ट नहीं थे । क्राइस्ट तो जीसस आखिरी क्षण में हुए; उनको जो बुद्धत्व उपलब्ध हुआ, वह सूली पर उपलब्ध हुआ । जब उन्हें सूली दी गई, तब तक कहीं भीतर उनके मनुष्य की सामान्य आकांक्षाएं और वासनाएं बड़े सूक्ष्मतर रूप में मौजूद थीं, क्योंकि आखिरी क्षण तक वे प्रतीक्षा कर रहे थे कि परमात्मा चमत्कार करेगा; वही दूसरे लोग भी प्रतीक्षा कर रहे थे । इस गणित में कुछ भेद नहीं था ।

लाख आदमियों की भीड़ इकट्ठी हुई थी देखने कि चमत्कार शायद हो; कौन जाने, यह आदमी हो ही ईश्वर का बेटा ! हम भूल में हों । आज तय हो जायेगा, निर्णय हो जायेगा । आज वे सारी कहानियां कसौटी पर कस जायेंगी, जो इसके शिष्य कहते हैं--कि इसने अंधों को आंखें दीं; बहरों को कान दिये; लंगड़ों को चला दिया; गूंगों को बोला दिया; यही नहीं--मुरदों को जिला दिया ! तो जो आदमी यह कर सकता

है, उसको सूली लगेगी, तो क्या नहीं होगा ! आज कोई महान चमत्कार होना है ।

तो तमाशबीन इकट्ठे हुए थे । बड़ी आतुरता से टकटकी लगाये देख रहे थे, अब होता है कुछ ! खुलेगा आकाश; फटेगा आकाश; कि होगी फूलों की वर्षा; कि उतरेगा स्वयं ईश्वर अपने बेटे को बचाने ! ईसाई तो कहते हैं--इकलौता बेटा ! जैसे परमात्मा ने उसके बाद बर्थ-कंट्रोल कर लिया ! यह क्या हुआ ! इधर तो हम कहते हैं, 'दो या तीन, बस ।' परमात्मा मानता है--'एक, बस !' उसके बाद बांझ हो गये या क्या हुआ ! कि भूल-भाल गये कि बच्चे कैसे पैदा किये जाते हैं ! कुछ न कुछ गड़बड़ हो गई ।

कल ही मैं एक कहानी पढ़ रहा था कि दो बूढ़ों ने--अस्सी साल के . . .अमरीकन बूढ़े ! और कहीं तो हो नहीं सकते ऐसे बूढ़े ! शादी कर ली । मियामी बीच गये थे । ऐसे तो गये थे छुट्टियां मनाने; दोस्ती हो गई दोनों की । गपशप करते-करते कहने लगे कि 'हम क्यों जिंदगी अपनी बरबाद करें; अभी तो जिंदगी बाकी है !' और पैसा दोनों पर था । 'और पैसा है, तो क्या उपलब्ध नहीं ! शादी क्यों न कर लें ?' जंची बात दोनों को । दोनों ने शादी कर ली उसी दिन ।

पैसा बहुत था । और अमरीका में पैसा सब कुछ है । दो जवान लड़कियां--बीस साल, बाइस साल की दो लड़कियां शादी करने को राजी हो गईं, उनने भी गणित बिठाया । उन्होंने सोचा, 'ये बुड्ढे करेंगे भी क्या ! और कितने दिन जिंदा रहेंगे ! अरे, दो-चार साल में खात्मा हो जायेगा और इनकी सम्पत्ति पर हमारा कब्जा होगा । सो निपटा ही लो एक दफा । जिंदगी भर के लिए सम्पत्ति की झंझट खत्म हो गई; फिर मौज ही मौज है !' सो उन्होंने शादी कर ली ।

सुहागरात हो गई । दूसरे दिन सुबह दोनों बुड्ढे मिले । पहला बुड्ढा बड़ा उदास था । उसने कहा कि 'भई, रात भर बहुत मेहनत की, मगर कुछ हाथ न आया ! अब शरीर साथ नहीं देता । मैं तो प्रेम कर ही न पाया !'

दूसरा बोला, 'तुमने अच्छी याद दिलायी । अरे, मैं तो भूल ही गया । खयाल जरूर आता था कि कुछ चूक रही है बात; यानी कुछ करना चाहिए, मगर कुछ समझ में नहीं आता--क्या करना चाहिए ! सुहागरात--सुहागरात--बहुत मैंने सोचा, कि सुहागरात में करना क्या होता है ! मगर सुहागरात मनाये हुए साठ साल हो चुके; साठ साल में कौन को स्मृति रह जाती है ! सो रात भर मैं करवट बदलता रहा और सोचता रहा कि कुछ चूक जरूर रहा हूं, कुछ भूल जरूर रहा हूं । खूब याद दिलायी भाई ! पहले ही क्यों न कहा ! सुहागरात यूं ही गुजर गई !'

तो पता नहीं, परमात्मा को क्या हुआ ! अब परमात्मा की तो उमर भी बहुत हो चुकी होगी ! अब क्या हिसाब भी लगाना मुश्किल है कि कितना समय बीत गया !

इकलौता बेटा . . .! तो लोग इकट्ठे हुए होंगे कि अब इकलौते बेटे पर हमला

हो रहा है, तो बाप अगर ऐसे मौके पर काम न आयेगा, तो फिर कब काम आयेगा ? अरे, यही तो अवसर है, जब पता चलता है कि कौन अपना है, कौन पराया है ।

जीसस का भी लेकिन गणित यही था । वे भी सोच रहे थे कि आज चमत्कार होगा ही होगा । कई दफा आकाश की तरफ देखा ! न आकाश फटा, न फूल गिरे, न अमृत बरसा, न आकाश से वाणी उठी--कि यह तुम क्या कर रहे हो मेरे बेटे के साथ ! न पृथ्वी कंपी, न भूकंप आये । कुछ भी न हुआ । कुछ भी न हुआ ! आखिर जीसस ने जब देखा कि यह तो मैं मरा ही जा रहा हूं--हाथों में खीले ठुंक गये, पैरों में खीले ठुंक गये ! तो उन्होंने चिल्ला कर कहा कि 'हे प्रभु, क्या तू मुझे भूल गया ? क्या तूने विस्मरण कर दिया ? या कि तूने मेरा त्याग कर दिया, परित्याग कर दिया ? यह तू मुझे क्या दिखा रहा है !'

मैं मानता हूं कि जिस क्षण तक जीसस ने ये वचन कहे, उस क्षण तक वे क्राइस्ट नहीं थे, बुद्ध नहीं थे ।

जरूर ईसाई मुझसे नाराज होंगे । मगर अब मुझसे लोग इतने नाराज हैं कि क्या फर्क पड़ता है ! और थोड़े लोग सही ! अब मैं गिनती भी नहीं रखता । अब गिनती भी कौन करता रहे ! अब तो कौन-कौन नाराज नहीं हैं, उनकी गिनती करता हूं । अब नाराज होने वालों की क्या गिनती करना !

लेकिन तभी जीसस को बोध हुआ कि यह मैं क्या मांग रहा हूं ; मेरी मांग--तो मेरा अहंकार है । मैं ईश्वर का भी उपयोग करना चाहता हूं ! यह आकांक्षा--तो मेरी श्रद्धा क्या हुई !

चौंके--जगे ! सूली जगा गई उन्हें । आंख से आंसू झरे और उन्होंने फिर चेहरा ऊपर उठाया और कहा, 'हे प्रभु ! मुझे क्षमा कर । मुझसे भूल हुई । तेरी मरजी पूरी हो । तेरी ही मरजी पूरी हो; मेरी मरजी की कोई बात नहीं; मेरी मरजी क्या ! मैं जानूं क्या कि सच क्या, झूठ क्या; ठीक क्या, गलत क्या ? तेरा राज्य उतरे । मैं हूं कौन ! तेरी मरजी पूरी हो; मेरा समर्पण पूरा है ।'

बस, उस घड़ी जीसस, क्राइस्ट बने । उस घड़ी जीसस बुद्ध हुए । उस घड़ी जीसस जिन हुए । आखिरी क्षण में !

जीसस ने जब कोड़ा उठाया था, तब मैं उनको क्राइस्ट नहीं कह सकता । अभी कोड़े की ही भाषा थी । इसमें कुछ भेद न था । कोड़ा कौन उठाता है, यह सवाल नहीं; कोड़े का तर्क एक है कि दबा लेंगे, कि दबाव से बदल लेंगे; कि दूसरे की गरदन को दब करके उससे स्वीकार करवा लेंगे ।

कोड़े पर भरोसा परमात्मा पर भरोसा नहीं हो सकता ।

तो मैं नहीं मानता कि कुछ लाभ हुआ जीसस को कोड़ा उठा लेने से; सिर्फ कम-जोरी जाहिर हुई; मानवीय दीनता जाहिर हुई । सम्राट तो बने उस क्षण जब कहा

सके, 'दाय किंग्डम कम, दाय विल बी डन--तेरा राज्य उतरे, तेरी मरजी पूरी हो। मेरा समर्पण स्वीकार कर।' उस क्षण संन्यास घटा। उस क्षण परमात्मा और उनके बीच कोई बाधा न रही। जब कोड़ा उठाया था, तो कोड़ा ही बाधा थी।

स्वभाव! मैं तो मानता हूं कि बुद्ध और महावीर ने कुछ भूल नहीं की। बुद्ध और महावीर ने अपने भीतर की सुगंध प्रगट की। पड़े पत्थर--ठीक। वह पत्थर मारने वालों का गणित है। लेकिन उनकी तरफ से क्षमा ही रही। वह उनका गणित है। उनका गणित ऊंचा होना ही चाहिए। अगर उनका गणित भी वही हो, जो पत्थर मारने वालों का गणित है, तो फिर भेद क्या रहेगा!

जिन्होंने महावीर के कानों में खीले ठोंके...। वह कहानी समझने जैसी है।

महावीर नग्न खड़े थे एक गांव के बाहर, एक वृक्ष के नीचे ध्यान करते थे। वह उन बारह वर्षों की बात है, जब वे मौन थे, और ध्यान में लीन थे। बारह वर्ष बोले नहीं। मौन खड़े थे। एक चरवाहा गायें चरा रहा था। घर से कोई खबर देने आया कि कुछ जरूरी काम है, तुम घर चले चलो। उसने देखा, यह आदमी खड़ा है नंग-धड़ंग। यहां कुछ काम भी नहीं है इसको। उसने कहा, 'भइया, जरा ऐसा करना, मेरी गौवें देखते रहना।'

वह तो कह कर चला गया; उसने यह भी न देखा कि इस आदमी ने न हां भरी, न ना। यह खड़ा ही रहा चुपचाप। उसने सोचा, यह खड़ा ही है वैसे, फिजूल, बेकार यहां समय खराब कर रहा है--देखता रहेगा गौवें।

अब महावीर बोल सकते नहीं थे, इसलिए ना भी नहीं की, हां भी नहीं की; चुपचाप खड़े रहे। और उसने मौनं सम्मति लक्षणं...। उसने सोचा, जब कुछ कह ही नहीं रहा है, तो ठीक है। इसका मतलब है कि ठीक है, देखते रहेंगे; जाओ!

वह तो घर गया। अब गौवों का क्या भरोसा--वे चरते-चरते जंगल में अंदर निकल गईं। जब तक लौटा, तो देखा, यह आदमी तो खड़ा है अपनी जगह, मगर गौवें सब नदारद! उसने कहा, यह आदमी बदमाश मालूम होता है! शरारती मालूम होता है! शरारती मालूम होता है; धोखेबाज मालूम होता है। यूं तो बन कर खड़ा है, जैसे कोई बड़ा त्यागी-तपस्वी हो। और दिखता है, इसके कोई संगी-साथी भी छिपे होंगे आसपास कहीं, जो गौवें ले भागे!

इसको हिलाया-डुलाया और पूछा कि 'क्यों भाई, गौवों का क्या हुआ?' अब ये तो कुछ बोले ही नहीं। धमकाया कि 'मार-पीट कर दूंगा; मेरी गायें कहां हैं?' मगर यह तो कुछ बोले ही नहीं! तो उसने कहा, 'क्या तू बहरा है? सुनता है कि नहीं?' मगर यह तो न हां करे, न हूं करे! यह तो यूं खड़ा, जैसे कुछ हो ही नहीं रहा है। मौन का तो अर्थ ही यह होता है।

तो यह देख कर कि 'अच्छा, तो तू अपने को बहरा बताने की कोशिश कर रहा है,

तो अब किये देता हूं तुझे बहरा!'

उसने उठा कर दो लकड़ियां दोनों कानों में ठोंक दीं पत्थर से। लहूलुहान; खून बहने लगा। परदे फट गये होंगे कान के! मगर महावीर वैसे ही खड़े रहे। वह तो खीले कानों में ठोंक कर लकड़ियों के, चला गया गौवों को देखने कि कौन उड़ा ले गया है, देखूं। पता करूं।

थोड़ी दूर--गौवें चरती मिल गईं। पछताया बहुत।

इस बीच--कथा कहती है कि इंद्र को बहुत पीड़ा हुई कि एक निर्दोष व्यक्ति, जिसका कोई भी संबंध नहीं, उसको अकारण पीड़ा दी गई है। तो इंद्र आकाश से उतरा।

कथा को कथा ही समझना। न तो कहीं कोई इंद्र है, न कहीं कोई आकाश से उतरता है। लेकिन कथाएं प्रतीकात्मक होती हैं। इंद्र आकाश से उतरा, इसका इतना ही अर्थ है कि जो इतनी सहिष्णुता से भरा हो, सारा अस्तित्व उसका साथ देने को तत्पर होता है। यह सहिष्णुता! जरा भी क्रोध नहीं; जरा भी इस आदमी के प्रति शोध नहीं। नहीं तो मौन ऊपर ही ऊपर रहता, भीतर आग जल जाती। वह भी नहीं। स्वीकार कर लिया!

इंद्र उतरा और इंद्र ने प्रार्थना की कि 'ऐसा करें आप--आप इस अपूर्व साधना में लगे हैं; मुझे आज्ञा दें, तो या तो मैं सदा आपकी सेवा में तत्पर रहूं, ताकि इस तरह की बात दुबारा न हो सके। या कहें तो मैं और दो-चार देवताओं को आपके आसपास सदा मौजूद रखूं, कि इस तरह की भूल दुबारा न हो।'

ये बातें भाषा में नहीं हुईं। क्योंकि इंद्र देवता कोई भाषा तो बोलते नहीं। महावीर तो मौन थे। भाषा में होती, तो वे बोलते भी नहीं। मौन ही मौन में हुईं ये बातें।

महावीर ने मौन में ही कहा कि 'नहीं, इसमें कुछ चिंता नहीं। किसी पिछले जन्म में इस गरीब को मैंने सताया होगा, जरूर सताया होगा, उसी कर्म का फल मुझे मिल गया। लेन-देन पूरा हो गया। एक अटकाव था, वह भी हल हो गया। इसमें कुछ बुरा नहीं हुआ। लेन-देन तो पूरे करने ही होंगे। और यह मेरा आखिरी जन्म है, तो सभी हिसाब-किताब पूरे करने हैं। अच्छा ही हुआ; जितने जल्दी हो गया, उतना अच्छा हुआ। तुम चिंता न लो, न देवी-देवताओं को यहां भेजने की कोई जरूरत है।'

जीसस के हाथ में कोड़ा; मोहम्मद के हाथ में तलवार; कृष्ण के हाथ में सुदर्शन चक्र--और महावीर की यह बात--किसको चुनते हो?

कौन धर्म की रक्षा कर रहा है? धर्म का अर्थ क्या है?

बुद्ध को बहुत सताया गया। लेकिन एक भी बार उनके द्वारा प्रतिहिंसा, प्रतिकार में कुछ भी नहीं किया गया। वहां क्षमा अखण्ड रही।

स्वभाव! हिंसा तो रुकी नहीं--जीसस पर भी हुई, मोहम्मद पर भी हुई, महावीर पर भी हुई, बुद्ध पर भी हुई। हिंसा तो रुकी नहीं। इसलिए यह तर्क तो काम आयेगा

नहीं कि देखो, महावीर और बुद्ध पर हिंसा हुई, अगर ये भी तलवार उठा लेते तो हिंसा न होती !

हिंसा तो कृष्ण पर भी हुई, जीसस पर भी हुई, मोहम्मद पर भी हुई। तो यह तर्क तो व्यर्थ है। इतना जरूर साफ होता है इससे कि जीसस, कृष्ण और मोहम्मद थोड़े पीछे पड़ जाते हैं बुद्ध और महावीर से। और यह मनुष्य के विकास का परिणाम है।

कृष्ण, महावीर और बुद्ध से पहले हुए। राम उससे भी पहले हुए। तो तुम देखते हो कि कृष्ण ने तो एक दफा सुदर्शन चक्र उठाया। कभी-कभी तुम्हें तस्वीर मिल जाती है उनकी अंगुली पर सुदर्शन चक्र घूमती हुई। लेकिन रामचंद्र जी ! वे तो धनुष-बाण लिये ही रहते हैं ! पता नहीं, सोते समय भी धनुष-बाण ले कर ही सोते हैं या क्या करते हैं ! वे तो 'धनुर्धारी राम' ही कहलाते हैं ! धनुष-बाण न हो तो जंचते ही नहीं।

बाबा तुलसीदास को मंदिरों में ले गये थे कृष्ण के, उन्होंने कहा, 'नहीं झुकूंगा। तुलसी झुकै न माथ !'

'क्यों ?' जो ले गया था नाभादास उसने पूछा, 'क्यों ?'

तो उन्होंने कहा कि 'मैं तो धनुर्धारी राम के सामने झुकता हूं। तो जब तक धनुष-बाण हाथ नहीं लोगे, तुलसी का माथा झुकने वाला नहीं। मैं तो पहचानता ही एक को हूं; वही धनुर्धारी राम !'

अब यह तुलसीदास जी को अगर रामचंद्र जी सोये मिल जायें, तो ये झुकने वाले नहीं ! धनुष-बाण कहां है ? नहाते हुए मिल जायें--झुकेंगे नहीं। धनुष-बाण कहां है ? लघु-शंका वगैरह कर रहे हों--ये नहीं झुक सकते। धनुष-बाण कहां है ? जीने दोगे कि जान ले लोगे !

मगर यह पुरानी धारणा है। कृष्ण से भी पहले तो धनुर्धारी राम हैं। और जरा पीछे चलो, तो उसके पहले परशुराम अवतार थे। परशुराम का तो नाम ही 'परशुराम' हो गया--फरसे वाले राम ! वे फरसा ही लिये रहे, घुमाते रहे ! कम से कम रामचंद्र जी धनुष-बाण कंधे पर टांगे रहते थे ! मगर परशुराम तो फरसा ही घुमाते फिरे ! उनकी तो जिंदगी ही इसी काम में बीती ! कहते हैं--उन्होंने पृथ्वी को अट्ठारह बार क्षत्रियों से खाली कर दिया !

अब स्वभाव ! कहां इतनी मेहनत करोगे ! अट्ठारह बार ! परशुराम पंजाबी रहे ! अंतःप्रमाण यही कहता है कि पंजाबी थे। इतिहास कुछ कहे, पुराण कुछ कहे, मुझे लेना-देना नहीं।

लिये फरसा ही घुमते रहे ! जिंदगी इसी में बीती होगी ! अट्ठारह बार पूरी पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली करना, कोई छोटा-मोटा काम है ! कब सोये, कब उठे--कुछ पता नहीं। बस, यही लगे रहे होंगे काटा-पीटी में ! और फिर भी क्या हुआ ? क्षत्रियों की स्त्रियां तो बच गईं, क्योंकि स्त्रियों को मारना जरा शोभादायक नहीं।

परशुराम जैसे व्यक्ति को भी लगा कि स्त्रियों को मारना तो ठीक नहीं। अब स्त्रियां बच गईं ! और उन दिनों बड़ी दुनिया अजीब थी !

जिन ऋषि-मुनियों की तुम बहुत ज्यादा तारीफ करते हो, वे एक से एक गजब के काम करने में कुशल थे। ऋषि-मुनियों का एक खास काम यह था कि जिन स्त्रियों को बच्चे वगैरह न हों--उनको बच्चे देना ! इसके लिए खास नाम था--'नियोग'। स्त्री प्रार्थना करती थी जा कर. . .। ऋषि-मुनियों का काम वही था, जो सांड़ों का काम होता है ! कि गऊ माता आ गई, उन्होंने प्रार्थना की, ऋषि-मुनि क्या करें ! वे तो बेचारे बैठे ही हैं दान देने के लिए ! तो वे ऋषि-मुनि उनको फिर बच्चा पैदा कर दें ! और ऋषि-मुनियों की कमी नहीं थी। कोई थोड़े बहुत ऋषि-मुनि नहीं थे इस देश में। जगह-जगह ऋषि-मुनि ही ऋषि-मुनि थे, तब तो कहते हैं इसको 'ऋषि-मुनियों का देश !' ऋषि-मुनियों की संतान ! मगर ऋषि-मुनियों की संतान का मतलब समझ लेना ! कि कुछ गड़बड़ है !

तो वे जो क्षत्रियों की स्त्रियां बचीं, वे ऋषि-मुनियों से संतान करवा आयीं ! कितनी स्त्रियां होंगी, जरा सोचो तो तुम ! कितने ऋषि-मुनि रहे होंगे ? धन्य है भारत भूमि ! और क्या गजब के काम चलते रहे ! और धर्म के नाम पर चलते रहे !

और ये सब ऋषि-मुनियों की संतान मुझे गाली देते हैं ! इनको शर्म भी नहीं आती ! अरे, तुम होते ही नहीं, अगर ऋषि-मुनि न होते तो। एक क्षत्रिय शुद्ध नहीं है। वे परशुराम पहले ही सबको गड़बड़ कर चुके ! सब का रक्त अशुद्ध हो गया है। यहां कौन आर्य है ? क्या 'आर्य समाज' वगैरह बना कर बैठे हुए हो !

जैसे तुम पीछे लौटोगे, वैसे तुमको एक बात समझ में आयेगी, कि जितने पीछे जाओगे इतिहास में, उतनी ही हिंसा स्वीकृत है। यह मनुष्य के आदिम होने का सबूत है। जितने पुराने अवतार हैं, उतने हिंसक हैं।

बुद्ध इस परम्परा में अंतिम अवतार हैं। हिन्दुओं के हिसाब से बुद्ध के बाद फिर कोई अवतार नहीं हुआ। कल्कि अवतार होने को है, अभी हुआ नहीं; वह आखिरी अवतार है। बुद्ध आखिरी अवतार हैं। वह पराकाष्ठा है। वह हमारे धर्म की धारणा का शुद्धतम रूप है। जैसे-जैसे आदमी की समझ बढ़ी, बोध बढ़ा, ध्यान बढ़ा, प्रतिभा में चमक आयी, वैसे-वैसे उसकी धारणाएं भी बदलीं। स्वभावतः उसके परमात्मा का अर्थ बदला।

अगर तुम पुरानी बाइबिल पढ़ते हो, ओल्ड टेस्टामेंट, तो उसमें ईश्वर खुद घोषणा करता है कि मैं बहुत ईर्ष्यालु ईश्वर हूं। जो मेरे खिलाफ जायेगा, मैं उसे छोड़ूंगा नहीं। मैं उसे इस तरह भुगताऊंगा कि वह याद रखेगा ! उसको सड़ाऊंगा नरकों में !

ईश्वर ऐसी भाषा बोलेगा कि 'मैं बहुत ईर्ष्यालु ईश्वर हूं ! कि जो मेरे साथ नहीं, वह मेरा दुश्मन !' यह तो बड़ी अडोल्फ हिटलर जैसी भाषा हुई। मगर तीन हजार

साल पहले यहूदियों का ईश्वर और क्या बोले ! यही बात जंचती थी ।

यहूदियों का ईश्वर कहता है, 'जो तुम्हें ईंट मारे--पत्थर से जवाब दो ।' मगर स्वभावतः यह ईश्वर बुद्ध के सामने फीका मालूम पड़ेगा । क्योंकि बुद्ध कहते हैं, 'वैर से वैर नहीं मिटता । शत्रुता से शत्रुता नहीं मिटती । शत्रुता मित्रता से मिटती है । जहर जहर से नहीं--अमृत बरसाओ ।'

यह ईश्वर थोड़ा-सा आदिम मालूम पड़ेगा--प्रीमिटिव, अविकसित, असभ्य--जो कह रहा है, मैं ईर्ष्यालु हूं ।

जीसस तक आते बात बदली । जीसस ने कहा, 'अपने शत्रु को भी अपने जैसा प्रेम करो ।' जीसस ने कहा कि 'तुमसे पहले कहा गया है. . .' वे याद दिला रहे हैं पुराने बाइबिल की--कि 'तुमसे पहले कहा गया है, पुराने पैगम्बरों ने तुमसे कहा है कि ईंट का जवाब पत्थर से । मैं तुमसे कहता हूं, नहीं । अगर कोई तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना ।'

यह थोड़ा विकसित धर्म हुआ । यह थोड़ा परिष्कृत धर्म हुआ । मगर जीसस थे तो यहूदी । जिये तो थे पुरानी ही हवा में; पले तो पुरानी ही हवा में थे, इसलिए भूल गये होंगे यह बात, जब कोड़ा उठाया । कमजोरी के क्षण होते हैं । अभी जीसस कोई सिद्ध पुरुष नहीं थे, जब कोड़ा उठा लिया । ये जब बातें उन्होंने कहीं, तब कवि रहे होंगे । काव्य का झरोखा खुला होगा; ऊंची बातें कह गये । बात ही करनी हो, तो ऊंची कहने में कोई कठिनाई नहीं है । अवसर सिद्ध करते हैं कि बात सच में कही गई थी; प्राणों से आयी थी ?

स्वभाव ! मेरे लिए तो प्रेम ही धर्म है । अहिंसा भी नहीं कहता मैं । प्रेम । क्योंकि 'अहिंसा' शब्द में हिंसा मौजूद है । अहिंसा में निषेध है--विधेय नहीं । मैं महावीर और बुद्ध से आगे धर्म को ले जाना चाहता हूं । महावीर और बुद्ध को हुई ढाई हजार साल हो गये । अगर महावीर और बुद्ध, कृष्ण और राम से धर्म को आगे ले गये, ढाई हजार साल का फासला था महावीर और बुद्ध का कृष्ण से । राम और परशुराम में भी करीब-करीब ढाई हजार साल का फासला था ।

इधर मैंने गौर से देखा है, तो पाया है कि हर ढाई हजार साल के फासले पर धर्म एक नयी छलांग लेता है । बुद्ध को हुए ढाई हजार साल हो गये । यह एक अपूर्व अवसर है, जिसमें तुम पैदा हुए हो । धन्यभागी हो । क्योंकि ढाई हजार साल ऐसा लगता है, जैसे कि हर एक साल के बाद वसंत आता है--ऐसे हर ढाई हजार साल के बाद मनुष्य की चेतना का वसंत आता है । तब फूल खिलने आसान होते हैं । तब ऋतु तुम्हारे अनुकूल होती है । तब सब मौसम तैयार होता है । तुम ही अकड़े बैठे रहो, तो बात अलग । तुम अगर तैयार हो बहने को, अगर तुम अवसर दो, तो फूल खिल जायें ।

ढाई हजार साल हो गये बुद्ध को हुए । बुद्ध और महावीर दोनों ने 'अहिंसा' शब्द का उपयोग किया । अहिंसा शब्द का अर्थ है--हिंसा मत करना । यह काफी नहीं है । यह मैं काफी नहीं मानता । हिंसा नहीं करना--यह पर्याप्त नहीं है । किसी को नहीं मारना, यह तो अच्छा है किसी को मारने से । लेकिन किसी को प्रेम करना--उसके मुकाबले यह कुछ भी नहीं ।

जैन मुनि किसी की हिंसा नहीं करता । अच्छी बात है । मगर इसके जीवन में प्रेम का कोई लक्षण नहीं होता । हिंसा तो गई, लेकिन प्रेम न आया । कंकड़-पत्थर तो छूटे, लेकिन हीरे-जवाहरात कहां हैं ? व्यर्थ तो गया, लेकिन सार्थक कहां है ? व्यर्थ को छोड़ा--कृपा की । कंकड़-पत्थर से ही झोली भरी रहती, तो हीरे-जवाहरात के लिए जगह न होती । तुमने झोली खाली कर ली; चलो आधा काम तो किया । मगर अब झोली को भरो--हीरे-जवाहरातों से भरो--तो काम पूरा हुआ । तुमने जमीन तैयार कर ली; बगीचा बनाने के लिए क्यारियां खोद लीं; खाद डाल दी--और अब बैठे हो सिर से हाथ लगाये हुए, बड़े विचारक बने, बड़े दार्शनिक बने ! अब कोई ऐसे ही थोड़े फूल आ जायेंगे । अब बीज भी बोओ ।

महावीर और बुद्ध वहां छोड़ गये धर्म को, जहां बगीचे की भूमि तैयार हो जाती है--जहां कंकड़-पत्थर हटा दिये गये; व्यर्थ जड़ें उखाड़ दी गईं; घास-पात काट दिया गया; जमीन गोड़ ली गई; खाद डाल दी गई । मगर इतने से कोई गुलाब थोड़े ही खिल जायेंगे ! यह जरूरी है कि करो, गुलाब खिलाने के लिए । मगर अब गुलाब बोओ भी । अगर नहीं बोओगे, तो घास-पात फिर ऊग आयेगी । यह घास-पात की खूबी है कि या तो गुलाब बोओ, ताकि जमीन की ऊर्जा गुलाब में बहने लगे; नहीं तो जमीन की ऊर्जा खाली नही पड़ी रहेगी ।

तुमने कंकड़-पत्थर अलग कर दिये; मिट्टी में खाद डाल दी और बैठे हो, तो तुम्हारी खाद घास-पात को मिल जायेगी । जल्दी ही तुम पाओगे; वर्षा आयेगी, बूंदा-बांदी होगी--घास-पात फिर ऊग आयेगी; और दुगुनी बड़ी ऊगेगी, क्योंकि तुमने घास-पात के लिए तैयारी कर दी । गुलाब तो तुमने बोये नहीं ।

महावीर और बुद्ध धर्म को नकारामक छोड़ गये हैं । मैं उसे विधायकता देना चाहता हूं । मगर उन्होंने एक बड़ा काम कर दिया । कम से कम खेत तो तैयार कर गये । कम से कम सफाई तो कर गये । कम से कम हिंसा से छुटकारा तो दिला गये ।

जरा बुद्ध को तुम हाथ में धनुष-बाण पकड़ा कर बिठाओ, अच्छे नहीं लगेंगे--बिलकुल अच्छे नहीं लगेंगे । और महावीर को तो बिलकुल ही नहीं जंचेगा ! एक तो नंग-धड़ंग--और फिर धनुष-बाण लिये हुए ! बिलकुल नहीं जंचेंगे । बहुत भद्दे लगेंगे । कुरूप मालूम होंगे । वह धनुष-बाण सब खराब कर देगा । प्यारे लोग थे, मगर उनको भी बीते ढाई हजार साल हो गये । अब उनको ही पकड़े न बैठे रहो । और आगे जाना है । आगे से आगे जाना है । नये-नये शिखर छूने हैं ।

जीवन के विकास का कोई अंत नहीं है। प्रारंभ तो है--अंत नहीं। यात्रा है--मंजिल नहीं है। यात्रा ही यात्रा है। रोज-रोज नये शिखर; रोज-रोज नये फल; रोज-रोज नयी सुगंध; रोज-रोज नये सत्य के आविष्कार। यही तो जीवन की उर्वरा शक्ति है। इस उर्वरा शक्ति को ही मैं परमात्मा कहता हूं।

मेरे लिए परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। यह जो उर्वरा शक्ति है, जिसने परशुराम पैदा किये...। कभी उनकी जरूरत थी, क्योंकि क्षत्रियों ने बहुत उपद्रव कर रखा था। क्षत्रिय छाती पर बैठे हुए थे। बड़े शोषक हो गये थे। चाहिए था कोई परशुराम कि उठा कर फरसा इनकी सफाई कर दे! तो परशुराम ने काम नहीं किया, ऐसा मैं नहीं कहता। लेकिन अब बात बहुत पुरानी पड़ गई। अब बात यूं हो गई कि बैलगाड़ी के जमाने की हो गई। अब कहां जेट हवाई जहाज के जमाने--और कहां तुम बैलगाड़ी की बातें लिए हुए हो। अब फरसा ही घुमाते रहोगे, इससे क्या होने वाला है! कहां एटम बम और हाइड्रोजन बम तैयार हो गये--तुम फरसा घुमा रहे हो! परशुराम फरसा घुमाते रहेंगे, ऊपर से कोई हवाई जहाज आ कर बम पटक जायेगा! सो खुद भी खतम--फरसा भी गया! अब फरसे से कुछ होगा?

रामचंद्रजी धनुष-बाण साध रहे हैं! साधते रहो। अब इस जमाने में किसी काम का है? हां, गणतंत्र दिवस पर दिल्ली में जो परेड होती है, उसमें आदिवासी बस्तर वगैरह से जाते हैं धनुष-बाण ले कर! बस, उस काम में रामचंद्रजी लगाये जा सकते हैं! कि जब गणतंत्र दिवस की परेड हो, तो आ गये! धनुष-बाण ले कर! सो लोग देख लें कि क्या-क्या जमाने बीत चुके हैं। अभी भी कुछ लोग धनुष-बाण लिये हुए हैं! इतिहास के प्रमाण बन जायें--और तो कुछ नहीं।

उस जमाने में जरूरी थे। जो जब हुआ, तब उसकी जरूरत थी। वहां रुक नहीं जाना है। गंगा रुकती नहीं--बहती जाती है। और कितना पानी बह चुका!

मेरा प्रेम है परशुराम से भी; मेरा प्रेम है राम से भी; मेरा प्रेम है कृष्ण से भी; मेरा प्रेम है बुद्ध और महावीर से भी--जीसस से, मोहम्मद से भी, नानक से भी, कबीर से भी। लेकिन बीती बातें हो गईं। पीछे पर मत अटके रहो। पीछे मत देखो, क्योंकि चलना आगे है।

तुम जरा उस कार की कल्पना करो, जिसमें सामने ड्राइवर के, कांच तो न हो, दर्पण लगा हो। कि जो पीछे का रास्ता आ चुका है, जा चुका है--वही दिखाई पड़े! और चले जा रहे हैं। रफ्तार रोज बढ़ती जा रही है! और रास्ता दिखाई पड़ रहा है पीछे का--जो बीत चुका; जिस पर चलना नहीं है अब--और आगे सब अंधकार है, क्योंकि आगे तो दर्पण में आंखें अटकी हैं। दर्पण के पार थोड़े ही कुछ दिखाई पड़ता है! खुद की तस्वीर देखो; पीछे बैठे हुए लोगों की तस्वीर देखो! और पीछे जो रास्ता छूट गया है, झाड़-झंखाड़, उनको देखो! चमत्कार ही है, अगर तुम कहीं पहुंच जाओ!

जहां तक तो स्वर्गवासी हो जाओगे! किस गड्ढे में गिरोगे, कहना मुश्किल है। गिरोगे--निश्चित है।

आगे देखना होगा; आगे चलना है।

स्वभाव! तुम्हारा भाव मैं समझा। लेकिन इस भाव को बदलना होगा। यह भाव पुराना है। यह बात तुमने ठीक कही--

इश्क में कुरबान जब तक जिंदगी होती नहीं
मेरी नजरों में इससे पहले बंदगी होती नहीं।

यह बात सच है। मगर 'इश्क में कुरबान...' इसका मतलब तुम गलत लगा रहे हो। इसका मतलब तुम लगा रहे हो कि उठाओ तलवार, घुमाओ तलवार! इश्क से तलवार का क्या लेना-देना?

इश्क में जिंदगी कुरबान करने का मतलब प्रेम में जिंदगी कुरबान होनी चाहिए--हिंसा में नहीं, विध्वंस में नहीं। अगर मिटना ही हो, तो प्रेम में मिटना चाहिए, मिटाते हुए नहीं। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि नाहक मिटने की उत्सुकता पैदा कर लो। वह आत्मघाती का लक्षण है।

हिंसा में दूसरे को मारने की तैयारी होती है। कभी-कभी हिंसा से बचने में आदमी आत्म-हिंसा में लग जाता है; वह अपने को मारने को तैयार हो जाता है। इसलिए मैं महात्मा गांधी को हिंसक ही मानता हूं--अहिंसक नहीं। उनकी हिंसा उलट आयी अपने पर। वे अपने को मारने को तैयार हैं! अनशन करेंगे--आमरण अनशन करेंगे!

कल ही मुझे खबर मिली कि कुछ जनसंघ के लोगों ने धमकी दी है कि अगर मैं कच्छ में प्रवेश करूंगा, तो वे आमरण अनशन करेंगे। मैंने कहा, 'बड़ा मजा आयेगा! क्योंकि हम तो मृत्यु को उत्सव मनाते हैं। इतना ही खयाल रखना कि मैं कोई गांधीवादी नहीं हूं। अगर आमरण अनशण किया, तो चारों तरफ पहरा लगवा दूंगा कि यह आदमी भाग न जाये! जब तक मरे नहीं, तब तक भागने नहीं देंगे! जब आमरण अनशन किया है, तो हम सहायता करेंगे--पूरी सहायता करेंगे! तुम भोजन छोड़ोगे--हम पानी भी छुड़वा देंगे! भोजन छोड़ कर तो तीन महीने तक आदमी जिंदा रह सकता है। क्या धीरे-धीरे मरना! अरे, जब मरने का ही शौक आ गया है, तो पानी-वानी भी क्यों पीना!

और पहरा लगा कर रखूंगा। और मेरे पास डॉक्टर हैं, वे चारों तरफ मौजूद रहेंगे तुम्हारे, कि कुछ हरकत न हो। क्योंकि महात्मा गांधी भी ग्लूकोज पी लेते थे! अब ग्लूकोज पी लोगे, तो और लम्बे जिंदा रह जाओगे। तो ग्लूकोज पीने नहीं दूंगा। सब तरह 'सहायता' करूंगा। मतलब...! जो भी हमसे बन सकता है--हम भी करेंगे! अब जब तुमने तय ही किया है आमरण अनशन करने का, तो जो भी सेवा हमसे बन सकती है...जाते आदमी की सेवा कौन नहीं करता!

भजन-कीर्तन करेंगे; नाचेंगे। और तुम्हें भोजन न करने देंगे, क्योंकि अगर तुमने तय ही किया है, तो तुम्हारे व्रत को खण्डित नहीं होने देंगे ! और मर जाओगे, तो नाचेंगे, उत्सव मनायेंगे। बड़ा मजा आ जायेगा, अगर किसी ने आ कर मेरे आश्रम के सामने आमरण अनशन किया, तो तुम अनशन के इतिहास में एक नयी घटना देखोगे !

मैं कोई गांधीवादी नहीं हूं। मेरे हिसाब अपने हैं ! सोच-समझ कर आना ! मैं कोई भरोसे का आदमी नहीं हूं। मैं कोई पुरानी परिपाटी मान कर चलता नहीं। मुझको डरवाना आसान नहीं।

तो मैं तो बड़ी राह देख रहा हूं कि देखें, कौन आमरण अनशन करता है ! उसको भी पाठ मिल जायेगा, और भारत को भी पाठ मिल जायेगा कि. . .! भूल जाओगे चौकड़ी सत्याग्रह की ! ये तो अंग्रेज सीधे-सादे लोग थे। अगर मैं उनकी जगह होता, तो महात्मा गांधी को पाठ पढ़ा देता कि आमरण अनशन का अर्थ क्या होता है। चौकड़ी भूल जाते।

वे तो बेचारे अंग्रेजों को कुछ पता नहीं था इन सब बातों का—कि अहिंसा क्या, हिंसा क्या ! उन्होंने कभी ये बातें सुनी नहीं थीं। वे जरा संकोच में पड़ गये कि क्या करना, क्या नहीं करना—यह बुड्ढा मरना चाहता है ! अरे, आदमी को तो मरना ही है; मरना तो खेल है ! अब मरना ही चाहता है, तो सहायता करो ! क्यों बाधा डालते हो ? वे बेचारे समझायें-बुझायें; दवाइयां दिलवायें। अगर आमरण अनशन कर दें गांधी जी, तो जेल से तत्काल छोड़ दें कि हम पर कोई जुम्मा न आये ! अरे, तुम पर क्या जुम्मा आयेगा ! जब तक मौत नहीं आती, कोई उठा सकता है ? पत्ता नहीं हिलता परमात्मा की मरजी के बिना। जरा मुझसे पूछते—मैं था नहीं उस वक्त. . .! उसके बिना तो पत्ता नहीं हिलता; महात्मा गांधी मरेंगे कैसे ? एक ही दफे में पाठ पढ़ लेते के फिर दुबारा कभी नहीं करते। थे पक्के गुजराती बनिया ! एक ही दफे में समझ जाते, कि अरे, यह खतरा है। यहां यह गुजराती बनियापन नहीं चलेगा !

कच्छ जाऊंगा; देखें. . .!

तुम कहते हो, 'इश्क में कुरबान जब तक जिंदगी होती नहीं। मेरी नजरों में इससे पहले बंदगी होती नहीं।' बात तो सच है। मगर इश्क में जिंदगी कुरबान करने का मतलब यह नहीं कि पहले औरों की कुरबान करो, कि फिर अपनी गरदन काट लो ! इश्क में कुरबान करने का अर्थ है कि प्रेम में जियो, फिर जो परिणाम हो, उसे प्रेमपूर्वक अंगीकार करो। मृत्यु आये, तो वह भी. . .स्वागत है उसका। इसका यह भी मतलब नहीं है कि कोई झण्डा लिये फिरो कि हमको मरना है। क्योंकि वह आत्महिंसा है; वह भी हिंसा है।

कोई तख्ती लगा कर मत बैठ जाओ कि हमको मरना है ! वह भी धमकी है ! वह आत्महिंसा की धमकी है। और आत्महिंसा पाप भी नहीं है, अपराध भी है। सच तो यह है कि जो आदमी आमरण अनशन की धमकी देता है. . .। पता नहीं कैसा मुल्क है, कैसा कानून है, कैसी अदालतें हैं—ये किन गधों के हाथ में पड़ी हुई हैं; ये क्या करते रहते हैं ! जो आदमी आमरण अनशन की धमकी देता है, यह आत्महत्या की धमकी दे रहा है। फौरन सजा इसको होनी चाहिए; इसको फौरन हथकड़ी डलनी चाहिए।

आमरण अनशन की धमकी का मतलब क्या है ? कोई आदमी कहे कि मैं अपने को गोली मार लूंगा या फांसी लगा लूंगा—तो इसको तुम कहते हो कि हम सजा देंगे। और कोई आदमी कहे कि हम बिना खाये-पिये मर जायेंगे—इसको तुम सजा नहीं दोगे ! फर्क क्या है दोनों में ? एक आदमी जरा जल्दी मर रहा है फांसी लगा कर, और एक आदमी जरा धीरे-धीरे मरेगा, तो क्या क्रमिक आत्महत्या की स्वीकृति है ? तो मतलब कुल सवाल समय का है ! तो कोई आदमी धीरे-धीरे फांसी लगाये ! भारतीय ढंग से, बहुत आहिस्ता-आहिस्ता लगाये—कि आज फंदा बनाया; फिर खाये-पिये, विश्राम किया; फिर कल फंदा लगा कर गले में देखा कि बैठता है कि नहीं ! फिर उतार कर रख दिया। फिर तीसरे दिन लगा कर खड़े हुए; मगर जमीन पर ही ! अभ्यास किया दो-चार दिन। फिर टेबल-खुर्सी पर खड़े हुए। फिर उस पर दो-चार दिन अभ्यास किया। ऐसे आहिस्ता-आहिस्ता करेगा, तो फिर पाप नहीं है, अपराध नहीं है ?

या तो आत्महत्या पाप है, अपराध है, तो वह कोई किसी भी ढंग से करे, उसे सजा मिलनी चाहिए। उसे दण्ड मिलना चाहिए।

इश्क में मरने का मतलब होता है कि तुम लाख करो, हमारे प्रेम को न मार सकोगे। हमें मारो चाहे, मगर हमारे प्रेम को न मार सकोगे।

इसका यह भी अर्थ होता है कि हम जितना तुम्हें प्रेम करते हैं, उतना अपने को भी प्रेम करते हैं। तो हम अपने को जब तक बचा सकते हैं—बचायेंगे। लेकिन तुम्हें मार कर अपने को नहीं बचायेंगे। अपने को बचाने का पूरा उपाय करेंगे, लेकिन किसी को मार कर अपने को नहीं बचायेंगे। तो तलवार नहीं—अगर ढाल लेनी पड़ेगी, तो जरूर लेंगे; मगर तलवार हाथ में नहीं लेंगे। इस भेद को तुम समझ लो। अब तक किसी ने यह बात तुमसे कही नहीं है।

लोग तलवार और ढाल साथ ही साथ लेते हैं। मैं कहता हूं—हम सिर्फ ढाल लेंगे। क्योंकि तुम अगर गधा-पच्चीसी में पड़े हो, तो कम से कम हमें इतना हक तो है कि हम अपनी ढाल तुम्हारी तलवार के सामने कर सकें ! मगर तलवार हम नहीं लेंगे। क्योंकि तलवार की भाषा अधर्म की भाषा है। लेकिन हम तुम्हारे जीवन को भी बचाना चाहते हैं। हमारी ढाल से हम तुम्हें मार नहीं सकते। और हम अपने जीवन को भी उतना ही प्रेम करते हैं, जितना तुम्हारे जीवन को। अगर हम अपने जीवन को प्रेम नहीं करते, तो तुम्हारे जीवन को कैसे प्रेम करेंगे !

जीसस का वचन है : 'अपने शत्रु को भी उतना ही प्रेम करो, जितना अपने को।'

इस वचन की बहुत व्याख्याएं की गई हैं, लेकिन किसी ने इसके दूसरे हिस्से पर जोर नहीं दिया कि 'जितना अपने को. . .।' 'अपने शत्रु को प्रेम करो'––इसकी तो खूब व्याख्याएं की गई, मगर असली बुनियादी बात तो जीसस की यह है––'उतना ही, जितना अपने को।' इसका अर्थ समझो।

इसका अर्थ हुआ कि पहले अपने को जो प्रेम करता है, वही शत्रु को प्रेम कर सकता है। जिसने कभी अपने को ही प्रेम नहीं किया, वह क्या खाक दूसरे को प्रेम करेगा! शत्रु की तो छोड़ दो, मित्र को भी नहीं कर सकता।

सबसे निकट मैं हूं अपने, मेरा प्रेम पहले तो मुझ पर ही पड़ेगा। जब दीया भीतर जलेगा प्रेम का, तो सबसे पहली रोशनी तो मेरी ही देह पर पड़ेगी; फिर तुम तक पहुंचेगी, मित्रों तक पहुंचेगी, प्रियजनों तक पहुंचेगी, फिर औरों तक पहुंचेगी। शत्रु तक भी पहुंचनी चाहिए––जब प्रेम अपने प्रकाण्ड रूप में प्रगट होगा, प्रखर रूप में सूर्य की तरह उगेगा। मगर पहले तो अपने ही घर में उजाला होगा।

मैं अपने को भी प्रेम करता हूं, और इसीलिए तो तुम्हें प्रेम करता हूं। और इसीलिए उनको भी प्रेम करूंगा जो चाहे किसी तरह की मूर्खता करने को तत्पर हों।

हम ढाल उठायेंगे; तलवार हम नहीं उठायेंगे।

तुम कहते हो––

जान निकले तुम्हारे पहलू में
दिल है बेचैन उस घड़ी के लिए
इश्क होता नहीं सभी के लिए
है यह उलफत किसी किसी के लिए।

सच है। प्रेम आसान नहीं है; इस जीवन की सबसे कठिन साधना है। इसीलिए तो भगोड़े प्रेम से भाग जाते हैं। ये जिनको तुम संन्यासी कहते रहे हो अब तक, महात्मा, ऋषि-मुनि कहते रहे हो––ये सब भगोड़े हैं। संसार का तो नाम लेते हैं, भागते प्रेम से हैं। जब ये कहते हैं––'संसार'––तो कोष्ठक में समझ लेना 'प्रेम'। प्रेम से इनकी छाती कंपती है; ये घबड़ाते हैं। इनमें प्रेम का बल नहीं है। ये प्रेम के योग्य अपने को नहीं मानते। इन्होंने प्रेम की कला नही सीखी। प्रेम से भागते हैं; कहते हैं––संसार से भाग रहे हैं!

तो यह सच है कि प्रेम किसी किसी के लिए है। उतना दुस्साहस कम ही लोगों में होता है। उतनी हिम्मत, उतनी जोखम कम ही लोग उठा पाते हैं।

अच्छा है––'दिल है बेचैन उस घड़ी के लिए, जान निकले तुम्हारे पहलू में।' लेकिन स्वभाव! पहले मेरे पहलू में जीना तो सीखो! मरने की हमारी तैयारी बहुत जल्दी हो जाती है! क्योंकि मरना एक तरह से सरल है। कूद गये जा कर––मर गये! ट्रेन के नीचे लेट गये––मर गये! मरना जल्दी हो जाता है।

मरने के लिए कोई बहुत कला की जरूरत नहीं है––यह बात खयाल रखना। मरना तो मूरख भी कर सकता है। असल में मूरख ही करते हैं। समझदार आदमी तो मर ही नहीं सकता।

मेरे एक प्रोफेसर थे––भट्टाचार्या। बंगाली सज्जन थे। अब बंगाली सज्जन––बाबू लोग––ये कहीं आत्महत्या वगैरह कर सकते हैं? ये कहीं जायेंगे कूदने, इनकी समझो कांछ ही फंस जायेगी! बंगाली बाबू की कांछ देखी! खुल-खुल जाती है!

मैंने सुना है एक बंगाली बाबू लंदन की सड़क पर चले जा रहे थे, उनकी कांछ खुल गई! वे कांछ ही इतनी ढीली पहनते हैं कि जमीन को सरकती रहे! किसी अंग्रेज ने कहा कि 'यह क्या है?' तो बंगाली अब क्या जवाब दे! तो उसने अंग्रेज की टाई पकड़ कर कहा कि 'यह क्या है?'

कहा, 'यह नैकटाई है।'

उसने कहा, 'यह बैकटाई है!'

और क्या करोगे! ये बंगाली बाबू किसी झाड़ से कूदें, इनकी कांछ ही फंस जाये, बैकटाई उलझ जाये! वहीं लटके हैं और चिल्ला रहे हैं कि बचाओ!

मैं नया-नया यूनिवर्सिटि गया था; मेरे बगल में ही उनका कमरा था। पहली रात उनका पत्नी से झगड़ा हुआ। और वे तो एकदम उठे और छाता उठाया। मरने जा रहे हैं––और छाता ले जा रहे हैं! कि 'मैं यह चला; अभी मर जाता हूं! बहुत हो गया!'

मैं थोड़ा चौंका। क्योंकि सागर यूनिवर्सिटि में तब पक्के मजबूत मकान नहीं बने थे। यूनिवर्सिटि नयी-नयी शुरू हुई थी; और एक मिलिट्री के कैम्पस में शुरू हुई थी। तो एस्बेस्टस की शीट्स की ही बस दीवालें थीं। सो आरपार सब सुनाई पड़ता था। और छेद वगैरह में से सब दिखाई भी पड़ता था! मतलब सिनेमा वगैरह जाने की कोई जरूरत ही नहीं! नाटक देखो, सर्कस देखो, हर चीज देखो! और घर में बैठे-बैठे मुजरा देखो! अपनी कुर्सी सरका ली जरा––और बैठ गये! और मुजरा देखो। इधर एक मुजरा चल रहा है। उधर हटा लो दूसरी तरफ––दूसरा मुजरा चल रहा है! क्या-क्या नहीं देखा है उन छेदों में से––अब क्या कहना!

तो मैं थोड़ा घबड़ाया। कुर्सी सरकाई मैंने। देखा कि यह हो क्या रहा है! वे आत्महत्या की धमकी दे रहे हैं। जब तक बातचीत चल रही थी, मैंने कहा, कोई बात नहीं। मगर जब वे बोले कि 'मैं चला। मैं मरने जा रहा हूं। अब नहीं लौटूंगा. हो गया बहुत। तेरे साथ जिंदगी मेरी नर्क हो गई', अपनी पत्नी से बोले।

तो मैं थोड़ा चौंका। कुर्सी सरकाई मैंने, देखा झांक कर। वे तो अपना छाता उठा रहे हैं! अरे, छाता उठा कर कोई मरने जाता है! कोई दम नहीं है इसमें! मगर मैंने कहा, फिर भी कौन जाने बंगाली है; पुरानी आदतवश छाता उठा रहा हो। कि जब

भी वे निकलते, छाता ही ले कर निकलते। चाहे पानी गिरे—न गिरे; धूप हो—न हो; छाता तो होना ही चाहिए! बंगाली हो, और छाता न हो—यह नहीं हो सकता!

तो मैंने कहा, शायद पुरानी आदत में ही...।

जल्दी से उठाया और वे निकल गये। मैंने कहा कि मुझे बोलना चाहिए कि नहीं! मेरी पहचान भी नहीं थी; तब तक उनसे मुलाकात भी नहीं हुई थी। फिर भी मैंने दरवाजा खटखटाया। मैंने पत्नी से कहा कि 'अगर मेरी कोई सहायता की जरूरत हो...यद्यपि मुझे बीच में बोलना नहीं चाहिए; अजनबी हूं। ज्यादा अजनबी भी नहीं! क्योंकि सब देख रहा था मैं छेद से! जो-जो हुआ है, सब मेरी आंख के सामने हुआ है। चश्मदीद गवाह हूं! अब ये आपके पति चले गये हैं छाता ले कर, कहीं मरने के लिए!'

वह पत्नी बोली, 'आप फिक्र न करें। आप नये-नये हैं। आपको मालूम नहीं। यह तो आये दिन की बात है! थोड़ी देर में आ जायेंगे।'

और वे तो थोड़ी देर में आ गये! पत्नी ने पूछा, 'कैसे आ गये?'

कहने लगे, 'पानी गिरने लगा!'

जुलाई के दिन थे। तो मैंने सोचा कि हद्द हो गई! फिर कुर्सी सरकानी पड़ी मुझे कि मामला क्या है! छाता तो यह आदमी ले गया था!

तो पत्नी ने कहा, 'छाता तो ले गये थे?'

तो कहा, 'छाता सुधराया कहां है! खुलता ही नहीं है! बरसा आ गई; कितनी दफे कहा कि छाता सुधरवा कर रखो!'

और इनको मैं रोज इसी छाते को ले कर घूमते देखता था! यह तो खुलता ही नहीं! काहे के लिए ले कर घूमते थे! मगर आदतें—बड़ी आदतें! आदतों के वश लोग जी रहे हैं!

कोई चुट्टैया बढ़ाये हुए है। आदत से। 'काहे के लिए बढ़ाये हुए हो?'

'कुछ पता नहीं!'

कोई जनेऊ कान में लपेटे रहा है। किस वजह से?—कुछ पता नहीं! मगर बाप-दादे लपेटते रहे, तो वह भी लपेट रहा है।

तिलक लगाये हुए हैं। काहे के लिए लगाये हुए हैं?—कुछ पता नहीं! चली आयी पुश्तैनी, तो कर रहे हैं!

बाप-दादे भी छाता लिये घूमते रहे...। वह बाप दादों के जमाने का छाता होगा! जब मेरी उनसे पहचान हुई, तो मैंने कहा, 'पहला काम तो मुझे यह करना है कि मुझे आपका छाता खोलकर देखना है!'

वे बोले, 'क्यों?'

मैंने कहा कि 'जब इसको ले कर आप घूमते हैं...और यह क्या छाता जब मरने के वक्त भी काम न आया!' और मैंने कहा, 'जब मरने ही आप जा रहे थे, अरे तो क्या भीग ही जाते तो क्या बिगड़ रहा था?'

वे बोले, 'अरे भीग जाओ और निमोनिया हो जाये!'...

मैंने कहा, 'मरने वाले को क्या फिक्र निमोनिया वगैरह की?'

उन्होंने कहा, 'अरे, मरना-वरना किसको है जी! वह तो गुस्से में बात कह दी! ऐसे तो मैं कई दफे चला जाता हूं!'

फिर तो मुझे उनकी कई कहानियां पता चलीं विश्वविद्यालय में धीरे-धीरे जब और लोगों से पूछा मैंने कि 'भई, ये मरने जाते हैं बार-बार!' तो उन्होंने कहा, 'अरे, इनकी बातों का कुछ सार नहीं है!'

सागर यूनिवर्सिटि के नीचे ही मकरौनिया स्टेशन था। छोटा-सा स्टेशन; बस दो दफे तो गाड़ी रुकती ही थी उसमें, चौबीस घण्टे में। वही गाड़ी आते वक्त रुकती, वही गाड़ी जाते वक्त रुकती। और तो वहां कोई गाड़ी रुकती नहीं थी, सो उनको पता था कि गाड़ी कब आती है। जब गाड़ी आती, तब वे जाते नहीं थे! और चौबीस घण्टे में दो ही दफे आती थी गाड़ी; सो समझो तीन-तीन मिनट रुकती थी; छह मिनट छोड़ कर बाकी कभी भी मरने चले जाते थे वे! और गाड़ी भी एक ही पटरी पर रुक सकती थी।

स्टेशन पर दो पटरियां थीं। एक पटरी पता नहीं कब से उपयोग में नहीं आयी थी; उस पर जंग चढ़ी हुई थी। वे उसी पर लेट जाते थे जा कर! एक दिन मैं उनके पीछे-पीछे चला गया। जब मैंने देखा कि आज उन्होंने बिलकुल पक्का ही इरादा कर लिया है मरने का; क्योंकि वे टिफिन भी ले जा रहे थे! छाता बगल में दबाये; टिफिन लिये...!

मैं होटल में बैठा था, जहां उन्होंने टिफिन तैयार करवाया, तो मैंने होटल के मैनेजर से पूछा कि 'बात क्या है?' बोले, 'जब वे बहुत ही गुस्से में होते हैं, तो टिफिन तैयार करवा लेते हैं। घर नहीं खाना खाते।' मैंने पूछा, 'अभी जायेंगे कहां?' 'वे मरने जा रहे हैं!' वाह भाई...!

मैं पीछे हो लिया। मैंने कहा कि मैं आज देख ही लूं पूरा राज। गये। वे टिफिन लगा कर, पास रख कर, छाता अपने सिर के नीचे रख कर और पटरी पर सो रहे—जिस पर ऐसी जंग लगी थी कि जिस पर शायद बाबा आदम के जमाने से कोई गाड़ी चली ही नहीं! खराब थी पटरी या क्या था, जो भी हो। उसके बीच-बीच के पटिये भी उखड़ गये थे।

मैंने उनसे पूछा कि 'भट्टाचार्या महोदय...!'

बोले, 'आप यहां क्यों आये?'

मैंने कहा कि 'जिज्ञासावश चला आया हूं। और अब आखिरी समय है आपका, फिर मिलना हो या न हो, दो बातें मुझे पूछनी है। एक तो यह कि यह पटरी, दुनिया जानती है कि इस पर कोई गाड़ी नहीं आती। आप दूसरी पटरी पर लेटें!'

उन्होंने कहा, 'क्या मुझे मरना है! क्या तुम मुझे मारना चाहते हो?'

वे एकदम गुस्सा हो गये! मैंने कहा, 'मुझे मारना नहीं है आपको। मैं तो सिर्फ सलाह दे रहा हूं कि अगर मरना है, मैं आपकी जगह होता, तो उस पटरी पर लेटता। और दूसरा सवाल मुझे पूछना है. . .। आपको नहीं मरना है, आपकी मरजी। जिस पटरी पर लेटना हो—लेटो। आपकी जिंदगी!'

'दूसरा सवाल यह है कि टिफिन! आप टिफिन क्यों ले आये?'

'अरे', बोले, 'गाड़ी कभी-कभी इतनी लेट हो जाती है कि क्या भूखे मरना है!'

मैंने कहा, 'फिर आप मजा करो। मतलब, यह एक तरह की पिकनिक है! मरना-करना नहीं है।'

मरने का सवाल भी नहीं है। तुम्हारे प्राणों की अंतरतम आकांक्षा जीवन को विराट करने की है—मरने की नहीं है। अभीप्सा जीवन की है; मृत्यु की कोई अभीप्सा नहीं है। मृत्यु तो एक विकृति है। जब तुम मृत्यु को चाहने लगते हो, उसका अर्थ है—तुम जीवन में हार गये; तुम जीवन में पराजित हो गये। तुम ऐसे हार गये हो, कि अपने को मुंह दिखाने योग्य नहीं समझते। अब तुमको लगता है, मृत्यु को ही ओढ़ लें; कि न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी! अब और पराजित होने की हिम्मत न रही। अब और एक कदम उठाने का साहस न रहा।

मरने की नहीं जल्दी स्वभाव! पहले मेरे पहलू में जीना सीखो। और जिसने मेरे पहलू में जीना सीखा, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है; मृत्यु वगैरह की बात ही नहीं।

और अमृत को उपलब्ध हो कर मरो, तो मरने का मजा है। तो मरने में एक रस है। क्योंकि फिर तुम नहीं मरते; जो मरणशील था तुममें, वही मर जाता है। वह मरा ही था। देह गिर जाती है और तुम शाश्वत में लीन हो जाते हो।

तुम कहते हो—

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है जोर कितना बाजू-ए-कातिल में है।

कातिलों के हाथ से मरना है? अरे, मेरे हाथ से मरो!

कातिलों के हाथ से मर कर कहां जाओगे? कातिलों के हाथ से मरोगे, तो फिर पैदा होओगे—कि कातिलों को मारना है अब! इसी तरह तो चक्कर चलता है जीवन का। एक जीवन के बाद दूसरा जीवन!

मेरे हाथ से मरो। गुरु के हाथ से मरो, ताकि फिर दुबारा पैदा ही न होना पड़े; ताकि फिर दुबारा इस उपद्रव में पड़ना ही न पड़े। ऐसे मरो कि अमृत को पा लो। और स्वभाव, पा सकते हो। तैयारी है। जरा पंजाबीपन की जो आखिरी, थोड़ी-सी रूपरेखा रह गई है, उसको भी विदा कर दो। उसको भी अब कह दो कि नमस्कार! वाहे गुरुजी की फतह, वाहे गुरुजी का खालसा! सत श्री अकाल!

आ गये हो किनारे अब उस दुनिया के जहां मेरा जगत शुरू होता है।

ये सब उपद्रव बिलकुल स्वाभाविक हैं, जो हो रहे हैं मेरे विरोध में। ये न होते; तो आश्चर्य होता। ये हो रहे हैं, तो बिलकुल आश्चर्य नहीं है। इनको हम मौज से लेंगे। इनको गाते-नाचते लेंगे।

तुम्हें मैंने सिखाया—जियो, नाचते हुए; मरो—नाचते हुए। अब एक मौका आ रहा है; लड़ो—नाचते हुए! कुछ बचे ना; सब को नाच से भर देना है।

दूसरा प्रश्न: भगवान, महिलाएं सदा भैरवी, चण्डी, दुर्गा और काली की तरह क्यों पेश आती हैं? मुझसे उनका विकराल रूप नहीं देखा जाता। सद्गुरु साहिब, क्या यही महिलाओं का असली चेहरा है?

संत महाराज!

महिलाओं का कोई कसूर नहीं। आदमी ने उन्हें इतना सताया है, कि अपने बचने के लिए ही उन्हें भैरवी, चण्डी, दुर्गा और काली हो जाना पड़ा है। आत्मरक्षा के उपाय! और आत्मरक्षा का तो सबको अधिकार है।

आदमी ने इस बुरी तरह स्त्रियों को सताया है; सदियों से सताया है—कि स्त्री भी क्या करे! कैसे तुमसे जूझे? तो उसने भी ईजाद कर ली हैं, सूक्ष्म तरकीबें। और निश्चित ही उसकी तरकीबें सूक्ष्म होंगी, क्योंकि उसके पास तुम्हारे जैसे मसल्स तो नहीं हैं। तुम्हारे जैसा हट्टा-कट्टा शरीर तो नहीं है। पुरुष से वह शरीर की दृष्टि से लम्बाई में भी कम है; बल में भी कम है—शरीर की दृष्टि से। तुमसे अगर मारपीट करे, तो नाहक कुटती-पिटती है। तो उसने भी अपनी तरकीबें निकाल लीं।

मनुष्य के मन का यह एक गुण है कि वह हर स्थिति में अपना समायोजन खोज लेता है। उसको ऐसी तरकीबें निकालनी पड़ीं, जिनसे तुम बचाव भी न कर सको।

तुमने उसे सताया है। पुरुष ने स्त्री को अब तक स्वतंत्रता नहीं दी, समानता नहीं दी। और देशों की तो बात छोड़ दो; अमरीका जैसे देश में जहां कि स्त्रियों को सर्वाधिक स्वतंत्रता है. . .।

अभी राष्ट्रपति का चुनाव रीगान लड़ रहे हैं। उनके चुनाव जीतने की संभावना

है। कार्टर की तो सब हंसी-खुशी खो गई है। अब उनकी चौबीसी दिखाई नहीं पड़ती! अब उनके दांत दिखाई नहीं पड़ते! वे दिन गये—लद गये! अब तो नैया डूबी-डूबी है!

तो रीगान के जीतने की संभावना है। और तुम चकित होओगे जानकर, कि अगर अमरीका में रीगान जीतते हैं, तो उसका अर्थ है: मनुष्य जाति के जीवन में एक दुर्भाग्य का प्रारंभ। क्योंकि अमरीका अकेला देश है जहां स्त्री पुरुष के करीब-करीब करीब आ गई है।

रीगान के चुनाव के मुद्दों में एक मुद्दा यह है कि स्त्री को समान अधिकार नहीं होना चाहिए! रीगान स्त्री-विरोधी हैं। बाबा तुलसीदास के चेला मालूम होते हैं! ऋषि-मुनि बहुत प्रसन्न होंगे। दकियानूसी हैं।

और बड़े आश्चर्य की बात है कि कैसे-कैसे लोग, कहां-कहां से, क्या-क्या रंग-ढंग ले कर आ जाते हैं! रीगान जिंदगी भर फिल्म अभिनेता रहे—और स्त्री की समानता का अधिकार मानने को राजी नहीं हैं!

स्त्री को समानता दो। लेकिन समानता का अर्थ गलत मत समझ लेना।

एक महिला हैं नीलिमा चटर्जी, उन्होंने प्रश्न पूछा है कि 'क्या आप स्त्री को पुरुष के बराबर नहीं मानते? क्योंकि कई दफे आप स्त्रियों की मजाक उड़ाते हैं!'

मैं स्त्रियों के बहाने पुरुषों की ही मजाक उड़ाता हूं। जरा बारीक बात है।

स्त्रियों की दुर्दशा किसने की है?—पुरुषों ने की है। लेकिन नीलिमा चटर्जी को मैं कहना चाहता हूं कि स्त्री को मैं पुरुष के समान तो मानता हूं, लेकिन 'समान' के दो अर्थ होते हैं। अंग्रेजी में दो शब्द हैं: इक्वलिटी और सिमिलरिटि। स्त्री समान है—इक्वलिटि के अर्थ में। उसको समान अधिकार है—जितना पुरुष को। लेकिन 'सिमिलर'—पुरुष जैसी नहीं है। उस अर्थ में समान नहीं है।

स्त्री अगर पुरुष जैसे होने की कोशिश करेगी, तो यह परिणाम होगा, जो संत महाराज कह रहे हैं। वह चण्डी हो जाये, दुर्गा हो जाये, काली हो जाये! क्योंकि पुरुष जैसे होने का मतलब है—डण्ड-बैठकें लगाये! पुरुष जैसे होने का मतलब है कि पुरुष जो नालायकियां करता रहा है, वे वह भी करे! क्या पुरुष से ही तुम्हारा मन नहीं भरा! काफी तो नालायकी हो चुकी। मगर वही भ्रांति पैदा हो रही है। इसलिए मैं कभी-कभी स्त्री-स्वतंत्रता का जो आन्दोलन चलता है, उसका मजाक उड़ाता हूं। क्योंकि वह आन्दोलन बुनियादी रूप से गलत आधार पर चल रहा है।

वह आन्दोलन बुद्धों से चल सकता है। उस आन्दोलन को चलाने के लिए एक चेतना की ऊंचाई चाहिए। वह आन्दोलन प्रतिक्रिया से नहीं चल सकता। अगर स्त्रियां सिर्फ प्रतिक्रिया करती हैं, और पुरुष जैसा होने की कोशिश करती हैं, तो उपद्रव बढ़ेगा—कम नहीं होने वाला। और वे हो भी जायेंगी पुरुष जैसी, तो भी एक बात खयाल रखना।

वे नम्बर दो की ही पुरुष रहेंगी। नम्बर एक की नहीं हो सकतीं।

अगर यह दौड़ बढ़ती ही गई, तो क्या-क्या उनको नहीं करना पड़ेगा—जरा सोचो! पुरुषों जैसे कपड़े उन्हें पहनने पड़ रहे हैं, जिसमें वे भद्दी मालूम पड़ती हैं, अभद्र मालूम पड़ती हैं। उनके देह के लिए, उनके देह के अनुपात के लिए पुरुषों जैसे कपड़े ठीक नहीं आते। वे पुरुष की देह के लिए ठीक हैं। स्त्रियों के पास एक सुंदर देह है; वैसी देह पुरुषों के पास नहीं है।

स्त्री को उसकी देह के अनुकूल कोमल, उसकी देह के अनुकूल सुंदर वस्त्र और परिधान चाहिए।

स्त्री और पुरुष को समान अधिकार होना चाहिए। बल्कि स्त्री को अगर थोड़े ज्यादा भी अधिकार हों, तो उसके लिए भी मैं राजी हूं। लेकिन स्त्री पुरुष के बराबर इस ढंग से न होने लगे कि उसके जैसे कपड़े पहनेगी; उसके जैसी नौकरी करेगी; उसके जैसी गालियां बकेगी! फिर जल्दी ही तुम देखोगे कि वह उस्तूरा ले कर मूंछें वगैरह मूड़ रही है कि किसी तरह मूंछें बढ़ जायें! दाढ़ी बढ़ जाये! फिर क्या-क्या उपद्रव नहीं होंगे!

डण्ड-बैठक लगायेगी! अभी भी उसने सीखना शुरू कर दिया है। 'कराते' सीखती है; 'अकीदो' सीखती है। सीखना पड़ रहा है। क्योंकि पुरुषों ने जो उसकी गति कर रखी है, उसकी प्रतिक्रिया पैदा हो रही है। उसने भी अपने लड़ने के ढंग निकाल रखे हैं; सूक्ष्म ढंग निकाल रखे हैं।

पुरुष का सिर खाती रहती है! इस तरह खाती है सिर कि उनको छठी का दूध याद दिला देती है! दिन भर कुटे-पिटे किसी तरह घर आते हैं, कि वहां पत्नी तैयार बैठी है! वह दिन भर विश्राम करके उसने तैयारी कर रखी है—कि आज पति-देव को कैसे ठीक करना! आज कौन-सा नुस्खा अपनाया जाये! एक से एक नुस्खे अपनाती हैं!

दो महिलाएं एक बगीचे में बैठी थीं और एक महिला ने पूछा कि 'तुमने कैसे अपने सेठ चंदूलाल को कब्जे में कर रखा है? मेरा पति तो सुनता ही नहीं है! आधी-आधी रात गये आता है। कभी-कभी चार बज जाते हैं!'

दूसरी महिला मुस्कुरायी। उसने कहा कि 'मेरा सेठ भी पहले यही हरकतें करता था। मगर मैंने फिर एक तरकीब निकाल ली—एक नुस्खा! एक रात जब वह चार बजे आया, और चुपचाप डर के मारे भीतर घुस कर मेरे बिस्तर में सोने लगा, तो मैंने कहा—'मोहन! आ गये क्या!'

दूसरी महिला ने कहा, 'मोहन! अरे तुम्हारे पति का नाम तो चंदूलाल है!'

उसने कहा, 'वह मुझे भी मालूम है। बस उस दिन से फिर वह ठीक शाम से ही आ जाता है घर में!'

अब यह तरकीब निकालनी पड़ती है। क्या करें––स्त्रियां भी क्या करें! नुस्खे ईजाद करने पड़ते हैं!

ढब्बू जी अपने पड़ोसी से कह रहे थे, 'साहब, आपके मकान की चौथी मंजिल पर रहने वाली फूलबाई दिन-रात अपने पति पर बरसती रहती है। अड़ोस-पड़ोस के लोगों को इससे काफी तकलीफ होती है। आप उसे चेतावनी क्यों नहीं देते?'

उन सज्जन ने पूछा 'ढब्बूजी, क्या आप फूलबाई के पड़ोसी हैं?'

ढब्बूजी ने कहा, 'जी नहीं। मैं उसका पति हूं!'

पतियों की तो ऐसी दुर्दशा होती है...! होने ही वाली है। वह तुमने पति होना जिस दिन तय किया, उसी दिन तुमने अपनी दुर्दशा का प्रारंभ करवा लिया। पति होने का मलतब : मालिक होने की कोशिश। कौन तुम्हें मालिक बनायेगा? यूं बाहर तुम फिरते रहो मुरगों की तरह कलगी उठाये––कि मैं मालिक हूं! घर में घुसते ही से एकदम पूंछ दबा लेते हो! क्योंकि सारी दुनिया जानती है कि वहां मालिक कौन है! इसलिए तुमको कोई 'घरवाला' कहता है? तुम्हारी पत्नी को लोग 'घरवाली' कहते हैं! अरे, घर उसका––तुम हो क्या! घुस जाने देती है––यही बहुत है!

बाहर अकड़े फिरते हो––छाती फुलाये...! और पत्नियां कुशल हो गई हैं; चिट्ठी वगैरह लिखती हैं, तो लिखती हैं––'आपके चरणों की दासी!' और मन ही मन हंसती हैं; जानती हैं कि चरणों का दास है कौन! अरे, जब तय ही है कि चरणों के दास तुम हो, तो लिखने में हर्जा क्या है! लिखने में डर भी क्या है!

मेरे गांव में जब आजादी नहीं आयी थी, तो प्रभात-फेरी निकलती थी। एक कबीरपंथी महंत थे––स्वामी साहब दास––उनका राग भी बेसुरा था; शकल-सूरत भी बेहूदी थी; और सिर घुटाये रखते थे उसके ऊपर से! वे प्रभात फेरी निकलवाते रहते! जब देखो तब झण्डा लिए हुए––झण्डा ऊंचा रहे हमारा! और बड़े नारेबाजी करते!

पुराने ऋषि मुनियों के हिसाब से उन्होंने भी एक रखैल रख छोड़ी थी। अब उनको रखैल कोई ढंग की स्त्री तो मिल नहीं सकती थी। खुद भी आदमी ढंग के नहीं थे। एक तो कबीरपंथी महंत...! एक कानी स्त्री, जिसको सिवाय कोई महंत के कोई और पसंद करता भी नहीं। अब महंत भी मुश्किल में थे कि जैसी भी है कानी-कूतरी––ठीक है। मतलब स्त्री और दूसरी कोई मिलती भी उनको कहां! कम से कम स्त्री तो है! मगर वह कानी थी भी मुंहफट्––उलटी-सीधी बोलने वाली।

मैं उनके बगीचे में घुस कर उनके अमरूद वगैरह तोड़ा करता था। सो वहीं उनके अमरूद के झाड़ों में बैठा कभी-कभी उनकी 'लीला' देखता रहता था! उन्होंने मुझे एक दिन पकड़ लिया अमरूद तोड़ते हुए। मुझे पकड़ कर ले चले पिता के पास। मैंने कहा, 'देखो, मैं भी आपको कहे देता हूं कि फिर मैं भी आपकी लीला की सब बात कह दूंगा!'

'कौन-सी लीला?' उन्होंने कहा।

मैंने कहा, 'वह जो कानी बाई के साथ लीला चलती है!'

'अरे', उन्होंने कहा, 'बेटा, अमरूद तेरे हैं, तू कहां...! अरे, तू तो अपने घर का ही है। तेरे पिता से तो हमारी दोस्ती है! चल-चल, तू कहां जाता है!'

मैंने कहा, 'चलना नहीं है पिताजी के पास?'

'अरे छोड़, बात जाने दे। तुझे जब आना हो आ गये। और कोई ऐसे चोरी से दीवाल चढ़ कर और अमरूद पर चढ़ने की जरूरत नहीं। दरवाजे से आ गये। घर तेरा। मगर यह बात किसी से कहना मत!'

कानी बाई ने भी देखा, कि अरे, साहबदास इस छोकरे से डरते हैं! कानीबाई से मेरी दोस्ती भी हो गई। मैंने एक दिन कानीबाई से पूछा कि 'ये साहबदास कोई क्या झण्डा लिए फिरते हैं सुबह रोज! झण्डा ऊंचा रहे हमारा!'

'अब', उसने कहा, 'तुमसे क्या छिपाना! डण्डा ऊंचा होता नहीं––सो झण्डा ऊंचा किये फिरते हैं! अरे, एकात बच्चा तो पैदा करके बतायें!'

स्त्रियों को तो राज सब पता ही है!

उस दिन से मुझे एक राज और पता चल गया! तब से तो उनके घर में जो भैंस थी, उसकी खीर भी मुझे मिलने लगी! मैंने उनसे कहा कि 'कानीबाई ने मुझे बता दिया है कि आप क्यों झण्डा लिये फिरते हैं!'

'क्या? क्या बताया उसने?'

'उसने कहा कि डण्डा ऊंचा नहीं होता! सो अब क्या करेंगे! झण्डा ऊंचा लिए फिर रहे हैं प्रभात-फेरी...! करते रहो प्रभात-फेरी!'

कहा, 'बेटा, किसी से कहना मत! तू तो अपने घर का है। अरे, यह औरत बहुत दुष्ट है। कहां इस दुष्ट के चक्कर में पड़ गया!'

मगर उसकी दुष्टता क्या है? उसने सच्ची बात कह दी।

अब संत महाराज, तुम कह रहे हो, 'महिलाएं सदा भैरवी, चण्डी, दुर्गा, काली की तरह पेश क्यों आती हैं?'

तुम भी उनसे अयातुल्ला खोमेनी की तरह पेश आते होओगे! तुम भी ऋषि-मुनियों की तरह पेश आते होओगे! तो वे तो आयेंगी फिर भैरवी, चण्डी, दुर्गा––वे तो बनेंगी। उन्होंने अच्छे-अच्छों को पछाड़ा है!

तुमने काली माई की प्रतिमा देखी! शिवजी नीचे पड़े हैं––वह उनकी छाती पर नाच रही है! उनने अच्छे-अच्छे शिवजी वगैरह को भी चारों खाने चित कर दिया है! और देखा, कितनी मालाएं पहने हुए है आदमियों के खोपिड़यों की! यह समझो, सब प्रेमियों के उन्होंने प्रेम-पत्र लटका रखे हैं! कि इतनों का खातमा कर चुके! है कोई और माई का लाल!

एक सेल्समेन एक दरवाजे पर दस्तक देने ही वाला था कि दरवाजा खुला और एक आदमी बाहर आकर मुंह के बल गिरा। सेल्समेन ने उससे कहा कि 'मैं घर के मालिक से मिलना चाहता हूं।'

उस आदमी ने जवाब दिया, 'अंदर चले जाओ। अभी-अभी फैसला हो चुका है कि मालिक कौन है! अब तक मैं सोचता था, मैं ही हूं; अब मेरी हालत तुम देख ही रहे हो! अब मालिक नहीं—मालकिन! भीतर जा भैया!'

पत्नी की हालत गंभीर थी; डॉक्टर बुलाना पड़ा। उन्होंने राय दी, 'केस सीरियस है। बहुत हुआ, तो एक महीना और! सेठ चंदूलाल, मुझे बड़ा दुख है, लेकिन सत्य तो कहना ही होगा। इससे अधिक नहीं बचेंगी!'

सेठ चंदूलाल ने ठण्डी सांस भरी और बोले, 'जहां पच्चीस साल काट दिये, चलो, एक महीना और सही!'

तुमने जिसको विवाह समझ रखा है, वह विवाह क्या है! उस विवाह की जड़ में सड़ांध है। पति का अर्थ होता है—मालिक। 'पति' शब्द का अर्थ मालिक होता है! और पति समझाते रहे स्त्रियों को कि पति को परमात्मा समझो! मालिक होने से भी इनका दिल नहीं भरा; परमात्मा समझो इनको! इनके गुण-धर्म वे देखती हैं, तो इनको शैतान भी मानने को राजी न हों—कि तुम शैतान से भी गये-बीते हो! मगर मानना पड़ता है—परमात्मा! तो इसका बदला वे लेती हैं। वे इसका मजा चखाती हैं!

यह प्रेम के आधार पर खड़ा हुआ विवाह नहीं है, इसलिए ये सारे दुष्परिणाम हो रहे हैं।

जज साहब ने अपने एक अपराधी से कहा, 'हमें यह भी बताया गया है कि बरसों से तुमने अपनी बीबी को डरा-धमका कर रखा है; और एक प्रकार से अपना गुलाम बना रखा है!'

अपराधी ने हकलाते हुए कहा, 'हुजूर, देखिये हुजूर, बात यह है कि...!'

जज ने बात काटते हुआ कहा, 'सफाई पेश करने की आवश्यकता नहीं है। तुम केवल इतना बता दो कि यह चमत्कार किस प्रकार कर लेते हो!'

कौन अपनी पत्नी को गुलाम बना कर रख सका है? लेकिन गुलाम बनाने की आकांक्षा में ही उपद्रव शुरू हो जाता है। फिर वह भी तुम्हें गुलाम बनाना चाहती है। जरूर उसके ढंग स्त्रैण होंगे। तुम मार-पीट कर सकते हो; वह मार-पीट नहीं करेगी। उसके प्रकार परोक्ष होंगे। लेकिन वह तुम पर जाल खड़ा करेगी। वह भी मालिक होना चाहती है; तुम भी मालिक होना चाहते हो; कलह शुरू हो गई।

प्रेम का अर्थ होता है: न मैं मालिक हूं, न तुम मालिक हो। संयोग है—नदी-नाव संयोग। दो क्षण को हम एक रास्ते पर मिल गये हैं; खुशी बांट लें। न मेरा तुम पर दावा है, न तुम्हारा मुझ पर दावा है।

दावेदारी में उपद्रव है। और सारी मनुष्य जाति अब तक परेशान रही है दावेदारी से। दावेदारी छोड़ो।

मैं विवाह का कोई भविष्य नहीं देखता हूं। और अगर विवाह रहा, तो आदमी का कोई भविष्य नहीं देखता हूं। हमें विवाह की पूरी की पूरी प्रक्रिया को नया रंग; नया रूप देना होगा। हमें उसे संस्था की तरह मिटा देना चाहिए। हमें चाहिए कि एक प्रेम का संबंध हो, एक मैत्री हो! न तो तुम कब्जा करो, न किसी को अपने पर कब्जा करने दो। क्योंकि जहां कब्जे का भाव आया, वहां प्रेम नष्ट हो गया। किसी पर कब्जा करना अपमान है। लेकिन हमारे तो शब्द भी सब ऐसे हैं।

भारत में हम देश के प्रमुख को राष्ट्रपति कहते हैं। कोई इसका ऐतराज नहीं करता। लेकिन कल अगर कोई महिला राष्ट्रपति हो जाये, तो तुम क्या उसे 'राष्ट्रपत्नी' कहोगे? वह खुद भी ऐतराज करेगी कि क्या मचा रखा है! मैं कोई वेश्या हूं?

पहले वेश्या को नगरवधु कहते थे। वह भी 'राष्ट्रवधु' नहीं थीं! राष्ट्रपत्नी—कोई स्त्री राजी नहीं होगी। उस शब्द में अपमान है। लेकिन पति में कोई अपमान नहीं है। यह पुरुषों की दुनिया है। और पुरुषों की दुनिया में स्त्री क्या करे! पुरुषों ने सब कब्जा कर रखा है। मिलिट्री उसकी, सत्ता उसकी—उसमें स्त्री फिर षडयंत्र कार्य का रुख अपनाती है। वह नीचे से जड़ें काटती है। वह कुतर-कुतर तुम्हें काटती रहती है! तुम्हारे जेब काटती है। तुम्हारे पैसे मार देती है। तनखा झड़प लेती है। उलटा-सीधा खर्च करती है। तुम्हें सताने के वह जितने उपाय कर सकती है, करती है। लेकिन तुम्हीं जिम्मेवार हो। मेरे हिसाब में पुरुष ही जिम्मेवार है। क्योंकि यह पूरी सामाजिक व्यवस्था पुरुष ने दी है।

इसकी प्रतिक्रिया में अब स्त्रियां खड़ी हो रही हैं। मगर प्रतिक्रिया से लाभ नहीं होगा। इसलिए नीलिमा चटर्जी को मैं कहना चाहता हूं कि मैं स्त्रियों के स्वतंत्रता आन्दोलन के पक्ष में नहीं हूं। मैं चाहता हूं—'स्त्री-पुरुष स्वतंत्रता आन्दोलन!' स्त्री पुरुष से स्वतंत्र होनी चाहिए—पुरुष स्त्री से स्वतंत्र होना चाहिए। दोनों ही गुलाम हो कर बैठ गये हैं। मनुष्य स्वतंत्र होना चाहिए। मगर वह स्वतंत्रता तभी हो सकती है; जब हम पूरे जीवन के आधार को बदलने की तैयारी दिखायें।

वही मैं कह रहा हूं, तो मैं संस्कृति का दुश्मन हूं, धर्म का दुश्मन हूं। न तो मैं संस्कृति का दुश्मन हूं, न मैं धर्म का दुश्मन हूं। मैं संस्कृति और धर्म को दुनिया में लाना चाहता हूं। तुमने जिसे संस्कृति और धर्म समझा है, उसने धर्म और संस्कृति दोनों में जहर घोल दिया है।

तुम्हारी जिंदगी क्या है? सिर्फ व्यथा! कितनी तरह की व्यथाएं तुम झेल रहे हो! और औरों से झेलो—ठीक। जिनको तुम अपने कहते हो, उनसे भी झेल रहे हो! पति पत्नी से झेल रहा है; पत्नी पति से झेल रही है।

लेकिन एक ही चीज है, जिसकी वजह से सब उपद्रव हो रहा है। प्रेम की कमी है। प्रेम के आधार पर संस्थाएं नहीं बनती; प्रेम के आधार पर स्वतंत्रता निर्मित होती है। विवाह को हटाओ--और प्रेम को जगह दो। प्रेम का खतरा लो। ज्यादा बेहतर है प्रेम का खतरा लेना--बजाय विवाह की सुरक्षा के।

'क्या तुम समझते हो', सेठ चंदूलाल ने पूछा, 'कि तुम मेरी बेटी से शादी करने के योग्य हो?'

'निश्चय ही', लड़का बोला--'उसकी सुंदरता, आपका पैसा और मैं--लगता है, हम बने ही एक दूसरे के लिए हैं!'

इसमें प्रेम की तो कोई जगह ही नहीं है। 'उसकी सुंदरता, आपका पैसा और मैं!' लेकिन सुंदरता तो दो दिन में खत्म हो जाती है। परिचित हो गये, बात समाप्त हो गई! सुंदरता कितनी देर साथ देगी?

सुंदरता के आधार पर जो प्रेम है, वह प्रेम नहीं है। प्रेम के आधार पर जब कोई व्यक्ति तुम्हें सुंदर मालूम पड़ता है, तब बात और। तब बिलकुल बात और। तब जीवन का काव्य और, संगीत और।

मोर्चे पर गोलियों की बौछार के बीच एक फौजी ने उसके साथी से पूछा, 'यहां हर क्षण मौत के साये में रहते हुए तुम्हें क्या अहसास होता है?'

साथी ने उत्तर दिया, 'रक्षा का अहसास! तुमने मेरी बीबी को नहीं देखा है!'

कोई फौज में भरती हो जाता है--बीबी से बचने को। कोई शराबघर में बैठा है--बीबी से बचने को। कोई जुआं खेल रहा है--बीबी से बचने को! बड़ा मजा है! पहले बीबी की तलाश में लगे हो--फिर बीबी से बचने की तलाश में लगे हो!

दो आदमी एक शराब घर में बैठे बात कर रहे थे। एक ने कहा, 'भई तुम इत्ती-इत्ती देर तक क्यों बैठे रहते हो?'

उसने कहा, 'क्या करूं--न पत्नी, न बच्चा। खाली घर काटता है!'

दूसरे ने कहा, 'धत्तेरे की। हद्द हो गई। अरे, मैं यहां इतनी देर तक बैठता हूं इसी-लिए कि बच्चे और पत्नी! किसी तरह पत्नी से बचो, तो बच्चे! बच्चों से बचो--तो पत्नी! इधर गिरो तो कुआं--उधर गिरो तो खाई! मैं उन्हीं से बचने के लिए यहां बैठा हूं। और तेरे घर में बच्चे नहीं हैं--और तू यहां बैठा हुआ है। तेरे घर में पत्नी नहीं है--तू यहां बैठा हुआ है!'

मगर ऐसा ही मजा है। जो विवाहित हैं, वे सोचते हैं--धन्य हैं वे जो कुंवारे हैं! और जो कुंवारे हैं, वे सोचते हैं--आह! हे भगवान! अरे विधाता, तूने हमारे भाग्य में क्या कुछ भी नहीं लिखा! यही आवारागर्दी! कम से कम एक अदद औरत तो दे दे! कोई ज्यादा मांगते भी नहीं कि छप्पर फाड़ दे!

जो अकेला है, वह पत्नी मांग रहा है; जिसको पत्नी मिल गई है, वह अपनी खोपड़ी

पीट रहा है कि अब क्या करूं! बड़ी अजीब दुनिया है! मगर किसने बनाई? हमने बना ली हैं।

मैं विश्वविद्यालय से नया-नया घर आया, तो जो देखो वही मुझे सलाह दे कि विवाह करो! मैं कहूं--जरूर, जब आप कह रहे हैं, तो ठीक ही कह रहे होंगे। मगर आपकी और आपकी पत्नी का जो मैंने हाल देखा है, उसे देख कर ही तो विवाह नहीं कर पा रहा हूं! वह बेचारा चुप रह जाता एकदम। क्योंकि वह भी जानता है कि बात तो सच है। मैंने कहा, 'अब बोलो, क्या बोलते हो? तुम्हें अगर फिर से मौका मिले, तो विवाह करोगे?'

बोले, 'नहीं करूंगा।'

'तो फिर', मैंने कहा, 'मुझे सलाह दे रहे हो। शर्म तो खाओ!'

धीरे-धीरे मुझे सलाह देने वाले खो गये। उनको ही देख कर तो मैंने समझा कि यह क्या बेवकूफी चल रही है! अपने परिवार में देखा; अपने प्रियजनों में देखा; अपने निकट के लोगों में देखा; अपने प्रोफेसरों के घर देखा। जहां देखा, वहां कलह!

मेरे एक प्रोफेसर थे--डॉक्टर सक्सेना। वे मुझसे पूछे कि 'तुम विवाह क्यों नहीं करते हो?'

मैंने उनसे कहा कि 'आप मेरे दोस्त हैं या दुश्मन?'

उन्होंने कहा, 'भई, दुश्मन क्यों होऊंगा! मैं तुम्हें प्रेम करता हूं!'

'तो', मैंने कहा, 'फिर ऐसी बात करते शर्म नहीं आती! आपकी पत्नी कहां है?'

उनकी पत्नी दिल्ली रहती थी; वे सागर रहते थे! जब पत्नी सागर आये--तो वे दिल्ली! कभी दोनों को मैंने साथ देखा नहीं। वे पत्नी के मारे कभी हवाई में नौकरी करते, कभी अमरीका में नौकरी करते--मगर दिल्ली में नहीं! दिल्ली विश्वविद्यालय उनके पीछे जिंदगी भर पड़ा रहा कि तुम दिल्ली में आ जाओ। दिल्ली वे न जायें क्योंकि दिल्ली घर था, बंगला था; वहां पत्नी कब्जा किये बैठी थी! दिल्ली छोड़ कर जमाने में भागते रहे! मरे भी, तो अमरीका में मरे!

मैंने उनसे कहा कि 'तुम जरा एक दफे सोच तो लो कि तुम्हारी क्या हालत है! फिर मैं भी भागा फिरूंगा, जैसे तुम भागे फिर रहे हो जिंदगी भर! यही तुम्हारे इरादे हैं?'

'नहीं', कहा कि 'अब कभी नहीं कहूंगा।'

मेरे एक दूसरे प्रोफेसर थे--दास। उन्होंने मुझसे एक दिन कहा कि 'अब तुम एम. ए. भी कर लिए; विश्वविद्यालय से तुम्हें पी. एच. डी. के लिए स्कॉलरशिप भी मिल गई। शादी कर लो। क्या तुमने ब्रह्मचर्य की कसम खा रखी है?'

मैंने कहा, 'ब्रह्मचर्य से मुझे क्या लेना-देना! मगर आप लोगों के जीवन से जो सीखा है, सद्गुरुओं से जो सीखा है, उसके अनुसार चल रहा हूं!'

उन्होंने कहा, 'मैंने तुमसे कब कहा कि शादी मत करो!'

मैंने कहा, 'आपने नहीं कहा, मगर आपके घर कितनी बार टिक कर जो देख गया हूं आंखों से, वही गति मेरी करवानी है?'

उनकी पत्नी उनकी पिटाई भी करती थी! और मेरे उनके संबंध इतने निकट के हो गये थे कि वे मुझे बताते कि 'देखो, आज मेरे हाथ में दर्द है! आज मेरी कमर में दर्द है।'

'क्या हुआ?'

कहा, 'उसने इतनी जोर से मुझे कलछी फेंक कर मार दी!'

तो मैंने कहा, 'क्या विचार है! मैं भला-चंगा जी रहा हूं; अपने आनन्द में हूं! कलछी फिंकवानी है? मेरी खोपड़ी खुलवानी है? सद्गुरुओं से जो सीखा, उसके अनुसार ही जी रहा हूं। इसमें ब्रह्मचर्य वगैरह कहां है? यह तो सीधी-सादी बात है—कि बहुत देखा, बहुत सुना-समझा—सब का सार यह पाया कि अगर विवाह से बच गये, तो संसार से बच गये!'

एक मित्र ने पूछा है कि आप तो कहते हैं, 'विवाह से बच गये, तो संसार से बच गये। लेकिन हमारा क्या हो, जो विवाह कर चुके?'

तो भैया, हर स्त्री को मां-बहन समझो! और क्या करो!

सेठ चंदूलाल ने एक स्त्री को धक्का दे दिया भीड़ में। वह एकदम चिल्ला दी! ऐसे स्त्रियां उत्सुक भी रहती हैं—कोई धक्का दे। और कोई दे दे, तो एकदम फंसा देती हैं! बड़ा मजा है! इनका गणित ही समझ में नहीं आता! न धक्का दो, तो मुश्किल। घूर्रा कर देखती हैं, कि क्या खड़े-खड़े देख रहे हो! अरे, धक्का मारो! दो घण्टे दर्पण के सामने खराब किये—इसीलिए?

सज-धज के आयी हैं बिलकुल! और धक्का मार दो, तो फौरन चिल्ला दें!

तो चंदूलाल पकड़ गये। पुलिस वाले ने उनको दो-तीन झापड़ रसीद किये और कहा कि 'शर्म नहीं आती! कसम खा आज से कि हर स्त्री को मां-बहन समझूंगा।'

कहा कि 'भैया, कसम खाता हूं, कि हर स्त्री को मां-बहन समझूंगा।'

तभी उनकी पत्नी धन्नो आयी। धन्नो ने कहा कि 'ज्यादा चोट तो नहीं आयी?'

उन्होंने कहा कि 'नहीं बहन जी! सब ठीक-ठाक है!'

अब हो गया विवाह, तो अब भैया, माता-बहन समझो! और क्या करोगे! न होता, तो भी यही करना था—मां-बहन समझते। हो गया—तो भी यही समझो!

पुराने ऋषि भारत के यह आशीर्वाद देते थे . . . । जब किसी का विवाह होता था; नव वधू, नव वर आशीर्वाद लेने जाते थे, तो पुराने ऋषि बड़े समझदार लोग थे—वे कहते कि 'हम आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हारे दस बेटे हों और अंत में तुम्हारा पति तुम्हारा ग्यारहवां बेटा हो जाये!'

क्या गजब के लोग थे! और क्या पते की बात कह गये!

अब तुम्हारी मरजी। चाहे दस बेटों के बाद कहना—माताराम पत्नी को . . . । अकल हो, तो पहले ही कहो। क्या इतनी देर रास्ता देखना! अगर मुझसे आशीर्वाद लो, तो पहले मैं कहूंगा कि पहले ही से माताराम मानो! और अगर अकल न हो, कुट-पिट कर ही सीखो, तो दस बेटों के बाद! मगर इत्ता पक्का रखो—एक न एक दिन माताराम मानना पड़ेगा!

मालिक होने की कोशिश की, तो यही होने वाला है। संसार में मैत्री चाहिए। फिर न कोई स्त्री चण्डी है, न कोई भैरवी है, न कोई दुर्गा है।

स्त्रियां अत्यंत मधुर हैं, प्रेमपूर्ण हैं। मगर उनके प्रेम को खिलने का अवसर नहीं मिला। पुरुष ने उनके प्राण ले लिए हैं। और फिर भोग रहा है अपने हाथ से, अपने ही बोये गये बीज—अब फसलें काट रहा है; और जहर भोग रहा है।

मेरी दृष्टि में मैत्री एकमात्र संबंध होना चाहिए। और जब मैत्री न रह जाये, तो मैत्रीपूर्वक विदा हो जाना चाहिए।

बच्चों का एक प्रश्न हमेशा खड़ा होता है। लोग मुझे लिख-लिख कर भेजते हैं कि बच्चों का क्या होगा?

इसलिए मेरा कहना है कि परिवार की जगह कम्यून। छोटे-छोटे कम्यून बनाओ। छोटे-छोटे खेती-बाड़ी, बगीचे, उद्योग। कम्यून स्व-निर्भर हो। हजार लोग, पांच सौ लोग, दो सौ लोग। छोटे-छोटे परिवार तोड़ो; कम्यून—बड़ा परिवार बनाओ। बच्चे परिवार के हों—तो कोई अड़चन नहीं।

और बच्चे परिवार तय करे; परिवार मतलब कम्यून तय करे कि कितने बच्चे चाहिए। हर किसी को बच्चे पैदा करने का हक नहीं होना चाहिए। कम्यून तय करे। चिकित्सक से पूछ कर तय किया जाये कि कौन स्त्री, कौन पुरुष बच्चे पैदा करे। सुंदर होंगे, स्वस्थ होंगे, दीर्घ-आयु होंगे। प्रतिभाशाली होंगे।

थोड़े से बच्चे पर्याप्त हैं। और कम्यून उनका पूरा का पूरा भार ले। इसका यह अर्थ नहीं कि मां-बाप उनकी चिंता न करें। जब तक कर सकें—तो करें—बराबर करें। लेकिन मालकियत मां-बाप की नहीं होगी। मालकियत कम्यून की होगी। इसलिए अगर कल मां-बाप तय करें कि हम अलग हो जायें, अब हमारी दोस्ती टूट गई; अब साथ चलना कठिन होने लगा—तो प्रेमपूर्वक विदा हो जायें।

'विवाह' भद्दा शब्द है। 'तलाक' और भी भद्दा शब्द है। प्रेम से मिले थे—प्रेम से विदा हो जायें। जितने दिन प्रेम से साथ रहे, उसके लिए अनुग्रह, उसके लिए आनन्द। इतना एक-दूसरे को दिया, उसके लिए एक-दूसरे की अनुकम्पा का स्वीकार।

फिर बच्चों की चिंता जो है, कम्यून करे। इसका यह अर्थ नहीं है कि बच्चे मां-बाप से छीन लिए जायें। अगर पिता बच्चों को अपने पास रखना चाहे—पिता रखे।

मां रखना चाहे--मां रखे। अगर मां-बाप के अलग हो जाने के बाद भी मां-बाप बच्चों पर प्रेम करते हों, उनको मिलने रहना चाहते हों--मिलते रहें। लेकिन चिंता उनको नहीं रहेगी कि बच्चों को भोजन कहां से मिलेगा, शिक्षा कहां से मिलेगी। वे सारे कम्यून के बच्चे हैं।

यह जान कर तुम हैरान होओगे कि 'पिता' शब्द नया है; 'चाचा' शब्द पुराना है--सारी दुनिया की भाषाओं में। क्योंकि पहले कम्यून ही थे। परिवार बहुत बाद में आया। जब से व्यक्तिगत अहंकार और 'मेरी सम्पदा' का भाव आया, व्यक्तिगत सम्पत्ति आयी, तब से परिवार आया--और तब से ही उपद्रव आया।

व्यक्तिगत सम्पत्ति की भी कोई जरूरत नहीं है; व्यक्तिगत परिवार की भी कोई जरूरत नहीं है। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम्हारा प्रेम हो, तो छोड़ दो। तुम्हारा प्रेम हो, तो साथ रहो--जीवन भर साथ रहो--बहुत-बहुत जन्मों साथ रहो।

एक महिला ने पूछा हुआ है कि 'क्या मर कर भी पुन: मैं अपने पति को पा सकती हूं?

तुम्हारी मरजी! अगर एक जीवन से जी नहीं भर गया हो--तो जरूर पाओ। मगर पहले पति से भी पूछ लो कि पति के क्या इरादे हैं! तुम तो पाना चाहती हो, मगर वे अगर भाग खड़े हों...! वही तो एक उपाय है कि मर कर बिलकुल भाग खड़े हुए! और तो कोई उपाय ही नहीं छोड़ा है! मगर यह बाई उनके पीछे...! यह अब तरकीब पूछना चाहती है कि कोई तरकीब बता दें, जिससे कि अगले जन्म में भी यही पति मिले!

मगर मैं जब तक तुम्हारे पति से न पूछ लूं, तरकीब बता नहीं सकता हूं! क्योंकि इस बेचारे पर कोई अनाचार हो जाये!

मगर यह पूरी व्यवस्था सड़-गल गई। कभी उपयोगी रही होगी--रही होगी; अब नहीं है। भविष्य में इसके लिए कोई स्थान नहीं है।

आज इतना ही।

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रात:, दिनांक २८ जुलाई, १९८०

ध्यान-प्रेम-समर्पण

पहला प्रश्न : भगवान,

देर लगी आने में हमको,
शुक्र है फिर भी आये तो।
आस ने दिल का साथ न छोड़ा,
वैसे हम घबराये तो।
शफक, धनक, महताब, घटायें,
तारे, नग्मे, बिजली, फूल।
दामन में तेरे क्या-क्या कुछ है,
दामन ये हाथ में आये तो।
चाहत के बदले में हम तो,
बेच दें अपनी मर्जी तक।
कोई मिले तो दिल का गाहक,
कोई हमें अपनाये तो।

प्रभु, आपकी कृपा से अब मेरा तमस शांत हो गया है। चेतना से रजस का बोझ भी कम होता जा रहा है। आपके पास रह कर सत्व में प्रवेश हो सकेगा। किसी दिन आपकी अनुकंपा से गुणातीत हो जाऊं, यह प्रार्थना है। एक छोटी-सी कहानी--

दिल्ली वाले निजामुद्दीन औलिया के एक शिष्य अपनी आजीविका चलाने के लिए साग-सब्जी उबाल कर बेचा करते थे। गांव वाले उन्हें जमीकंद आदि दे जाया करते थे। वे लकड़ी तोड़ लाते और उन्हें उबाल कर बेचा करते। इस तरह उनका जिक्र और फिक्र साथ-साथ चलता था। उम्र बढ़ जाने पर उनकी दीनाई कम होती गयी, नेत्र-ज्योति कमजोर होने से उन्हें कम सूझने लगा। इसलिए लोग खा-पी कर खोटे सिक्के उन्हें दे जाते। वे उन खोटे सिक्कों को ले कर जमा करते जाते, मटकियां भर जातीं। यह जानते हुए कि लोग उन्हें खोटे सिक्के दिये जा रहे हैं, वे किसी को कुछ भी

नहीं कहते थे। तबीयत से खिलाते-पिलाते रहे। यह सिलसिला चलता रहा। और एक दिन जब उनकी अंतिम घड़ी आ गयी, उन्होंने शुक्राने की नमाज पढ़ी। नमाज अता करके उन्होंने बारगाहे-इलाही में यह दुआ की : 'या अल्लाह, मैं ताउम्र लोगों से खोटे सिक्के लेता रहा हूं। अब यह खोटा सिक्का भी तेरे पास आ रहा है। तू इसे स्वीकार कर, इनकार न करना।' इतना कह कर वे गिर गये और मर गये।

भगवान, उनकी यह प्रार्थना आपके समक्ष दोहराने का अर्थ तो आप समझ ही गये हैं। मेरे प्रमाण स्वीकार करें और मुझे आशीष दें!

दिनेश भारती!

यह कहानी मुझे भी प्रीतिकर रही है, लेकिन खोटे सिक्कों वाली इस कहानी में थोड़ी-सी खोट भी है! इसलिए इस कहानी को मैंने चाहा भी है, और अपनी प्रशंसा प्रगट करने में संकोच भी किया है।

जहां तक लोगों के खोटे सिक्के दे जाने का सवाल है, वहां तक तो कोई समझने में अड़चन नहीं। लोगों के पास और दूसरे कोई सिक्के हैं ही नहीं। जिनको तुम सच्चे सिक्के कहते हो, वे भी खोटे सिक्के हैं। लोग ही खोटे हैं! उनके हाथ जो पड़ जाता है, खोटा हो जाता है। सोना छूते हैं, मिट्टी हो जाती है।

सिक्के थोड़े ही असली और खोटे होते हैं; आदमी के हाथ का जादू! ऐसे लोग होते हैं कि मिट्टी छूते हैं, सोना हो जाती है। ऐसे लोग होते हैं, सोना छूते हैं, मिट्टी हो जाता है! अधिक लोग तो ऐसे ही हैं, जिनके जीवन में कोई जादू नहीं है, उत्सव नहीं है, रंग नहीं है। वे जो भी छुयेंगे, असुंदर हो जायेगा।

तो लोगों का कुछ कसूर न था, पहली तो मैं यह बात तुम्हें याद दिला दूं, अन्यथा इस कहानी को पढ़ते वक्त ऐसा लगता है—कैसे बेईमान लोग थे!

यह कहानी सूफी बहुत दोहराते हैं। सबसे पहले मुझे एक सूफी फकीर ने ही कही थी और जो मैंने उससे कहा था, वही मैं तुमसे भी कह रहा हूं दिनेश भारती। यही मैंने उससे पूछा था कि तुम मुझे यह कहो : 'जब लोग ही खोटे हैं तो असली सिक्के कहां से लायेंगे? मत उन्हें कसूरवार कहो।'

बहुत चौंका था वह फकीर। उसने कभी इस पहलू से सोचा ही न था। लोग सोचते ही कहां हैं; लोग तो चबा-चबाया गटक जाते हैं; चबाते भी नहीं।

मेरे लिए जो सबसे महत्वपूर्ण बात है वह यह है कि लोग करें क्या, उनका कसूर क्या? उनकी जिंदगी अंधेरे से भरी है, मूर्च्छा से भरी है। मूर्च्छा में वे जो भी करेंगे, गलत होगा। मंदिर बनायेंगे, मंदिर बनेगा नहीं। लोगों ने मंदिर बनाये और वेश्यालय बन गये। मंदिरों की वेश्याओं को तुम फिर चाहो देवकन्याएं कहो या जो तुम्हारी मर्जी।

नाम बदल देने से कुछ भी न होगा। लोगों ने मंदिर बनाये और चाहा था कि इनसे प्रेम के फूल खिलेंगे, लेकिन घृणा के कांटे लगे। फूल तो खिले ही नहीं। मगर बात सीधी-साफ है। जिन्होंने बनाये थे, उनके हाथों में फूलों के बीज ही न थे। उनके प्राण ही खोटे थे। भाव तो अच्छे थे, मगर अकेले भावों से तो कुछ होता नहीं।

अंग्रेजी में कहावत है कि 'नर्क का रास्ता अच्छे भावों से पटा हुआ पड़ा है!' वह कहावत बड़ी महत्वपूर्ण है; जरूर किसी बड़ी गहरी सूझ-बूझ के आदमी ने उसे खोजा होगा। वह साधारण कहावत नहीं है। नर्क का रास्ता अच्छी भावनाओं से पटा पड़ा है। अच्छी भावनाएं—और पहुंचा देती हैं नर्क! हिंदू लड़े मुसलमानों से, मुसलमान लड़े ईसाइयों से। पृथ्वी को रक्त से भर दिया—धर्मों के नाम पर! और भावनाएं अच्छी थीं। कोई यह न कह सकेगा कि भावनाएं बुरी थीं। कोई इसलाम की रक्षा कर रहा था, कोई हिंदू-धर्म की रक्षा कर रहा था, कोई ईसाइयत की रक्षा कर रहा था। भावनाओं में क्या बुराई खोजोगे? कोई कुरान की प्रतिष्ठा बचा रहा था, कोई गीता की प्रतिष्ठा बचा रहा था। मगर बचाने वाले लोग दिवालिये थे; उनकी आंखें अंधी थीं। उनके भीतर आत्मा ही कहां थी जो गीता समझती, कुरान समझती, बाइबिल समझती? समझ नाम की चीज उनके हाथ ही न लगी थी। इसलिए जो उन्होंने किया, सब गलत हो गया। करने गए थे नेकी, मगर बदी हुई! चाहा था फूलों से पाट देंगे लोगों के रास्तों को; कांटों से भर दिया।

दिनेश भारती, वे जो लोग खोटे सिक्के दे गये, मजबूर थे। उन पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

इस कहानी को बहुत लोगों ने पढ़ा है, मुझे बहुत लोगों के द्वारा यह कहानी सुनने मिली है। और जब भी मैंने यह सवाल उठाया है कि लोग करें क्या, तो वे चौंके, उन्होंने कहा, 'हमने इस पहलू से नहीं सोचा था!'

दूसरी बात : वह सूफी फकीर निजामुद्दीन औलिया का शिष्य, कितनी ही उसकी आंखें कमजोर हो गयी हों, भलीभांति पहचानता था कि सिक्के खोटे हैं। सिक्कों की खोट उसे बराबर दिखाई पड़ती रही। इतनी आंखें कमजोर नहीं थीं उसकी। और इन खोटे सिक्कों को इस आशा में इकट्ठा करता गया कि इनके बदले में परमात्मा से मांग लूंगा कुछ। वहां लोभ भी था। और कहां इस जगत के खोटे सिक्के—और उस जगत की संपदा को खरीदने चल पड़ा था! होशियार आदमी रहा होगा, चालबाज था, बेईमान था। अगर उसे खोटे सिक्के दिखाई ही नहीं पड़ते थे, तो मुक्त हो जाता। तो फिर परमात्मा से यह प्रार्थना करने की भी जरूरत न थी कि 'मुझ खोटे सिक्के को भी आ जाने दो; जिस तरह मैंने औरों के खोटे सिक्के स्वीकार किये, मुझे भी स्वीकार कर लो।' इसमें तो बड़ा सौदा है! साफ दुकानदारी है।

इसे दूसरों के खोटे सिक्के खोटे मालूम पड़ते थे। इसे अभी साफ-साफ फर्क था कि

क्या खोटा सिक्का है और क्या असली सिक्का है। अभी इसे भी दिखाई नहीं पड़ा था कि इस जमीन के असली सिक्के भी खोटे सिक्के हैं। खोटे सिक्के और असली सिक्कों में यहां कोई भेद नहीं है।

यहां के अच्छे आदमी और यहां के बुरे आदमियों में कोई फर्क नहीं है। और अगर कोई फर्क होगा भी तो ज्यादा से ज्यादा मात्रा का फर्क होगा; गुण का कोई भेद नहीं है।

यहां बुरे भी बुरा कर रहे हैं, यहां अच्छे भी बुरा कर रहे हैं। और मेरे देखे बुरे ज्यादा बुरा नहीं कर सकते हैं, क्योंकि ज्यादा बुरा करना हो, तो अच्छे की आड़ चाहिए। अगर तुम्हें किसी की गर्दन काटनी हो, तो बुराई के लिए काटोगे, तो मन में अपराध लगेगा। लेकिन अगर भलाई के लिए काटोगे—इसलाम की रक्षा के लिए, हिंदू-धर्म की रक्षा के लिए, भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए—तो अपराध भी नहीं लगेगा। यूं काटोगे, जैसे पुण्य-कर्म कर रहे हो! जन्मों-जन्मों का अवसर हाथ लगा, यह चूकना नहीं चाहिए!

यह आदमी अभी बुरे और भले में भेद कर रहा था।

सच्चा फकीर वही है, जिसे शुभ और अशुभ में भेद नहीं रह जाता। मेरी तो परिभाषा सच्चे फकीर की वही है—जिसे नीति और अनीति में भेद नहीं रह जाता; जिसे रात और दिन बराबर मालूम होने लगते हैं; जिसे संसार और मोक्ष एक हो जाता है; जो कह सकता है, 'संसार ही मोक्ष है।' वही मेरे लिए सच्चा फकीर है।

उसका ही मोक्ष है, उसका ही संसार है। भेद क्या करना है? चुनाव क्या करना है? यह निर्विकल्प दशा है। जब तक विकल्प हैं—यह अच्छा, यह बुरा; इसको चुन लूं, इसको छोड़ दूं—तब तक तुम दुकानदारी में पड़े हो। तब तक तुम सांसारिक ही हो। लाख समझाओ और लाख लीपापोती करो धार्मिक होने की, तुम धार्मिक नहीं हो।

यह आदमी खोटे सिक्कों को जानता था कि खोटे हैं—पहली बात। दूसरी बात: खोटे सिक्के भी इकट्ठा करता चला गया! उनकी भी इसने मटकियां भर लीं! अगर इसको दिखाई पड़ रहा था कि खोटे हैं, तो इकट्ठे किसलिए किये? खोटे को भी इकट्ठा करने में राज है।

हमसे कुछ छूटता ही नहीं। परिग्रह की हमारी ऐसी वृत्ति है कि जो मिल जाये, इकट्ठा करो—कंकड़-पत्थर, कूड़ा-करकट, कुछ भी मिल जाये, इकट्ठा करो! अब जब इसको दिखाई पड़ रहा था कि खोटे हैं...साग-सब्जी बेचनी थी, रोटी खिलानी थी, खिलाता रहता; वह उसकी मौज थी। मगर खोटे सिक्के किसलिए इकट्ठे किये? इस आशा में कि मैं तो सब्जी दे रहा हूं खोटे सिक्कों में, खरीदूंगा इन्हीं खोटे सिक्कों से स्वर्ग, जन्नत!

इनमें चालबाज कौन है—जिन्होंने सब्जी खरीदी खोटे सिक्कों से वे, या जो स्वर्ग खरीदने चला है खोटे सिक्कों से, वह?

जब मैंने किसी सूफी को ये सारी बातें कहीं, तो वह तिलमिला गया। उसे बेचैनी हो गयी। मैंने उसके माथे पर पसीने की बूंदें देखीं, घबड़ाहट देखी। क्योंकि उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि उसकी इस प्यारी कहानी की मैं ऐसी धज्जियां उड़ा दूंगा! मगर मैं भी क्या करूं? जैसा मुझे दखाई पड़ता है, वैसा ही मैं कह सकता हूं। मैं भी विवश हूं।

मैं भी असहाय हूं इस अर्थों में कि सत्य को मैं झुठला नहीं सकता। और चाहे कितने ही सुंदर वस्त्रों में कोई असत्य को ढांक कर लाये, असत्य को सत्य जैसा प्रतिपादित करे, मैं तो सत्य को उसकी नग्नता में ही रखना चाहता हूं; उसे सुंदर वस्त्र पहनाने की जरूरत नहीं है। और असत्य को तो कभी भी भूल कर सत्य के रंग मत पोतना, अन्यथा तुम ही फंसोगे—अपने ही जाल में खुद ही गिरोगे।

और इस कहानी में बात स्पष्ट है कि जब उसकी अंतिम घड़ी आयी,तो उसने शुक्राने की नमाज पढ़ी और नमाज अता करके बारगाहे-इलाही में यह दुआ की: 'या अल्लाह, मैं ताउम्र लोगों से खोटे सिक्के लेता रहा हूं!' पक्का है कि इसे कभी भी धोखा नहीं हुआ। खोटे सिक्के खोटे थे, जान कर इसने लिये थे! इकट्ठे किये थे इसी दिन के लिए, वह दिन आ गया। आज यह परमात्मा से बदला मांग रहा है!

यही तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों का ढंग है; जो भी उन्होंने किया उसका बदला मांगेंगे। यह किया मैंने, यह किया मैंने, इसका मुझे बदला चाहिए। ये इस संसार में ही नहीं सफल होना चाहते, ये उस संसार में भी सफल होने के लिए दीवाने हैं। ये लोभी हैं, महालोभी हैं!

मैं इस संसार के लोगों को इतना लोभी नहीं देखता। उनके लोभ भी क्या हैं? थोड़ा-सा धन, मकान, पद-प्रतिष्ठा। सब क्षणभंगुर चीजें हैं। पानी पर खींची गयी लकीरें हैं। असली लोभी तो वे हैं, जो कहते हैं, 'इस क्षणभंगुर में क्या पड़ना! हम तो शाश्वत पर कब्जा करेंगे!' इनको मैं असली दंभी कहता हूं। ये असली उपद्रवी हैं।

इस संसार में इस संसार की क्षणभंगुरता में जो लोग थोड़ा-सा रस ले रहे हैं, उनको तुम बच्चे समझो। बच्चे कहो, तो चलेगा। थोड़े बचकाने हैं। नासमझ हैं। मगर ये तथाकथित साधु-संन्यासी, ये फकीर, ये त्यागी-व्रती, ये बच्चे नहीं हैं, ये बेईमान हैं। इनकी बड़ी होशियारी है। ये पक्के बनिया हैं। ये हिसाब बांधे बैठे हैं; एक-एक कर्म का हिसाब रखे बैठे हुए हैं।

जैन मुनि अपनी डायरी में लिखता रहता है—कितने उपवास किये, कितने व्रत किये! भर रहा है अपनी मटकियां! और खयाल रखना सब खोटे सिक्के हैं। और दूसरे भी नहीं दे गये, खुद ही ने ईजाद किये हैं। भर-भर कर मटकियां ले जायेगा; रखेगा मोक्ष के द्वार पर कि ये देखो, इतने मैंने व्रत किये, इतने नियम किये, इतना संयम साधा, अब फल चाहिए।

और जो फल मांगता है, वही सांसारिक है।

कृष्ण ने ठीक परिभाषा की है संन्यासी की : कर्म तो करे, फल न मांगे। फल को भूल ही जाये। यात्रा में रस ले, मंजिल की मांग न करे।

मगर हम तो यात्रा में एक कदम नहीं उठाते; पहले मंजिल चाहिए, फिर यात्रा करेंगे। जब मंजिल का पक्का भरोसा हो जाये, तब यात्रा करेंगे !

अब इस फकीर ने क्या किया, देखते हो ? कहा, 'या अल्लाह, मैं ताउम्र लोगों से खोटे सिक्के लेता रहा हूं। अब यह खोटा सिक्का भी तेरे पास आ रहा है। तू इसे स्वीकार कर।' इसकी इसी बात के कारण सूफी फकीर इस कहानी को बहुत दोहराते हैं, क्योंकि वे कहते हैं : 'कितना विनम्र आदमी था ! बोला उसने कि यह खोटा सिक्का तेरे पास आ रहा है ! कैसी सरलता, कैसी निरहंकारिता ! अपने को खोटा कह रहा है !'

लेकिन इसके खोटे कहने के पीछे रहस्य क्या है ? यह खोटा इसलिए कह रहा है कि 'अब आने दे मुझे जन्नत में, स्वर्ग में, बहिश्त में !' इसके खोटे कहने के पीछे लोभ है। और यह कह रहा है कि 'देख प्रमाण-स्वरूप, मैंने भी लोगों के खोटे सिक्के स्वीकार किये, इसलिए तू मुझे इनकार न कर सकेगा !'

तो जिंदगी भर यही गणित बिठाता रहा। वे जो मटकियां भरी जा रही थीं, इसी गणित से भरी जा रही थीं। यह खुश ही हो रहा था कि अच्छा है कि लोग खोटे सिक्के दे जा रहे हैं। यह प्रोत्साहन ही दे रहा होगा कि खोटे सिक्के दे जायें। यह लोगों में यह भ्रांति पैदा कर रहा होगा कि मुझे बिलकुल दिखाई ही नहीं पड़ता। उनके खोटे सिक्कों को ऐसे प्रेम से लेकर और मटकी में रखता होगा कि लोगों को लगता होगा कि 'अहा, अच्छा फायदा ही फायदा हो रहा है !' मगर उन्हें पता नहीं था, यह आदमी उनके कंधों पर बंदूक रख कर चलाने की कोशिश में संलग्न है। यह बदला लेगा, अच्छा बदला लेगा।

इसने दोहरे काम कर दिये—लोगों की निंदा भी कर दी परमात्मा के सामने कि मैं उनके खोटे सिक्के लेता रहा हूं। यह भी जाहिर कर दिया, यह भी छुपा कर न रखा कि 'सब मुझे खोटे सिक्के देते रहे हैं, अब तू उनसे समझ लेना !' वह बात कही नहीं, कोष्ठक में है। लेकिन बात जाहिर है कि 'लोग मुझे खोटे सिक्के देते रहे।' और यह भी बात जाहिर है कि 'देख, मुझे देख ! मेरी तरफ देख ! मैंने उनके खोटे सिक्के भी स्वीकार किये हैं ! तो मेरी सहृदयता देख, मेरी उदारता देख ! मैंने कभी किसी के खोटे सिक्के को खोटा नहीं कहा !'

यह आदमी कह देता तो अच्छा था। यह फेंक देता उनके खोटे सिक्के तो अच्छा था। कम से कम परमात्मा के सामने यह अकड़ तो न बचती। मगर इसी अकड़ के लिए तो सारे खोटे सिक्के इसने इकट्ठे किये थे। इकट्ठे ही इसलिए किये थे कि परमात्मा पूछने लगे कि कहां हैं खोटे सिक्के, तो मटकियों के ढेर बता दूंगा, कि ये भरी मटकियां

रखी हैं, प्रमाण-स्वरूप ! यह देख मेरी डायरी में कितने व्रत-उपवास-नियम, कितनी साधना-त्याग-तपश्चर्या मैंने की है ! क्या नहीं खाया, कब नमक छोड़ा, कब घी छोड़ा, क्या नहीं किया ! कितनी देर-देर तक सिर के बल खड़ा रहा ! पांच नमाज पूरी की हैं, हर रोज पूरी की हैं ! एक दिन नहीं चूका। बीमार था तो नहीं चूका। मर रहा था, तो नहीं चूका। अब इस सबका फल चाहिए। अब इस जीवन भर की चेष्टा का निचोड़ कर रस लूंगा !

तो उसने कहा, 'अब यह खोटा सिक्का भी तेरे पास आ रहा है।'

क्या तुम सोचते हो यह आदमी विनम्र है ? अपने को परमात्मा के सामने खोटा सिद्ध करने की कोशिश में भी अहंकार ही है। यह यह कह रहा है कि देखो, मैं विनम्र आदमी हूं, सहृदय, उदार—ऐसा उदार कि लोगों के खोटे सिक्के असली मानता रहा; कभी किसी को एतराज न किया, कभी शिकायत न की; कभी कोई शिकवा न किया ! अब तू भी मुझसे शिकायत नहीं कर सकता है ! अब तू भी किस मुंह से मुझसे शिकवा करेगा ? जब मैंने तेरे लोगों के साथ ऐसा व्यवहार किया, तो तू भी मेरे साथ ऐसा ही व्यवहार कर। और मैंने हजारों खोटे सिक्के लिए, मैं तो सिर्फ एक खोटा सिक्का हूं, अब मुझे आने दे !

यह भी यह आदमी परमात्मा पर नहीं छोड़ रहा है कि जो तेरी मर्जी ! यह दावेदार है। यह दावा कर रहा है। यह कह रहा है, 'अब यह खोटा सिक्का भी तेरे पास आ रहा है, तू इसे स्वीकार कर। इनकार न-करना !' यह आदेश दे रहा है। आदेश निरहंकारिता से नहीं उठते, अहंकार से ही उठते हैं।

यह कहानी ऊपर-ऊपर से अच्छी लगती है, भीतर-भीतर बिलकुल सड़ी है। भीतर इसमें कुछ बड़ा राज नहीं है।

और दिनेश भारती, अगर यही कहानी तुम्हारी भी कहानी है, तो तुम वही गलती कर रहे हो जो उस फकीर ने गलती की थी। इस कहानी में कुछ पता नहीं कि परमात्मा ने उसके साथ क्या किया। लेकिन मैं क्या करूंगा, वह तुम्हें पता हो जाना चाहिए। मेरे साथ चालबाजियां नहीं !

तुम जैसे हो, मुझे स्वीकार हो। मगर यह 'खोटे' वगैरह होने का अहंकार मत घोषित करो। ये तरकीबें नहीं। खोटे हो, तो ठीक। क्या हर्जा ? कौन खोटा नहीं है ? मगर खोटे की घोषणा करके तुम इस भ्रांति में न पड़ो कि तुम दूसरों से विशिष्ट हुए जा रहे हो। वही मोह भीतर छिपा है।

अब तुम कह रहे हो कि 'आपकी कृपा से मेरा तमस शांत हो गया है।' मेरी कृपा से अगर लोगों का तमस शांत होने लगे, तो मैं सारी दुनिया का तमस शांत कर दूं ! मेरी कृपा से कुछ भी नहीं होता।

तुम मेरी प्रशंसा मत करो। तुम मेरी प्रशंसा से कुछ भी नहीं पा सकते हो। मुझे

धोखा देना असंभव है। मैं किसी तरह की स्तुति में भरोसा नहीं करता। तुम जो यह कह रहे हो--'आपकी कृपा से मेरा तमस शांत हो गया है'--इस कहने में ही तमस मौजूद है, अंधेरा मौजूद है।

तुम सोच रहे हो उसी ढंग से, जैसे आम आदमी को प्रभावित किया जाता है। हां, किसी राजनेता से जा कर कहोगे कि 'आपकी कृपासे', तो वह आह्लादित हो जायेगा। किसी महात्मा से कहोगे कि आपकी कृपा से ऐसा हो गया, तो वह आह्लादित हो जायेगा।

मैं अहमदाबाद से बंबई आ रहा था। एक व्यक्ति एकदम मेरे पैरों पर गिर पड़ा हवाई जहाज में। जैसे ही मैं अंदर गया, एकदम मेरे पैरों पर गिर पड़ा और कहा कि 'आपकी कृपा से गजब हो गया!' मैंने पूछा, 'क्या गजब हो गया, मैं थोड़ा समझ लूं! क्योंकि मैंने किसी पर कोई कृपा नहीं की। इसलिए मैं जिम्मेवार नहीं हो सकता हूं।'

वह थोड़ा चौंका, क्योंकि उसने और बहुत से महात्माओं पर यही चाल चलायी होगी, यही तीर चलाया होगा। और जैसे महात्मा हैं, उन पर यह तीर एकदम चलता है। उनके पैरों पर गिर पड़ो और कहो, 'आपकी कृपा से घर में बच्चा हो गया, मुकदमा जीत गया, नौकरी लग गयी', तो वे मुस्कुरा कर सिर हिलाते हैं और कहते हैं कि 'ठीक। ठीक बच्चा! अरे मेरी कृपा से क्या नहीं हो सकता!'

यह आदमी थोड़ा चौंका। मैंने कहा, 'मैंने किसी पर कृपा ही नहीं की। कब हुई यह कृपा? कैसी कृपा और क्या हुआ?'

उसने कहा, 'नहीं, आप छिपाने की कोशिश न करो।'

मैंने कहा, 'मैं छिपाने की कोशिश नहीं कर रहा। मैं सिर्फ यह जानना चाहता हूं कि क्या, हुआ क्या है?'

उसने कहा, 'मैं मुकदमा जीत गया।'

मैंने कहा, 'मैं मुकदमे जिताता हूं? और सचाई क्या थी--मुकदमा तुझे जीतना था कि नहीं? तूने किया क्या था?'

उसने कहा, 'अब आपसे क्या छिपाना? संभावना तो मेरे हारने की थी, क्योंकि मेरा मामला झूठ था। मगर आपकी कृपा से क्या नहीं हो सकता!'

तो मैंने कहा, 'देख, तू नरक जायेगा, और मुझे भी ले चलेगा! तू भैया अकेला जा! और अगर मुझे नरक ले चलना है साथ में, तो कितना रुपया जीता है अदालत से?'

उसने कहा कि 'कोई पचास हजार रुपया।' तो मैंने कहा, 'पच्चीस हजार मुझे दे दे। बात खत्म कर! अगर नरक भी चलना है, तो मैं मुफ्त नहीं जाऊंगा।'

वह बोला, 'अरे नहीं-नहीं, आप जैसे महापुरुष को कहां पैसे से पड़ी!'

मैंने कहा, 'देख, यह नहीं चलेगा। नरक जाते वक्त मैं भी फंसूंगा, क्योंकि मुझसे भी पूछा जायेगा, क्यों की इस पर कृपा? यह हारना था मुकदमा, सजा होनी थी इसकी छह साल की। सजा भी नहीं हुई, उल्टे यह पचास हजार रुपए मुकदमे में जीत भी गया! तो सजा मेरी होगी। और वे पचास हजार में से कम से कम पच्चीस हजार तो मुझे भरने ही पड़ेंगे और तीन साल तो कम से कम मुझे भी नर्क में काटने पड़ेंगे। तू पच्चीस हजार मुझे दे ही दे!'

वह आदमी तो ऐसा चौंका। उसने कहा कि 'मैं बहुत महात्माओं के पास गया, आप कैसी बात कर रहे हैं!' मैंने कहा, 'मैं बात सीधी-साफ कर रहा हूं। तू जो भाषा समझता है वही बात कर रहा हूं। या फिर अपनी बात वापस ले ले। मैंने तो तुझसे कहा नहीं। मैंने दावा किया नहीं कि मैंने तुझ पर कृपा की। मैं तो इनकार ही कर रहा हूं, अभी भी इनकार कर रहा हूं। लेकिन अगर तू मानता है मैंने कृपा की, तो फिर हिस्सा कर ले।'

वह तो बिलकुल पीछे जा कर बैठ गया! मगर मैं दो-तीन दफा उसके पास गया उठ-उठ कर, कि 'भैया, तू क्या करता है? बंबई करीब आयी जा रही है!' वह तो अपना अखबार पढ़े। मैंने कहा, 'अखबार-वखबार बाद में पढ़ना, तू रुपये दे दे! फिर बंबई में मैं तुझे कहां खोजता फिरूंगा? तेरा नाम क्या, तेरा पता क्या?'

बोला, 'आप क्यों मेरे पीछे पड़े हैं?'

मैंने कहा, 'कृपा के वक्त तू मेरे पीछे पड़ा था!'

उसने अपना सिर ठोंक लिया। उसने कहा, 'मैं माफी मांगता हूं। मैं आपके चरण छूता हूं!'

मैंने कहा, 'तो कह दे कि मैंने कृपा नहीं की।'

उसे कहने में भी डर लगे, क्योंकि उसे यह डर लगे कि कहीं आगे कोई दचका न खाना पड़े। मैंने कहा कि 'तू बिलकुल बेफिक्री से कह दे कि मैंने कोई कृपा नहीं की, मेरा मामला खत्म हो गया। लेन-देन साफ। तू कह दे, ताकि आगे जब निर्णय होगा, तो मैं भी कह सकूंगा कि इसने साफ मना कर दिया था कि मैंने कृपा की ही नहीं!'

वह न कहे वह। उसमें उसकी घबड़ाहट कि पता नहीं, इन साधु-महात्माओं का क्या! फिर कल कोई झंझट में फंसा दें। किसी तरह तो बचा हूं!

वह कहने लगा, 'आप मुझ पर कृपा करो।'

मैंने कहा, 'देख, एक कृपा की, उसका तूने अभी भुगतान भी नहीं किया, उधारी ही चला रहा है! अब और कृपा करूं तेरे पर? तू माफी मांग ले और साफ कह दे कि आपने कृपा नहीं की, नहीं तो बंबई उतरते ही से मेरे लोग वहां होंगे, पकड़ा दूंगा फौरन! और तूने मुझसे कहा है कि मुकदमा तू झूठा जीता है, शोरगुल मचा दूंगा कि इसका मुकदमा झूठा है। अदालत में घसीटूंगा।'

ये जो लोग हैं, ये सब बेईमान हैं। लेकिन इनसे महात्मा भी प्रसन्न! महात्माओं की तो तुम बात ही छोड़ो; लोग देवी-देवताओं को, भगवान को, सबको रिश्वतें दे रहे हैं! इसलिए इस देश से रिश्वत को मिटाना बहुत मुश्किल है।

मुझे नहीं लगता कि भारत से रिश्वत मिटेगी। उसी दिन मिटेगी, जिस दिन भारतीय संस्कृति मिटेगी! मगर भारतीय संस्कृति को तो बचाना है! लोग एक सड़ा नारियल चढ़ा आते हैं बजरंगबली पर, कि 'हे बजरंगबली, खयाल रखना!' ये हुड़दंग-अली हैं, इन्होंने कुछ गड़बड़ किया है, अब बजरंगबली को भी फंसा रहे हैं, और एक सड़ा नारियल चढ़ा रहे हैं! और पता नहीं, क्या उपद्रव किया है, और सड़े नारियल के पीछे बजरंगबली इनका खयाल रखें! और बड़े प्रसन्न हो रहे हैं कि यह कैसा भक्ति-भाव! कैसे गद्गद् हो कर प्रार्थना करते हैं! क्या आरती उतारते हैं!

मेरे गांव में, जिस परिवार में मैं पैदा हुआ, उसके मंदिर में जो लोग भी बहुत ज्यादा भक्ति-भाव से आरती उतारते थे, मैं उनके पीछे-पीछे चला जाता था पूछने कि 'आज आपने बड़ी भक्ति-भाव प्रगट की, मामला क्या है?' कहें, 'मामला क्या है जी, इसमें मामला क्या है! तुम मेरे पीछे क्यों आ रहे हो?'

'मैं यह पूछने आ रहा हूं, आपने कुछ गड़बड़ की होगी या करने का इरादा होगा। नहीं तो ऐसा भक्ति-भाव पहले कभी नहीं दिखाई पडा। और मैं तो यहीं खड़ा हो कर देखता हूं कि कौन-कौन भक्ति-भाव प्रगट कर रहा है। उससे मुझे पता चल जाता है कि इस बस्ती में कितने बदमाश हैं, कितने लुच्चे हैं और कितने लुच्चे नहीं हैं तो लुच्चे होने की तैयारी कर रहे हैं! तुमने इतने भक्ति-भाव से...! एकदम आंसू बह रहे थे, तुम्हारे और आंसू बहें!'

'जा भाई तू अपना काम कर'—वे मुझसे कहें—'तू अपना काम कर! हमें भक्ति-भाव भी नहीं करने देगा क्या?'

मैंने कहा, 'भक्ति-भाव बराबर करो, खूब जी भर कर करो! मगर आज तक तुमने नहीं की, आज ही क्यों की? रोज तो मैं देखता हूं, ऐसा भक्ति-भाव प्रगट नहीं हुआ था। जरूर या तो तुम कुछ कर गुजरे हो या इरादा है! तुम मुझे साफ-साफ कह दो, नहीं तो मैं पुलिस चौकी जा रहा हूं कि इस आदमी पर ध्यान रखा जाये!

'भई, तू आदमी कैसा है'—वे मुझसे कहें—कि 'तू आदमी कैसा है! किसी को भक्ति-भाव नहीं करने देगा। पुलिस चौकी क्यों जाओगे? ठहरो!'

तो मैंने कहा, 'साफ-साफ मुझे कर दो, क्योंकि यहां लोग भक्ति-भाव ही इसीलिए करते हैं।'

स्तुति रिश्वत का एक ढंग है। इसलिए भारत में रिश्वत धार्मिक चीज है। इसलिए तुम लाख कहो, लोगों को लाख समझाओ कि रिश्वत मत लो; मगर जो लोग सदियों से परमात्मा तक को रिश्वत देते रहे हैं, वे आदमियों को रिश्वत न देंगे? जो जानते हैं कि जब परमात्मा तक रिश्वत में फंसता है, तो बेचारा तहसीलदार, थानेदार, कलेक्टर, कमिश्नर, इनकी हैसियत क्या है? गवर्नर, राष्ट्रपति, किसी की कोई हैसियत नहीं। जब स्वयं परमात्मा भी सड़े नारियल से मान जाता है, तो ये तो आदमी हैं! आखिर

आदमी की सामर्थ्य क्या?

मुल्ला नसरुद्दीन एक लिफ्ट में एक स्त्री के साथ ऊपर की तरफ जा रहा था। रास्ते में बोला, 'अहा, क्या सौंदर्य पाया है!'

स्त्री थोड़ी भड़की। उसने कहा कि 'शर्म नहीं आती! एकांत में स्त्री को देख कर और कुछ भी अंट-शंट बोलते हो!'

उसने कहा, 'मैं अंट-शंट नहीं बोलता। भाई, मैं जो भी कहता हूं, उसका मूल्य चुकाने को तैयार हूं। अगर एक रात मेरे साथ रुक जा, पचास हजार रुपये दूंगा।'

स्त्री भी ढीली पड़ गयी। पचास हजार में कौन ढीला न पड़ जाये! उसने कहा, 'पचास हजार!'

नसरुद्दीन ने कहा, 'बिलकुल पचास हजार!'

उसने कहा, 'अच्छी बात। कौन-सी मंजिल पर रहते हो?'

उसने कहा, 'वह मैं तो बाद में बताऊंगा। सच पूछो तो मेरे पास सिर्फ पचास रुपये हैं!'

वह स्त्री एकदम भड़की। उसने कहा कि 'मैं अभी शोरगुल मचा दूंगी। तुमने मुझे समझा क्या है?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'समझने का अब कोई सवाल ही नहीं। वह तो अपन तय कर चुके। वह तो पचास हजार में तय हो गया कि तू क्या है, हम क्या हैं; सब तय हो गया। अब तो मोल-भाव कर रहा हूं! अब समझना वगैरह कुछ भी नहीं; समझना तो हो चुका। अब शोर वगैरह मचाने की कोई जरूरत नहीं। अगर पचास हजार में तू रात भर मेरे पास रुकने को राजी है, तो पचास में क्या हर्जा है? अब यह हैसियत-हैसियत की बात है। अपने पास पचास हजार हैं नहीं। वह तो मैंने जरा इशारा किया कि देख लूं कि कहां तक गहरा पानी है; कितने गहरे पानी में है तू। वह तो तय ही हो गया कि तू कौन है।'

तो किसी की थोड़ी कीमत होगी, किसी की ज्यादा कीमत होगी। मगर जिसके चरणों में गिर जाओगे और जिसकी प्रशंसा करोगे...। तुम गधे के भी पैरों में गिर कर कहो कि 'अहा, क्या सुंदर काबुली घोड़ा है!' तो गधा भी सिर हिलाएगा। वह कहेगा कि 'यह बिलकुल ठीक कह रहे हो। तुम्हीं मुझे पहचानने वाले मिले!'

मैं एक कॉलेज से निकाल दिया गया था, क्योंकि कॉलेज के अध्यापक परेशान आ गये, प्रिंसिपल परेशान आ गया। उसने कहा कि 'तुम्हारे साथ सिवाय झंझट के कुछ नहीं है। जो प्रोफेसर आता है, वही कहता है कि या तो यह लड़का रहे या हम नौकरी छोड़ते हैं। तुम ऐसे सवाल खड़े करते हो! अब तुमने कल एक प्रोफेसर को पूछा कि क्या तुम सिद्ध कर सकते हो कि तुम अपने बेटे के ही बाप हो? बोलो! यह कोई सवाल है?'

मैंने कहा कि 'पहले आप यह पूछो कि उसने क्या कहा था। उसने कहा था कि मैं जब तक किसी चीज को सिद्ध न करूं, मानता ही नहीं। और उसका लड़का भी मेरी क्लास में पढ़ता है, तो मैंने कहा कि ठीक है, मामला तय हो जाये। तुम यह सिद्ध करके बताओ कि यह लड़का तुम्हारा ही है। बस, वह एकदम नाराज हो गया।'

मैंने कहा, 'उसने ही कहा था। उसने ही भड़काया मुझे। शरारत वह करे, फंसूं मैं ? यह कोई बात है। बुलाओ उसको। पूरी कक्षा गवाह है कि उसने ही कहा था कि मैं जब तक किसी बात को सिद्ध न कर दूं, मानता नहीं। मैं वैज्ञानिक बुद्धि का आदमी हूं।

'तो मैंने कहा कि मैं भी वैज्ञानिक बुद्धि का हूं। यह लड़का तुम्हारा है ? तुम्हें पक्का भरोसा है ? किस आधार पर भरोसा है ? तुम्हारे पास कोई प्रमाण है ? बस वह एकदम बौखला गया और कहा कि तुम क्लास से निकल जाओ। मैंने कहा, मैं नहीं निकलूंगा। पहले तुम सिद्ध करो। अगर तुम सिद्ध कर दो कि यह लड़का तुम्हारा है, मैं सदा के लिए क्लास से निकल जाऊंगा, बात खत्म। फिर मुझे नहीं पढ़ना, फिर क्या पढ़ना है ! यही पढ़ने आया था ! तुमको निकलना हो निकल जाओ ! वह एकदम निकल गया गुस्से में, आपके पास पहुंच गया !'

प्रिंसिपल थोड़ी देर सोचता रहा। उसने कहा कि 'बात तो तुम ठीक कहते हो, मगर यह बात ऐसी है कि मैं भी सिद्ध नहीं कर सकता। मेरे भी लड़के हैं। यह तुम झंझटों की बातें खड़ी करते हो। तुम यहां से छोड़ ही दो, दूसरे कॉलेज में चले जाओ।'

मैंने कहा, 'मुझे कौन दूसरा कॉलेज भरती करेगा ? गांव भर में मेरी बदनामी है। कौन मुझे कॉलेज में लेगा ? आप सिफारिश करोगे ? आप लिख कर दो।'

उन्होंने कहा कि 'मैं लिख कर नहीं दे सकता, क्योंकि मैं लिख कर दूं और कल तुम वहां कोई गड़बड़ करो ! गड़बड़ तुम करोगे।' मैंने कहा, 'वह मैं लिख कर दे सकता हूं कि करूंगा। मैं तो जो कहता हूं, वह लिख कर भी दे सकता हूं। यह बेईमान कौन है--मैं हूं या तुम ? तुम कह रहे हो कि लिख कर नहीं दे सकता, फोन पर कह दूंगा। अरे जब फोन पर कह सकते हो, लिख कर दे दो। जब मुंह चला सकते हो, तो हाथ चलाने में क्या हर्जा है ? तुम्हारा मुंह क्या हाथ से गया-बीता है ?'

उसने कहा, 'देखो, तुमने फिर गड़बड़ बातें शुरू कर दीं ! इन्हीं झंझटों की बातों के कारण हम तुम्हें अलग कर रहे हैं। तुम बात में से बात निकाल लेते हो !'

तो मुझे एक कॉलेज में जा कर. . .जो सबसे गांव का रद्दी कॉलेज था, जहां कोई जाता ही नहीं था। मैंने सोचा, वे ही मुझे जगह देंगे। पर मुझे कोई फिक्र भी न थी। मैंने कहा, चलो वहीं निपटेंगे।

गया, तो प्रिंसिपल घर पर पूजा कर रहे थे। वे दुर्गा के भक्त थे, काली के भक्त--जय काली, जय काली ! और भक्त ही नहीं थे, मतलब शरीर से भी बिलकुल काली के ही भक्त थे वे। बिलकुल काले-कलूतरे, मोटे, भयंकर ! उनको लोग अवधूत कहते थे ! वे एकदम 'जय काली, जय काली' ऐसा उद्घोष कर रहे थे, कि सारा मुहल्ला कंपा जा रहा था। मैं बाहर बैठा रहा, सुनता रहा, सुनता रहा। मुझे भर्ती होना था। जब वे बाहर निकले, मैंने उनसे कहा कि 'मैंने बहुत भक्त देखे, मगर आप जैसा भक्त नहीं देखा ! इस कलियुग में आप जैसे सतयुगी पुरुष का दर्शन--धन्य हो गया !'

उन्होंने कहा, 'बेटा, तू पहला युवक है, जो मुझे पहचान पाया ! आज तक मुझे कोई नहीं पहचान पाया। अरे दूसरों की क्या, मेरे घर के, मेरे बेटे, मेरी पत्नी, मेरे भाई, कोई मुझे नहीं पहचानते ! वे समझते हैं, यह पागल है।'

मैंने कहा, 'वे सब पागल हैं। आप परमहंस हैं !'

मुझे उन्होंने फौरन कॉलेज में भर्ती कर लिया, फिर पूछताछ ही नहीं की कि तू कहां से निकाला गया, क्यों निकाला गया ! और फिर जब भी कभी कोई मौका आता, तो वे यह बात चूकते नहीं थे कहने से कि 'यह एकमात्र युवक है, जो मुझे पहचाना !'

जब मैं कॉलेज छोड़ने लगा. . .और उन्होंने फिर कहा कि 'तुम जा रहे हो, दिल को मेरे दुख होता है !' मैंने कहा कि 'दुख आपको होता है, दुख मुझको भी होता है। क्योंकि मैं एकमात्र व्यक्ति हूं, जो तुम्हें पहचाना !'

उन्होंने कहा, 'क्या मतलब ?'

मैंने कहा कि 'अब तो मैं जा ही रहा हूं, तो अब सच्ची बात कह दूं कि मैंने तुम जैसा मूढ़ आदमी नहीं देखा। लोग ठीक कहते हैं।'

कहा, 'क्या मतलब ?'

मैंने कहा कि 'मैं पहचान गया था उसी वक्त कि किस ढंग के आदमी हो, तभी तो मैंने कहा कि अहा, सतयुगी हो आप ! कोई मूढ़ ही इन बातों में आयेगा। कलियुग में कहां से सतयुगी होओगे ? कलियुग में कोई कैसे सतयुगी हो सकता है, तुम्हीं बताओ ! यह तो यूं ही हुआ कि झाड़ तो नीम का है और आम लगा हुआ है, कि अहा, क्या नीम के झाड़ में आम लगा हुआ है ! कोई मूरख नीम ही बातों में आ जाये तो आ जाये, नहीं तो नीम का झाड़ पूरा हंसेगा कि अरे रहने दे भाई ! तुम महामूढ़ हो।'

उन्होंने कहा, 'तो मैं इतने दिन धोखे में रहा !'

मैंने कहा, 'तुम धोखे में रहे, उससे ही तो सिद्ध होता है। अगर तुममें थोड़ी भी अक्ल होती, तो तुम जितनी जोर से काली-काली चिल्ला रहे थे--मैंने काली को भागते देखा था, निकलते तुम्हारे कमरे से, कि मैं यह चली; जब यह दुष्ट यहां से हटेगा तब वापस लौटूंगी ! तुम जितने जोर से काली-काली चिल्लाते हो. . .किसको धोखा दे रहे हो ! मैंने देखा कि जब तुम काली की इस तरह स्तुति कर रहे हो, काली तक को धोखा देने की सोच रहे हो, मैं फौरन तुम्हारा गणित समझ गया। मैंने कहा, अब मुझे भरती होना है, तुम्हारे गणित का उपयोग तुम्हीं पर कर दूं ! और जाते वक्त सच्ची बात कह जाऊंगा। तो मैं कहे जा रहा हूं।'

तब से वे मुझसे बहुत नाराज हैं। फिर मैं वर्षों उस गांव में रहा, रस्ते में मिल जायें, मैं जैरामजी करूं, तो वे जवाब न दें! इधर-उधर मुंह करें। मैं भी चारों तरफ घूम कर जैरामजी करूं। 'मैं जैरामजी तो कर ही लूं। मैं ही तो वह एकमात्र व्यक्ति हूं, जो आपको पहचाना!'

दिनेश, तुम ये क्या बातें कर रहे हो कि 'आपकी कृपा से मेरा तमस शांत हो गया!' मेरी कृपा से शांत हुआ और मेरी कृपा न रही, फिर क्या होगा? मैं अपनी कृपा वापस ले सकता हूं। कल तमस आ जाये, तुम फिर मेरी जान खाओगे कि आपने दिखता है कृपा वापस ले ली!

तमस कहीं गया-वया नहीं है, वह अपनी जगह बैठा हुआ है। कभी-कभी सांप कुंडली मार कर बैठ जाता है, सोयेगा भी तो न! इसलिए तो कुंडलिनी कहते हैं उसको। जब सांप तुम्हारा कुंडली मार कर सोया रहता है, तो उसको कहते हैं कुंडलिनी। और जब सांप फनफना कर उठता है, तो कहते हैं––कुंडलिनी जगी! तो अभी तुम्हारा तमस सो गया होगा, या कम से कम तुम धोखा दे रहे होओगे कि अरे बिलकुल सो गया! अब तो आश्रम में जा कर भरती कर लिया जाऊं। अब तो साफ कह दूंगा कि मेरा तमस शांत हो गया है।

'चेतना से रजस का बोझ भी कम होता जा रहा है।' झूठ भी बोले, मगर पूरा नहीं बोल पाये। तुमने सोचा कि जरा थोड़ा संकोच से बोलूं, क्योंकि यह आदमी खतरनाक है; इससे कहेंगे कि रजस भी समाप्त हो गया, तो यह पकड़ लेगा। मैंने तुम्हें पहले ही पकड़ लिया, उसके पहले ही!

'...बोझ समाप्त होता जा रहा है। और आपके पास रह कर सत्व में प्रवेश हो सकेगा।'

तुम्हारी तैयारी हो, तो एक क्षण में सारी बात हो जाती है। यह कोई धीरे-धीरे का काम है कि पहले तमस कटेगा, फिर रजस कटेगा, फिर सत्व में प्रवेश होगा? कितने जन्म लोगे? कितना समय गंवाओगे? तुम्हारी अगर तैयारी हो ईमान से...

और मुझे कोई धोखा देने की कोशिश न करे, क्योंकि मैं खोटे सिक्के वगैरह इकट्ठे नहीं करता। मुझे कोई परमात्मा के सामने मटकी नहीं रखनी कि 'हे महाराज, देखो, कितने खोटे सिक्के मैंने लिए थे, अब आप मुझे भी ले लो!' मैं कोई खोटा सिक्का हूं नहीं। मैं ऐसी कोई प्रार्थना करने वाला नहीं।

मैं किसी से कोई प्रार्थना ही करने वाला नहीं। आखिरी नमाज तो मैं कब की पढ़ चुका! मैं तो दरवाजे पर धक्का दे कर घुस जाने वाला हूं। कोई प्रार्थना वगैरह करनी है? प्रार्थना ही करेगा तो परमात्मा कि 'ऐ भाई, इतनी जोर से मत घुसो, कि आहिस्ता आओ, कम से कम नींद तो न तोड़ो!' और मैं अकेला घुसने वाला हूं? और पीछे कतार रहेगी! शिवजी की पूरी बारात! आखिर डेढ़ लाख संन्यासी मेरे कहां जायेंगे?

एक को भी यहां-वहां नहीं जाने दे सकता। स्वर्ग पर कब्जा करना है। कच्छ से तो सिर्फ शुरुआत है––अभ्यास के लिए कि देखो, यूं कब्जा किया जाता है!

एक अभ्यास करते हैं न! तुमने फायर ब्रिगेड वालों को अभ्यास करते देखा होगा। झूठे ही आग लगा देते हैं, फिर बुझाते हैं। अभ्यास हो रहा है। ऐसे ही कच्छ एक अभ्यास। झूठी आग लगा दी, बुझायी, जिससे तुम्हें थोड़ा अभ्यास हो जाये कि जब स्वर्ग पर हमला करेंगे तो किस तरह प्रवेश करना है।

तुम मुझे स्वीकार हो, दिनेश, सदा से स्वीकार हो! तामसी हो, तो स्वीकार हो। मैं कोई तमस, रजस और सत्व में कोई भेद करता हूं? तुम इस चिंता में ही मत पड़ो। सिर्फ तुम्हारी तैयारी होनी चाहिए समर्पण की। लेकिन पीछे तुमने हमेशा उल्टे सबूत दिये। तुम्हारी चालबाजी यह है कि तुम मेरे प्रति तो समर्पण दिखाते हो... और यह तुम्हारी ही अकेले की नहीं, और भी बहुत लोगों की है।

लेकिन मुझे तुम किसी तरह का धोखा नहीं दे सकते, उसका कारण यह है कि मैं सब तरह के धोखे खुद ही दे चुका हूं! मैं बिलकुल अभ्यासी हूं। मुझे कोई धोखा नहीं दे सकता। जितने ढंग से जेब काटना मुझे आता है, किसी को भी नहीं आता। तो तुम क्या खाक मेरी जेब काटोगे! इसलिए मैं तो जेब ही नहीं रखता, क्या खाक काटोगे? तुम देखे, मेरी जेब है? नहीं है। और बिना जेब के किस मजे से जी रहा हूं! इसको कहते हैं परम संन्यास! कोई जेब भी काटना चाहे, तो नहीं काट सकता।

गरीब से गरीब आदमी की जेब होती है। कुछ भी न हो जेब में, तो भी जेब होती है। कम से कम ठंड इत्यादि के समय में हाथ डाल कर कम से कम थोड़ी गर्मी ही देती है। उतनी भी जेब नहीं रखी।

तुम मुझे किसी तरह का धोखा नहीं दे सकोगे। और उसी तरह का धोखा और भी कुछ लोग देते हैं। वे क्या करते हैं? उनकी होशियारी क्या है? वह और जगह काम आ जाती है, यहां नहीं काम आयेगी। वह होशियारी क्या है?

वे मेरे प्रति समर्पण दिखलाते हैं और आश्रम में उपद्रव खड़ा करते हैं। वे कहते हैं, 'भगवान को तो हम प्रेम करते हैं। मगर यह आश्रम की व्यवस्था और इसके नियम इत्यादि, इनमें हम नहीं मानते।' उनका इरादा यह है कि वे मेरे प्रति समर्पण दिखायें, तो मैं कुछ बोलूं न, मैं कुछ कहूं न, कि देखो कितने समर्पित व्यक्ति! और संस्था के प्रति सब तरह के उपद्रव खड़े करें। मैं कुछ बोलूं नहीं, मैं कुछ कहूं नहीं, क्योंकि वे मेरी खुशामद करें और संस्था के प्रति सारी तरह की अराजकता फैलायें। यह नहीं चलेगा।

जिसका मेरे प्रति समर्पण है, उसका मेरे कम्यून के प्रति भी समर्पण होना चाहिए; वही सबूत है, नहीं तो कोई सबूत नहीं है। मेरे प्रति समर्पण का एक ही सबूत है कि कम्यून के प्रति भी उसका समर्पण होना चाहिए। जो मन में इस तरह की तरकीब कर रहा हो कि 'मेरे प्रति समर्पण और कम्यून से क्या लेना-देना है! अरे जब भगवान को

राजी कर लिया तो कम्यून की क्या फिक्र!' उस व्यक्ति को मेरे पास कोई जगह नहीं हो सकती।

यह कम्यून है ही इसीलिए कि तुम प्रमाणित करो कि तुम्हारा मेरे प्रति समर्पण है, तो कम्यून के प्रति बिलकुल ही अपने को समर्पित कर दो। तिरोहित हो जाओ। अपने अहंकार को वहां न बचाओ।

और यह तो अभी छोटे पैमाने पर कम्यून है, जल्दी ही दस हजार, बीस हजार, पच्चीस हजार लोग एक साथ रहेंगे। अगर अभी से मैं इस तरह के उपद्रव को, छोटे-छोटे उपद्रव को जगह दूंगा, तो फिर उन बीस-पच्चीस हजार लोगों को सम्हालना मुश्किल हो जायेगा। और तुम मुझे देखते हो कि मैं सम्हालने के लिए एक क्षण के लिए भी कमरे के बाहर नहीं आता। मुझे कमरे के भीतर से सम्हालना है।

तुम चमत्कारों की बातें करते हो, लेकिन तुम अंधे हो, नहीं तो चमत्कार तुमको दिखाई पड़े। मैं कमरे में बैठा रहता हूं और पंद्रह सौ व्यक्ति आश्रम में काम करते हैं। कहीं कोई उपद्रव है? कहीं कोई अड़चन नहीं, कोई बाधा नहीं, कोई व्यवधान नहीं, कोई विरोध नहीं। इसको ही मैं चमत्कार कहता हूं। ये पंद्रह सौ कल पंद्रह हजार होंगे। तो मुझे थोड़ा-सा...। उस तरह के लोगों को जरा भी जगह नहीं रखनी। एक भी सड़ी मछली सारे पानी को गंदा कर सकती है, सारे तालाब को गंदा कर सकती है।

तो तुम उतनी तैयारी कर लो : कम्यून के प्रति समर्पण, तो तुम आज स्वीकार हो, अभी स्वीकार हो।

और तुम कहते हो, 'देर लगी आने में हमको, शुक्र है फिर भी आये तो!'

अभी आये कहां? अभी आना है।

कहते हो, 'आस ने दिल का साथ न छोड़ा, वैसे हम घबराये तो।'

यह तो मैं जानता हूं कि तुम आना चाहते हो, तुम्हारी आशा है। तुम्हें आना भी है, आना भी चाहिए। मगर थोड़ी-सी अपनी छोटी-छोटी चालबाजियां, अड़चनें छोड़ दो। और कुछ बड़ी-बड़ी अड़चनें नहीं हैं, छोटी-छोटी अड़चनें हैं। लेकिन जहां एक बड़े कम्यून को जन्म मिल रहा हो, वहां अपने उन छोटे-छोटे उपद्रवों को छोड़ देना चाहिए, जिनके कारण उस बड़े कम्यून के जीवन में बाधा पड़ती हो। तुममें कुछ ऐसी बुराइयां नहीं हैं, किसी में कुछ बुराइयां नहीं हैं। लेकिन सवाल तब खड़े होते हैं, जब बहुत लोगों को साथ रहना हो—जहां सह-अस्तित्व का सवाल उठता है, वहां।

अकेला-अकेला तो हर आदमी अच्छा है, हर आदमी सुंदर है। अगर तुम्हें जंगल में रहना है, तो कोई खराबी ही नहीं है। लेकिन जहां दूसरे के साथ रहना है, वहां टकराव न हो।

मैं एक ऐसी कम्यून चाहता हूं जो प्रमाण बने, पृथ्वी पर पहली दफा प्रेम का। दुनिया में बहुत कम्यूनें बनीं, लेकिन कोई भी टिकी नहीं। यह जान कर तुम्हें आश्चर्य

होगा कि यह पहली कम्यून है, जिसके टिकने की संभावना है। अब तक कोई कम्यून सफल नहीं हुई। बहुत कम्यून बनी हैं, लेकिन टूट क्यों गयीं? कम्यूनों का अधिकतम जीवन तीन साल रहा है पूरे मनुष्य जाति के इतिहास में। बहुत बार प्रयोग हुए और बड़े-बड़े लोगों ने प्रयोग किये। और मेरे पास तो एक पैसा नहीं था, तब प्रयोग शुरू किया। ऐसे लोगों ने, जैसे राबर्ट ओवेन ने प्रयोग किया।

राबर्ट ओवेन इंग्लैंड का करोड़पति था, सबसे बड़ा करोड़पति था। उसने अपनी सारी संपत्ति कम्यून में लगा दी। फिर भी तीन साल में ठप्प हो गयी। सारी संपत्ति डूब गयी। राबर्ट ओवेन भिखमंगा मरा! उसके कफन के लिए पैसे दूसरों को जुटाने पड़े। क्या हुआ? इतना पैसा था, कम्यून तो चल सकती थी। लेकिन गड़बड़ वहीं हो गयी। पैसे के कारण बदमाश इकट्ठे हो गए—जिनके आने का कारण पैसा था; जिनके आने का कारण कम्यून का भविष्य, कम्यून का जीवन या कम्यून को सफल करने की कोई अभीप्सा नहीं थी; आने का कारण पैसा था। राबर्ट ओवेन का पैसा। मुफ्तखोरी। अच्छा ही है यह। न कुछ करना, न धरना!

ओवेन के करोड़ों रुपये तीन साल में फूंक डाले लोगों ने। और जैसे-जैसे पैसे फुंकते गये, लोग नदारद होते गये!

और यह कोई एक दफा नहीं हुआ। साइमन की कम्यून इस तरह टूटी। और अमरीका में तो बहुत कम्यूनें बनीं और सब कम्यूनें खत्म हुईं। धीरे-धीरे लोग थक ही गये। लोगों को भी यह विश्वास आ गया कि कम्यून सफल नहीं हो सकते। लेकिन मैं कहता हूं, कम्यून सफल हो सकते हैं। उनकी आधारशिलाएं गलत थीं।

राबर्ट ओवेन की बुनियादी गलती यह थी कि उसे खुद भी न तो ध्यान था, न प्रेम था। सिर्फ एक धुन थी, एक आदर्शवादी व्यक्ति था, एक सिद्धान्तवादी व्यक्ति था। मैं न तो सिद्धान्तवादी हूं, न आदर्शवादी हूं—सिद्धान्त-शून्य, आदर्श-मुक्त।

दूसरी गलती उसकी थी कि पैसे से शुरू किया। मैंने बिना पैसे के काम शुरू किया है। तो जो कम्यून में आ रहा है, उसे समझ कर आना चाहिए कि यह प्रेम और ध्यान का कम्यून है। यहां तुम्हें प्रेम और ध्यान के जीवन में जीना पड़ेगा।

और मैं गलत लोगों को क्षण भर भी बर्दाश्त नहीं करता। 'गलत' से मेरा अर्थ यह नहीं कि वे कुछ गलत हैं। गलत से मेरा अर्थ है कि सामूहिक जीवन के लिए योग्य नहीं हैं। उनमें ऐसी पात्रता नहीं है कि चार आदमियों के साथ मिल कर चल सकें। अकेले चल सकते हैं। अकेले चलने में कोई अड़चन ही नहीं होती। सवाल ही वहां उठते हैं, जहां चार को साथ ले कर चलना हो। तो कभी अपनी गति कम भी करनी पड़ती है, कभी अपनी गति ज्यादा भी करनी पड़ती है। लेकिन जो इस अकड़ में हों कि हम तो अपनी चाल से ही चलेंगे, वे फिर कम्यून के जीवन में नहीं जी सकते।

वही तुम्हारी भूल है दिनेश। मैं बहुत-से भारतीय मित्रों को स्वीकार नहीं कर

रहा हूं। उसका कारण यही है कि भारतीय मित्रों के आने का कारण गलत होता है। अधिकतम भारतीय मित्र तो इसलिए आना चाहते हैं कि यह अच्छा है, न नौकरी करनी, न धंधा करना; मुफ्तखोरी करेंगे ! हालांकि वे ऐसा कहते नहीं कि हम मुफ्तखोरी करेंगे। अगर वे साफ मुझे कहें कि हम मुफ्तखोरी करना चाहते हैं, मैं स्वीकार कर लूं उनको, कि कम से कम आदमी ईमानदार तो है ! वे कहते हैं, 'हम तो भाव-भक्ति करेंगे।' बस, उनको मैं निकाल बाहर कर देता हूं। भाव-भक्ति और कहीं करो, इतना बड़ा मुल्क पड़ा हुआ है ! यहां भाव-भक्ति करने की क्या जरूरत है ? और यहां भाव-भक्ति कैसे करोगे ?

यहां भारतीय मित्र आते हैं, वे कहते हैं, 'हमें तो सिर्फ साधना में रस है। हमें कोई श्रम वगैरह नहीं करना।' तो साधना हिमालय पर जा कर करो। यहां तो श्रम भी करना होगा।

यहां भारतीय पुरानी परम्परा के साधु-संन्यासी आ जाते हैं। वे कहते हैं कि 'हमें सम्मिलित कर लें।' मैं उनसे पूछता हूं, 'तुम हमारे किस उपयोग के हो ? कम्यून में तो उपयोगिता होनी चाहिए। कोई तुम्हारी सृजनात्मकता होनी चाहिए। और तुम अपना गांजा और अपनी भांग यहां नहीं घोंट सकोगे।' और उनका इरादा यही रहता है कि मजे से खायेंगे-पीयेंगे; चिलम भरेंगे ! वही वे करते रहे हैं। तो काम नहीं चलेगा। उनको मैं स्वीकार नहीं कर सकता।

मैं स्वीकार कर सकता हूं उन मित्रों को, जो सच में ही समर्पित होने को राजी हैं। उनको मैंने स्वीकार किया है। उनको मैं निमंत्रण दे रहा हूं। उनको मैं कह रहा हूं: आओ ! और नहीं कुछ जरूरी है कि वे धन ले कर आयें। धन कोई सवाल ही नहीं है। बस, ध्यान और प्रेम। मगर प्रेम अनिवार्य शर्त है।

ध्यान अकेला, व्यक्ति को निष्क्रिय कर देता है। प्रेम व्यक्ति को सृजन देता है। अकेला ध्यान वाला धर्म निष्क्रिय हो जाता है, मुर्दा हो जाता है। अकेला प्रेम वाला धर्म सक्रिय हो जाता है। लेकिन उसकी सक्रियता में एक तरह का बुखार होता है, विक्षिप्तता होती है !

मैं जिस संन्यास को जन्म दे रहा हूं, वह ध्यान और प्रेम का समन्वय है। पृथ्वी पर कभी ऐसा किया नहीं गया है। और इसलिए एक बड़ी भारी आशा है कि अगर यह प्रयोग सफल होता है तो मनुष्य-जाति के लिए एक नया आधार मिलेगा।

दुनिया में दो तरह के धर्म रहे हैं—प्रेम के धर्म और ध्यान के धर्म। दोनों हार गये और दोनों पराजित हो गये हैं। दोनों धराशायी हो गये। जैसे बुद्ध-धर्म, जैन-धर्म—ध्यान के धर्म हैं। ईसाइयत, इस्लाम—प्रेम के धर्म हैं। चूंकि ईसाइयत और इस्लाम में ध्यान के लिए बहुत जगह नहीं है। जगह ही नहीं है ! प्रार्थना, प्रेम...। तो सक्रियता तो बहुत पैदा हुई। इस्लाम की सक्रियता ने आक्रमक रूप ले लिया। वह

पुरुष की सक्रियता बन गयी। उसने तलवार उठा ली। वह तलवार के बदौलत लोगों को बदलने लगा।

अब तलवार से कहीं लोग बदले जा सकते हैं ? मारे जा सकते हैं, बदले नहीं जा सकते। काटे जा सकते हैं, रूपांतरित नहीं किये जा सकते। तो आज पृथ्वी पर जितने लोग मुसलमान हैं, उनमें से अधिक लोग तो तलवार के बल से मुसलमान हुए हैं। इसलिए नाम के मुसलमान हैं। उनके जीवन में कोई क्रांति नहीं हुई। वे हिंदू रहते तो भी ऐसे ही रहते, ईसाई रहते तो भी ऐसे ही रहते, जैन रहते तो भी ऐसे ही रहते। कोई फर्क नहीं पड़ा। मगर तलवार के बल से, कायर थे, बदल गये। मरने के बजाय उन्होंने समझौता कर लेना उचित समझा।

ईसाइयत ने उतना आक्रमक रूप नहीं लिया, क्योंकि ईसा और मोहम्मद के व्यक्तित्व में फर्क है। मोहम्मद का व्यक्तित्व बहुत पुरुष का व्यक्तित्व है—आक्रमक, बहिर्मुखी। ईसा का व्यक्तित्व स्त्रैण है, कोमल है, अंतर्मुखी। इसलिए ईसाइयत में प्रेम ने सेवा का रूप लिया। और सेवा के द्वारा लोगों को बदलने की चेष्टा में वे संलग्न हो गये। इसलिए बड़े मिशनरी पैदा हुए और उन्होंने न मालूम कितने लोगों को—रोटी दो, पानी दो, दवा दो, स्कूल खोलो, अस्पताल बनाओ; और इस बहाने जो बीमार फंस गये, अनाथ फंस गये, उनको ईसाई बना लो !

अभी कलकत्ता की मदर टेरेसा बार-बार कह रही हैं कि 'मैं संतति-नियमन के विरोध में हूं, गर्भपात के विरोध में हूं; इन पर कानूनी रोक लगनी चाहिए।' लगनी ही चाहिए, नहीं तो अनाथ बच्चे कहां से मिलेंगे ? और अनाथ बच्चे नहीं, तो ईसाइयत कहां ? यह ईसाइयत जी रही है अनाथ बच्चों पर ! मदर टेरेसा को नोबल पुरस्कार मिला अनाथ बच्चों के कारण। अगर कलकत्ते के लोग संतति-नियमन का उपयोग करें, तो मदर टेरेसा के पास जो बच्चों की भीड़ इकट्ठी है, वह कहां से आये ? यह पूरी दुकान उन लोगों के कारण चल रही है, जो जरूरत से ज्यादा बच्चे पैदा किये जा रहे हैं। अब उन हैं। हैं तो बंगाली बाबू बिलकुल फुसफुसे, मगर बच्चे पैदा किये जा रहे हैं। अब उन बच्चों को पाले कौन, पोसे कौन ? तो न मालूम कितने बच्चे कलकत्ते की सड़कों पर छोड़ दिये जाते हैं ! बस, वे बच्चे मदर टेरेसा को मिल जाते हैं। जिनकी कोई मां नहीं है, कोई पिता नहीं है—मदर टेरेसा उनकी मां है। और फिर उनको ईसाई बनाने में क्या दिक्कत है ? फिर ये ईसाइयों के बीच बड़े होंगे, वही पढ़ाएंगे, वही लिखाएंगे, वही इनको भोजन देंगे, वही कपड़े देंगे। ये ईसाई होने वाले हैं। उन्हें कोई फिक्र नहीं कि सारी दुनिया मर जाये; इस बात की फिक्र है कि ईसाइयों के स्रोत बंद न हो जायें। दुनिया में गरीबी रहनी चाहिए।

हिंदू पंडित हैं—करपात्री महाराज। उन्होंने एक किताब लिखी है : 'रामराज्य

और समाजवाद'। उसमें उन्होंने समाजवाद के खिलाफ जो दलीलें दी हैं, उसमें एक दलील यह भी है कि हिंदू शास्त्रों में लिखा हुआ है, भारतीय संस्कृति का मूल आधार है, कि दान ही धर्म है। अगर गरीब नहीं होंगे, तो दान कौन लेगा ? और जब दान ही नहीं बचेगा, तो धर्म नष्ट हो जायेगा ! जब दान ही धर्म है, तो गणित तो बिलकुल साफ है। गरीब चाहिए, अमीर चाहिए। देने वाले चाहिए, लेने वाले चाहिए। जब सभी समान होंगे, तो कौन लेगा दान और कौन देगा दान ? जो तुमको दान देने की कोशिश करेगा, तुम एक चपत लगाओगे उसको कि अपनी अकल की बातें करो ! किसको चाहिए दान ! और जब दान ही नहीं होगा, तो धर्म नहीं होगा। इसलिए समाजवाद का विरोध होना चाहिए।

क्या-क्या गजब के लोग पड़े हैं ! गरीबी रहनी चाहिए, नहीं तो गरीबी के बिना तो धर्म नष्ट हो जायेगा !

मगर एक बात मैं कहूंगा कि यह बात पते की है। हालांकि कह गये वे नासमझी में। कह गये हैं मूढ़ता में। लेकिन बात पते की है। भूल से सच्ची बात निकल गयी है। कोई धर्म नहीं चाहता दुनिया से गरीबी मिटे, क्योंकि गरीबी मिटी, तो धर्म मिटा।

बर्ट्रेंड रसेल कहता था कि जब तक दुनिया में गरीबी है, बीमारी है, परेशानी है, बुढ़ापा है, विधवाएं हैं, रोग हैं, लोग सड़ रहे हैं--तब तक धर्म है। जिस दिन सभी लोग सुखी और प्रसन्न हो जायेंगे, स्वस्थ, युवा, बुढ़ापा समाप्त हो जायेगा विज्ञान के प्रयोगों के द्वारा और कोई बीमारी की खास जरूरत न रह जायेगी और शरीर के अंग भी जो सड़ जायेंगे, खराब हो जायेंगे, बदले जा सकेंगे, सुविधा से बदले जा सकेंगे; जिस दिन जीवन में लोगों के विवाह के कारण पैदा हुए उपद्रव नहीं होंगे; जिस दिन समाज संपन्न, प्रसन्न, आनन्दित होगा, स्वस्थ होगा, प्रेम मुक्त होगा--उस दिन धर्म की क्या जगह रह जायेगी ?

बर्ट्रेंड रसेल की बात में भी सचाई है। वह करपात्री से ठीक उल्टी बात है। अगर करपात्री कहते हैं, 'गरीब चाहिए तो धर्म बचेगा', तो फिर बर्ट्रेंड रसेल बिलकुल ठीक कहते हैं कि 'गरीबी मिटी कि धर्म मिटा।' मदर टेरेसा करपात्री से राजी होंगी।

सारी दुनिया के धार्मिक आदमी राजी हैं इस बात से कि दुनिया में परेशानी रहनी चाहिए, दुख रहना चाहिए, नहीं तो क्या होगा धर्म का ? अरे जीवन में दुख है, यही समझा-समझा कर तो लोगों को कहते हैं कि 'आवागमन से छुटकारा पाओ भाई, जीवन में दुख है।' जीवन में सुख ही होगा और तुमसे कोई आकर कहेगा, 'भैया आवागमन से छुटकारा पाओ', तो तुम कहोगे : 'किसलिए ? हम तो बड़े सुखी हैं ! काहे को आवागमन से छुटकारा पायें ? तुम्हें दुख हो, तुम पा लो। हम आनंदित हैं।'

तुमसे कोई आ कर कहेगा कि स्वर्ग में बड़ा रस है, शराब के चश्मे बहते हैं, सुंदर स्त्रियां हैं। तुम कहोगे कि यहीं मौजूद हैं, क्या जरूरत स्वर्ग वगैरह जाने की ? और

शराब के ही चश्मे के लिए जा रहे हो न, तो यहां हमने अच्छी से अच्छी शराब बना ली है, अब वहां क्या करेंगे जा कर ? वहां पता नहीं, बाबा आदम के जमाने की शराब... होगी बिलकुल ठर्रा ! उसको पीयेगा कौन ? और स्त्रियां भी वहां की बिलकुल गयी-गुजरी होंगी ! आदिवासी समझो। लाख तुम मेनका कहो, उर्वशी कहो; मगर उनके ढंग-ढौल सब गड़बड़ होंगे। आधुनिक स्त्री जब मौजूद हो, स्वस्थ स्त्री मौजूद हो, स्वस्थ पुरुष मौजूद हों, क्या करना जा कर तुम्हारे बैकुंठ में ? सच तो यह है, बैकुंठ में आंदोलन चलेगा कि लोग कहेंगे कि भइया, हमें पृथ्वी पर जाना है, कि हमें यहां रहना ही नहीं !

मैंने सुना है कि ओनासिस जब मरा...। ओनासिस यूनान का, समृद्धतम व्यक्तियों में से एक था, जिसने राष्ट्रपति कैनेडी की विधवा जेकलीन से विवाह किया था। और भी बहुत विवाह किये थे। उसके पास अपने द्वीप थे, अपने बड़े-बड़े जहाज थे। मेरे सामने 'मुक्ता' बैठी है, मुक्ता उसे जानती रही होगी। मुक्ता भी ओनासिस की दुनिया से ही आती है। उसके पिता भी एक बहुत बड़े जहाज के मालिक थे--जहाज कंपनी के। शायद मुक्ता का ओनासिस से कोई पारिवारिक संबंध भी रहा होगा। वे एक ही वर्ग के लोग हैं।

ओनासिस जब मरा तो कहते हैं, जब वह स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा, तो सेंट पीटर से उसने पूछा कि 'भई पहले...इसके पहले कि मैं प्रवेश करूं, जरा मैं जानकारी चाहता हूं : स्त्रियां ढंग-ढौल की हैं कि नहीं ?' सेंट पीटर ने कहा कि 'आप हैं कौन ? आपकी शक्ल से ऐसा लगता है, अखबारों में देखी है आपकी शक्ल, आप ओनासिस तो नहीं हैं?

कहा, 'मैं ओनासिस हूं।'

उसने कहा कि 'फिर जरा मुश्किल है। आपने इतनी सुंदर स्त्रियां देखी हैं, इतनी सुंदर स्त्रियों के साथ रहे हैं कि यहां की स्त्रियां आपको जरा पुराने ढर्रे की मालूम पड़ेंगी। हैं तो, मगर उनका ढंग-ढौल पुराना है।'

'शराब वगैरह ?'

उसने कहा कि 'अगर शुद्ध असली फ्रेंच शराब चाहिए हो, तो यहां कहां !' तो उसने कहा, 'मकान वगैरह, रहने की सुविधा वगैरह ?'

उन्होंने कहा कि 'सब हैं। मगर सब पुराने ढर्रे की हैं। अभी यहां आधुनिक ढंग के बाथरूम नहीं बने। अभी तो नदी में स्नान करो, वहीं कपड़े सुखा लो, और मजा करो।'

ओनासिस ने कहा कि 'यह मामला क्या है ! हम तो स्वर्ग की बड़ी बातें सुनते रहे !'

सेंट पीटर ने कहा, 'आपकी मर्जी हो तो अंदर आ जाओ। एक-दो-चार दिन देख लो। मगर मैं आप से इतना कहे देता हूं कि आपको यहां कुछ जंचेगा नहीं।'

और यह बात कहानी नहीं है, यह बात सच है। ओनासिस जैसा आदमी जायेगा तुम्हारे स्वर्ग में, क्या जंचेगा ? आखिर तुम दे ही क्या सकते हो स्वर्ग में ? जो विज्ञान

यहां दे सकता है, वह तुम्हारे स्वर्ग में भी नहीं मिल सकता । तुम्हारा स्वर्ग बहुत दकियानूसी है । अभी वहां विज्ञान पहुंचा कहां ! अभी वहां एयरकंडीशनिंग तक नहीं पहुंची ! बैठे रहो कल्प-वृक्ष के नीचे, और खोपड़ी पर फल वगैरह गिर जाये, तो और अस्पताल में भरती होओ !

मनुष्य सुखी होगा, तो निश्चित ही तुम्हारे तथाकथित धर्म मुर्दा हो जायेंगे। लेकिन मैं मानता हूं कि तब एक नये धर्म का उदय होगा, जिसकी मैं बात कर रहा हूं । क्यों न हम इस पृथ्वी को स्वर्ग बना लें ? क्यों हम आगे की बात करें ? क्यों न हम एक नये जीवन की रचना करें ?

इसलिए कम्यून कोई त्यागी-व्रतियों का कम्यून नहीं होगा । कम्यून होगा आनंदित लोगों का; आलसियों का नहीं, सर्जकों का । कम्यून तो स्वर्ग को धरा पर उतारने की चेष्टा है । इसलिए मैं उन लोगों को ही स्वीकार कर सकता हूं, जिनका समर्पण समग्र है और जो मुझमें और मेरे कम्यून में किसी तरह का फासला नहीं करते । वह चालबाजी नहीं चलेगी, कि हम आपको तो मानते हैं, लेकिन हम और कोई के नियम नहीं मान सकते । तो अब अगर यहां दस हजार लोग रहेंगे और प्रत्येक मुझको माने और मेरी खोपड़ी खाये चौबीस घंटे, तो वह नहीं चलेगा ।

यहां कुछ लोग हैं, मुझे पत्र ही लिखते रहते हैं कि हमें यहां रोक दिया गया, हमें यह नहीं करने दिया, हमें वह नहीं करने दिया गया ! आप रुकावट क्यों नहीं डालते ?

अगर मैं ऐसी छोटी-छोटी बातों में एक-एक बात की फिक्र करता फिरूं, तो फिर विनोबा जी जैसा आश्रम बना लेना चाहिए ! दस-पंद्रह आदमी हुए, तो विनोबा जी जा कर उनके कमरे में भी रोज देख आते हैं कि सफाई हुई कि नहीं । कमरे में ही नहीं, उनका पाखाना भी खुलवा कर देखते हैं कि सफाई हुई कि नहीं ! यह गोरखधंधा मुझसे नहीं हो सकता ।

तुम्हें यहां उत्तरदायित्व समझना होगा ।

स्वीकार हो तुम । पूरे मेरे प्रेम से स्वीकार हो । लेकिन ध्यान और प्रेम दोनों में तुम्हें गहराई में जाना होगा, तो ही इस बात की संभावना है कि तुम मेरे कम्यून की आधारशिला बन सको । और आज जो मेरे पास हैं, वे आधारशिला बनने वाले हैं। इसलिए उन पर बहुत कुछ निर्भर है । बाद में जो लोग आयेंगे, वे चुपचाप इन आधारशिलाओं पर ईंटें बनते जायेंगे । मगर अगर आधारशिलाएं गलत हुईं, तो फिर भवन निर्मित नहीं होगा । आधारशिला तो बहुत चुन कर रखनी होगी । फिर थोड़ी कमजोर ईंटें भी चल जायेंगी । मगर अभी तो कोई कमजोर ईंट नहीं चल सकती है ।

इसलिए तैयारी हो, दिनेश भारती . . . । और तुम्हारे बहाने मैं और बहुत लोगों को भी कह रहा हूं—कि तैयारी हो, तो ध्यान और प्रेम में पूरी तरह उतरने की तैयारी करो । समर्पण समग्र हो । और मेरे प्रति समर्पण का अर्थ होना चाहिए—कम्यून के

प्रति समर्पण । तभी वह समर्पण है । फिर द्वार खुले हैं । फिर तुम्हें कोई रोक नहीं रहा है ।

दूसरा प्रश्न : भगवान, आप ज्ञान के सागर हैं । ज्ञान में इस समय आप जैसा कोई दूसरा नहीं । कृपया मुझे भी कोई ऐसी साधना बतायें, जिसके करने से ऐसी प्रखर मेधा उपलब्ध होती हो । मैं आपका आभारी रहूंगा ।

पंडित तिलकधर शास्त्री !

हैं लुधियाना निवासी । एक तो पंजाबी और फिर पंडित—करेला और नीम चढ़ा ! बड़ा खतरनाक संयोग है । क्या करोगे प्रखर मेधा का भैया ? कौन-सी अड़चन आ गयी है ? कौन-सी मुसीबत टूट पड़ी है ?

लेकिन लोग मेधा का भी उपयोग अहंकार की तृप्ति के लिए करना चाहते हैं। उसका भी उपयोग यूं करना चाहते हैं, जैसे लोग धन का और पद का करते हैं । प्रखर मेधा ! और प्रखर मेधा तब उपलब्ध होती है, जब अहंकार नहीं होता । इसलिए बड़ी उलझन है । गणित बड़ा उल्टा है ।

तुम प्रखर मेधा चाहते ही इसलिए हो कि अहंकार को आभूषण मिल जायें, कोहेनूर तुम्हारे मुकुट में जड़ जाये । और प्रखर मेधा उपलब्ध तब होती है, उसकी पहली शर्त यही है कि अहंकार खो जाये । अहंकार खो जाये, तो मेधा तो प्रत्येक व्यक्ति में है । अहंकार के पत्थर, अहंकार की चट्टानें तुम्हारे भीतर के चेतना के झरनों को रोके हुए हैं ।

अब तुम कहते हो, 'आप ज्ञान के सागर हैं !'

पंडित तिलकधर शास्त्री, भूल में हो । न तो मैं सागर हूं, न बूंद । अरे बूंद भी खो गयी, सागर की तो बात ही छोड़ दो । मैं हूं ही नहीं, तो क्या सागर होऊंगा ? बूंद भी नहीं हूं । लेकिन ये हमारी आदतें स्तुति की, ये हमारी थोथी आदतें प्रशंसा की छूटती नहीं । ये हमारे खून में मिल गयी हैं ।

और भारत के पंडितों की तो आदत पुरानी हो गयी । ये भारत के पंडित क्या हैं, ये सब दरबारी किस्म के लोग हैं ! ये राजा-महाराजाओं की प्रशंसा के गीत गाते रहे सदियों से । इन्होंने ही राजा राम के गीत गाये । ये ही अकबर के दरबार में उपस्थित हो गये नवरत्न बन कर । ये ही विक्रमादित्य के गीत गाते रहे । इनसे तो तुम्हें जिसकी प्रशंसा करवानी हो, करवा लो । इनका धंधा ही यही है—प्रशंसा करना; दूसरों के अहंकार को फैलाना-फुलाना । और स्वभावतः, राजे-महाराजे फिर प्रसन्न हो जाते थे इनकी स्तुतियों से । और ये क्या-क्या स्तुतियां नहीं करते थे ! फिर कोई स्तुति में

सीमा मानता है ! जब स्तुति ही करने बैठे हैं, तो फिर कंजूसी क्या ! अरे मुफ्त की चीज, उसमें कुछ लेना-देना तो होता नहीं, बकवास ही करनी है । सिर्फ गर्म हवा । फुलाते गये फुग्गे को, फिर चाहे फूट ही क्यों न जाये ! फूट तो उसके भाग्य से, अपना क्या ले जायेगा ! मगर फुग्गे फुलाने में लोग बड़े कुशल हो गये हैं !

तुम किसी बदसूरत से बदसूरत स्त्री से कहो कि 'अहा, तेरा चेहरा चांद को भी मात करता है !' वह भी इनकार न करेगी । वह भी कहेगी कि 'तुम ही पहले आदमी हो, जो मुझे पहचाने । अब तक बहुत आदमी मिले, मगर आंख ही नहीं है लोगों के पास । सब अंधे हैं, सब सूरदास हैं । तुम देख पाये । तुमने पहचाना ।'

कर्कशा से कर्कशा स्त्री से कहो कि 'तुम्हारी वाणी क्या है, कोकिल-कंठी हो तुम ! हे कोकिल ! और वह देखो क्या मुस्कुराती है ! चाहे मुस्कुराहट खी-खी-खी की ही आवाज हो, कि भूतप्रेत डर जायें, कि भूत-प्रेत की छाती भी कंप जाये कि कौन माई आ गयी ! मगर तुम कहोगे, 'फूल झर रहे हैं ! अहा, क्या फूल झर रहे हैं ! हरसिंगार के फूल !'

लोग अपने भीतर-भीतर ऐसी बातें सोचते ही रहते हैं कि कोई कहे । और जब कोई कह देता है, तो फिर उनकी छाती फूल जाती है । और उनकी छाती फूल जाये, तब तक तुम जो झटक लो उनसे झटक लो !

ईरान के बादशाह ने संदेशवाहक भेजा अकबर के दरबार में । निश्चित ही जिसको संदेशवाहक चुना गया था, सारे दरबारी उसके खिलाफ हो गये । स्वभावतः दरबारियों में तो ईर्ष्या चलने ही वाली है—संघर्ष, जालसाजियां, षड्यंत्र । एक-दूसरे को गिरा देना, पटक देना । एक-दूसरे को खींच कर अलग कर देना, उसकी जगह अपनी बना लेना । यह तो स्वभावतः दरबार में तो यह होने ही वाला है । राजनीति किसी तरह की हो, वहां ये ही दांव-पेंच चलेंगे ।

तो जब उसको चुन कर भेजा गया, तो बाकी दरबारियों को तो आग लग गयी—इसको चुना गया, हमको नहीं चुना गया ! उन्होंने उसके पीछे जासूस लगा दिये कि जो-जो इसके संबंध में खबरें ऐसी हों जिनसे कि राजा भड़क जाये, इसका दुश्मन हो जाये, ऐसी हालत कर देना कि आते-आते राजा को इतना गुस्सा आ जाये कि आते ही इसकी गर्दन काट ले । और हालत उन्होंने ऐसी कर दी, क्योंकि उसने जा कर अकबर के दरबार में कहा कि 'आप पूर्णिमा के चांद हैं !'

बस, लोग आये थे पीछे, उन्होंने खबर भेज दी कि हद्द हो गयी, अपना आदमी और अकबर से कहा कि आप पूर्णिमा के चांद हैं !

अकबर ने कहा, 'अगर मैं पूर्णिमा का चांद हूं तो तुम हो तो सेवक ईरान के बादशाह के, फिर ईरान का बादशाह कौन है ? दो पूर्णिमा के चांद तो नहीं हो सकते ।'

उस दरबारी ने कहा, 'महाराज, कभी नहीं । आप पूर्णिमा के चांद हैं । ईरान का

बादशाह तो दूज का चांद समझिये ।'

खबर पहुंच गयी इस आदमी के पहले लौटने के । अकबर तो बहुत प्रसन्न हुआ, बहुत धन-दौलत दी । कई ऊंटों पर लाद कर धन-दौलत यह दरबारी लौटा । मगर ईरान के बादशाह ने अपनी तलवार निकाल ली जब उसने यह सुना कि इस शरारती ने मुझे दूज का चांद बताया है और अकबर को पूर्णिमा का चांद ! जब यह पहुंचा दरबार में, उसने तलवार निकाल ली, उसने कहा कि 'गर्दन उतार लूंगा तेरी, पहले जवाब दे । तूने क्यों अकबर को पूर्णिमा का चांद कहा और मुझे दूज का ?'

उसने कहा, 'महाराज, तलवार म्यान में रखिये, आप समझे नहीं । अकबर बूढ़ा है । आप बुद्धू हैं ? अरे दूज का चांद, इसका अर्थ होता है अभी बढ़ती-बढ़ती होती रहेगी । अभी विकास होना है । पूर्णिमा का चांद मतलब खात्मा ! अब मौत के सिवा कुछ भी नहीं है आगे ।'

प्रफुल्लित हो गया ईरान का बादशाह । तलवार तो म्यान में चली गयी और जितना धन यह लाया था, उससे दुगना धन इसको और भेंट किया । और उसने दरबारियों की तरफ देखा कि 'समझे ! अरे जिसको कला आती है, वह तो कहीं भी होशियारी कर लेगा !

ये पंडित सब राजाओं के दरबारों में पलते रहे । इनकी भाषा में गंदगी हो गयी ।

अब तुम कहते हो, 'आप ज्ञान के सागर हैं ।' मैं बूंद भी नहीं हूं । ज्ञान वगैरह यहां कहां ? महा अज्ञानी समझो मुझे । जानता क्या हूं ? जानने वाला ही नहीं बचा कोई । यह तो बांस की पोंगरी है—पोली पोंगरी । अगर गीत हैं तो परमात्मा के, मेरे कुछ भी नहीं । अगर कहीं कोई भूल-चूक होती हो तो वह मेरी बांस की पोंगरी के कारण होती होगी । अगर स्वर में कोई बाधा पड़ती हो, तो वह मेरे इरछे-तिरछेपन के कारण पड़ती होगी । लेकिन सब स्वर उसके हैं । बूंद भी वही, सागर भी वही; मेरा कुछ भी नहीं है ।

तुम मुझसे ऐसी बातें पूछ रहे हो कि मैं तुम्हें कोई तरकीब बता दूं, जिससे तुम्हारी स्मृति अच्छी हो जाये, तुम्हारी मेधा प्रखर हो जाये, तुम्हारी बुद्धि में तेज और चमक आ जाये, कि तुम भी चमको सारी दुनिया में । मगर ध्यान रखना, मुझको सिवाय गालियों के और कुछ मिलता नहीं ! मेरे जैसे चमकने के लिए तैयारी चाहिए । मेरे जैसे चमकने के लिए हजार तरह की गालियां जगह-जगह से गालियां ! मुझ जैसी मस्ती चाहिए कि गालियों में मजा लेता हूं ! गालियों में गीत खोज लेता हूं ! गालियां यूं सुनता हूं, जैसे मेरी प्रशंसा में गीत गाये जा रहे हों । यह कोई सस्ता सौदा नहीं है ।

और स्मृति तो मेरी कुछ अच्छी है नहीं । सब भूल-भाल जाता हूं । मगर फिक्र किसको पड़ी है ! जब अपना कुछ हिसाब ही न रखा, सब फिक्र ही उस पर छोड़ दी, तो अब वह जाने । जो वेद में नहीं है, वेद में बता देता हूं ! अपना क्या जाता है ? हो तो ठीक, न हो तो ठीक ! हो तो अच्छा, न हो तो जोड़ लेना । इस उपनिषद का उस

उपनिषद में कर देता हूं। होश किसको है! यहां तो मस्ती की दुनिया है। यहां कहां स्मृति वगैरह?

मैंने एक दिन सरदार विचित्तर सिंह से पूछा, 'भापे, महाभारत की कथा तो सुनाओ।'

विचित्तर सिंह बोले, 'सुण पुत्तर!' बुजुर्ग आदमी हैं, मुझसे तो उम्र में दुगने हैं, तो उन्होंने ठीक कहा कि 'सुण पुत्तर! द्रौपदी दे पंज पुत्तर। इकदा नां युधिष्ठिर, एक अर्जन, एक भीम, एक और...और एक भुल गया!'

मैंने कहा, 'विचित्तर सिंह, गजब कर दिया! कम से कम तीन तो तुम्हें याद हैं! अरे तीन में तो सारा गणित पूरा हो जाता है! वही तो त्रिवेणी है। मुझे तो तीन भी याद नहीं थे। तुमने अच्छा बता दिया।'

मेरी कोई स्मृति तो है नहीं ठिकाने की। मेरा गणित भी बड़ा गड़बड़ है। कभी दो और दो तीन हो जाते हैं, कभी दो और दो पांच हो जाते हैं! मेरे तर्क का तो कुछ तुम ठिकाना ही न समझो। जो मौज हो, वह उसमें से मतलब निकाल लेता हूं। जब जैसी मौज हो। अरे कल जो कहा, आज गलत कह दूं। अभी-अभी जो कहा है, अभी-अभी बदल जाऊं! मैं तो क्षणजीवी हूं।

चंदूलाल जब छोटे ही थे, बच्चे ही थे, तो उनके मित्र नसरुद्दीन ने पूछा, 'चंदूलाल, आज तुम इतने खुश क्यों हो?'

चंदूलाल ने कहा, 'आज हमारे यहां लड़का पैदा होगा।'

नसरुद्दीन ने कहा, 'तुम्हें कैसे मालूम हुआ?'

चंदूलाल ने कहा, 'पिछले साल मेरी मम्मी के पेट में दर्द हुआ था, तो लड़की पैदा हुई थी; इस बार मेरे डैडी के पेट में दर्द है, स्वभावतः...। साफ गणित है, तर्क साफ है। अरे जब मम्मी के पेट में दर्द हुआ और बेटी पैदा हुई, तो जब डैडी के पेट में दर्द हो रहा है तो लड़का ही पैदा होगा, और क्या पैदा होगा?'

ऐसा ही मेरा गणित, ऐसा ही मेरा तर्क।

एक फोटोग्राफर और सरदार विचित्तर सिंह साथ-साथ किसी बगीचे में बैठे थे। विचित्तर सिंह बोले, 'तबीयत गार्डन-गार्डन हो गयी!' अर्थात बाग-बाग हो गयी! फोटोग्राफर तो बहुत चौंका, क्या गजब की अंग्रेजी बोल रहे हैं! क्या बाग-बाग का गार्डन-गार्डन, क्या अनुवाद किया! ऐसी ही तुम मेरी भाषा समझो। इतने में ही एक नीग्रो वहां से निकला। उसे देख कर विचित्तर सिंह ने कहा, 'देख भाई फोटोग्राफर, देख, अरे निगेटिव जा रहा रहा है!'

तुम मेरी बातों में मत आना। मैं कोई ढंग का आदमी नहीं!

पंडित तिलकधर शास्त्री, तुम भी कहां यहां ज्ञान का सागर खोज रहे हो! कहां की प्रखर बुद्धि, कहां की मेधा? यहां मौज है, यहां मस्ती है। यहां रिंदों की जमात है पियक्कड़ों की दुनिया है। ये सब बातें यहां नहीं।

एक बस के टिकिट काउंटर के बाहर दो नोटिसें टंगी थीं—एक 'महिलाओं के लिए'; दूसरी, 'कृपया क्यू में आइये'। सरदार विचित्तर सिंह ने देखा। एक ही बार में पढ़ गये: 'महिलाओं के लिए कृपया क्यू में आइये।'

ऐसा ही मेरा पढ़ना-लिखना है! कुरान में बाइबिल पढ़ जाता हूं, बाइबिल में कुरान पढ़ जाता हूं!

यहां तो मिटना हो, तो कुछ रास्ता बन सकता है। यहां मेधा को प्रखर वगैरह करने का कोई उपाय नहीं है। यहां तो डूबना हो, तो कुछ हो सकता है।

मगर पंडितों की अपनी तकलीफें हैं। डूबने से तो वे डरते हैं। अहंकार छोड़ने से तो घबड़ाते हैं। उनका तो सारा सोचना-समझना एक ही चिंता का है कि किस तरह और-और आभूषण जोड़ लें।

एक दूसरे पंडित ने पूछा है, 'भगवान, मुझे बड़ा दुख हुआ जब आपने पंडित मनसाराम शास्त्री के उत्तर में कहा कि यह कोई धर्म-चक्र-प्रवर्तन नहीं है, बल्कि मौज-मस्ती का मेला है, मयकदा है। क्या सृजन और क्रांति लाने के लिए मौज-मस्ती की आवश्यकता है या अथक साधना और श्रम की? नये मनुष्य का आगमन कैसे होगा?'

पूछने वाले हैं नरेंद्र वाचस्पति।

क्या तुम सोचते हो, मौज और मस्ती आसान बात है? मौज और मस्ती अथक साधना और श्रम से मिलती है। उदास होना हो, तो न श्रम की जरूरत है, न साधना की जरूरत है।

एक पादरी समझा रहा था नये-नये दीक्षित हुए पादरियों को—जो कि धर्म प्रचार के लिए जाने वाले थे—आखिरी सुझाव दे रहा था कि 'जब तुम ईश्वर के राज्य की बातें करो तो आकाश की तरफ देखना। आंखें अहोभाव से भर जायें। चेहरा दमदमाता हुआ हो। ओठों पर मुस्कुराहट हो। आनन्द ही आनन्द झलके! जब तुम स्वर्ग शब्द का उपयोग करो, तो इस तरह की भाव-भंगिमा प्रगट करना, तब लोग समझेंगे।'

एक पादरी ने खड़े होकर पूछा, 'और जब नर्क की बात करनी हो?'

तो उसने कहा कि 'उस हालत में तुम जैसे हो ऐसे ही खड़े हो जाना। तुम्हें देख कर ही नर्क समझ में आ जायेगा!'

नरेंद्र वाचस्पति, मेरे लिए मौज और मस्ती ही धर्म-चक्र-प्रवर्तन है। मेरे लिए लोगों को परमात्मा को पिला देना ही, शराब की तरह पिला देना ही धर्म-चक्र-प्रवर्तन

है। मगर तुम्हें धक्का लगा होगा। तुम्हें दुख हुआ होगा।

कुछ लोग तो दुखी होने को तैयार बैठे हैं! मनहूसी शक्लें हैं उनकी। उन्हें तो मौका मिल जाये दुखी होने का, तो छोड़ते नहीं। यहां तक आ कर दुखी हो जाते हैं, तो हद्द हो गयी! यहां, जहां दुख की कोई बात ही नहीं, जहां सुख ही सुख की चर्चा है! लेकिन यहां भी वे अपनी तरकीबें खोजते रहते हैं कि दुखी कैसे होना। त्याग-तपश्चर्या, साधना, अथक साधना, श्रम!

तुम्हारी मर्जी भैया, पत्थर तोड़ो! सिर के बल खड़े रहो! भूखे मरो! तुम्हें जो करना हो, करो। मगर मेरे लिए तो साधना सिर्फ एक है कि तुम्हारे जीवन में जितना आनंद झर सके, तुम्हारा जीवन जितना प्रफुल्लित हो सके, तुम्हारे प्राणों के फूल जितने खिल सकें। और एक ही श्रम है। मैं उसको ही श्रम कहता हूं, जिससे तुम्हारा सहस्रदल-कमल खुल जाये, तुम्हारी सुगंध बिखर जाये, तुम्हारा दीया जले, रोशनी झलझला उठे। और ऐसा ही नहीं कि तुम्हारा ही दीया जले; दीये से दीये जलते जायें, दीवाली हो जाये।

मेरी बातों को समझने की कोशिश करो। दुखी होना हो, तुम्हारी मर्जी। और ज्यादा धक्का लग जाये, तो ससून हास्पिटल है, वहां भर्ती हो जाना! चिकित्सा करवा लेना। यहां दुर्घटनाएं तो कई होती हैं। पंडितों को अकसर हो जाती हैं। अब तुम वाचस्पति हो, खतरा है ही। यहां पंडितों की जगह नहीं। यहां पंडितों की गर्दन कट जाती है। देखा, पंडित मनसाराम की कटी! अभी पंडित तिलकधर की कटी, अब तुम फंस गये!

नये मनुष्य का जन्म ही मौज और मस्ती से होगा। पुराना मनुष्य सड़ा-गला मनुष्य था। वह जी लिया खूब साधना करके, खूब श्रम करके, उदास हो कर। तपश्चर्या, त्याग, व्रत उसकी आधारशिलायें थीं। उस मनुष्य ने मनुष्य-जाति को कुछ भी नहीं दिया। न फूल खिले, न दीये जले। न होली हुई, न दीवाली हुई।

यहां तो हम एक नयी ही मनुष्य की जन्म की प्रक्रिया को निर्मित कर रहे हैं, कि हर दिन होली, हर दिन दीवाली! यह तो एक बगिया है, जहां फूल पर फूल खिलने हैं।

तो मैं फिर दोहरा दूं कि हमारा तो धर्म-चक्र-प्रवर्तन यही है: मौज हो, मस्ती हो। मंदिर नहीं चाहिए, मयकदा चाहिए। तीर्थ नहीं चाहिए--मधुशालाएं। और यहां साकी इकट्ठे हैं और पिलाने का पूरा आयोजन है। अब तुम ओंठ सी कर बैठे हो, तुम्हारी मर्जी। तुम हकदार हो, दुखी रहना चाहो दुखी रहो। तुम मालिक हो, आनंदित होना चाहो आनंदित हो जाओ। स्वर्ग और नर्क दोनों के द्वार खुले हैं, जिसमें प्रवेश करना हो।

आज इतना ही।

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक २९ जुलाई, १९८०

जीवन्त अद्वैत

पहला प्रश्न: भगवान! मार्टिन बूबर को पढ़ते हुए ऐसा लगा कि वे हसीदी साधना द्वारा बुद्धत्व के करीब पहुंचे हुए एक महापुरुष थे। उन्होंने जीवन के आध्यात्मिक और भौतिक दोनों पहलुओं को स्वीकार करता हुआ यहूदी मानवतावाद पर खड़ा हुआ एक संघ बसाना चाहा, लेकिन यहूदियों ने ही उनका इनकार कर दिया। और खास कर आइसमन और अरब के सिलसिले में तो इजरायल ने उन्हें देशद्रोही सिद्ध करने की कोशिश की, जबकि वे सिर्फ बदला लेने के बजाय क्षमा और मैत्री साधने को कह रहे थे। अपने ही देश में निंदित रहे, जबकि दुनिया भर के लोग, खासकर ईसाई, उनसे प्रभावित थे।

भगवान, कच्छ में बसते हुए हमारे अपने कम्यून के संदर्भ में इस पर कुछ कहने की अनुकंपा करें।

अजित सरस्वती!

मार्टिन बूबर निश्चय ही एक महापुरुष थे, लेकिन महापुरुष ही--बुद्धत्व के करीब जरा भी नहीं। करीब तो करीब--दूर भी नहीं! बुद्धत्व के आयाम से बिलकुल अछूते। महापुरुष थे, नैतिक अर्थों में। धर्म का उनके जीवन में कोई अनुभव नहीं था। धर्म का दीया उनके प्राणों में जला नहीं था। सोचा था बहुत; साफ-सुथरा था उनका चिंतन; तर्क-सरणी स्पष्ट थी। मगर सोच-विचार सोच-विचार है। न उससे पेट भरता है, न प्यास बुझती है।

कितने ही सुंदर शब्द क्यों न हों, शब्द कोरे शब्द हैं; उनमें कोई प्राण नहीं होते। शब्द व्यक्ति को पण्डित बना सकते हैं--प्रज्ञावान नहीं।

मार्टिन बूबर नैतिक चिंतना के धनी थे। उन्होंने नैतिक सोच-विचार के आधार पर क्षमा और मैत्री को जीवन के बहुमूल्य आदर्श माना था। लेकिन बुद्ध और महावीर

ने सोच-विचार से ये निष्कर्ष नहीं लिये थे। इन निष्कर्षों का उद्गम अलग-अलग है।

बुद्ध और महावीर ने उस परम अनुभूति से, जहां व्यक्ति विराट में लीन हो जाता है, जहां व्यक्ति शून्य हो जाता है और पूर्ण की अभिव्यक्ति होती है; जहां व्यक्ति तो मिट जाता है, उसकी तो कब्र बन जाती है, लेकिन उसकी कब्र पर पूर्ण के फूल खिलते हैं; उस अनुभूति से यह निचोड़ पाया था, यह इत्र उपलब्ध किया था, यह सुगंध पायी थी--कि जब हम अलग-अलग नहीं हैं, तो कैसा बैर, कैसा विरोध ! किससे लड़ना है ? किसको मारना है ! किससे बदला लेना है ! यह तो ऐसे ही होगा, जैसे बायां हाथ दायें हाथ को मारे। जैसे बायां हाथ दायें हाथ को तोड़ डाले। ये दोनों हाथ मेरे हैं। इन दोनों हाथों में मैं समाया हुआ हूं।

छोटे-छोटे बच्चे अकसर ऐसा करते हैं कि अगर उनके बायें हाथ से कोई चीज गिर गयी और टूट गयी, इतने गुस्से में आ जाते हैं कि एक चपत लगा दी बायें हाथ को ! बच्चों को क्षमा किया जा सकता है; बच्चे हैं ! लेकिन आश्चर्यों का आश्चर्य तो यह है : हमारे बूढ़े भी बच्चे हैं ! उम्र बढ़ जाती है शरीर की, आत्मा जैसे बढ़ती ही नहीं ! आत्मा जैसे पैदा ही नहीं होती !

जार्ज गुरजिएफ ठीक कहता था कि 'सभी लोगों में आत्मा नहीं होती; सिर्फ आत्मा की संभावना होती है। आत्मा तो कभी-कभी किसी व्यक्ति में होती है--जिसने अपनी संभावना को वास्तविकता बना लिया।'

मार्टिन बूबर ने सोचा-विचारा। और जो भी सोचेगा-विचारेगा, पायेगा : मैत्री अच्छी चीज है, शत्रुता बुरी चीज है। प्रेम शुभ है, घृणा अशुभ है। और व्यक्ति को शुभ के अनुसार चलना चाहिए। गलत को छोड़ो, सही को पकड़ो।

नीति की सारी आधारशिला यही है : यह छोड़ो, यह पकड़ो। और धर्म की ? 'न कुछ पकड़ो, न कुछ छोड़ो; अपने में ठहरो।' ये बड़े भिन्न आयाम हैं।

और साधारणतः नैतिक व्यक्ति महापुरुष मालूम होगा, क्योंकि तुम्हारी चिंतना से उसकी चिंतना का तालमेल बैठेगा। तुम्हें भी लगता है कि गलत क्या है, सही क्या है। जिसके पास भी थोड़ा-सा मस्तिष्क है, जो सोच सकता है, उसे यह बात दिखाई पड़ने लगती है कि क्या करने योग्य है, कर्तव्य है; और क्या करने योग्य नहीं है--अकर्तव्य है। लेकिन इससे जीवन रूपान्तरित नहीं होता। तुम अगर चेष्टा भी करके अपने को सही-सही ढांचे में ढाल लो, तो भी वह जो गैर-सही है, तुम्हारे भीतर मौजूद होता है। और वह जो गैर-सही है, आज नहीं कल प्रतिकार लेगा। जिसको दबाया है--उभरेगा। तुम्हारे सिर पर चढ़ कर बोलेगा। उससे छुटकारा नहीं है ! पहले तो उसे दबाना भी आसान नहीं है।

संत अगस्तीन ने कहा है कि 'जो ठीक है--जो मैं जानता हूं कि ठीक है--वह मैं कर नहीं पाता। और जो गलत है--जो मैं जानता हूं कि गलत है--वही मैं करता हूं।

हे प्रभु ! मुझे मुझसे बचा।' संत अगस्तीन की इस प्रार्थना में समस्त नैतिक व्यक्तियों की विडम्बना प्रगट होती है।

मालूम तो है कि ठीक क्या है ! किसको मालूम नहीं ? और किसको मालूम नहीं कि गलत क्या है ! सभी को मालूम है। हवा में ही सिद्धान्त तैर रहे हैं ! बचपन से ही हरएक की छाती पर सिद्धांत लादे जा रहे हैं। सबको पता है। लेकिन फिर भी उससे जीवन कहां गतिमान होता है ? कहां जीवन रूपान्तरित होता है ?

मार्टिन बूबर अगर बुद्धत्व के करीब पहुंचते--करीब भी पहुंच जाते--तो जो पहली बात मिटती, वह तो यहूदी होने का भाव मिटता। वह नहीं मिटा। वह जीवन भर नहीं मिटा। वे कट्टर यहूदी थे। लेकिन चूंकि सोच-विचार वाले व्यक्ति थे--उन्होंने अपने यहूदी होने को भी थोड़ा रंग दिया था; उसको 'यहूदी मानवतावाद' कहते थे ! लेकिन 'मानवतावाद' और 'यहूदी' इनमें तालमेल नहीं है; इनमें विरोध है।

यह वैसा ही विरोध है, जैसा महात्मा गांधी के जीवन में था। वे भी मानवतावादी थे। मगर गहरे में वह मानवतावाद हिंदू-धर्म का पर्यायवाची था। यूं तो कहते थे कि कुरान में भी वही है, गीता में भी वही है। मगर गीता को अपनी 'माता' कहते थे। कुरान को अपना 'पिता' नहीं कहा ! पिता दूर--चाचा भी नहीं कहा ! यूं तो रोज उनके आश्रम में प्रार्थना दोहराई जाती थी : 'अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान।' लेकिन जब गोली लगी, तो 'अल्लाह' नहीं निकला मुंह से। निकला--'हे राम !' वह राम बहुत भीतर बैठा है ! वह हिंदू होने की बात जड़ तक व्याप्त हो गयी है। तो संवारा, सुधारा, लीपा-पोता। मगर बात हिंदू की ही रही। मंदिर हिंदू का ही रहा। उस पर कुछ आयतें कुरान की भी लिख दीं, और कुछ वचन धम्मपद के भी लिख दिये !

मगर यह बात भी ध्यान रहे कि कुरान की वे ही आयतें गांधी ने चुनी थीं, जो गीता से मेल खातीं। जो वस्तुतः ऐसा लगता है कि गीता का ही अनुवाद है ! अरबी में--संस्कृत में नहीं है। धम्मपद से भी उन्होंने वे ही वचन चुने थे, जो गीता की ही प्रतिध्वनि हैं। बाइबिल से भी उन्होंने वे ही सुभाषित संकलित कर लिए थे, जो गीता में ही मिल जाते। लेकिन जो बात भी गीता के विपरीत पड़ती थी, गांधी ने कभी न तो कुरान से चुनी, न बाइबिल से चुनी, न धम्मपद से चुनी। वह बात तो मद्दे-नजर कर दी। वह बात तो जैसे है ही नहीं--ऐसा मान कर चले। यह निश्चित ही उदार हिंदूवाद है !

नाथूराम गोडसे ने, जिसने उन्हें गोली मारी, उसका हिंदूवाद अनुदार है। गांधी का हिंदूवाद उदार है, मानवतावादी है। लेकिन जहर को कितना ही उदार करो, और उसको कितने ही सुगंधित बोतलों में रखो, रंगीन बोतलों में रखो, और चाहे उस पर अमृत का ही लेबिल क्यों न लगा दो, तो भी जहर जहर है। और मेरे हिसाब से तो यही

उचित है कि जहर की बोतल पर 'जहर' ही लिखा हो, उससे धोखा नहीं होता। जहर की बोतल पर 'अमृत' लिखना ज्यादा खतरनाक है।

मैं तो कहूंगा : नाथूराम गोडसे साफ-सुथरा आदमी है। सीधा-सादा। जैसा है, वैसा है। बुरा तो बुरा। भला तो भला। उसने कुछ आवरण नहीं ओढ़ा है। उस अर्थ में नाथूराम गोडसे ज्यादा ईमानदार है; महात्मा गांधी उतने ईमानदार नहीं।

यूं मैं नहीं कह रहा हूं कि जान कर वे बेईमान हैं। जान कर वे बेईमान नहीं हैं। अनजाने बेईमान हैं। उन्हें शायद साफ-साफ भी नहीं है कि वे जो कह रहे हैं, कर रहे हैं, वह वही है। उसमें कुछ भी भेद नहीं है। थोड़ा संस्कारशील रूप है उसका। थोड़े सुंदर आभूषण पहना दिये हैं ! थोड़े बाल काट-छांट दिये हैं। थोड़े वस्त्र नये कर दिये हैं। मगर बात वही की वही है; उसमें जरा भी भेद नहीं है। मगर अब ज्यादा खतरनाक हो गयी, क्योंकि ज्यादा लोगों को धोखा दे देगी। इसमें कुछ मुसलमान भी फंसेंगे; इसमें कुछ जैन भी फंसेंगे; इसमें कुछ बौद्ध भी फंसेंगे। और इस आशा में फंसेंगे कि यह कोई मतवाद नहीं है; यह कोई धर्मांधता नहीं है। मगर यह शुद्ध धर्मांधता है। सिर्फ इसके आवरण और हैं।

मार्टिन बूबर में मुझे भी रस है, लेकिन उससे मैं राजी नहीं हूं। आदमी अच्छा था, अच्छी भावनाओं का था, और जीवन भर चेष्टा की ढंग से जीने की। मगर आधार गलत थे। और आधार गलत हों, तो तुम मंदिर भी बनाना चाहो, तो क्या ! कैसे बनेगा ? आधार सही होने चाहिए। वह यहूदीवाद ही उसका जहर था। यूं उसकी चेष्टा जीवन भर रही कि किसी तरह जीसस को भी समाविष्ट कर ले।

यूं तो जीसस यहूदी घर में पैदा हुए; ईसाई तो नहीं थे ! तब तक ईसाइयत ही नहीं थी। कोई चर्च नहीं था। कोई पादरी नहीं था। पुरोहित नहीं था। ईसाई धर्म तो बहुत बाद में विकसित हुआ। तो यूं तो एक अर्थ में वे यहूदी ही रहे। यहूदी घर में ही बड़े हुए, यहूदी ही मरे। कुछ और होने का उपाय भी न था। लेकिन जीसस एक बुद्ध-पुरुष थे। इसलिए कभी यहूदी धर्म को छोड़ा नहीं। छोड़ने की कोई बात भी नहीं उठती थी। छोड़ कर कहीं कुछ और जाने का सवाल भी न था। लेकिन फिर भी जीसस यहूदी नहीं थे। नहीं तो यहूदी उन्हें सूली न देते !

जीसस ने बिना यहूदी धर्म को छोड़े, यहूदीवाद छोड़ दिया। यहूदियों का जो आग्रह था, कि हम ही चुने हुए व्यक्ति हैं परमात्मा के द्वारा, वह आग्रह छोड़ दिया। उस आग्रह के छोड़ने से ही यहूदी नाराज हो गये। लगा कि जीसस बगावत कर रहे हैं। और यहूदियों ने जीसस को अभी भी माफ नहीं किया। सूली पर चढ़ा कर भी माफ नहीं किया !

मार्टिन बूबर से यहूदी इसीलिए नाराज थे कि वह यहूदी मानवतावाद के नाम पर किसी तरह जीसस को भी समाविष्ट कर लेना चाहता था। वह यह चाहता था कि

जीसस और यहूदियों के बीच जो फासला पड़ गया है, वह तोड़ दिया जाये। इससे ईसाई प्रसन्न थे। क्योंकि ईसाई यह चाहते हैं कि जीसस की प्रशंसा हो। और जब कोई यहूदी जीसस की प्रशंसा करे, तो ईसाइयों के हृदय में आनंद की लहर दौड़ जाती है !

इस बात को भी तुम ठीक से समझ लो, कि यह दुनिया बड़ी अजीब है। एक हिंदू थे गणेशवर्णी। हो गये जैन ! जैन मुनि हो गये। तो हिंदुओं में तो उनकी बड़ी निंदा रही, मगर जैनियों में बड़ा सत्कार था। ऐसा सत्कार कि दूसरे सारे जैन मुनि फीके पड़ गये। ऐसी कुछ खास बात न थी उनमें, कि कोई दूसरे जैन मुनियों को फीका पड़ने की जरूरत आती। मगर एक खास बात थी, जो जैन मुनियों में न थी। जैनी घर में पैदा हुए थे और जैनी रहे। उनसे कुछ सिद्ध नहीं होता। लेकिन गणेशवर्णी का जैन हो जाना एक बात सिद्ध करता है कि हिंदू-धर्म गलत है, नहीं तो क्यों ऐसा महापुरुष हिंदू-धर्म को छोड़कर जैन होता !

एक सिक्ख साधु सुंदरसिंह ईसाई हो गये थे। तो तुम जान कर हैरान होओगे कि ईसाइयों में जितने ईसाई फकीर थे, उन सबको मात कर दिया साधु सुंदरसिंह ने ! क्योंकि कोई आदमी सिक्ख-धर्म को छोड़ कर ईसाई हो गया, इससे सिद्ध होता है : सिक्ख-धर्म गलत है ! और छोटा-मोटा आदमी नहीं, इतना महापुरुष ! फिर इस महापुरुष को खूब बड़ा करके बताना चाहिए। क्योंकि जितना यह बड़ा होगा, उतनी ही यह बात सिद्ध होगी कि सिक्ख-धर्म गलत था। यह अगर कोई छोटा-मोटा, ऐरा-गैरा नत्थूखैरा हो, तो ठीक है; छोड़ दिया होगा। क्या पता : समझ में भी इसके कुछ आया कि नहीं ! मगर यह महापुरुष होना ही चाहिए; इसको महापुरुष बनाना ही पड़ेगा ! इसको ऊंचे से ऊंचे शिखर पर बिठाना पड़ेगा। जितने ऊंचे शिखर पर बिठाओगे, उतना ही सिद्ध होगा कि देखो, इतनी अद्‌भुत प्रतिभा का व्यक्ति, नानक जैसी प्रतिभा का व्यक्ति––और सिक्ख-धर्म को छोड़ कर ईसाई हो गया !

सिक्ख भी माफ नहीं कर सके सुंदरसिंह को। और सुंदरसिंह एक दिन लापता हो गये ! आज तक उनका पता नहीं चला। इस बात की बहुत संभावना है कि सिक्खों ने उनका फैसला कर दिया ! खात्मा ही कर दिया। कुछ तय नहीं है, क्योंकि कुछ पता ही नहीं चल सका। मगर सिक्खों को हम जानते हैं कि वे तर्क तो क्या करेंगे ! तलवार निकाल लेते हैं !

लेकिन साधु सुंदरसिंह का खो जाना, मर जाना, या जो कुछ भी हुआ––सब अज्ञात है––उन्हें और बड़ा महापुरुष सिद्ध कर गया। ईसाइयों ने उनकी इतनी प्रशंसा की ! सारी दुनिया में प्रशंसा हुई।

गणेशवर्णी में कुछ खास खूबी की बात न थी। बस, इतनी खूबी थी कि वे हिंदू-धर्म को छोड़ कर आये। छोड़ कर आये, तो जैनियों ने उनको सिर पर उठा लिया !

तुम जान कर जरूर चकित होओगे कि ईसाइयों ने बहुत कोशिश की कि महात्मा

गांधी ईसाई हो जायें ! और कई दफा वे ईसाई होने के बिलकुल करीब पहुंच गये थे । कई बार विचार करने लगे थे : हो जाऊं । ईसाई उनमें उत्सुक थे, सिर्फ एक कारण से, कि अगर वे ईसाई हो जायें, तो कर दिया हिंदू-धर्म को उन्होंने चौपट ! सिद्ध कर देंगे, दुनिया के सामने कि देखो, हिंदुओं का श्रेष्ठतम महात्मा, महानतम व्यक्ति हिंदू परंपरा में जो कभी भी पैदा हुआ हो, वह भी ईसाई हो गया !

मुसलमान भी कोशिश करते थे कि वे मुसलमान हो जायें ! क्योंकि जब वे कहते थे : 'अल्ला-ईश्वर तेरे नाम !' तो वे कहते थे : 'फिर आप हिंदू क्यों हैं ? मुसलमान क्यों नहीं हो जाते ?' मुसलमान हो जाते, तो मुसलमान उनके प्रति ऐसी श्रद्धा प्रगट करते, जैसी उन्होंने कभी किसी के प्रति प्रगट नहीं की ! हिंदुओं को आग लग जाती। हिंदुओं को तो इतने ही से आग लग गयी थी कि उन्होंने 'अल्ला-ईश्वर तेरे नाम' कह दिया ! दोनों बराबर, एक कोटि में रख दिये ! हिन्दुओं को तो इतने से ही आग लग गई कि उन्होंने कुरान के साथ और गीता का उल्लेख कर दिया ! हिंदू क्षमा नहीं कर सके ।

महात्मा गांधी को मुसलमानों ने गोली नहीं मारी । ज्यादा संभावना यही हो सकती थी कि मुसलमान गोली मारते । अंग्रेजों ने गोली नहीं मारी । ज्यादा संभावना यही हो सकती थी कि अंग्रेज उनको गोली मारते । क्योंकि यही आदमी उपद्रव की जड़ था । इसको खत्म कर देते, तो शायद भारत की स्वतंत्रता के आंदोलन को ही वर्षों पीछे हटाया जा सकता था । उन्होंने गोली नहीं मारी । मारी गोली एक हिंदू ने ! क्योंकि हिंदू नाराज थे इस बात से कि तुम हमारी गीता के समकक्ष धम्मपद, कुरान और बाइबिल को रखते हो ! तुम हमारे कृष्ण के समकक्ष बुद्ध, महावीर, क्राइस्ट, मोहम्मद तक को रखते हो ?

जैन बहुत प्रसन्न थे । जैनों की संख्या थोड़ी है भारत में । लेकिन जितने जैन महात्मा गांधी के आंदोलन में जेल गये, अनुपात की दृष्टि से, उतना किसी समाज के लोग नहीं गये । क्यों ? जैनों को ऐसी क्या उत्सुकता जेल जाने की आ गयी थी ? और जैन ऐसे, कोई लड़ाकू लोग नहीं हैं ! कोई जेल वगैरह जाने में उन्हें आसानी नहीं हुई । लेकिन महात्मा गांधी ने 'अहिंसा परमोधर्मः—अहिंसा परम धर्म है', इसकी उद्घोषणा कर दी । इससे सिद्ध हो गया कि महावीर ठीक कहते हैं ।

महात्मा गांधी ने चूंकि यह कह दिया कि श्रीमद् राजचंद्र जैनियों के एक महापुरुष मेरे तीन गुरुओं में से एक हैं—इससे जैनियों के हृदय गद्गद् हो गये । ईसाई भी बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि बाकी दो गुरु ईसाई—टाल्स्टाय और थारो । और एक गुरु जैन ! हिंदुओं को चोट लगी । एक भी गुरु हिंदू नहीं ! दो ईसाई—और एक जैन ! जैन खुश थे । ईसाई खुश थे । सी. एफ. एन्ड्रयूज जैसा ईसाई गांधी के चरणों में आ कर बैठा था इसीलिए ।

और जैन तो मानते थे कि महात्मा गांधी जैन ही हैं एक अर्थ में । कहने मात्र को हिंदू हैं । अन्यथा अहिंसा को किसने इतनी ऊंचाई पर उठाया ? किसने इतना अहिंसा के लिए प्रचार किया ? किसने अहिंसा को एक जीवन-दर्शन बना दिया—बीसवीं सदी में ? महावीर के नाम को फिर से गुंजा दिया । तो जैन खुश थे; बहुत खुश थे ।

आदमी की खुशियां और दुख भी उनके मताग्रहों के कारण होते हैं !

यहूदी नाराज थे मार्टिन बूबर से । स्वभावतः । जैसे जैन मुझसे नाराज हैं । जितने जैन मुझसे नाराज हैं, उतना कोई मुझसे नाराज नहीं है । क्योंकि पहले जैनों ने मुझ पर बड़ी आशा बांधी थी । सब तरह से मुझे बांधने की कोशिश की थी, कि मैं जैन-धर्म का प्रचार करूं । उन्हें बड़ी आशा थी कि मेरे द्वारा जैन-धर्म विश्व के कोने-कोने तक पहुंचेगा । मैंने उनकी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया !

मैं किसी की आशाओं में बंधूं क्यों ? मेरे लिए तो जन्म केवल संयोग की बात है; उसका कोई भी मूल्य नहीं । धर्म कोई जन्म से नहीं मिलता । तो तुम जरा गणित को समझने की कोशिश करो ।

सबसे पहले मुझसे दिगंबर जैन नाराज हुए, क्योंकि मैं दिगंबर जैन घर में पैदा हुआ । श्वेतांबर जैन मुझसे नाराज जल्दी नहीं हुए । दिगंबर जैन सबसे पहले मुझसे नाराज हुए, क्योंकि वे सबसे निकट थे । उनको सबसे ज्यादा आशा थी कि मैं दिगंबर-जैन-धर्म का प्रचार करूंगा ! लेकिन श्वेतांबर मुझसे खुश थे । वे इसलिए खुश थे कि देखो, यह एक दिगंबर जैन और हमारे श्वेतांबर सम्मेलनों में भी आता है ! श्वेतांबर मुनियों को मिलता है । श्वेतांबर मुनियों से चर्चा-मशविरा करता है । श्वेतांबर प्रचार में सम्मिलित दिखाई पड़ता है ।

श्वेतांबर मुझसे प्रसन्न थे । दिगंबर नाराज होते गये । श्वेतांबर मुझसे प्रसन्न होते गये । लेकिन जल्दी ही उनको समझ में आया कि मैं किसी धर्म में बंधने वाला नहीं हूं । मैं किसी सीमा में बंधने वाला नहीं हूं । तब श्वेतांबर भी मुझसे नाराज हो गये !

अब दिगंबर और श्वेतांबर दोनों मुझसे समान रूप से नाराज हैं । श्वेतांबर और भी ज्यादा । क्योंकि दिगंबर तो काफी पहले नाराज हो चुके थे । बात पुरानी पड़ गयी । श्वेतांबर अभी-अभी तक आशा बांधे थे । अभी-अभी ताजा घाव है; भरा नहीं । इससे बड़े नाराज हैं !

उसके बाद मुझसे हिंदू नाराज हुए—बाद नाराज हुए । उसके बाद मुझसे मुसलमान नाराज हुए । ये वर्तुल के ऊपर वर्तुल हैं । उसके बाद मुझसे ईसाई नाराज हुए । पहले कैथोलिक ईसाई नाराज हुए । क्योंकि भारत में कैथोलिक ईसाइयों का प्रभाव है । अब मुझसे प्रोटेस्टेंट ईसाई भी नाराज हुए ! वे जर्मनी में हैं, मैं यहां बैठा हूं । मैं जर्मनी जाता नहीं । सब से अखीर में यहूदी मुझसे नाराज हुए ! क्योंकि अब यहूदी मेरे संन्यासी होने लगे आकर । भारत में जितने यहूदी तुम यहां पाओगे, किसी और जगह

पर नहीं पा सकते। अब मुझसे पारसी भी नाराज हो गए ! क्योंकि पारसी भी संन्यासी होने लगे।

मैंने जागतिक ढंग से लोगों को बिगाड़ने का आयोजन किया हुआ है ! तो जिन-जिन को बिगाड़ूंगा, वे-वे नाराज हो जायेंगे !

मार्टिन बूबर से यहूदी नाराज थे, ईसाई खुश थे। स्वभावतः। क्योंकि मार्टिन बूबर जीसस की प्रशंसा कर रहे थे और चाहते थे कि जीसस को यहूदी-धर्म आत्मसात कर ले; वापस आत्मसात कर ले। और यह यहूदी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। यह तो देशद्रोह है। यह तो धर्मद्रोह है। जिसको हमारे पुरखों ने फांसी दी, उसको यह आदमी कह रहा है कि वापस आत्मसात कर लो ! यह मानवतावाद के नाम पर अधर्म का प्रचार कर रहा है !

लेकिन ईसाइयों ने बहुत प्रशंसा की। उनको तो यहूदी-गढ़ में अपना एक साथी मिल गया।

यह यूं ही समझो कि जैसे रामायण में, जितने राम भक्तों ने रामायण लिखी है, उसमें विभीषण की खूब प्रशंसा की गयी है। लेकिन अगर रावण को मानने वाले कोई किताब लिखते, तो उसमें क्या विभीषण की प्रशंसा हो सकती थी ? उसमें वह दगाबाज, धोखेबाज, देशद्रोही ! स्वभावतः अपने भाई को भी धोखा दे गया ! दुश्मनों से जा मिला ! इससे बड़ा और क्या गर्हित कृत्य हो सकता है ?

लेकिन राम के भक्तों ने विभीषण को धार्मिक महात्मा सिद्ध करने की कोशिश की है। यह दुनिया का रिवाज है। इस रिवाज को समझोगे, तो अड़चन नहीं रह जायेगी।

यहूदियों की मौलिक मान्यता यही है कि वे ईश्वर के चुने हुए लोग हैं। उनके अलावा और कोई ईश्वर का चुना हुआ व्यक्ति नहीं है। वह जाति ईश्वर के द्वारा चुनी गयी है। और इसी मूर्खतापूर्ण बात ने उन्हें सदियों तक परेशान रखा है। उनकी यह अहंकार की घोषणा उनको जगह-जगह पीड़ित करवाई है। कितना उन्होंने सहा है ! लेकिन बड़ी अजीब प्रक्रिया है जीवन की।

तुम्हें जिस चीज के लिए जितनी कुरबानी देनी पड़ती है, तुम्हारे मोह उससे उतने ही ज्यादा हो जाते हैं। आदमी का गणित बहुत अजीब है ! जिस चीज के लिए तुम्हें जितनी कुरबानी देनी पड़े, वह उतनी महंगी हो गयी; उतनी कीमती हो गयी। और जो चीज तुम्हें मुफ्त मिल जाये, उसकी कौन फिक्र करता है ! मुफ्त मिली--मुफ्त गयी। क्या फिक्र !

यहूदियों ने तीन हजार साल निरंतर कुरबानी दी है। लाखों यहूदी मारे गये हैं, इस एक विचार के आधार पर, कि हम चुने हुए व्यक्ति हैं। इसको वे छोड़ नहीं सकते। यह क्या तुम मानवतावाद वगैरह की बातें कर रहे हो !

इसका मतलब यह है--मानवतावाद का अर्थ यह होता है कि सभी मनुष्य समान

हैं। कोई चुना हुआ नहीं है। कोई ईश्वर के द्वारा विशिष्ट रूप से चुना गया नहीं है।

जर्मनों ने इतनी बड़ी कुरबानी दी--अडोल्फ हिटलर के हाथों राजी हो गए अपने को बरबाद करने को--सिर्फ एक बात के आधार पर, कि अडोल्फ हिटलर ने उनसे कहा कि 'तुम ईश्वर के चुने हुए व्यक्ति हो। यह जो नार्डिक जाति है, ये जो शुद्ध जर्मन हैं, ये पैदा ही ईश्वर ने इसलिए किये हैं कि ये दुनिया पर राज्य करें।'

इसमें दोहरा प्रलोभन था। एक तो 'ईश्वर के द्वारा चुने गये लोग'--यह रस कौन न लेना चाहेगा ? और दूसरा : दुनिया पर राज्य करने का प्रलोभन। जर्मन जाति मरने को राजी हो गयी ! छोटी-सी जाति ने सारी दुनिया को हिला दिया। सारी दुनिया को इकट्ठा हो कर लड़ना पड़ा, तब भी बामुश्किल जीते। क्योंकि जो लड़ रहे थे, उनके पास ऐसा कोई बल न था; ऐसी कोई पागलपन की धारणा न थी, जैसी जर्मनों के पास थी।

तुम जान कर चकित होओगे यह भी कि जर्मनों से सिर्फ साथ बना जापानियों का। क्योंकि जापानी मानते हैं कि उनका मूल उद्‌गम सूर्य से हुआ। वे सूर्य देवता के पुत्र हैं ! जर्मन सम्राट सूर्य का वंशज है। वे विशिष्ट लोग हैं।

जर्मनी में और जापान में एक आंतरिक समझौता हो गया कि हम पश्चिम सम्हालते हैं, तुम पूरब सम्हाल लो। तुम पूरब के विशिष्ट लोग हो, हम पश्चिम के विशिष्ट लोग हैं। उन्होंने एक दूसरे की धारणा को स्वीकार कर लिया। उनमें तालमेल बैठ गया। बाकी सारी दुनिया को उनके खिलाफ लड़ना पड़ा। जापानी भी जिस ढंग से लड़े, कोई कभी नहीं लड़ा। जी-जान से लड़े। और जितनी बड़ी कुरबानी देनी पड़ती है, उतने ही आग्रह मजबूत होते चले जाते हैं। क्योंकि जितना खून सींचा हमने, उतना ही हमारा मोह प्रगाढ़ हो जाता है।

यहूदी कैसे मानवतावाद की बात मानें ?

तुम हिंदुओं से कहो कि मानवतावाद की बात मान लें। नहीं मान सकते हैं। क्योंकि हिंदू--सनातन धर्म है। और सब धर्म तो बाद में आदमियों द्वारा ईजाद किये गये। हिंदू-धर्म ईश्वर से अवतरित हुआ है ! वेद स्वयं ईश्वर ने रचे हैं। सारे अवतार हिंदुओं के घरों में पैदा हुए हैं। यह भारत-भूमि पुण्य-भूमि है; धर्म-भूमि ! यहां देवता पैदा होने को तरसते हैं !

हिंदू-धर्म ठीक यहूदियों जैसा ही भ्रांतियों से भरा हुआ धर्म है।

यह भी खयाल में रखना : यहूदी किसी को यहूदी नहीं बनाते। वे कहते हैं : यहूदी तो जन्म से होता है कोई व्यक्ति। ईश्वर ही किसी को यहूदी बनाये तो बनाये ! वैसे ही हिंदू भी किसी को हिंदू बनाना पसंद नहीं करते थे। यह तो आर्यसमाज ने ईसाइयों की नकल शुरू की और लोगों को हिंदू बनाना शुरू किया। हिंदू माफ नहीं कर सके आर्यसमाजियों को। सनातन धर्मी आर्य-समाजी को माफ नहीं कर सकता। इसका तो

यह अर्थ हुआ कि हम किसी को भी हिंदू बना सकते हैं ! तो फिर शूद्र को ब्राह्मण बना सकते हो । फिर जिसको तुम हिंदू बनाओगे, यह किस वर्ण का होगा ? वर्ण तो जन्म से होते हैं ।

समझो, कि एक ईसाई हिंदू बन जाये । यह ब्राह्मण होगा, शूद्र होगा, क्षत्रिय होगा, वैश्य होगा--क्या होगा ? इसको कहां रखोगे ? इसको किस कोटि में बिठाओगे ? हिंदू तो जन्म से होता है । हिंदू दूसरे धर्म को रूपान्तरित नहीं करता, वैसे ही जैसे यहूदी ।

यहूदी और हिंदुओं की मूढ़ताएं बड़ी समान हैं । ये दोनों ही धर्म किसी को रूपान्तरित नहीं करते । और ये दोनों प्राचीनतम धर्म हैं । इन दोनों ही धर्म से दुनिया के और दूसरे धर्म निकसित हुए हैं । यहूदियों से इस्लाम और ईसाइयत, और हिंदुओं से जैन और बौद्ध ।

जैन और बौद्ध दोनों दूसरों को अपने धर्म में निमंत्रित करते हैं । करना ही पड़ेगा । क्योंकि जो धर्म बाद में आये, वे आदमी कहां से लाते ? खुद महावीर हिंदू घर में पैदा हुए । जैनियों के चौबीस तीर्थंकर ही हिंदू घरों में पैदा हुए । बुद्ध हिंदू घर में पैदा हुए । अब इनको और बौद्ध और जैन कहां मिलेंगे ? इनको रूपान्तरण करना ही होगा ।

इसलिए स्वभावत: जैन और बौद्ध नहीं मानते कि धर्म जन्म से होता है । धर्म कर्म से होता है--जन्म से नहीं । स्वभावत:, उनका निहित स्वार्थ उसमें है । जन्म से होगा तो मारे गये ! यहूदी भी मानते हैं : धर्म जन्म से होता है ।

ईसाई और मुसलमान नहीं मानते, कि धर्म जन्म से होता है । कोई भी व्यक्ति मुसलमान हो सकता है, कोई भी ईसाई हो सकता है । और किसी को भी ईसाई बनाया जा सकता है, मुसलमान बनाया जा सकता है । सीधे-सीधे न बने, तो तलवार के बल से भी बनाया जा सकता है । प्रलोभन दिये जा सकते हैं--आर्थिक सुविधा-संपन्नता के । रिश्वत दी जा सकती है । लेकिन धर्म बदलाया जा सकता है । धर्म रूपान्तरित हो सकता है ।

जो-जो धर्म मानते हैं कि धर्म रूपान्तरित हो सकता है, उनका यह मानना ही बताता है कि वे बाद में पैदा हुए होंगे । और जो धर्म मानते हैं कि धर्म रूपान्तरित नहीं हो सकता, उनकी यह धारणा बताती है कि वे अत्यंत प्राचीन धर्म हैं । हिंदू और यहूदी दुनिया के अत्यंत प्राचीन धर्म हैं ।

प्राचीन धर्मों की कठिनाई यह है कि वे सिकुड़ते हैं--फैलते नहीं । वे मानवतावाद को स्वीकार नहीं कर सकते । नये धर्म फैलने को उत्सुक होते हैं, विस्तारवादी होते हैं । इसलिए वे मानवतावाद को जल्दी स्वीकार करते हैं । ईसाइयत मानवतावाद के लिए बिलकुल आतुर है । ऐसे ही जैन भी आतुर हैं; बौद्ध भी आतुर हैं । इस्लाम भी आतुर है ।

हिंदू और यहूदियों को छोड़ कर सब चाहेंगे कि सारी मनुष्यता एक ही झंडे के नीचे आ जाये । अच्छे-अच्छे बहाने खोजेंगे, सुंदर-सुंदर सिद्धांत निर्मित करेंगे, मगर पीछे

वही अभीप्सा है--साम्राज्य विस्तार की ।

मार्टिन बूबर को मैं निश्चित महापुरुष कहूंगा । लेकिन बुद्धपुरुष नहीं । महापुरुष और बुद्धपुरुष में मैं बुनियादी भेद करता हूं । महापुरुष हमारे ही जैसा व्यक्ति है । उसमें और हमारे बीच जो भेद हैं, वे परिमाण के हैं, मात्रा के हैं । हम कम जानते हैं, वह ज्यादा जानता है । शायद हम कम चरित्रवान हैं, वह ज्यादा चरित्रवान है । शायद हमारी जीवन-शैली उतनी सुंदर नहीं, जितनी उसकी जीवन-शैली है । शायद हमारे विचार उतने तर्कशुद्ध नहीं, जितने उसके विचार तर्कशुद्ध हैं । मगर हमारे और उसके बीच कोई गुणात्मक भेद नहीं है ।

बुद्धपुरुष और हमारे बीच गुणात्मक भेद होता है । वह और लोक का वासी है । हमारे बीच और उसके बीच कम-ज्यादा का फर्क नहीं होता; आयाम का भेद होता है ।

महापुरुष सोचने की ऊंचाइयां छूता है । बुद्धपुरुष निर्विचार की गहराइयां छूता है ।

मार्टिन बूबर को निर्विचार का कोई अनुभव नहीं था । मार्टिन बूबर की सबसे प्रसिद्ध किताब है--'मैं और तू' । इस किताब में मार्टिन बूबर ने अपने श्रेष्ठतम विचारों को संजो कर रख दिया है । यह उनकी वसीयत है । इसमें मार्टिन बूबर ने कहा है कि प्रार्थना का अर्थ है : 'मैं' और 'तू' के बीच संबंध । मैं यानी जीव और तू यानी परमात्मा । जब 'मैं' और 'तू' के बीच संवाद होता है, तो वही प्रार्थना है ।

कोई बुद्धपुरुष ऐसी बात नहीं कह सकता । कहां--प्रार्थना में न 'मैं' बचता न 'तू' बचता । अगर मैं यह किताब लिखूं तो इसका नाम होगा--'न मैं, न तू !' जब तक मैं है, जब तक तू है, तब तक कैसी प्रार्थना ? तब तक तो मैं-मैं, तू-तू है ! तब तक संवाद-विवाद होगा । जब न 'मैं' रही, न 'तू' रही, जब बूंद सागर में खो गयी, तब . . . ।

प्रार्थना कही नहीं जाती । मार्टिन बूबर सोचते थे : प्रार्थना डायलॉग है, संवाद है । न तो प्रार्थना डायलॉग है--न मोनोलाग । न तो संवाद, न एकालाप ! प्रार्थना शून्य आनंदभाव है, शून्य अनुग्रह-बोध है । शून्य में जलती हुई ज्योति है । न कुछ कहने को है, न कुछ सुनने को है ।

प्रार्थना ध्यान की पराकाष्ठा है । वह प्रेमी के द्वारा ध्यान को दिया गया नाम है । वह प्रेम की भाषा है । लेकिन जो कहा जा रहा है, वह तो वही है, जो ध्यान में अनुभव होता है । ध्यानी की भाषा में--निर्विकल्प समाधि । और प्रेमी की भाषा में--प्रार्थना । मगर इंगित एक ही सत्य की ओर ।

मार्टिन बूबर को कभी भी ध्यान का कोई अनुभव नहीं हुआ । यह सच है कि वे हसीदी फकीरों में उत्सुक थे । मगर उन्होंने साधना कभी की हो, ऐसा दिखाई नहीं पड़ता । इसके लक्षण नहीं मिलते । अंत:साक्ष्य नहीं है ।

उन्होंने हसीदी फकीरों के जीवन को खूब अध्ययन किया, गहराई से अध्ययन किया । उनके पिता को भी हसीदों में रुचि थी । इसलिए बचपन से ही उनके पिता

उनको हसीदी फकीरों के पास ले जाते थे।

और हसीद फकीर इस जमीन पर उन थोड़े से अनूठे लोगों में से एक हैं, जिनके जीवन में सुगंध होती है। जैसे बौद्धों में झेन फकीर, जैसे मुसलमानों में सूफी फकीर, वैसे यहूदियों में हसीदी फकीर!

इस लिहाज से जैन-धर्म गरीब है। उसके पास इनके मुकाबले कुछ भी नहीं है। हिंदू-धर्म भी गरीब है। उसके पास इनके मुकाबले कुछ भी नहीं। सिक्खधर्म भी गरीब है। न हसीद हैं, न सूफी हैं, न झेन फकीर हैं!

बौद्ध-धर्म ने अपनी पराकाष्ठा पायी झेन फकीरों में। 'झेन' शब्द आया है ध्यान से। ध्यान का ही रूपान्तरण है। चूंकि बुद्ध संस्कृत नहीं बोलते थे, पाली बोलते थे। पाली में ध्यान को 'झान' कहते हैं। और जब झान शब्द चीन पहुंचा, बोधिधर्म जब उसे चीन ले गया, तो झान को लिखने को चीन में कोई सुविधा नहीं। 'झ' के लिए चीन में कोई प्रतीक नहीं है। इसलिए चीन में उसे लिखा गया--'चान'। फिर चीन से यात्रा करता हुआ यह शब्द जापान पहुंचा। जापानी भाषा में वे ही प्रतीक होते हैं, जो चीनी भाषा में होते हैं। प्रतीकों में फर्क नहीं होता। लेकिन उच्चारण भिन्न होते हैं। जैसे कि हिंदी और बंगाली में शब्द बहुत से एक से होते हैं, मगर उच्चारण अलग होते हैं।

एक युवती मुझे मिलने आयी। उसका परिचय मुझ दिया गया : 'इसका नाम है--रोमा।' मैंने कहा, 'रोमा! नाम जरा अनूठा है। रोम के आधार पर रखा है?' जिसने परिचय दिया, उसने कहा, 'आप समझे नहीं। इसका नाम रमा है!' मगर बंगाली में 'रोमा'! रमा एकदम रोमा हो गयी! बंगाली हर चीज को गोल कर देते हैं--रसगुल्ला बना देते हैं! रसगुल्ला को भी रसोगुल्ला! एक गोलाई आ गयी। कहां रमा और कहां रोमा!

चीनी और जापानी में प्रतीक एक होते हैं, लेकिन उच्चारण भिन्न होते हैं। जिसको चीनी--प्रतीक वही रहेगा--उसको वह 'चान' पढ़ेगा, और जापानी उसको 'झेन' पढ़ेगा।

बुद्ध-धर्म ने अपनी पराकाष्ठा पा ली झेन में। यहूदी-धर्म ने अपनी पराकाष्ठा पा ली हसीदों में। इसलाम ने अपनी पराकाष्ठा पा ली सूफियों में।

इस अर्थ में जैन गरीब रह गये। और उसका यह कारण था कि जैन-धर्म पण्डितों के हाथ में पड़ गया। और पण्डित इस पृथ्वी पर सबसे थोथे लोग हैं--जिनके पास शब्द ही शब्द होते हैं, कोई अनुभव नहीं होता।

मैं जैन मुनियों के पास वर्षों तक निरीक्षण करता रहा। मुझे एक जैन मुनि नहीं मिला, जो ध्यान जानता हो! ध्यान के संबंध में बहुत जानता है। शास्त्र लिख देता है ध्यान पर। प्रवचन करता है ध्यान पर! और बड़ी बारीक बातें करता है--बाल की खाल निकालता है! लेकिन अनुभव कुछ भी नहीं। अनुभव से लेना-देना नहीं। अनुभव

की बात ही भल गयी।

इसलिए महावीर के वृक्ष पर फूल नहीं लगे। महावीर के वृक्ष पर शास्त्र लटक रहे हैं! एक से एक बड़े शास्त्र वृक्ष की जान लिए ले रहे हैं! मगर फूल नहीं लगे।

हिंदू-धर्म तो सदियों से ब्राह्मणों के चक्कर में है, पण्डितों और पुरोहितों के चक्कर में है। वे चाहते भी नहीं कि कोई ध्यान को उपलब्ध हो। और जो कोई ध्यान को उपलब्ध हुआ--उसको हिंदुओं ने निकाल बाहर किया। ऐसे ही तो जैन और बौद्ध अलग हुए। नहीं तो अलग होने की कोई जरूरत न थी।

बुद्ध को आत्मसात नहीं कर सके, क्योंकि बुद्ध ने 'ध्यान' की घोषणा की--ज्ञान के विपरीत। यह ब्राह्मणों के बर्दाश्त के बाहर था। क्योंकि ब्राह्मण को उत्सुकता नहीं है ध्यान में। जब सस्ता ज्ञान मिलता हो, और ज्ञान के आधार पर आजीविका चलती हो--सदियों से चलती हो, और ज्ञान के आधार पर लोगों की छाती पर बैठने का मजा मिल रहा हो--कौन ध्यान की झंझट में पड़ेगा! ये बुद्ध और एक उपद्रव सिखाने आ गये! इनको अलग करो। इनको निंदित करो। खूब निंदा बुद्ध की की!

हिंदू-शास्त्र कहते हैं कि शैतान थक गया बैठा-बैठा नर्क के द्वार पर, कोई आये ही न, आये ही न! तो उसने फिर जाकर ईश्वर से प्रार्थना की कि 'तुमने क्या सृष्टि बनायी! यह नर्क किसलिए बनाया? क्या मैं ही बैठा रहूं वहां! कोई आता ही नहीं!' तो उन्होंने कहा, 'मत घबड़ा। अब जब बनाया है, तो आदमी भी भेजूंगा। स्वभावतः। अब बन ही गयी बात, तो कुछ उपयोग करेंगे। जल्दी ही मैं बुद्ध के रूप में अवतार लूंगा, और लोगों को भ्रष्ट करूंगा!' जैसे मैं भ्रष्ट कर रहा हूं! ऐसे लोगों को भ्रष्ट करूंगा।

और बुद्ध का अवतार हुआ और लोगों को उन्होंने भ्रष्ट किया! और तब से नर्क ऐसा खचाखच भरा है कि तुम अगर आज मरो, तो सौ पचास साल तो क्यू में खड़े रहोगे, तब कहीं भीतर प्रवेश मिलेगा! वह भी रिश्वत वगैरह देनी पड़ेगी। क्योंकि क्यू में खड़े-खड़े थक जाओगे। सोचोगे कि नर्क भी ठीक, मगर कम से कम भीतर तो आने दो! कम से कम छप्पर तो होगा। अरे, सता लेना जो सताना हो, मगर यहां क्यू में कब तक खड़े रहें! भूखे, प्यासे, वर्षा, धूप! कम से कम रात तो सोने दोगे। यहां तो खड़े ही खड़े गुजर रहा है। और धक्कम-धुक्की अलग। और जरा लघुशंका को चले जाओ, कि दूसरा आ गया क्यू में नम्बर! फिर पीछे खड़े होओ! जीवन संकट में है।

तो हिंदुओं ने यह कथा गढ़ी। मैं उनसे कह दूं कि अपनी कथा में इतना और जोड़ दो, कि जब से बुद्ध भारत से उखड़ गये, फिर नर्क में भीड़ कम हो गयी। अब मुझको भेजा है! अब फिर बिगाड़ूंगा लोगों को! आखिर कोई तो चाहिए जो बिगाड़े! सब लोग बनाते ही रहें, बनाते ही रहें, बनाते ही रहें--सृष्टि का क्या होगा फिर! सभी लोग यहां मुक्त करवाते रहें, मुक्त करवाते रहें, तो परमात्मा को अपना धंधा भी तो चलाना कि नहीं? आखिर वह भी सोचेगा कि यहां सभी आवागमन से मुक्त करवाने

वाले महात्मा हों। अरे, कोई आवागमन में फंसाने वाला भी चाहिए! संतुलन बना रहता है। नहीं तो यह सृष्टि का मजा ही चला जाये। यहां जो देखो वही झाड़ उखाड़ने में लगा है। थोड़े दिन में बरबादी हो जायेगी, रेगिस्तान हो जायेगा। परमात्मा अपनी सृष्टि को ऐसे बरबाद होते हुए नहीं देखना चाहता। कभी-कभी अपने कुछ प्रेमियों को भेज देता है कि भैया, कुछ तो वृक्षारोपण करो! मैं वृक्षारोपण कर रहा हूं। मैं लोगों से कह रहा हूं: पैर जमा कर जीओ। क्या आवागमन से छुटकारा! जब परमात्मा ने भेजा है, तो राज होगा कोई उसका। उसके राज को पूरा समझो। रस लो।

परमात्मा गलती नहीं कर सकता। और यह तुम्हारी गलती नहीं है, खयाल रखना। तुम्हारा होना तुम्हारी गलती नहीं है। तुम्हारा होना अगर होगा, तो परमात्मा की गलती है। और परमात्मा गलती नहीं कर सकता। महात्मा गलती कर सकते हैं; परमात्मा गलती नहीं कर सकता। मगर क्या कहानी गढ़ी!

बुद्ध को उखाड़ फेंका। महावीर को भी टिकने नहीं दिया। बुद्ध में बड़ी क्रांति थी, बड़ी लपट थी, इसलिए बुद्ध को तो बिलकुल ही उखाड़ कर फेंकना पड़ा। महावीर थोड़े सौम्य प्रकृति के थे। सौम्य प्रकृति के इस अर्थ में कि उनकी भाषा में बगावत कम थी, परंपरा ज्यादा थी। स्वभावतः। क्योंकि महावीर जैन परंपरा के चौबीसवें तीर्थंकर थे। उनके पहले कम से कम ढाई हजार साल तक परंपरा रह चुकी थी। इसलिए महावीर परंपरावादी थे। वे बोले भी, तो भी परंपरा की सीमा के भीतर बोले। उन्होंने शब्द भी चुने, तो प्राचीन चुने, जिनको सुनने को लोग आदी हो गये थे। जिनसे लोग परिचित हो गये थे। जिनसे अब कोई चोट नहीं पड़ती थी। जिनसे कोई झकझोरा नहीं उठता था। कोई तूफान नहीं आता था; कोई आंधी नहीं उठती थी। परंपरा जिन अंगारों पर खूब राख जमा गयी थी, उन्होंने उन्हीं अंगारों की चर्चा की। इसलिए हिंदुओं ने महावीर को उखाड़ कर नहीं फेंका। उनको आत्मसात कर लिया––तरकीब से आत्मसात कर लिया।

महावीर के आस-पास ब्राह्मण इकट्ठे हो गये। उनके ग्यारह ही गणधर, उनके ग्यारह प्रमुख शिष्य––सभी ब्राह्मण थे! उन्होंने महावीर की मिट्टी खराब कर दी। उन्होंने महावीर के आसपास भी पाण्डित्यवाद का, पुरोहितवाद का अड्डा जमा दिया। बात खत्म हो गयी। महावीर में वैसे ही क्रांति नहीं थी––परंपरा थी, अतीत था। और इन पण्डितों ने कुछ रहा भी होगा थोड़ा-बहुत उसको भी बुझा दिया।

लेकिन बुद्ध में बड़ी जलती आग थी; इसको पण्डित भी बुझा नहीं सके। ऐसा नहीं कि कोशिश नहीं की। बुद्ध के आसपास भी ब्राह्मणों का वर्ग इकट्ठा हुआ। सारिपुत्र भी ब्राह्मण था। मौग्गलान भी ब्राह्मण था। और भी उनके बहुत से शिष्य ब्राह्मण थे। मगर बुद्ध की आग ऐसी थी कि ब्राह्मण गये, और उनका ब्राह्मणपन जल गया। बुद्ध के पास जाकर ब्राह्मण अपना पाण्डित्य भूल गया, और उसके शास्त्र जल गये।

महावीर के पास ब्राह्मण गया, वहां सब ठंडा-ठंडा था, शीतल था। ब्राह्मण ने अड्डा जमा दिया। और जब महावीर मर गये, तो ब्राह्मण के हाथ में पूरा का पूरा अड्डा आ गया। इसलिए जैन तो भारत में जिंदा रहे, मगर उनके वृक्ष पर फिर फूल नहीं लगे। लगते कैसे?

बुद्ध भारत से तो उखड़ गये, मगर वृक्ष जहां भी गया, जहां भी उसने जमीन में अपनी जड़ें जमा लीं, वहीं उसमें फूल लग गये। और चीन में सुंदर भूमि मिली। क्योंकि लाओत्जू ने भूमि को खूब तैयार किया था। अद्भुत रूप से तैयार किया था। इसलिए जब बुद्ध की भाषा, बुद्ध के शब्द चीन पहुंचे, तो ऐसे पचा लिए लोगों ने, जैसे प्रतीक्षातुर थे। जैसे वर्षों से वर्षा न हुई हो, और भूमि पुकार रही हो बादलों के लिए, कि घिर जाओ। और बुद्ध आये, तो जैसे मेघ घिरे, और मोर नाचे। पहली बूंदाबांदी हुई, और लोग अमृत से लबालब हो गये।

यहूदियों में हसीद पैदा हुए। हसीदों का सिलसिला जीसस से शुरू हुआ। जीसस को तो सूली पर चढ़ा दिया; तो जीसस के पीछे दो तरह के लोग आये––एक तो वे थे, जो खुले आम जीसस के साथ खड़े हो गये। वह खतरनाक काम था। जीसस के साथ खड़े होने का मतलब था––फांसी; मारे जायेंगे। दूसरे वे लोग थे, जो किसी तरह की बगावत या सामाजिक क्रांति में उत्सुक नहीं थे। लेकिन जीसस की बात की कीमत को समझ गये थे। वे चुपचाप गुफाओं में बैठ रहे। उन्होंने जगह-जगह छुपे हुए स्कूल बना लिए। छुपी मधुशालाएं! जहां वे जीसस का रस पीने लगे। रहे यहूदी। यूं बाहर से यहूदियों का आवेश उन्होंने बनाये रखा। भाषा यहूदियों की बोलते रहे। उद्धरण पुरानी बाइबिल के देते रहे। मगर अर्थ यूं करते रहे कि जो जीसस के थे।

इस तरह यहूदियों में हसीदों का जन्म हुआ। यह जीसस की छाप जो यहूदियों के भीतर छूट गयी, यहूदियों के घर में जो चिन्गारी छूट गयी, जिसको वे न बुझा पाये। जो अलग हो गये, वे तो ईसाई हो गये। उनने एक अलग परंपरा बना ली।

और जान कर हैरानी होगी कि ईसाइयों में वह बात खो गयी, जो हसीदों में बच गयी। क्योंकि ईसाई सामाजिक संघर्ष में पड़ गये; लड़ाई-झगड़े में पड़ गये। तलवारें खिंच गयीं; धर्म-युद्ध शुरू हो गये। उनको फुरसत ही न रही साधना की। उनको अवसर न रहा, मौका न रहा––ध्यान का।

ध्यान के लिए खूब समय चाहिए, खूब सुविधा चाहिए। यहूदी तो जो छिपे जीसस के साथी थे, उनको तो मौका रहा। वे तो चुपचाप अपने काम में लगे रहे। लेकिन जो बाहर हो गये थे, पहले तो यहूदियों से लड़ना पड़ा उनको, फिर मुसलमानों से लड़ना पड़ा। यह लड़ाई चलती ही रही, चलती ही रही। दो हजार साल की लड़ाई के बाद ईसाइयों के हाथ में कुछ भी नहीं बचा। पोप और पादरी! लेकिन यहूदियों के बीच जो लोग बच रहे थे, छुप रहे थे, उन्होंने गजब का काम किया। उन्होंने हसीदों को

परंपरा पैदा की।

इसलिए यहूदी बहुत प्रसन्न नहीं हैं हसीदों से—खयाल रखना। मगर करें भी क्या! वे यहूदी ही हैं। वे बाहर कभी गये नहीं। उन्होंने बाहर कभी जाना नहीं चाहा। इसलिए यहूदियों में उनका कोई सम्मान नहीं है बहुत। लेकिन उनको निकाल भी नहीं सकते। वे बात तो पुराने धर्म की ही बोलते हैं। वे भाषा तो वही उपयोग करते हैं।

मार्टिन बूबर शुरू से ही यहूदियों की इस हसीद परंपरा में उत्सुक हो गया—अपने पिता के कारण। और हसीदों के जगह-जगह अड्डे थे। और हसीद बड़े मस्त लोग हैं। नाचते हैं, गाते हैं। मेरे पास जो बहुत से यहूदी आ गए हैं, उनके आने का कारण हसीद हैं। क्योंकि मेरे पास जो घटित हो रहा है, उसमें उन्हें हसीदों का साफ-साफ स्वर सुनाई पड़ता है।

हसीद मस्ती में विश्वास करते हैं। हसीदों के छोटे-छोटे मेले भरते हैं। मार्टिन बूबर ने उनका संस्मरण लिखा है, अपने बचपन का, कि हसीदों के मेले अब तो उजड़ गये; अब तो नहीं भर सकते। लेकिन बचपन में जब मार्टिन बूबर छोटा था, तो हसीदों के मेले भरते थे। उसने लिखा है, जो मैंने हसीदों के मेलों में देखा, फिर वैसा मुझे कहीं नहीं दिखाई पड़ा। काश! अगर वह आज जिंदा होता, तो उसे यहां बुलाते। उसको कहते कि 'तू देख, फिर से देख!' क्योंकि हसीदों का जो मेला होता था, वह क्या था? नाच ही नाच था! खाना, पीना, पिलाना, नाचना! हजारों की भीड़ साथ-साथ नाचती! हाथ में हाथ लेकर नाचती! स्त्री-पुरुष साथ-साथ नाचते! वह मस्ती! झूम जाते। बहार आ जाती। जाम पर जाम चल जाते।

छू गयी उसे यह बात। लेकिन वह एक शास्त्रीय ढंग में लग गया। वह हसीदों की कहानियां इकट्ठी करने लगा। क्योंकि हसीदों के दो काम थे: एक—नाचना। नाचना उनकी प्रार्थना। और दूसरा—धर्म को बड़ी-बड़ी शास्त्रीय बातों में नहीं कहना, बल्कि छोटी-छोटी कहानियों में। और कहानियां हसीदों की बड़ी प्यारी हैं। छोटी-छोटी कहानियां, मगर बड़ी प्यारी, बड़ी चोट करने वाली, बड़ी तीखी—तीर की तरह चुभ जायें!

तो उन्होंने हसीदों में रस तो लिया, लेकिन रस उनका शास्त्रीय हो गया। उन्होंने इकटठी कीं हसीदों की कहानियां, उनकी जीवनचर्या, उनके नृत्य का ढंग, उनके गीत। और वे उसी में भटक गये। वे हसीद परम्परा के बड़े विद्वान हो गये। लेकिन हसीद होन स वंचित। न तो कभी नाचे, न कभी गाये। न कभी मस्त हुए। न कभी हसीदों की मधुशाला में रिंद बने। न कभी पीया, न पिलाया। मगर हसीदों के संबंध में जो प्रामाणिक कहानियों का संकलन किया, वह उनका अनुदान है मनुष्य जाति के लिए।

इसलिए मैं कहता हूं: वे महापुरुष थे। अद्भुत विद्वान थे। अद्भुत संग्राहक थे—बड़े प्रामाणिक। लेकिन बुद्धत्व के करीब की तो बात ही छोड़ दो अजित सरस्वती!

दूर भी नहीं। बुद्धत्व से कुछ लेना-देना नहीं।

तुमने पूछा है, 'उन्होंने जीवन के आध्यात्मिक और भौतिक दोनों पहलुओं को स्वीकार करता हुआ यहूदी मानवतावाद पर खड़ा हुआ एक संघ बसाना चाहा।'

हसीदों की वह अपूर्व देन है—कि भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का मेल होना चाहिए।

तुमने अकसर इस देश में साधु-महात्माओं को भौतिकवादियों की निंदा करते हुए यह बात सुनी होगी, कि इनका दर्शन एक है, कि खाओ-पीओ-मौज करो। किसी की निंदा करनी हो इस देश में, तो हम इस तरह निंदा करते हैं कि 'अरे, वह क्या! खाओ-पीओ, मौज करो—यही उनकी जिंदगी है! चारवाकवादी है।' चारवाक शब्द का भी हमने अपना यही अर्थ कर लिया कि जो चरने में रस ले! खाए, पीए, मौज करे। चरते-चरने में लगा रहे। हालांकि चारवाक का यह अर्थ था नहीं। यह जबरदस्ती दुश्मनों ने थोप दिया। 'चारवाक' आता है—'चारुवाक' से। चारुवाक का अर्थ होता है: जिनके शब्द बड़े मीठे, रस भरे। जिनके शब्दों में शराब है। एक घूंट उतर जाये, तो मस्ती छा जाये, कि पतझड़ में वसंत आ जाये! चारुवाक!

लेकिन इस देश के तथाकथित महात्माओं ने 'चारुवाक' को हटा कर 'चारवाक' शब्द उपयोग करना शुरू कर दिया। मुझे चारवाक कहते हैं! मेरे खिलाफ जो वक्तव्य दिये जाते हैं, उनमें लिखा जाता है: 'यह व्यक्ति चारवाकवादी है!'

'खाओ, पीओ, मौज करो'—मैं भी कहता हूं। लेकिन भौतिकवादी में और मुझमें, भौतिकवादी में और हसीद फकीर में भेद है। भौतिकवादी कहता है: 'खाओ, पीओ, मौज करो। बस, खतम।' हसीद फकीर कहता है: 'खाओ, पीओ, मौज करो। फिर बात शुरू होती है।' उसके बाद ही असली बात शुरू होती है। जब तक तुम खाने-पीने में भी मौज न ले सकोगे, तब तक तुम और ऊंची मौज न ले सकोगे।

कल किसी मित्र ने पूछा था न, किसी वाचस्पति ने, कि 'आपने कह दिया कि यह धर्म-चक्र-प्रवर्तन नहीं है। यहां तो मजा-मौज है। यह तो मयखाना है, मयकदा है।' वे बेचारे वे ही पण्डितों, और महात्माओं के, और साधुओं के शब्दों से भरे होंगे। उनका कुछ कसूर नहीं। वही निंदा!

निश्चित मैं कहता हूं: 'खाओ, पीओ, मौज करो।' कहता हूं, यह मयकदा है। क्योंकि मयकदा ही मंदिर बन सकता है। जहां पीने वाले न हों, वहां मंदिर नहीं। और जहां पियक्कड़ बैठ जायें, वहां आ गयी काशी, आ गया काबा।

लेकिन पियक्कड़ के दो पहलू हैं। जैसे कि हमारे जीवन की हर चीज के दो पहलू हैं: एक शरीर और एक आत्मा। शरीर को भी मत उपेक्षा करो। उसे भी खाने दो, पीने दो। वह भी तो परमात्मा का ही रूप है, उसकी अभिव्यक्ति है। उसके भी तो कण-कण में परमात्मा ही समाया हुआ है। पदार्थ भी तो परमात्मा है।

शरीर को भी खाने दो; पीने दो, मौज करने दो । यह तो पहला पाठ है मौज का । मगर यहीं रुक जाओ, तो भौतिकवादी । और अगर इससे आगे बढ़ो—तो अध्यात्म । फिर आत्मा की भी मौज है । आत्मा का भी खाना है; आत्मा का भी पीना है, आत्मा की भी मस्ती है, आत्मा की भी मधुशाला है । उसको मैं मंदिर कहता हूं ।

पहले शरीर का मयकदा बनने दो । फिर आत्मा का बुतखाना भी बना लेंगे । कुछ अड़चन नहीं है । मगर बात शुरू से शुरू होनी चाहिए, अ ब स से शुरू होनी चाहिए । शरीर से प्रारंभ—आत्मा पर अंत । हसीदों की यही जीवन-दृष्टि है ।

मैं हसीदों से पूरी तरह राजी हूं । मैं बिलकुल सरलता से कह सकता हूं कि मैं एक हसीद हूं । और मैं चाहता हूं कि दुनिया में अब उस धर्म की स्थापना हो, जो शरीर और देह का इनकार न करता हो; जो पदार्थ का और बाह्य का अस्वीकार न करता हो । जो जीवन का समग्ररूपेण अंगीकार करता हो—परिधि भी और केन्द्र भी । आखिर परिधि भी तो केन्द्र की ही है । और केन्द्र भी परिधि के बिना कहां ?

आत्मा और देह एक ही ऊर्जा के दो रूप हैं; एक भीतरी—एक बाहरी । शरीर है आत्मा का बहिरंग, और आत्मा है शरीर का अंतरंग । मत करो भेद । भेद के कारण मनुष्य जाति खण्डित हो गयी । मनुष्य जाति के भीतर प्रत्येक व्यक्ति टुकड़े-टुकड़े हो गया । अब छोड़ो सब भेद । इसको मैं सच्चा अद्वैतवाद कहता हूं ।

शंकराचार्य के अद्वैतवाद को मैं सच्चा अद्वैतवाद नहीं कहता । 'अधूरा अद्वैतवाद' कहता हूं । क्योंकि उसमें माया का निषेध है और ब्रह्म का स्वीकार है । 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या ।' मेरा अद्वैतवाद पूरा है : 'ब्रह्म सत्य जगत सत्य !'

क्यों असत्य को जगह देते हो ? क्यों असत्य को थोड़ा-सा भी स्थान देते हो ! जो है, सब सत्य । स्वप्न का भी अपना सत्य है । नहीं तो स्वप्न भी कैसे होगा ! होता तो है । क्षणभर ही सही, मगर होता तो है । उसका भी अपना सत्य है । चांद सच्चा है, माना । लेकिन चांद का जो प्रतिफलन बनता है झील में, वह भी सच्चा है । क्षण भर को ही सही, मगर है तो चांद का ही प्रतिफलन । झील भी सच्ची है । चांद भी सच्चा है । तो प्रतिफलन कैसे झूठ हो जायेगा ? हां, यह मैं नहीं कह रहा हूं कि प्रतिफलन चांद है । प्रतिफलन प्रतिफलन है ।

तुम दर्पण के सामने खड़े होते हो । तुम सच्चे, दर्पण सच्चा—तो दर्पण में बनने वाली तस्वीर कैसे झूठी हो जायेगी ? हां, यह मैं नहीं कह रहा हूं कि दर्पण में बनने वाली तस्वीर तुम हो । तस्वीर तस्वीर है, तस्वीर की तरह सच्ची है ।

माया माया की तरह सत्य है । जगत जगत की तरह सत्य है । ब्रह्म ब्रह्म की तरह सत्य है । दोनों का अपना सत्य है । और दोनों का सत्य जहां मिलता है, एक होता है, वहीं व्यक्ति अपनी परिपूर्णता में प्रगट होता है । उस व्यक्ति को ही मैं धार्मिक कहता हूं । उसको ही मैं परम बुद्ध कहता हूं । वैसे व्यक्ति के जीवन में इनकार होता ही नहीं;

सर्व स्वीकार होता है । उसे न कुछ साधारण है, न कुछ असाधारण । वैसा व्यक्ति साधारण को छूता है—असाधारण कर देता है । मिट्टी छूता है, सोना हो जाती है ।

मैं तुम्हें वही कीमिया देना चाहता हूं कि कैसे मिट्टी सोना हो जाये ।

तुम्हारे महात्मा तुम्हें समझाते रहे कि 'सोना मिट्टी है ।' मैं तुम्हें समझाता हूं : 'मिट्टी सोना है ।' और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारे महात्मा तुमसे झूठ कहते रहे । क्योंकि तुम सोने को उनके पास ले जाओ, वे छूते नहीं ! कहते हैं, 'सोना मिट्टी है ।' मिट्टी पास ले जाओ, तो डरते नहीं । सोना पास ले जाओ, फिर डरते क्यों हैं ? जब कहते हैं, 'सोना मिट्टी है', तो फिर क्या अड़चन आ रही है ?

कबीर का बेटा था कमाल । कबीर यूं बड़े क्रांतिकारी थे, मगर फिर भी कहीं-कहीं परंपरा लिपटी हुई थी । कमाल कमाल ही था । कबीर का बेटा था; कबीर से भी दो कदम आगे गया था ।

बेटा ही क्या, जो बाप से दो कदम आगे न जाये ! बाप की इज्जत भी इसमें है कि बेटा दो कदम आगे जाये । बाप की बेइज्जती है यह कि बेटा वहीं रुक जाये, जहां बाप रुक गया । मगर सब बाप अपनी बेइज्जती चाहते हैं—करो भी तो क्या करो ! सब बाप चाहते हैं : बेटा वहीं रुक जाये, जहां तक मैं गया ! वहां से इंच भर आगे न बढ़े । क्योंकि बाप के अहंकार को चोट लगती है कि कहीं बेटा आगे न चला जाये । हालांकि असली बाप हो, तो धक्का देगा बेटे को कि यहीं मत रुक जाना । अरे, यहां तक तो मैं ही आ गया । तेरी क्या जरूरत थी ! आगे जा ।

जिस दिन कबीर ने कमाल को 'कमाल' नाम दिया था, उसी दिन स्वीकार कर लिया था कि है कुछ कमाल इस लड़के में ! कुछ बात हो कर रहेगी । मगर कमाल इतना था, कि कबीर को भी आत्मसात कर लेना मुश्किल था । यूं तो वे बड़े हिम्मत के आदमी थे । बड़े फक्कड़ आदमी थे । कहां उनके मुकाबले का फक्कड़ हुआ भारत में !

कबीर कहते हैं :

> कबिरा खड़ा बजार में लिए लुकाठी हाथ ।
> घर जो बारै आपना चले हमारे साथ ।।

'लट्ठ लिए बाजार में खड़ा हूं । है कोई माई का लाल ! चलता है मेरे साथ ! तो लगा दे अपने घर में आग ।' ऐसे हिम्मत का आदमी ! मगर कमाल, आखिर कबीर का ही बेटा था । वह और दो कदम आगे चला गया । जैसे मैं तुमसे कह रहा हूं कि शंकराचार्य से मैं दो कदम आगे ! जाना भी चाहिए । शंकराचार्य को बीते हजार साल हो गए । अगर हजार साल में दो कदम भी न चले, तो हद हो गयी । तो फिर जिंदा क्या हो ! मर ही गये ! मर ही जाते तो अच्छा था ।

कबीर कहते थे, कमाल वही करता था । मगर कई बातें महात्मा कहते हैं—करने की नहीं होती । जैसे कबीर कहते थे—'सोना मिट्टी है ।' यह तो बड़ी प्रचलित बात

थी कि सोना मिट्टी है । कबीर कहते थे, 'बचो कामिनी-कांचन से ।'

कमाल को यह बात न जंचती, कि जब सोना मिट्टी है, तो बचना क्या ? जब मिट्टी है, तो बचना क्या ? या कहो कि मिट्टी नहीं है--तो फिर बचने की बात उठती है !

काशी नरेश को पता चला कि कमाल कुछ उल्टी-सीधी बातें कहता है । अपने बाप के खिलाफ कह देता है । देखें !

परीक्षा करने के लिए वह लाया एक बहुत बड़ा हीरा--जो उसके पास सबसे कीमती हीरा था । और उसने कमाल को भेंट किया । उसने सुना था कि कमाल भेंट ले लेता है । कबीर तो भेंट लेते नहीं थे । कबीर को कुछ लाये कोई, तो वे कहें कि 'नहीं भाई, मैं परिग्रह नहीं करता । अरे, इस मिट्टी को मेरे सामने से ले जाओ । मुझे नहीं चाहिए सोना । सोना मिट्टी है । मैं क्या करूंगा हीरा । हीरा तो कंकड़-पत्थर है ।'

कमाल बगल के ही झोपड़े में रहता था । कबीर उसको अपने झोपड़े में नहीं रहने देते थे । क्योंकि कबीर जिसको लौटा देते . . . कोई सोना लाता, कोई हीरा लाता, कोई चांदी लाता . . . । जिसको कबीर लौटा देते, कमाल बाहर ही बैठा रहता, वह कहता, 'रख दे रे ! यहीं रख दे । अरे, जब मिट्टी है--कहां ले जा रहा है ! छोड़ जा ।'

कबीर को बहुत दुख होता कि मैं तो किसी तरह उसको भगाया और इसने रखवा लिया ! लोग क्या सोचेंगे कि यह तो तरकीब दिखती है । बाप बेटे की सांठ-गांठ दिखती है ! इधर बाप कहता है कि 'सब मिट्टी है, ले जा ।' और बेटा कहता है कि 'रख जाओ । कहां ढोते फिरते हो ?'

तो उसको कहा कि 'तू भैया, बगल के झोपड़े में रह । यह तेरा ज्ञान तू अलग चला !' तो कमाल अलग रहने लगा ।

काशी नरेश ने आ कर हीरा भेंट किया । कमाल ने कहा, 'क्या लाये ! लाये भी तो कंकड़-पत्थर ! न खा सकते, न पी सकते । अरे, कुछ फल लाते, कुछ मिठाई लाते !' बात पते की कही कि 'क्या करूंगा इसका !'

नरेश ने सोचा कि 'अरे, लोग तो कहते थे कि वह रखवा लेता है ! और यह तो बिलकुल और ही बात कर रहा है !' तो उसने कहा कि 'मेरी आंख खुल गयी । मैं तो कुछ और ही आपके संबंध में सुना था ।'

उठ कर चलने लगा हीरे को लेकर । उसने कहा, 'रुको, अब ले ही आये, तो अब मिट्टी कहां वापस ले जाते हो ? समझे नहीं कि मिट्टी है ! छोड़ !'

तब नरेश समझा कि 'यह आदमी तो बड़ा हद्द का है ! पहले तो ऐसा जंचा कि बिलकुल महात्मा जैसी बात कर रहा है । अब तरकीब की बात कर रहा है कि छोड़ !'

मगर वह भी परीक्षा ही लेने आया था । उसने कहा, 'कहां रख दूं ?'

कमाल हंसने लगा कि 'फिर ले जा । क्योंकि जब तू पूछता है कि कहां रख दूं, तो तू समझा नहीं । तो अभी भी तुझे हीरा ही मालूम हो रहा है । तो पूछता है : कहां रख दूं । अरे, पत्थर को कोई पूछता है कहां रख दूं । कहीं भी रख दे रे ! जहां तेरी मर्जी, वहां रख दे ।'

नरेश तो बड़ी बिबूचना में पड़ा कि यह बात क्या है ! उसने वहीं झोपड़े के छप्पर में, सनौलियों का छप्पर था, वहीं हीरे को खोंस दिया । बाहर निकला सोचता हुआ कि इधर मैं बाहर गया, और इसने हीरा निकाला !

कोई पंद्रह दिन बाद आया कि देखें, क्या हाल है ! मस्त, कमाल बैठा था । बज रहा था इकतारा । थोड़ी देर इधर-उधर की बात की । फिर नरेश ने पूछा कि 'हीरे का क्या हुआ ?'

कमाल ने कहा, 'कौन-सा हीरा ?

'अरे', नरेश ने कहा, 'हद्द कर दी ! पंद्रह दिन पहले एक हीरा दे गया था । इतना बहुमूल्य हीरा--भूल ही गये ?'

कमाल ने कहा, 'हीरा ! एक कंकड़ तुम लाये थे, और पूछते थे, कहां रख दूं; वही तो नहीं ! तो तुम जहां रख गये थे, अगर कोई ले न गया हो, तो वहीं होगा । और कोई ले गया हो, तो मुझे पता नहीं !'

नरेश ने कहा, 'है पक्का चालबाज ! निकाल भी लिया है इसने--और कह रहा है : कोई ले गया हो, तो मैं क्या कर सकता हूं ।'

फिर भी उठ कर देखा । चकित हो गया । आंख से आंसू झरने लगे । हीरा वहीं का वहीं रखा था । वही सनौलियों में दबा था । पैरों पर गिर पड़ा ।

कमाल ने कहा, 'क्या पैरों पर गिरते हो ! तुम कब समझोगे ? तुम अभी भी उसको हीरा मान रहे हो ! इस पैरों पर गिरने में भी तुम हीरा ही मान रहे हो । अगर वह वहां न मिलता, कोई ले गया होता--कोई ले ही जाता ! कोई मैं यहां चौबीस घंटे उसका पहरा देता हूं ? नदी नहाने जाता हूं । गंगा स्नान करता हूं । भजन-कीर्तन करने चला जाता हूं । बाहर भी बैठता हूं । कोई ले ही गया होता । कितने लोग आते-जाते हैं । तो जरूर तुम यही खयाल ले कर जाते कि मैंने निकाल लिया है । अब तुम भैया, उसे ले जाओ । तुम खुद सम्हालो ।

'और तुम मेरे पैर पर गिरे, उससे पता चलता है कि हीरे का मूल्य है । चूंकि बच गया, इसलिए तुम मेरे पैर पर गिर रहे हो । अगर हीरा न बचता--तो ? तो तुम मेरी गरदन काट लेते ! ऐसी झंझट यहां न छोड़ो । तुम अपना हीरा ले जाओ ।'

मगर यह कमाल ज्यादा पते की बात कह रहा है--कमाल की बात कह रहा है ! कबीर ने भी आखीर में इसको स्वीकार किया है । और कबीर ने कहा है : 'बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल ।'

कबीरपंथी तो इसको निंदा मानते हैं, कि यह कमाल की निंदा है, कि 'बूड़ा वंश

कबीर का'--कि कबीर का वंश नष्ट कर दिया इस दुष्ट ने ! यह दुष्ट क्या पैदा हो गया कमाल, इसने मेरी सब परंपरा खराब कर दी !

लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता। मैं तो मानता हूं : कबीर ने यह अंतिम सील-मुहर लगा दी कि 'बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल !'

कबीर यह कह रहे हैं कि मुझसे तो कम से कम एक बेटा भी पैदा हुआ था। इतना भी मैंने संसार चला दिया था। मगर यह कमाल अद्‌भुत है। न इसने विवाह किया, न वंश चलाया। 'उपजा पूत कमाल !' यह है कमाल ! और क्या गजब का आदमी कि जैसा मैंने कहा है, वैसा ही माना है, वैसा ही जिया है !

यह स्वीकृति की मुहर है। मगर इसको तो कोई समझे--तो समझे। बुद्धू इसको नहीं समझ सकते।

हसीद फकीर इस जगत को और उस जगत को साथ-साथ स्वीकार करते हैं। यह जगत, वह जगत भिन्न-भिन्न नहीं है। मेरी भी वह स्वीकृति है। यह हसीदों की जमात है। मगर मार्टिन बूबर हसीदों की सेवा तो किये--उनकी कहानियां, उनके गीत इकट्ठे कर के, लेकिन हसीद होने से वंचित रह गये। ध्यान का उन्हें कभी स्वाद न लगा। प्रार्थना कभी उन्होंने जानी नहीं। केवल विद्वान थे, तो भी यहूदियों ने उनका विरोध किया।

अजित सरस्वती ! तुम पूछते हो कि 'वे अपने ही देश में निंदित रहे, जब कि दुनिया भर के लोग उनसे प्रभावित थे।'

ऐसा ही होता है। अपने ही देश में निंदा झेलनी पड़ती है ऐसे लोगों को, जो कुछ पते की बात कहें। क्योंकि जो अपने हैं, वे नहीं चाहते कि कोई ऐसी बात कहे, जो उनके विपरीत पड़ जाये। और पते की बात कहनी हो, तो बहुत लोगों के विपरीत पड़ेगी। मजबूरी है।

इस दुनिया में भीड़ है अंधों की, पागलों की, विक्षिप्तों की। अगर पते की बात कहनी हो, उनके खिलाफ पड़ने वाली है। वे विपरीत हो ही जायेंगे।

तुम पूछते हो : 'कच्छ में बसते हुए हमारे कम्यून के संदर्भ में भी इस संबंध में कुछ कहने की अनुकंपा करें।'

फिर मैं कोई विद्वान नहीं हूं। तो मैं तो एकाध पते की बात नहीं कह रहा हूं। पते ही पते की बात कह रहा हूं। एक-एक शब्द परम्परावादी के लिए जहर है, मौत है, तीर है। इसलिए मेरा विरोध तो बिलकुल स्वाभाविक है। इसे हमें आनंद से स्वीकार करना है--अहोभाव से। यह धन्यवाद है पूरे देश का। इससे अन्यथा इसे मत लेना। यह उनकी आभार-अभिव्यक्ति है।

आज इतना ही।

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक ३० जुलाई १९८०

स्वानुभव का दीया

पहला प्रश्न : भगवान, लगता है आचार्य श्री तुलसी आपके प्रवचनों और वक्तव्यों से काफी तिलमिला गये हैं, क्योंकि कई बार बहुत लोगों के बीच में आपने कहा कि आचार्य तुलसी आपसे एकांत में ध्यान सीखना चाहते थे। और उनके युवराज शिष्य मुनि नथमल को आपने मुनि थोथूमल कहा। इससे गुरु-शिष्य की प्रतिष्ठा को काफी धक्का पहुंचा है और बौखलाहट में उन्होंने सम्पूर्ण महाराष्ट्र में आपकी 'विकृत विचार-धारा' का 'सामना और शुद्धिकरण' करने के लिए अपनी साध्वियों के पांच समूह जगह-जगह भेजे हैं। ये समूह 'शास्त्रशुद्ध प्रेक्षा-ध्यान' शिविर आयोजित करेंगे। उनकी एक सैंतालीस वर्षीय साध्वी श्री चांदकुमारी दस हजार मील की यात्रा करके पूना पधारी हैं

भगवान, यह प्रेक्षा-ध्यान क्या है ? इस विधि से क्या आत्मशुद्धि व पर-शुद्धि हो सकती है ? और कृपया यह भी बतायें कि क्या भगवान महावीर का ध्यान भी इसी प्रकार का था ?

चैतन्य कीर्ति ! आचार्य तुलसी मूलतः एक राजनैतिक व्यक्ति हैं। धर्म से उनका दूर का भी कोई संबंध नहीं; धर्म का कोई अनुभव भी नहीं। लेकिन धर्म के नाम पर सदा से राजनीति चलती रही है। राजनीति जब राजनीति के नाम पर चलती है, तब तो गंदी होती ही है; और जब धर्म की आड़ में चलती है, तब तो बहुत गंदी हो जाती है। अच्छे-अच्छे आवरणों में गंदी से गंदी आकांक्षाएं छिपाई जा सकती हैं।

मैं इस देश के करीब-करीब सभी साधु-संतों से निकट से परिचित हूं। और यह जान कर हैरान हुआ हूं कि इन सभी लोगों को, अच्छा होता कि इन्होंने अपनी जीवन-चर्या राजनीति को समर्पित की होती। तो कम से कम इनके चेहरे तो साफ होते। कम से कम मुखौटे तो इनको इतने न ओढ़ने पड़ते।

आचार्य तुलसी ने मुझे निमंत्रण दिया, तो मैं गया था। फिर मुझसे जब उन्होंने

ध्यान के संबंध में पूछा, तब भी वे बेचैन हुए थे, क्योंकि मैंने कहा, 'मैं सोचता था, आप सात सौ साधुओं के गुरु हैं; दीक्षा देते हैं--साधुओं को, साध्वियों को; जैनों के एक प्रमुख सम्प्रदाय के अनुशासक हैं--आपको ध्यान का पता नहीं !'

उन्होंने कहा, 'नहीं, ध्यान के संबंध में तो मैं सब जानता हूं, लेकिन ध्यान करने का कभी अवसर नहीं मिला।' कहने लगे, 'आप तो देखते ही हैं, इतने साधु-साध्वियों के समाज को सम्हालना, इतने बड़े तेरापंथ सम्प्रदाय को सम्हालना--इसमें ही सब समय लग जाता है। फिर पैदल यात्राएं; फिर साधु-साध्वियों की गुटबंदियां-राजनीतियां--समय कहां है !'

मैंने उनसे कहा, 'यही बात मुझे दुकानदार कहता है कि समय कहां है। यही बात मुझे जीवन के सामान्य कार्यक्रमों में व्यस्त लोग कहते हैं। और यही बात साधु भी कहेंगे, तो फिर भेद क्या है ? फिर संसार क्या छोड़ा ? किसलिए छोड़ा ? एक संसार से हटे नहीं कि और बड़े संसार में उलझ गये !'

तिलमिला तो वे उसी दिन गये थे। फिर जब उन्होंने कहा कि मैं एकांत में बात करना चाहता हूं, तो मैंने कहा, 'अच्छा यही होगा कि आप सब के सामने बात करें।' मगर एकांत में बात करने में भी राजनीति थी, ताकि कल कोई गवाह न हो कि उन्होंने एकांत में मुझसे क्या पूछा था।

लेकिन एकांत बिलकुल एकांत नहीं था। उसमें मुनि थोथूमल मौजूद थे। वे इसलिए मौजूद थे, कि मैं जो कहूं उसको जल्दी से लिखते रहें। कहीं ऐसा न हो कि मेरी कही गयी कोई बात भूल जाये, चूक जाये !

तो मैंने पूछा, 'जब एकांत ही है, तो फिर बिलकुल ही एकांत हो।'

उन्होंने कहा कि 'नहीं, अच्छा यही होगा कि आप जो भी सूचन दें, वह सब लिपिबद्ध कर लिया जाये, ताकि ध्यान करने में कोई भूल-चूक न हो।'

तो जो मैंने कहा था, वह लिपिबद्ध कर लिया गया। तब भी मुझे लगा कि यह सब बहुत जालसाजी की बात है। सब को हटाया, ताकि कोई गवाह न हो। फिर भी मैंने कहा--कोई हर्ज नहीं। ठीक भी है। सात सौ साधुओं को यह पता चले कि हमारे गुरु को ध्यान का कोई पता नहीं, नाहक अड़चन होगी; नाहक शर्मिन्दा होना होगा। मैं किसी को शर्मिन्दा करना भी नहीं चाहता। तब तक मैंने मुनि थोथूमल को थोथूमल कहा भी नहीं था। नथमल ही कहता था, उनका नाम जो था। लेकिन थोथूमल कहने की मजबूरी उसी दिन दोपहर आ गयी।

यह बात सुबह हुई। दोपहर समस्त साधुओं-साध्वियों और तेरापंथियों के बीच--कोई बीस हजार लोग इकट्ठे थे; उनका वार्षिक उत्सव था। मुझे बोलने के लिए निमंत्रण था। मैं अकेला बोलने वाला था। लेकिन आश्चर्य तो तब हुआ, जब मेरा बोलने का समय आया, तो मेरे नाम की घोषणा न करके नथमल के नाम की घोषणा

की गई, कि मेरे बोलने के पहले मुनि नथमल बोलेंगे !

तब भी मुझे लगा कि कोई हर्ज नहीं; शायद परिचय देते होंगे मेरा; मैं अपरिचित हूं। लेकिन जो उन्होंने बोला, वह तो निश्चित मुझे चकित कर गया। सुबह एकांत में मेरी जो बात हुई थी, जो नोट्स लिये गये थे, वे पूरे के पूरे तोते की तरह दोहरा दिये गये ! एक घण्टा बोले वे। और उस एक घण्टे में एक शब्द भी नहीं छोड़ा, जो मैंने कहा था। यह दूसरी चालबाजी थी। यह यह दिखाने की कोशिश थी, ताकि मैं कभी यह न कह सकूं कि जो ध्यान मैंने बताया है, वह मैंने बताया है। ताकि वे कह सकें कि यह तो हम जानते ही हैं ! यह तो हमारे मुनि नथमल ने तभी कहा था; मेरे एक शिष्य ने तभी कहा था !

लेकिन मैं तो इतना सीधा, साफ-सुथरा आदमी नहीं हूं ! मेरी चाल तो बहुत तिरछी है ! एक घण्टा सुनने के बाद मैं जब बोला, तो जो एक घण्टा मुनि नथमल ने कहा था, उसका खण्डन किया। अब उनका अवसर था चौंकने का। एक-एक चीज का खण्डन किया। एक शब्द भी मैंने नहीं छोड़ा, जिसको मैंने गलत न कहा हो।

रात जब मुझे मिले, कहने लगे, 'आपने यह क्या किया !'

मैंने कहा कि 'करना पड़ा !' मैं मंत्र, यंत्र, तंत्र ही नहीं समझता--षडयंत्र भी समझता हूं। मेरे साथ जो चालबाजी की गई है, जो मारवाड़ीपन आपने किया, जो धोखाधड़ी की, उसका सिवाय इसके कोई जवाब न था।

मारवाड़ी मुनि भी क्यों न हो जाये, मारवाड़ी ही होता है ! वही बाजार के दांव-पेंच ! उसकी सोचने की प्रक्रिया वही होती है। उसकी तर्क-सरणी वही होती है।

मैंने सुना है कि एक मारवाड़ी पहली बार अपनी पत्नी को ले कर बम्बई घूमने आया। घूमते-घूमते वे नरीमन पाइंट की बीस-तीस मंजले मकानों के पास आये। तभी किसी औरत ने पचीसवीं मंजिल से कूद कर आत्महत्या की थी। संयोग से वह औरत कचरे की पेटी में पड़ी थी। यह देखकर वह मारवाड़ी बोला,' अरे, ये बम्बई वाले भी गजब के उड़ाऊ लोग होते हैं ! यह औरत अभी तो दस-पंद्रह साल तो आसानी से चल सकती थी। इसको कचरे में फेंक दिया !'

एक मारवाड़ी धंधे के लिए बम्बई गया हुआ था। काफी दिन बीत चुके थे और अपनी पत्नी को कुछ पैसे भी भेज नहीं सका था। नहीं कि पैसे उसके पास नहीं थे। मगर भेजना मारवाड़ी को बहुत कठिन होता है। पैसा देना मारवाड़ी के लिए आत्मा देने से भी कठिन बात है। आत्महत्या कर ले, वह सरल; पैसा हाथ से छूट जाये, वह कठिन !

उसकी पत्नी ने बार-बार खबर भेजी, खत दिये, तार दिये। स्पष्टीकरण किया कि 'जल्दी करो। एक-एक चीज की मुश्किल खड़ी हो गई है। दूध वाला पैसे मांग रहा है; बिजली के दफ्तर के पैसे चुकाने हैं; नौकरानी की तनख्वाह चढ़ती जा रही है,

गरीब भी क्या करे ! नौकर छोड़ कर चला गया है । बच्चों की स्कूल में फीस चुकानी है ।'

लेकिन वह हमेशा इस तरह के पत्र लिखता कि 'पैसे की तो बहुत ही तंगी है, पर मेरी प्यारी पत्नी, तुझे मेरी ओर से हजार चुम्बन भेजता हूं !' अब चुम्बन में कुछ लगता है ! और मारवाड़ी के चुम्बन में कुछ होता है ! कोई आत्मा होती है ? ऐसे मुंह से आवाज कर दी !

कुछ दिनों बाद पत्नी का पत्र आया । आखिर पत्नी भी मारवाड़ी; कब तक देखती ! उसने लिखा : 'अब घबड़ाओ मत । तुमने जो हजार चुम्बन भेजे थे, दस चुम्बन में दूध वाले को निपटा दिया है । बीस चुम्बन में अनाज वाले को निपटा दिया है । पंद्रह चुम्बन में धोबी को निपटा दिया है । तीस चुम्बन में नौकर वापस लौट आया है । ऐसे ही भेजते रहना आगे भी ! सब काम मजे में चल रहा है !'

मारवाड़ी का एक जगत है—एक अलग ही उसका जगत है । उसके सोचने के ढंग ही अलग हैं । उसका गणित अलग, उसकी भाषा अलग, उसकी चालबाजियां अलग ।

'सर ! अंग्रेजी के मास्टर अंग्रेजी में पढ़ाते हैं । हिन्दी के मास्टर हिन्दी में,और संस्कृत के मास्टर संस्कृत में, तो आप गणित के मास्टर हो कर गणित में क्यों नहीं पढ़ाते ?'

मारवाड़ी अध्यापक ने कहा, 'देख, ज्यादा तीन-पांच न कर । फौरन नौ-दो-ग्यारह हो जा । वरना छठी का दूध याद दिला दूंगा !'

देखा, गणित की भाषा बोल दी ! 'ज्यादा तीन-पांच न कर । फौरन नौ-दो-ग्यारह हो जा । नहीं तो छठी का दूध याद दिला दूंगा !'

मारवाड़ी का अपना गणित है । और आचार्य तुलसी को देख कर मुझे लगा कि ये शुद्ध मारवाड़ी हैं ! वे तब से ही तिलमिलाये हुए हैं ।

फिर दूसरे दिन और मुसीबत हो गई । बात और बिगड़ गई । मेरे साथ बात बिगड़नी आसान होती है, बननी बहुत मुश्किल होती है । मुझे दुश्मन बनाने की कला आती है ! दोस्त तो कोई मेरे बावजूद बन जाये, उसकी मरजी । मेरी सारी चेष्टाओं को भी एक तरफ हटा कर दोस्त बन जाये, यह उसकी मरजी । अन्यथा मैं सिर्फ दुश्मन बनाने में कुशल हूं ! मेरे अपने कारण हैं । क्योंकि मैं सच में ही उतने ही लोगों को अपने पास चाहता हूं, जो दोस्त हैं । इसलिए अपनी तरफ से पूरी व्यवस्था करता हूं कि कोई कूड़ा-कचड़ा भीतर न आ जाये ।

दूसरे दिन और भी मुसीबत हो गई । क्योंकि दूसरे दिन एक छोटी संगोष्ठि थी, जिसमें आचार्य तुलसी ने देश से मुझे भी बुलाया था और बीस और लोगों को भी बुलाया था । उसमें मोरारजी देसाई भी निमंत्रित थे । मोरारजी देसाई तब भारत के वित्त मंत्री थे, पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नीचे ।

आचार्य तुलसी तो मंच पर चढ़ कर बैठे गोष्ठी में जो बीस लोग बुलाये

गये थे जिनमें मैं भी एक था, उन सब को मंच के नीचे बिठाला । मुझे तो कोई अड़चन न थी । कोई मंच पर चढ़ कर बैठे, कोई मंच से नीचे बैठे, इसमें कुछ हर्ज नहीं । थोड़ा बेहूदा तो था मामला, क्योंकि यह कोई सभा नहीं थी, जहां हजार पांच सौ लोग मौजूद हों, कि मंच पर चढ़ना पड़े । बीस लोगों की संगोष्ठी थी । इसमें तो पास-पास बैठा जा सकता था । लेकिन मैंने इस पर तब तक ध्यान नहीं दिया, जब तक मोरारजी ने मामले को उठाया नहीं । लेकिन मोरारजी की छाती में तो कटार चुभ गई ! भारत का वित्त-मंत्री—और कोई साधारण आदमी—मोरारजी देसाई !

इसके पहले की गोष्ठी शुरू हो, तात्विक प्रश्न उठें, मोरारजी ने कहा कि 'एक प्रश्न का मैं पहले जवाब चाहता हूं । इसी से क्यों न गोष्ठी शुरू हो ।' आचार्य तुलसी तो बहुत खुश हुए । उन्होंने कहा कि 'जरूर । आप ही शुरू करें ।'

मोरारजी ने कहा कि 'मैं पूछना चाहता हूं कि आप मंच पर चढ़ कर क्यों बैठे हैं ?' और मंच कोई छोटी ऊंची नहीं थी ! होगी कम से कम आठ फीट ऊंची ! कि 'हम लोगों को अगर आपको देखना भी पड़े तो गर्दन दुखने लगेगी ! और हम सब को नीचे क्यों बिठाला गया है ? यह तो गोष्ठी है । गोष्ठी का तो मतलब होता है : पारिवारिक—निकटता से बैठना और बात करना । आप कोई प्रवचन नहीं दे रहे हैं ! तो आप ऊपर क्यों चढ़ कर बैठे हैं ?'

तुलसी जी के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं । अब जवाब भी क्या दें ! कोई और एरा-गैरा नत्थूखैरा होता, तो डांट-डपट कर चुप कर देते । और मारवाड़ी तो ऐसे प्रश्न पूछते ही नहीं । और तेरापंथी तो पूछेंगे क्या ! तेरापंथी तो बेचारे अभी भी पुराने सामन्तशाही जमाने में रहते हैं । वे तो कहते हैं—जी हुकुम ! हुजूर ! हुजूर साहब ! किस जमाने की भाषा बोल रहे हैं ! इनको पता भी नहीं कि बीसवीं सदी आ गयी !

अब तुम देखते हो कि राजा मिट गये, महाराजा मिट गये—और आचार्य तुलसी अपने उत्तराधिकारी को 'युवराज' कह रहे हैं ! जरा भाषा देखते हो ! यह भाषा सामंतवादी है । युवराज ! न तुम राजा हो—कैसे युवराज ! और युवराज भी कहते हैं कोई जवान हो—तो भी कुछ बात जंचे । पैंसठ साल के थोथूमल ! ये युवराज ! मगर ये उनके सबसे बड़े चमचे ! ये उनकी प्रशंसा में, स्तुति में गीत गाते रहते हैं—तो युवराज !

तो वही सामन्तवादी ढंग, और वही सामन्तवादी रुख मोरारजी का भी है ।

एक क्षण तो सन्नाटा छा गया । ऐसा लगा कि गोष्ठी तो यहीं खत्म हुई ! अब आगे कैसे चलेगी ! मैंने देखा कि बात तो बिगड़ ही गई । इतने दूर की यात्रा, और इतनी यह सब परेशानी, और यह बात तो सब खराब हुई जा रही है । और तुलसीजी से कुछ कहते बन नहीं पड़ रहा है । तो मैंने उनसे कहा कि 'देखें ।'. . . मोरारजी मेरे बगल में ही बैठे थे । मैंने उनसे कहा कि 'मोरारजी ने मुझसे पूछा नहीं है । इसलिए जवाब मुझे देना उचित भी नहीं है । पूछा आपसे है, लेकिन आप चुप्पी साधे बैठे हैं । आप बोल नहीं रहे

हैं। शायद जवाब देने की आपकी हिम्मत नहीं। क्योंकि मोरारजी को कोई ऐसी बात कहना, जिससे उनको चोट लग जाये, तो वे जिंदगी भर बदला लेंगे ! और उनके हाथ में ताकत है। और उनको बड़ी खुशामद से तो लाया गया है ! बामुश्किल तो वे आने को राजी हुए हैं। महीनों तो उनकी सेवा की गई कि चलिये। चलिये, आपके बिना होगा ही नहीं। तो वे आये हैं। और अब उनको नाराज करना आपकी हिम्मत के बाहर है। इसलिए आप सच बोल सकते नहीं। और कुछ झूठ बोलने की भी आपकी हिम्मत नहीं है, क्योंकि मोरारजी कुछ यूं ही छोड़ न देंगे। यह मामला जब उठाया है, तो यह मामला आगे चलेगा। अगर आप और मोरारजी दोनों राजी हों, तो मैं जवाब दे दूं।'

तुलसीजी ने सोचा कि झंझट मिटी और मोरारजी ने भी कहा कि 'यह तो गोष्ठी है, ठीक है, कोई बात नहीं। आप जवाब दे दें।'

तो मैंने उनसे कहा कि 'देखिये, मुझे इसमें बहुत परेशानी नहीं है कि वे ऊपर क्यों बैठे हैं। और जरा ऊपर देखिये; छप्पर पर छिपकली है ! और जरा ऊपर देखिये, मुन्डेर पर कौआ बैठा है ! और जरा ऊपर देखिये, आकाश में चील उड़ रही है ! आप किसकी-किसकी फिक्र करेंगे ! अगर ऊपर-नीचे का ऐसा हिसाब हो, तब तो जिंदगी बड़ी मुश्किल हो जायेगी ! तो छिपकली आचार्य तुलसी से ऊपर ! कौआ छिपकली से ऊपर ! चील कौवे से ऊपर ! तो हम तो सब मारे गये ! हम तो कहीं के न रहे ! इसकी क्या फिक्र कर रहे हो ! आठ फीट ऊंचाई पर बैठे वे सिर्फ बुद्धू मालूम पड़ रहे हैं—और कुछ भी नहीं। संगोष्ठी बुलायी है उन्होंने। वे हमारे मेजबान हैं। हम उनके मेहमान हैं। हमें सम्मान दिया होता; हमें ऊंचाई पर बिठाल कर खुद नीचे बैठ गये होते, तो भी समझ में आ सकता था। मगर यह मेहमानों के साथ मेजबान का व्यवहार, अतिथियों के साथ आतिथेय का यह व्यवहार ! इसमें न तो धर्म है, न शिष्टाचार है। इसमें थोड़ी सभ्यता भी नहीं है ! यह तो बात ही फिजूल है।'

'मगर', मैंने कहा, 'आपको क्यों अखर रही है ? यहां और भी आपको छोड़ कर उन्नीस लोग मौजूद हैं। हममें से किसी को अखरी नहीं। तो मैं आपको भी यह कहना चाहता हूं कि आपको अखर रही है इसलिए कि आपका भी दिल वहीं बैठने का हो रहा है, सो आप भी चढ़ जाइये ! और कोई रोके, तो मैं जिम्मेवार हूं। मैं कहता हूं : आप भी चढ़ जाइये। आप भी ऊपर बैठ जाइये। आप दोनों ऊपर बैठिये। बाकी हम अठारह लोग नीचे बैठेंगे !'

और मैंने कहा कि 'आपको ऊपर बैठना अखर रहा है, यह बात सच नहीं है। आपको अपना नीचे बैठना अखर रहा है। छाती पर हाथ रख कर कहो कि बात अखर कौन-सी रही है ! उनका ऊपर बैठना—या अपना नीचे बैठना ? और दोनों में बुनियादी फर्क है। जमीन-आसमान का फर्क है। हमें अखरता कुछ है, हम कहते कुछ हैं ! हम तो हर बात को छिपा कर चलते हैं। हम तो कभी भी सीधी चीजों को उघाड़ते नहीं।'

उस दिन से मोरारजी भी नाराज हैं, तुलसीजी भी नाराज हैं। वह नाराजगी उनकी उस दिन से गई नहीं है। जा सकती भी नहीं। गांठें बांध कर लोग बैठ जाते हैं !

तुम यह भी जान कर चकित होओगे चैतन्य कीर्ति, कि मुझसे मिलने के पहले, उनसे पूछो—क्यों नहीं ध्यान-शिविर लेते थे ? मुझसे मिलने के बाद ध्यान-शिविर शुरू हो गये ! और ठीक तीन दिन के, क्योंकि उस समय मैं तीन दिन के ही ध्यान-शिविर लेता था ! और उनसे यह भी पूछो कि अगर उन्होंने मुझसे ध्यान नहीं सीखा है, तो मेरे पास चंदन मुनि और उनके साथियों को किसलिए भेजा था ? बम्बई आ कर चंदन मुनि और उनके शिष्य मेरे पास ध्यान करके गये हैं। और मैंने ही ध्यान नहीं करवाया; योग चिन्मय यहां मौजूद हैं, योग चिन्मय उन्हें ध्यान करवाते थे। योग चिन्मय के कमरे में ही वे ध्यान करते थे। किसलिए उन्हें मेरे पास भेजा था ?

और उनसे यह भी पूछो कि उनके मुनि मीठालाल को आबू साधना-शिविर में मेरे पास किसलिए भेजा था ? और उनसे यह भी पूछो कि उनकी सारी साध्वियों को, उनमें संभवतः ये चांद कुमारी जी भी रही हों, क्योंकि कोई सौ डेढ़ सौ साध्वियां थीं; मुझे सौ डेढ़ सौ साध्वियों के नाम याद रखने का कोई उपाय नहीं। पूछा भी नहीं था; कौन कौन है। और मुंह पर पट्टी बांधे हुए औरतें बैठी हों, तो वैसे ही पहचानना मुश्किल है कि कौन कौन है ! आदमी है, कि औरत है, कि क्या है ! कि क्या नहीं ! भूत है, प्रेत है, क्या है ! उनसे पूछो कि ये डेढ़ सौ साध्वियों को क्यों मुझसे कहा था कि मैं ध्यान करवाऊं ? और इन डेढ़ सौ साध्वियों ने ध्यान किया था, उसके गवाह हैं। क्योंकि मैं अकेला नहीं था। मुझे जो लोग ले गये थे, वे भी मौजूद थे।

अगर उनको ध्यान पहले से ही पता था, तो मुझे बुलाया किसलिए, मुझसे ध्यान के संबंध में पूछा किसलिए ? फिर ठीक है, वह तो व्यक्तिगत निजी बात थी, उसका कोई गवाह नहीं है। थोथूमब तो मेरे साथ गवाही देंगे नहीं। लेकिन बम्बई आ कर चंदन मुनि और उनके शिष्य ध्यान करके गये हैं, दिनों, कई दिनों; और मुनि मीठालाल . . .। तरु को भी याद है, तो वह हंसी, कि आबू के शिविर में, आ कर मौजूद रहे हैं। और जिन डेढ़ सौ साध्वियों ने मेरे पास बैठ कर ध्यान किया था, उसके भी गवाह मौजूद हैं। रमणीक झवेरी, बम्बई के, मेरे साथ मौजूद थे। वही मुझे ले गये थे।

अगर तुम्हें ध्यान का पहले से ही पता था, तो इस सब की क्या जरूरत थी ?

और जिसको वे प्रेक्षा-ध्यान कहते हैं, वैसा जैन-शास्त्रों में किसी ध्यान का कोई उल्लेख नहीं है। यह 'प्रेक्षा' शब्द उनका गढ़ा हुआ शब्द है। और मैंने उन्हें जो ध्यान कहा था, उसी ध्यान को अब वे प्रेक्षा-ध्यान कह रहे हैं !

मैंने उनसे ध्यान की दो विधियां कही थीं। एक तो उनकी करने की हिम्मत नहीं—'सक्रिय ध्यान'। क्योंकि वह तो अब जग-जाहिर है कि मेरा है।

अभी किसी मित्र ने खबर दी है कि लन्दन में कोई व्यक्ति सक्रिय-ध्यान करवा रहा है, और बता रहा है कि वह उनका ध्यान है ! लेकिन कितनी देर बता सकेगा ! संन्यासी वहां पहुंचने लगे हैं और पूछने लगे हैं कि यह सक्रिय-ध्यान तुम्हारा ध्यान तो नहीं है ! सक्रिय-ध्यान तो किसी शास्त्र में उपलब्ध नहीं है । वह तो मेरा आविष्कार है । न जैन शास्त्र में है, न किसी हिन्दू शास्त्र में है । इसलिए उसके लिए तो कोई शास्त्रीय प्रामाणिकता खोजी नहीं जा सकती । वह तो मेरी निजी अनुभूति के आधार पर खड़ा है ।

और मेरा मानना है कि बीसवीं सदी में किसी भी व्यक्ति को अगर ध्यान की ऊंचाइयों पर जाना है, तो सक्रिय-ध्यान से ही शुरू करना पड़ेगा । क्योंकि जो हजार तरह की दमित वासनाएं भीतर पड़ी हैं, उनको सक्रिय-ध्यान उलीच कर बाहर कर देता है ।

और दूसरा ध्यान मैंने उनसे कहा था—बुद्ध का प्रसिद्ध ध्यान—विपस्सना । वह भी जैन शास्त्रों में नहीं है । वह बुद्ध का है । सक्रिय-ध्यान मेरा है; विपस्सना—बुद्ध का है । ये दो ध्यान मैंने उनसे कहे थे । क्योंकि ये दोनों ध्यान एक दूसरे को संतुलित कर देते हैं । सक्रिय-ध्यान अकेला हो, तो उलीचने के तो काम में आ जायेगा, लेकिन फिर भरोगे कैसे ! कचरे को तो अलग करना है, जरूर अलग करना है; लेकिन हीरे-जवाहरात ! कंकड़-पत्थर अलग करने हैं, लेकिन कंकड़-पत्थर अलग करने से ही हीरे-जवाहरात नहीं आ जायेंगे । सक्रिय-ध्यान आधा हिस्सा है । प्राथमिक है । एकदम अनिवार्य है । लेकिन जब सक्रिय-ध्यान पूरा हो जाये, तब विपस्सना के बीज बोने हैं ।

और मैं निश्चित कहता हूं कि विपस्सना मेरी खोज नहीं है । जो जिसकी है, उसकी है । वह गौतम बुद्ध की खोज है । और मुझे कोई एतराज नहीं है—गौतम बुद्ध की खोज का उपयोग कर लेने में । क्योंकि किसी की बपौती तो नहीं हैं ये खोजें । हां, इतनी जरूर ईमानदारी होनी चाहिए कि जिसकी खोज हो, हम कम से कम उसकी कहने तक, उसकी बताने तक तो ईमानदारी प्रगट करें !

'विपस्सना' का अर्थ है : निरीक्षण । विपस्सना शब्द का अर्थ होता है—देखना; पश्यना—पश्य । हिन्दी में भी हमारे पास शब्द है—दरस-परस; देखना । बुद्ध ने कहा : सिर्फ अपने विचारों को देखते रहो । देखते-देखते ही वे शांत हो जाते हैं । बुद्ध की इसी खोज को कृष्णमूर्ति 'चोइसलेस अवेयरनेस' कहते हैं । यद्यपि वे भी स्वीकार नहीं करते कि यह बुद्ध की खोज है । उनके इस स्वीकार न करने में मैं थोड़ी-सी बेईमानी की झलक पाता हूं । यूं वे विरोध करते हैं सारे अतीत का, लेकिन जिसको वे 'चुनाव-रहित सजगता' कहते हैं, वह बुद्ध की खोज है ।

और कृष्णमूर्ति को बचपन से ही एनीबीसेंट, लीडबीटर और अन्य थियोसोफिस्टों ने बुद्ध के ही मार्ग पर चलाया था । क्योंकि उन सब की चेष्टा यही थी कि बुद्ध का जो आने वाला अवतार है, 'मैत्रेय', कृष्णमूर्ति उसी अवतार के लिए तैयार किये जा रहे हैं । जब कृष्णमूर्ति तैयार हो जायेंगे, परिपूर्ण शुद्ध हो जायेंगे, तो बुद्ध की आत्मा उनमें

उतरेगी—और वे जगत-गुरु की तरह सारे मनुष्य जाति को पुनः धर्म से ओतप्रोत कर देंगे । इसलिए बुद्ध की प्रक्रिया से ही उनको बचपन से अवगत कराया गया । जब वे केवल नौ वर्ष के थे, तब से उनको विपस्सना करवाई गई । मगर कृष्णमूर्ति भी अतीत के साथ अपना संबंध तोड़ कर बताना चाहते हैं, कि मेरा कोई अतीत से संबंध नहीं है । इसलिए वे भी यह नहीं कह सकते कि जिसको मैं 'चोइसलेस अवेयरनेस' कह रहा हूं, वह केवल नया शब्द है; बात पुरानी है । बोतल नयी है, शराब पुरानी है ! और शराब तो जितनी पुरानी हो, उतनी ही कीमती होती है । बोतलें बदलते रहो । बोतलें खराब हो जाती है, टूट जाती हैं, फूट जाती हैं; कोई फिक्र नहीं ।

लेकिन हमें इतनी निष्ठा होनी चाहिए कि हम कह सकें जो जिसका है ।

तो मैंने उनको कहा था कि सक्रिय-ध्यान मेरी खोज । और बुद्ध उसकी खोज कर भी नहीं सकते थे; न महावीर कर सकते थे । क्योंकि उस सदी में जरूरत न थी । लोग इतने दमित न थे । लोग सरल थे । स्वाभाविक थे, सहज थे । जीवन ज्यादा प्राकृतिक था, प्रकृति के करीब था, आज तो जीवन प्रकृति से बहुत दूर हो गया है । और सभ्यता के ढाई हजार वर्षों ने आदमी के भीतर इतने कीड़े-मकोड़े दबा कर रख दिये हैं, सांप-बिच्छू छिपा कर रख दिये हैं कि जब तक हम उनको न निकाल फेंके, जब तक हम अपने पात्र की गंदगी को सफा न कर लें, तब तक विपस्सना जैसा ध्यान हो नहीं सकता ।

विपस्सना अपूर्व प्रक्रिया है । ध्यान के जगत में उससे बहुमूल्य कुछ भी नहीं है । लेकिन वह महावीर की ध्यान-पद्धति नहीं है ।

तो मैंने उनको कहा था, 'सक्रिय-ध्यान करवायें ।' सक्रिय-ध्यान में तो उनकी छाती कंपी । उन्होंने कहा कि 'चीखना-चिल्लाना, नाचना-कूदना, यह तो मुश्किल होगा ! हम इसके लिए शास्त्र में कहां से समर्थन खोजेंगे ?' 'है भी नहीं समर्थन'—मैंने कहा । शास्त्र में समर्थन खोजा भी नहीं जा सकता । लेकिन हर चीज के लिए शास्त्र में समर्थन हो भी नहीं सकता । रेलगाड़ी के लिए कोई समर्थन है ? हवाई जहाज के लिए कोई समर्थन है ? अरे, सायकिल तक के लिए कोई समर्थन नहीं है ! मगर सायकिल पर मजे से चढ़े चले जा रहे हो ।

मगर समर्थन खोजने वालों की भी एक धुन है । वे हर चीज में समर्थन खोजते हैं !

एक ईसाई समझा रहा था बाइबिल के संबंध में और कह रहा था, 'बाइबिल में सब कुछ है । परमात्मा ने हर चीज बनाई ।'

एक छोटा-सा बच्चा खड़ा हो गया और उसने कहा कि 'यह मैं नहीं मान सकता । मैंने भी पढ़ी है, आपने जो बताई बात । लेकिन परमात्मा ने रेलगाड़ी कहां बनाई ? रेलगाड़ी किसने बनाई ?'

थोड़ा तो झिझका पादरी, मगर चालबाज होते हैं धार्मिक लोग । फिर उसने कहा कि 'साफ लिखा है बाइबिल में कि परत्मामा ने सब सरकती हुई चीजें बनाई ।

और रेलगाड़ी भी सरकती है। उसी में आ गई।'

अब देखते हो तरकीब! सरकती हुई चीजें बनाईं, मतलब केंचुए, छिपकलियां, सांप। सरकती हुई चीजों में यहां तक तो ठीक था। मगर रेलगाड़ी—सरकती हुई चीजों में बना दी! उसकी गिनती सरकती हुई चीजों में हो गई!

तो मैंने कहा कि सक्रिय-ध्यान के लिए तोड़-फोड़ करें, तो कुछ खोज की जा सकती है। जैसे पतंजलि में भस्त्रिका प्राणायाम का एक रूप है। तो सक्रिय-ध्यान का पहला चरण भस्त्रिका से जोड़ा जा सकता है जिसमें श्वास को गहरा लेना और फेंकना है। चाहें ही खोजना, तो भस्त्रिका से पहला चरण जुड़ सकता है।

दूसरे चरण के लिए पतंजलि में कोई उपाय नहीं मिलेगा। लेकिन समस्त शास्त्रों में 'रेचन' शब्द का प्रयोग हुआ है। रेचन का अर्थ होता है—साफ करना, निकालना, फेंक देना, वमन कर देना। इसलिए जिन चीजों से पेट की सफाई की जाती है, उनको रेचक कहते हैं। तो मैंने कहा, रेचन शब्द में अगर खोजना चाहें, तो खोज लेना, दूसरा चरण मिल जायेगा।

तीसरे चरण के लिए हिन्दू शास्त्रों में तो कुछ भी नहीं है, लेकिन इसलाम में उपाय है। अगर हिम्मत हो तो तीसरा चरण जो हू-हू का है, वह अल्लाहू का हिस्सा है। वह सूफियों की ध्यान की पद्धति है। जब कोई व्यक्ति अल्लाहू-अल्लाहू-अल्लाहू-अल्लाहू—इस तरह की सतत पुनरुक्ति करता है, इतने जोर से करता है कि अल्लाहू अल्लाहू एक दूसरे के ऊपर चढ़ जायें, जैसे कि रेरगाड़ी के डब्बे एक दूसरे के ऊपर चढ़ जायें, जैसे मालगाड़ी के डब्बे एक दूसरे के ऊपर चढ़ जायें। तो धीरे-धीरे अखीर में उसे अल्लाहू-अल्लाहू पूरा सुनाई नहीं पड़ता। हू-हू-हू ही सुनाई पड़ने लगता है। अल्ला दब जाता है, एक हू से दूसरे हू पर छलांग लग जाती है। एक अल्लाह एक हू के भीतर दब जाता है। अखीर में हू-हू—हूंकार रह जाती है।

तो मैंने कहा, अगर खोजना ही हो, तो इस तरह खोज सकते हो। मगर यह बहुत जगह से खोजना पड़ेगा। और इतनी हिम्मत भी आपकी नहीं हो सकती कि पतंजलि को भी आप स्वीकार करो, रेचन की विधियां भी आप स्वीकार करो, जिनका जैन शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं है। और फिर मुश्किल तो पड़ जायेगी अल्लाहू के साथ। जिसका कि हिन्दू, जैन, बौद्ध—किसी शास्त्र में उल्लेख नहीं है। जो कि इसलाम की प्रक्रिया है। मगर अगर चाहो, तो हूंकार शब्द है हमारे पास। हूंकार का अर्थ होता है, हू की आवाज। बिठालना ही हो किसी तरह, तो बिठाल लेना। मगर यह सब जबर-दस्ती होगी।

यह सक्रिय-ध्यान तो बीसवीं सदी की खोज है। और बीसवीं सदी के लिए है। और आने वाली सदियों के लिए रोज-रोज ज्यादा मूल्यवान होता जायेगा। मगर यह बगीचे को साफ करने जैसा है। इसकी सफाई के बाद विपस्सना। इसकी सफाई पूरी

हो जाये, तो फिर विपस्सना के फूल खिलने में जरा भी अड़चन नहीं है।

विपस्सना का अर्थ है—मन की समस्त प्रक्रियाओं को—भावनाओं को, विचारों को, वासनाओं को, ऐषणाओं को सिर्फ साक्षी भाव से देखना। इस साक्षी भाव में एक जादू है। और वह जादू यह है कि अगर मन की प्रक्रियाओं को साक्षी भाव से देखा जाये, तो वे धीरे-धीरे अपने आप तिरोहित हो जाती हैं। उनको हमारा अगर सक्रिय सहयोग न मिले तो उनके प्राण समाप्त हो जाते हैं। वे जीती हैं हमारे सहयोग से। और जब हम देखने में लग जाते हैं, तो हमारी ऊर्जा देखना बन जाती है। हमारी ऊर्जा फिर विचारणा नहीं बनती, तो विचार के प्राण निकलने लगते हैं। थोड़े दिन में सांप मर जाता है, खोल पड़ी रह जाती है। थोड़े दिन में खोल भी समाप्त हो जाती है। और एक अपूर्व घड़ी आती है, जब शून्य रह जाता है। उस शून्य में पूर्ण का साक्षात्कार है।

आचार्य तुलसी ने विपस्सना को ही प्रेक्षा कहना शुरू कर दिया। प्रेक्षा का मतलब भी देखना ही होता है। प्रेक्षा, प्रेक्षण, प्रेक्षक, ऑब्जर्वर, निरीक्षण। विपस्सना की पद्धति जैन-पद्धति नहीं है। जैन पद्धति बड़ी भिन्न है। वही तो महावीर और बुद्ध का विवाद था। इसलिए विपस्सना शब्द का उपयोग तो तुलसी नहीं कर सकते हैं, क्योंकि विपस्सना शब्द का उपयोग करेंगे, तो जैन फौरन उपद्रव खड़ा कर देंगे कि यह तो बौद्ध पद्धति है! और बौद्धों और जैनों की तो आज ढाई हजार साल पुरानी विवाद की स्थिति है, दुश्मनी है। जितनी जैनों और बौद्धों में कलह हुई है, उतनी हिन्दू और जैनों में नहीं हुई। स्वाभाविक था, क्योंकि बुद्ध और महावीर दोनों समसामायिक थे, एक साथ मौजूद थे। और एक साथ एक ही प्रदेश बिहार में अपना प्रचार कर रहे थे। तो रोज यह होता था कि कोई आदमी महावीर के डेरे से बुद्ध के डेरे में चला जाता; कोई आदमी बुद्ध के डेरे से महावीर के डेरे में चला जाता। बड़ा कठोर संघर्ष था। और विधियां बिलकुल अलग-अलग थीं।

महावीर की विधि को तो अगर कुछ कहना हो, तो वह ध्यान की विधि कम है, तपश्चर्या की विधि ज्यादा है। महावीर ज्यादा शरीरवादी हैं। बुद्ध ज्यादा मनो-वैज्ञानिक हैं।

मनुष्य के भीतर तीन तत्व हैं। एक तो उसकी आत्मा है, जो उसका अंततम है, जिसको पाना है। जैसे एक त्रिकोण हो। वह जो तीसरा कोण है ऊपर, वह तो आत्मा है। और वे जो दो आधार पर कोण हैं, उनमें एक मन है और एक शरीर है। तीसरे कोण तक जाने के लिए या तो शरीर से जाना होगा या मन से जाना होगा। दो उपाय हैं। तीसरा कोई उपाय नहीं है। पतंजलि भी शरीरवादी हैं। उनकी भी प्रक्रिया शरीर से शुरू होती है—यम, नियम, प्राणायाम, आसन, इत्यादि। शुरू करते हैं शरीर से और महावीर भी पतंजलि ही जैसे व्यक्ति हैं। उनकी प्रक्रिया भी शरीर से शुरू होती है। एक अर्थ में महावीर जैसे पतंजलि से राजी हैं। अगर आधुनिक जगत में हम महावीर

का कोई समर्थन खोजना चाहें, तो पावलोव, रूस का मनोवैज्ञानिक। स्किनर——अमरीका का मनोवैज्ञानिक। देलगादो। ये तीन व्यक्ति हैं आधुनिक युग में जो महावीर से राजी होंगे। इन तीनों को कहा जाता है——बिहेवियरिस्ट; व्यवहारवादी। ये व्यक्ति के व्यवहार को बदलते हैं, उसके शरीर की कीमिया को बदलते हैं। और शरीर की कीमिया की बदलाहट से उसके अंतर्तम को बदला जा सकता है।

एक अर्थ में तो महावीर वैज्ञानिक हैं, बहुत वैज्ञानिक हैं। लेकिन उनका विज्ञान शरीर से शुरू होता है। पहुंचता आत्मा पर है। इसलिए महावीर की प्रक्रिया ध्यान की नहीं, तप की है। शरीर को शुद्ध करना है उपवास से . . .। इतना शुद्ध करना है शरीर को, कि शरीर की सारी की सारी वासनाएं क्षीण हो जायें। और जब शरीर की सारी वासनाएं क्षीण हो जाती हैं, तो उसके साथ ही मन में पड़ती हुई शरीर की प्रतिछायाएं क्षीण हो जाती हैं।

तुम्हारे भीतर कामवासना उठती है, उसके दो अंग होते हैं : एक तो मन और एक शरीर। अगर तुम बहुत गौर से देखोगे, तो तुम पाओगे कि दोनों तत्वों का सम्मिलन होता है कामवासना में——शरीर का और मन का। अगर शरीर साथ न दे, तो भी मन कुछ कर नहीं सकता। और अगर मन साथ न दे, तो शरीर कुछ कर नहीं सकता। शरीर और मन एक ही सिक्के के बाहर और भीतर के पहलू हैं। इस सिक्के को फेंकने के दो ढंग हैं। या तो शरीर का पहलू फेंक दो, दूसरा पहलू अपने आप फिक जायेगा। और या फिर मन का पहलू फेंक दो। शरीर का पहलू फेंकना कठिन है, दुर्गम है। इसलिए महावीर की साधना दुर्गम है। तभी तो उन्हें महावीर कहा। यह उनका नाम नहीं है। उनका नाम तो था वर्धमान। लेकिन उनको महावीर कहा, क्योंकि उन्होंने दुर्धर्ष साधना की बारह वर्ष। शरीर को यूं शुद्ध किया कि शरीर की सारी केमिस्ट्री, शरीर का पूरा रसायन बदल दिया। और ये तुलसी और इस तरह के लोगों को उस रसायन को बदलने की भी कोई कला पता नहीं है!

उस रसायन को बदलना भी बहुत दुरूह मार्ग है। मैं सोचता हूं, कभी जरूरत होगी, तो उस संबंध में भी तुमसे बात करूंगा। अभी जरूरत नहीं आयी। लेकिन अगर मुझे किसी दिन लगा, कम्यून के बन जाने पर, कि कुछ ऐसे लोग आ गये हैं जो शरीर की उस दुर्धर्ष साधना में भी उतर सकते हैं, तो जरूर तुम्हें शरीर की केमिस्ट्री, उसका रसायन बदलने की प्रक्रिया भी दूंगा, वह महावीर की प्रक्रिया होगी। उसको मैंने आज तक दिया नहीं है। उसको मैंने आज तक कहा नहीं है। क्योंकि किससे कहना है!

और जिन बनियों के हाथ में महावीर पड़ गये हैं, ये क्या खाक शरीर के रसायन को बदलेंगे! ये मारवाड़ी——और शरीर के रसायन को बदलेंगे!

नागपुर में मैं एक घर में मेहमान था। बगीचे में बैठा था सुबह-सुबह। एक कार आ कर रुकी। एक आदमी उतरा और उसने कहा कि 'सेठ कचरमल के यहां से लड्डू आये हैं। तो आप घर के मालिक को बुला दें।'

मैंने कहा कि 'घर के मालिक तो बाहर गये हैं, मालकिन भी बाहर गयी हैं। मैं मेहमान हूं। अगर मुझ पर भरोसा हो, तो लड्डू छोड़ जाओ। गिनती कर लो।' लेकिन वह आदमी कुछ बेचैन-सा दिखाई पड़ा लड्डू छोड़ने की बात जो मैंने कही।

तो मैंने कहा, भैया, गिनती कर ले। तो गिनती तू फोन पर कह देना। जैसे ही वे आयेंगे, मैं कह दूंगा कि फोन करके सेठ कचरमल के यहां पूछ लें, कितने लड्डू भेजे हैं। मगर तू लड्डू छोड़ जा बेफिक्री से।'

उसने कहा, 'नहीं, नहीं। मैं इसलिए नहीं अचकचा रहा हूं। असल में मेरा नाम लड्डू है! सेठ कचरमल के यहां से लड्डू आये हैं, उसका यह मतलब नहीं कि लड्डू ले कर आया हूं। मेरा नाम लड्डू है, इसलिए मैं थोड़ा अचकचा रहा हूं!'

अब ये कचरमल और लड्डू——ये शरीर का रसायन बदलेंगे! एक तो कचरमल——उनके घर से लड्डू आये हैं!

मैंने कहा कि 'भैया, तू जा! मुझे छोड़ अकेला। तुझे बिठालने की जरूरत नहीं है! लड्डू भी होते, तो ठीक था।'

जिस दिन मुझे लगेगा कि वे लोग आ गये . . .। कुछ लोग जरूर आ जायेंगे। क्योंकि मनुष्य में सभी तरह के लोग हैं। उनकी मात्रायें कम-ज्यादा हो गयीं। महावीर के समय में वैसे लोग काफी थे। उसका कारण था। उसका कारण था कि क्षत्रिय होना एक साधना थी।

महावीर क्षत्रिय थे। जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही क्षत्रिय थे। कैसा दुर्भाग्य कि जिनके चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे, उनके सब मानने वाले बनिये हैं! इससे बड़ा दुर्भाग्य घट सकता है कुछ और!

ये क्षत्रिय थे। इन्होंने तलवार पर ही धार नहीं रखी थी, इन्होंने अपने शरीर पर भी धार रखी थी। ये वर्षों की तपश्चर्या से गुजरे थे। क्षत्रिय होना तपश्चर्या है। क्षत्रिय होना कोई खेल नहीं। यह जीवन-मरण को हाथ में ले कर चलना है। यह गर्दन को यूं उतार कर रख देने की कला है। इन्होंने शरीर को साधा था। इन्होंने शरीर की बहुत-सी भीतरी प्रक्रियाएं की थीं। इन्होंने शरीर के बहुत से आंतरिक अनुष्ठान किये थे। उन अनुष्ठानों, प्रक्रियाओं और तपश्चर्याओं के आधार पर महावीर ने अपनी साधना-पद्धति खोजी थी। वह साधना-पद्धति बहुत दुर्गम है। उस पद्धति को करने के लिए उस तरह के लोग चाहिए। वैसे लोग खो गये आज तो पृथ्वी पर क्षत्रिय समाप्त हो गये। जापान में 'समुराई' समाप्त हो गये। समुराई थे, वे लोग साध सकते थे महावीर की साधना को।

जान जैसे कोई बात ही न थी! तुम चकित होओगे, समुराइयों की अगर तुम कहानियां पढ़ोगे, तो तुम हैरान होओगे।

एक समुराई--तीन सौ साल पुरानी कहानी है--जापान के सम्राट का रक्षक था। समुराई को कैसे उठना, कैसे बैठना, कैसे खड़े होना; ; कब बोलना, कब नहीं बोलना; क्या बोलना, कितने संतुलित शब्दों में बोलना--सब की वर्षों शिक्षा दी जाती थी। और कहा जाता था कि दो समुराई अगर कभी तलवार के युद्ध में जूझ जायें, तो कोई भी जीत नहीं सकता था। उनकी सजगता ऐसी होती थी कि दोनों की धारें ऐसी होती थीं कि तलवारें टूट जातीं, मगर समुराइयों को चोट नहीं पहुंचती थी। और अगर कोई मर जाता या कट जाता, तो उसका मतलब सिर्फ इतना ही था कि वह अभी कच्चा था। और छोटी-छोटी बात पर्याप्त थी। समुराई की इज्जत और आदर की बात ऐसी थी, उसका स्वाभिमान ऐसा था...। और ध्यान रखना : वह सिर्फ अहंकार की बात नहीं थी; उसका स्वाभीमान बड़ी और बात थी। क्षत्रिय का स्वाभिमान बड़ी और बात थी। अहंकार तो उनमें होता है, जिनमें स्वाभिमान की क्षमता नहीं होती।

यह समुराई--सम्राट ने कुछ पूछा--और उसने बात कुछ ऐसी पूछी थी कि उसको हंसी आ गयी। लेकिन समुराई को मालिक के सामने हंसना नहीं चाहिए। मालिक ने उसे इस ढंग से देखा, एक क्षण को, कि समुराई हो कर और वह मालिक के सामने हंसे!

समुराई ने मालिक के पैर छुए, घर जा कर छुरी मार कर आत्महत्या कर ली। छुरी भी समुराई इस ढंग से मारता था कि उसके मरने की भी कला अद्भुत थी; हाराकिरी कहते हैं जापान में। ठीक नाभि के दो इंच नीचे समुराइयों ने एक बिंदु खोज निकाला था, जिसको वे मृत्यु-बिंदु कहते हैं, हारा कहते हैं। अभी तक विज्ञान उसको खोज नहीं पाया है, लेकिन उस पर चोट करने से, बिना किसी पीड़ा के, होशपूर्वक व्यक्ति समाप्त हो जाता है। लेकिन होश नहीं खोता। वही कला थी उसकी। क्योंकि होश खो जाये, तो क्या समुराई! जिंदा में भी होश; मरने में भी होश। होश नहीं खोना चाहिए। होश खो गया, तो बात खो गयी। बेइज्जती हो गयी।

इस समुराई के तीन सौ शिष्य थे। यह बड़ा गुरु था समुराइयों का। जब उन्होंने देखा--हमारे गुरु से भूल हो गयी, और उसने हाराकिरी कर ली, तो तीन सौ शिष्यों ने हाराकिरी कर ली! उनसे तो कोई भूल ही न हुई थी। मगर जब गुरु से भूल हो गयी, और जब गुरु विदा हो गया, तो हम किस मुंह से खड़े रहें! अब हम किस मुंह से कहेंगे कि हम किस गुरु के शिष्य हैं!

सम्राट तो घबड़ा गया जब उसको खबर मिली। उसने कहा, 'यह क्या पागलपन है!' लेकिन उसके दरबारियों ने कहा, 'आप समुराइयों को नहीं जानते हैं। आपको उस ढंग से नहीं देखना था। आपकी नजर में निन्दा थी। उतना काफी है, इशारा काफी है। समझदार को इशारा काफी है। ये घोड़े वे नहीं हैं, जिनको मारो, तब चलें। इनको तो सिर्फ कोड़े की छाया काफी है। आवाज भी नहीं करनी पड़ती।'

यहां मेरे संन्यासियों ने समुराइयों का एक छोटा-सा वर्ग बनाया है। वे कराते, अकीदो की साधना करते हैं। उसमें जर्मन सम्राट का प्रपौत्र भी एक समुराई है। सम्राट के परिवार का है--विमल कीर्ति--तो उसके ढंग भी...। यद्यपि आज संन्यासी है, मगर है तो वह जर्मन सम्राट के बेटे का बेटा। उसके खून और उसकी हड्डी-मांस-मज्जा में है तो वही स्वाभिमान।

वह मेरे कमरे के बाहर पहरे पर होता है। उसे सदा वहां होना चाहिए। वह उसकी साधना का हिस्सा है। एक दिन मैं कमरे के बाहर आया; वह एक दस-पांच कदम दूर था। मैंने तो कुछ खयाल नहीं किया; मैंने यूं ही पूछा, 'कीर्ति, सब ठीक है ना!' वह एकदम सिर झुका कर खड़ा हो गया।

मैं आगे बढ़ गया। पीछे विवेक ने मुझे आ कर कहा कि 'आपने क्या कर दिया! विमल कीर्ति कहता है कि मैं हाराकिरी कर लूंगा!'

मैंने कहा, 'उस पागल को कहो कि यहां कोई हाराकिरी करने की जरूरत नहीं है!' विमल कीर्ति कहता है कि मुझे जहां होना चाहिए, वहां से मैं दस फीट दूर था। बड़ी बेइज्जती हो गई!

और मुझे खयाल ही नहीं था; मैं तो उससे यूं ही पूछा, सब ठीक है! मगर उसने समझा कि मैंने उसे इशारा किया--कि यह क्या! दस फीट दूर अपनी जगह से!

ऐसे मैं अपने कमरे से निकलता ही नहीं हूं। इसलिए कुछ पता ही नहीं चलता किसी को कभी। उस दिन किसी काम से बाहर निकला था। मेरे दांत में तकलीफ थी। और देवगीत मेरे डॉक्टर हैं मेरे दांतों के, वे बाहर मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। तो उनके पास जा रहा था। विमल कीर्ति को पता नहीं था कि मुझे निकलना है, जाना है। वह टहल रहा होगा। खड़ा भी कब तक रहे कोई व्यक्ति! तो दस कदम दूर था, तो कोई कसूर न था। और मैंने कसूर की बात भी न उठाई थी। मगर समुराई की धारणा--कि यह तो बात गलत हो गई! अब मुझे मर जाना चाहिए!

मैंने कहा, 'पागलो! यहां कुछ मरना सीखने का सवाल नहीं है, यहां जीना सीखने का सवाल है!' बामुश्किल उसको समझाया कि समुराई यहां होने का मतलब यह है कि जीने की कला सीखो!

मगर यह समुराइयों की दुनिया थी। यह क्षत्रियों की दुनिया थी। महावीर महा क्षत्रिय थे। उनकी प्रक्रिया बिलकुल और है। उसमें प्रेक्षा का कोई स्थान नहीं। और प्रेक्षा शब्द का तो बिलकुल ही जैन शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं है। लेकिन तुलसीजी दिखलाना चाहते हैं कि उन्होंने कोई ध्यान की बड़ी अभूतपूर्व विधि खोज ली है!

विपस्सना कह नहीं सकते। क्योंकि विपस्सना कहें तो वह बौद्धों का है। और जैन शास्त्रों में कोई शब्द नहीं है उसके लिए। इसलिए--प्रेक्षा। प्रेक्षा का मतलब वही

होता है।

मुझसे सीख कर नाहक इस बेचारी गरीब चांद कुमारी को दस हजार मील की यात्रा करवा दी! और भी शिष्याओं को भेज दिया है!

और भी मित्रों ने प्रश्न पूछे हैं, इसी संदर्भ में।

जिनस्वरूप ने पूछा है: 'भगवान, इस देश के राजनीतिज्ञ, साधु-महात्मा जो आपका विरोध करते हैं, वे लोग आश्रम आ कर स्वयं अपनी शंकाओं का निराकरण क्यों नहीं कर लेते?'

हिम्मत नहीं है, बल नहीं है; नपुंसक हैं। इस आश्रम में आ कर अपनी शंकाओं का निराकरण करने में घबड़ाते हैं। डर है कि कहीं निराकरण हो न जाये! फिर क्या करेंगे! और निराकरण निश्चित हो जायेगा। मैं तो कहता हूं कि तुलसी आ जायें। और उनके इस काम से अब उनको तुलसी कहने का भी मेरा मन नहीं रहा। अब तो आचार्य भोंदूमल! तो भोंदूमल, थोथूमल दोनों आ जायें।

यहां सौ मनस-क्रांति की प्रक्रियाएं चल रही हैं। सौ के उनको नाम भी नहीं मालूम होंगे; उनके बाप-दादों को भी मालूम नहीं होंगे। वे यहां आ जायें; उन्हें सारी प्रक्रियाओं से गुजार देंगे। उन्हें आदमी बना देंगे! मगर पहले मुरगा बनना पड़ेगा! क्योंकि वे प्रक्रियाएं ऐसी हैं। अब प्राइमल थैरेपी से गुजरोगे, तो मुरगा तो बनना पड़ेगा!

और उनकी हिम्मत नहीं हो सकती यहां आने की। और मेरे विरोध में प्रचार क्या करोगे, जब मुझे समझते भी नहीं हो! और इन गरीब औरतों को भेज दिया है यहां। यह भी नामर्दी की हद हो गई। अरे खुद आना था, क्या औरतों को आगे करना!

बर्मा में रिवाज है कि आदमी आगे चलता है, जैसे कि सारी दुनिया में रिवाज है; और औरत पीछे चलती है। लेकिन दूसरे महायुद्ध में ऐसा हुआ कि अचानक... अंग्रेज बड़े हैरान हुए कि बर्मा में कुछ एकदम से क्रांति हो गयी—क्या हुआ! औरतें आगे चलने लगीं, आदमी पीछे चलने लगे! तो एक अंग्रेज सेनापति ने एक बर्मी से पूछा कि 'भाई, बात क्या है—एकदम से क्रांति हो गई! सारी दुनिया में आदमी आगे चलता है, औरत पीछे चलती है। औरत आगे चले, तो आदमी को शरम मालूम होती है। और यहां भी यही था कल तक रिवाज। अब यह क्या हो गया! तुमने तो क्रांति कर दी। तुमने तो स्त्रियों को समान अधिकार दे दिया। समान से भी ज्यादा अधिकार दे दिया!'

वह बर्मी हंसने लगा। उसने कहा, 'यह मत पूछिये। मत ही पूछिये! यह बात छड़िये ही मत। यह कोई समान अधिकार वगैरह नहीं है। यह जो दूसरा महायुद्ध चल रहा है, इसके कारण।'

अंग्रेज ने कहा, 'मैं समझा नहीं!' उसने कहा, 'अब आप नहीं समझे, तो मुझे समझाना पड़ेगा। अरे कुछ पक्का पता नहीं है कि कहां सुरंगें बिछी हैं, कहां बम छिपे हैं। सो औरत को आगे चलाने लगे, कि मरें तो ये ही मरें! युद्ध के कारण जगह-जगह सुरंगें बिछी हैं, बम बिछे हैं, बम छिपे हैं। पता नहीं कहां क्या हो! तो औरतों को आगे चलाने लगे। यह कोई क्रांति वगैरह नहीं है।'

अब ये भोंदूमल, थोथूमल को खुद ही आ जाना चाहिए। क्या जरूरत है, इन बेचारी गरीब स्त्रियों को भेजने की! और इन स्त्रियों को क्या पता—ये मेरा क्या विरोध करेंगी! पहले तो इनको इस आश्रम में आना चाहिए। मगर इनका तो सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा! क्योंकि अगर मुझे समझना है, तो तंत्र भी समझना होगा। अगर मेरा विरोध करना है, तो समाधि की ही अकेली समझ काफी नहीं है; संभोग की भी समझ जरूरी हो जायेगी। क्योंकि मेरा तो पूरा का पूरा जीवन-कोण—संभोग से समाधि की ओर!

अब ये गरीब स्त्रियां—ये क्या समझेंगी! भोंदुओं को खुद आना चाहिए। मगर जहां देखा कि सुरंगें बिछी हैं, वहां औरतों को आगे कर दिया! और उनके डर यही हैं कि यहां आयेंगे, तो मेरी सारी प्रक्रियाओं से गुजरना होगा। और इन प्रक्रियाओं से गुजरेंगे, तो ही समझ सकते हैं कि मैं क्या कह रहा हूं। मगर उसके लिए उन्हें बहुत से उपद्रव छोड़ने पड़ेंगे। उन्हें बहुत-सी आदतें छोड़नी पड़ेंगी। और आदतें बड़ी मुश्किल से छूटती हैं। छूटती ही नहीं। आदतें जड़ हो जाती हैं। धारणायें छाती पर यूं सवार हो जाती हैं कि उतरती ही नहीं!

एक गांव से चोर गुजर रहे थे। उन्होंने देखा कि एक नट छलांग लगा कर रस्सी पर चढ़ गया और खेल दिखाने लगा। चोरों ने सोचा, इस नट को उड़ा कर ले जाना चाहिए। किसी दो मंजले मकान पर वह आसानी से चढ़ जायेगा। अरे इतनी छलांग लगाता है! और अपना काम आसान कर देगा। अपने को कितनी मेहनत हो जाती है! चढ़ने में ही बहुत झंझट हो जाती है। और यह तो यूं छलांग लगाता है कि जैसे इसको पंख हों!

उस नट को ले कर चोर चोरी करने आधी रात को गये। एक हवेली के पास पहुंचे और बोले, 'तुम छलांग लगा कर पहली मंजिल पर पहुंच जाओ।' नट ने चोरों से कहा कि 'भई, यह तो नहीं हो सकता। पहले मेरा आयोजन पूरा करो।'

एक चोर ने गुस्से में कहा, 'अबे तू जल्दी कूद जा न! अपने पास वक्त बहुत कम है।'

नट ने चीख कर कहा, 'लेकिन पहले नगाड़ा तो बजाओ! बिना नगाड़े के मैं नहीं कूद सकता! बिना नगाड़े के कूदूं कैसे! बिना नगाड़े के कभी कूदा ही नहीं। पहले नगाड़ा बजे! फिर देखो। अरे तुम पहली मंजिल कहते हो, मैं तीसरी पर कूद जाऊं। मगर नगाड़ा!'

मगर चोर आधी रात को नगाड़ा बजायें तो हो गया फैसला!

आदतें—गहरी आदतें!

और फिर ये दमित लोग; ये बेचारे क्या शुद्धि करेंगे ! कचरे से भरे हुए--कचरमल ! इनके भीतर इतना कूड़ा-कर्कट है ! मुझसे कितने जैन साधुओं ने नहीं कहा कि कामवासना से कैसे छुटकारा हो ! मैंने कहा कि तुम कामवासना से छुटकारे के लिए तो जैन साधु हुए थे । अभी तक छूटी नहीं ! छूटती कहां--और बड़ी हो जाती है--और गहन हो जाती है ।

जितनी काम-विकृतियां पैदा हुई हैं दुनिया में, वे सब साधु-संन्यासियों की वजह से पैदा हुई हैं । पुरुषों को एक बाड़े में बंद कर दिया है; स्त्रियों को एक बाड़े में बंद कर दिया है ! ईसाइयों ने भी, जैनों ने भी, बौद्धों ने भी । ये बाड़े उपद्रव के कारण हैं । जब पुरुष एक साथ रहेंगे, तो स्वभावतः उनमें विकृतियां आनी शुरू हो जायेंगी । उनमें समलैंगिक व्यवहार शुरू हो जायेंगे । यह मैं नहीं कह रहा हूं; मनोवैज्ञानिकों के सारे अध्ययन कहते हैं, सारी शोधें कहती हैं । स्त्रियां इकट्ठी होंगी, उनमें समलैंगिक व्यवहार शुरू हो जायेंगे । यह होने वाला है । उनमें न मालूम किस-किस तरह की विकृतियां पैदा होंगी ! उनकी आंखों पर सदा ही कामवासना डोलने लगेगी ।

एक रजनीशी संन्यासी से किसी मुंहपट्टीधारी तेरापंथी जैन साधु ने कहा कि 'आप लोग भी किस आदमी की बातों में पड़े हैं ! यह आदमी आपको डुबायेगा ।'

रजनीशी संन्यासी बोला, 'हमें डूबने में मजा है । हमें पार जाना नहीं है । हम तो डूब गये कि पार हो गये ! जिंदगी की कोई मंजिल तो नहीं । जिंदगी मौज है, साहिल तो नहीं !'

तेरापंथी साधु एक क्षण को तो चुप रह गया । तभी रजनीशी संन्यासी ने कहा, 'महाराज, यह तुम्हारे मारवाड़ी बनिये का दिमाग बहुत ही सड़ा-गला हुआ है । पर तुम्हें हम चरित्रहीन लगते हैं । सड़े-गले तुम हो । तुम्हें स्वस्थ लोग चरित्रहीन लगते हैं । अंधे तुम हो, तुम्हें आंख वाले अंधे लगते हैं ! एक बात तुमसे पूछता हूं, जवाब दो । बोलो, वह क्या चीज है, जो औरतों को दो और गायों को चार होती है ?'

इस पर तेरापंथी तो बहुत परेशान हो गया । कुछ देर सिर खुजलाया और बोला कि 'देखो जी, तुम रजनीशी सुबह-सुबह ही ऐसी गंदी बातें शुरू कर देते हो !'

इस पर रजनीशी संन्यासी बोला, 'अरे टांगें, बेटा, टांगें !'

मगर वे दमित लोग हैं, उनकी खोपड़ी में तो कचरा भरा है । उन्हें तो और कुछ दिखाई पड़ता ही नहीं ।

तुमने पूछा, चैतन्य कीर्ति, कि 'वे शास्त्र-शुद्ध प्रेक्षा-ध्यान शिविर आयोजित करेंगे ।' बड़ी अच्छी बात है; करें । ध्यान तो जैसे फैले--अच्छा; किसी बहाने फैले--अच्छा । प्रेक्षा नाम रखो; विपस्सना कहो, निर्विकल्प ध्यान कहो, निर्बीज ध्यान कहो--जो मौज हो, कहो । मुझे कुछ चिंता नहीं । किसके नाम से चलता है, इससे भी क्या लेना-देना । ध्यान फैले—अच्छा । मगर ये गरीब साधु-साध्वियां--इनको ध्यान है !

इनको ध्यान हुआ है ? अगर इनको ध्यान नहीं हुआ है, ये दूसरों को कैसे करा सकेंगे ! असंभव है यह बात । सिर्फ ध्यानी ही दूसरे के भीतर ध्यान की चिनगारी पैदा कर सकता है । खुद का दीया जला हो, तो ही तो हम दूसरे के बुझे दीये को जला सकते हैं ! और कोई उपाय नहीं है ।

जिनस्वरूप ने पूछा है : 'ये साध्वियां भ्रष्ट लोगों को ठीक करने के लिए भेजी गयी हैं !' बड़ा अच्छा काम है ! भ्रष्ट लोगों को ठीक करना ही चाहिए । मगर जो मेरे द्वारा भ्रष्ट हुआ है, इसको ठीक करना बहुत मुश्किल है । असंभव । यह तो किसी को भी भ्रष्ट कर देगा । इसका भ्रष्ट होना कोई साधारण घटना नहीं है । और मैं सिर्फ भ्रष्ट थोड़े ही करता हूं । भ्रष्ट करने की कला भी सिखाता हूं ! चलो, मौज रहेगी; तुम भी जाया करो इन साध्वियों को भ्रष्ट करने ! वे तुम्हें सुधारें, तुम उन्हें बिगाड़ो !

मेरा तो काम ही बिगाड़ना है! मत चूको यह मौका । अब दस हजार मील से चल कर बेचारी आयी हैं, कितनी तकलीफ उठाई है; कुछ तो इनको लाभ पहुंचाओ ! तो जाओ ।

और भी मित्रों ने पूछा है । सुभाष सरस्वती ने पूछा है : 'आचार्य तुलसी की आत्मा की शांति के लिए हम क्या करें ?'

भैया, पहले आत्मा भी तो होनी चाहिए ! इसलिए तो जब आदमी मर जाते हैं, तब हम उनकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करते हैं । कि न रहा बांस, न रही बांसुरी; अब झंझट मिटी; अब कर लो आत्मा की शांति की प्रार्थना ! किसी की जिंदा में तुम करते हो आत्मा की शांति की प्रार्थना ! क्योंकि तुम्हें खुद ही झिझक होगी, कि पहले आत्मा भी तो होनी चाहिए ! अब मर ही गये, तो दिखाई ही नहीं पड़ते, तो होगी आत्मा !

आत्मा ध्यान से निखरती है, प्रगट होती है । ध्यान है ही कला आत्मा के निखारने की, उघाड़ने की । साधारणतः आदमी अनगढ़ पत्थर की तरह पैदा होता है । यह तो ध्यान की छेनी है, हथौड़ी है, जिसके द्वारा किसी सद्गुरु के हाथ में पड़ जाये यह पत्थर, तो मूर्ति बने; तो आत्मा प्रगट हो । नहीं तो अनगढ़ पत्थर ही रह जाते हैं । इनके मुंह पर पट्टी बांध दो, तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता । ये पानी छान कर पी लें, तो कोई फर्क नहीं पड़ता । ये रात भोजन न करें, तो कोई फर्क नहीं पड़ता ।

और एक से एक अजीब धारणाएं हैं । और उन धारणाओं को मान कर ये लोग जीते हैं । तेरापंथियों की तो बहुत अजीब धारणा है । ये महावीर के अनुयायी हैं, महावीर की अहिंसा में मानते हैं और इनकी अहिंसा भी बहुत अद्भुत है ! इनकी अहिंसा का अर्थ भी समझने जैसा है ।

तेरापंथी मानते हैं कि अगर रास्ते पर कोई कुएं में भी गिर गया हो, तो तुम बचाना मत । क्यों ? क्योंकि अगर तुमने उसे बचाया, तो पहली तो बात : उसके पिछले जन्मों

के कर्मों के कारण वह गिरा था; तुमने उसके कर्मों की प्रक्रिया में बाधा डाल दी। वह अपना कर्म-फल भोग रहा था, तुमने अटकाव डाल दिया! उसको बेचारे को फिर कुएं में गिरना पड़ेगा। तभी तो कर्म-फल भुगतेगा! तुमने उसका कुछ साथ नहीं दिया। तुम उसके दुश्मन हो। अरे और डुबकी दिलवा देनी थी, कि मार ले बेटा डुबकी। निकल ही मत। अब खतम ही कर ले अपने कर्म! छुटकारा ही पा जा आवागमन से!

और दूसरा खतरा यह है कि तुमने इसको अगर कुएं से निकाल लिया, और कल यह किसी की हत्या कर दे--फिर! तो उसका जुम्मा तुम पर भी पड़ेगा! तुम भी सड़ोगे अगले जन्मों में! न तुम उसे बचाते, न वह हत्या करता!

देखते हो--क्या गजब के तर्क! महावीर की अहिंसा को मानने वाले लोग! किसी भिखमंगे को भीख मत देना, क्योंकि पता नहीं, वह खाने के बाद क्या करे! किसी वेश्या के यहां चला जाये--फिर! उसका मतलब: मुनि महाराज भी गये! डूब गये उसी के साथ! न देते भोजन--न वह जाता वेश्या के यहां! और भिखमंगों की कुछ न पूछो--कहां जायें! अकसर तो वेश्याओं के यहां जायेंगे; शराबघर जायेंगे, सिनेमा देखेंगे! भिखमंगे तो जिंदगी मजे से जीते हैं! अरे अपने बाप का जाता क्या है! फिर कल झटकेंगे किसी से। आज का आज निपटा देते हैं, कल का कल देखेंगे। ऐसे निश्चित भाव से जीते हैं!

भिखमंगे को देना मत कुछ। कोई कुएं में गिर जाये, बचाना मत। कोई प्यासा मर रहा हो रेगिस्तान में, तो भी पानी मत पिलाना। क्योंकि पता नहीं, किस जन्म के कर्मों का फल भोग रहा है। और पानी पी कर बच जाये, फिर न मालूम कौन से कर्म करे! तो तुम भी उसमें साझीदार हो गये!

ये साधु! यह धर्म! यह प्रेम! ये अहिंसा की बातें! ये ध्यानी! ये परोपकारी! जरा सोचो भी तो इन लोगों की दृष्टि और इनका अंधापन!

ये अपने को ही सुधार लें, उतना ही काफी है। ये नाहक क्यों कष्ट करने यहां आये! और आत्मा वगैरह तो सुभाष इनकी है नहीं, इसलिए अभी शांति के लिए तुम कुछ नहीं कर सकते। जिसके पास आत्मा होती है, वह शांत होता ही है। आत्मा का होना और शांत होना एक ही बात है। अशांत होना और आत्मा का सोया होना, एक ही बात है।

और वंदना ने पूछा है कि 'आचार्य तुलसी अपने ही हाथों अपनी पिटाई क्यों करवाना चाहते हैं?'

कुछ लोगों को पिटने में मजा आता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं, कि जब तक उनकी पिटाई न हो, उन्हें लगता है कि जैसे वे हैं ही नहीं; उन पर कोई ध्यान ही नहीं दे रहा है! कुछ लोग तो सुबह से ही निकलते हैं और बैलों से कहते हैं--आ बैल; सींग मार!' जब तक बैल सींग न मारे, उन्हें अपने अस्तित्व का बोध नहीं होता। अपने हाथ से

पिटने निकल पड़ते हैं! क्या करोगे!

अब मुझे तो इनका खयाल ही नहीं था बिलकुल। इतने दूर से बेचारों ने मेहनत की। अभी कल मैं अखबार में देख रहा था, कोई एक दर्जन से ज्यादा संतों और महात्माओं और महंतों की नामावलि गुजराती अखबारों में निकली है। गुजरात के अलग-अलग क्षेत्रों से इन साधु, संतों और महात्माओं ने--दर्जन से ऊपर संख्या है, पंद्रह होंगे--या ज्यादा भी हो सकते हैं, मैंने गिनती की नहीं; लम्बी फेहरिश्त है--इन सब ने प्रार्थना की है सरकार से कि मुझे प्रवेश न करने दिया जाये गुजरात में। और जनता से--कि मेरे प्रवेश में बाधा डाली जाये। और इस बात की घोषणा की है कि हम प्रवेश नहीं करने देंगे गुजरात में।

मैं फेहरिश्त पढ़ रहा था, तो मुझे एक बात खयाल में आयी कि यह अच्छा मौका है, अगर गुजरात में कितने गधे हैं, इसकी गणना करनी हो, तो यह मौका हाथ से चूकना नहीं चाहिए। गुजरात के सब गधे अपने आप रेंकेंगे! छिपे भी होंगे, वे भी रेंकेंगे! अब इन पंद्रह में से किसी का नाम कभी मैंने सुना नहीं। मगर कहां छिपे थे, एकदम रेंकने लगे!

क्या मजा है! अभी मैं गया भी नहीं और गधों में एकदम चहलकदमी मच गयी है! तब मुझे यह भी खयाल आया कि पहले गुजरात के गधों की संख्या कर लें, फिर बदल देंगे। फिर कहेंगे--कटक जाते हैं! फिर वहां के गधों की गणना कर लेंगे--फिर कहेंगे: अब हिमालय जाते हैं। फिर वहां के गधों की गणना कर लेंगे। ऐसे पूरे भारत में कितने गधे हैं...इसका और कोई तो उपाय नहीं है। मगर यह बड़ी अच्छी तरकीब हाथ लग गयी!

कल मैं जब अखबार पढ़ रहा था, मैंने कहा--यह बड़ा मजेदार है काम। पहले यहां के गधे गिन लो; फिर दूसरे प्रांत चलेंगे, फिर वहां के गधे गिन लेंगे। ऐसे अपने पास फेहरिश्त होगी, पहली फेहरिश्त सारी दुनिया में कि एक देश में कितने गधे हैं!

और भारत तो पुण्यभूमि है, यहां तो गधे तरसते हैं पैदा होने को! एक से एक पहुंचे हुए गधे; सिद्ध गधे! अब ये पिटाई न करवायें, तो क्या करें! अब ये रेंकेंगे--तो पिटेंगे! चुपचाप रहे आते, तो कोई इनसे बोल नहीं रहा था।

अब इसमें एक तो ऐसे सज्जन हैं, महंत हरिदास। उनका नाम भर मुझे पता था, क्योंकि दो ही दिन पहले चितरंजन के एक मित्र हैं बड़ौदा में चंद्रकांत, उन्होंने मुझे पत्र लिखा था कि चितरंजन आजकल एक महंत हरिदासजी के पीछे घूमते हैं। और यह भी कहते फिरते हैं कि भगवान जो काम परम्परा के बाहर रह कर कर रहे हैं, वही हरिदासजी परम्परा के भीतर रह कर कर रहे हैं।

मैं कह नहीं सकता कि चंद्रकांत की बात कितने दूर तक ठीक होगी, क्योंकि चंद्रकांत और चितरंजन में बड़ी गहरी दोस्ती है--मतलब बड़ी गहरी दुश्मनी है! पुराने दोस्त

हैं, सो बड़ी स्पर्धा है। कहां तक सच है मुझे पता नहीं। मगर अगर ये वही गधे हैं, तो चितरंजन को मैं कहता हूं: संग-वंग घूमने की जरूरत नहीं है; सवारी करो! क्या संग-साथ! गधों का कोई संग-साथ करना पड़ता है! सवारी करो। और अगर परंपरा के भीतर गधा घूम रहा हो, तो बाहर ले चलो! अरे गधा ही तो है, हांक दो। अब मिल ही गया है संग-साथ, तो गधे को भी निकाल ही लो!

चितरंजन! मत चूको मौका।

कुछ लोग हैं, जो पिटने फिरते हैं, कुछ किया नहीं जा सकता। उनको खुजलाहट चढ़ती है।

आखिरी प्रश्न: भगवान,

अपने ही बस में नहीं मैं
दिल है कहीं तो हूं कहीं मैं
डर है सफर में कहीं खो न जाऊं मैं
रस्ता नया हां, हां, हां
आज फिर जीने की तमन्ना है
आज फिर मरने का इरादा है।

वीणा भारती! उतरने लगी शराब तेरे गले में। तभी तो—हां, हां, हां—आज फिर जीने की तमन्ना है, आज फिर मरने का इरादा है! ये दोनों बातें एक साथ ही आती हैं। क्योंकि जीना और मरना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब जीने की तमन्ना आती है, तो मरने का इरादा भी आता है। जो जीना जानता है, वही मरना भी जानता है। जिसके जीने में आनन्द होता है, उसकी मृत्यु में नृत्य होता है।

शुभ हो रहा है। अब पीछे लौट कर मत देखना।

जाम चलने लगे, दिल मचलने लगे
जाम चलने लगे...चलने लगे...चलने लगे...चलने लगे
दिल मचलने लगे...मचलने लगे...मचलने लगे
अंजुमन झूम उठी बज्म लहरा गई
जाम चलने लगे, दिल मचलने लगे
जाम चलने लगे, दिल मचलने लगे
बाद मुद्दत महफिल में वो क्या आ गये
जैसे गुलशन में बहार आ गई...

जिंदगी एक चमन है, चमन है मगर
इस चमन की बहार ओ खिजां
कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं
वो न आयें तो समझो खिजां के हैं दिन
अरे वो जो आ जायें तो समझो बहार आ गई
रंग, खुशबू, सबा, चांद, तारे, किरन, फूल, शबनम, शफक
आबजू चांदनी
उनकी दिलकश जवानी की तस्वीर में हुश्ने फितरत की हर चीज
काम आ गई
जाम चलने लगे, दिल मचलने लगे...
अंजुमन झूम उठी बज्म लहरा गई

अब लौट कर पीछे मत देखना। पीती चल। जीती चल। नाच। गा। गुनगुना खुद भी मस्त हो, औरों को भी मस्ती से भर।

अंजुमन को झुमा देना है, लहरा देना है। इस पूरी पृथ्वी को मस्ती से भर देना है। वसंत आ सकता है, पुकार देने वाले चाहिए। मैं चाहता हूं, मेरे संन्यासी उस पुकार को देंगे, उस आह्वान को देंगे। इस पूरी पृथ्वी को मयखाना बना डालना है। उससे कम पर हमें राजी नहीं होना है।

आज इतना ही।

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक ३१ जुलाई, १९८०
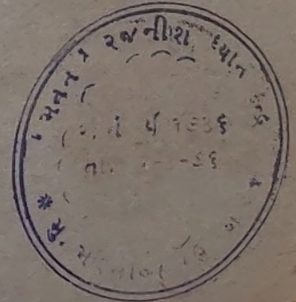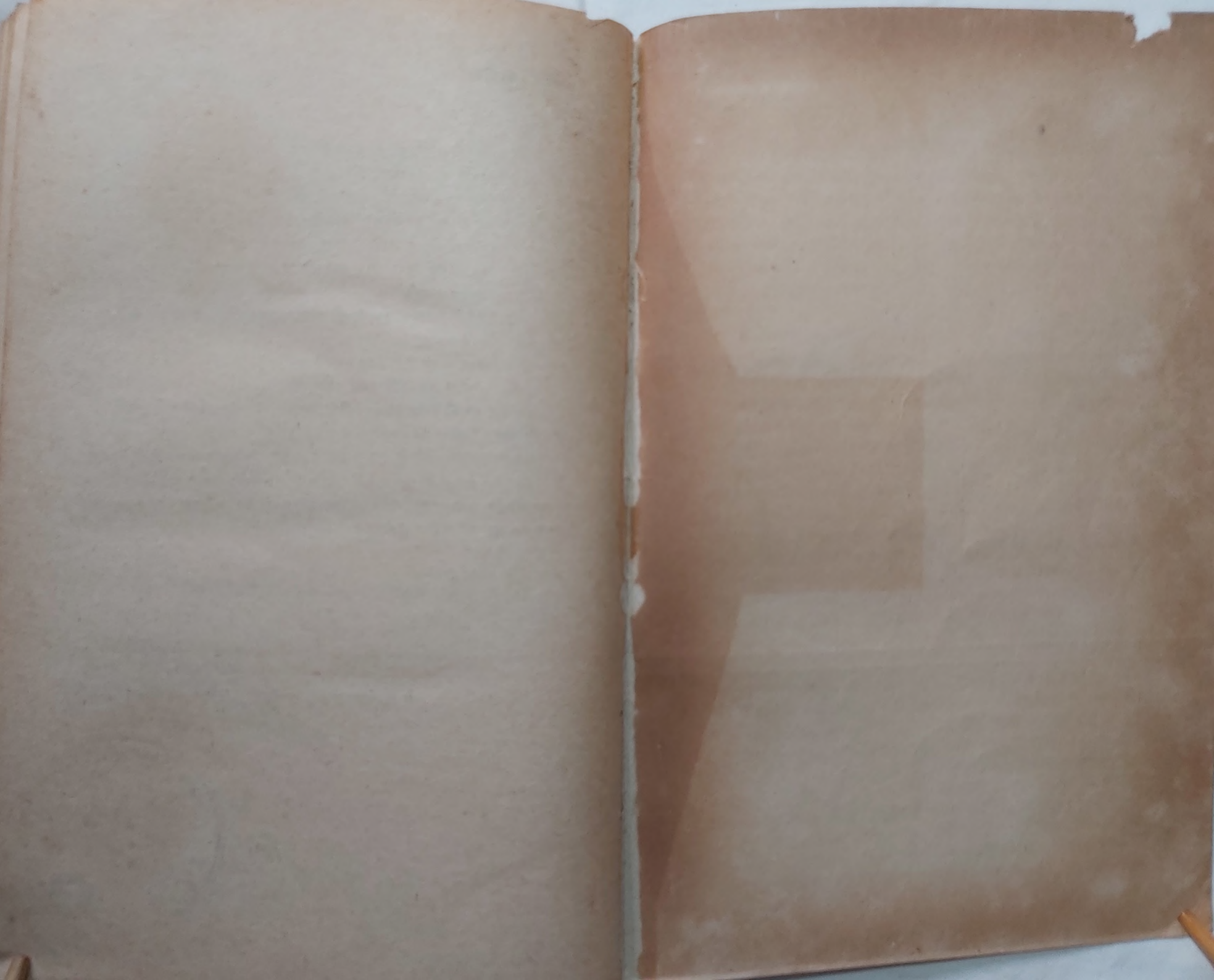
समाधिस्थ स्वर : हरिकथा

सहजो का प्रसिद्ध वचन है :

जो सोवैं तो सुन्न में, जो जागैं हरिनाम।
जो बोलैं तो हरिकथा, भक्ति करैं निहकाम।।

सहजो का यह सूत्र समझो। इस सूत्र में सारी बात आ गयी। जैसे पूरा धर्म आ गया। कुछ बचा नहीं। सारा निचोड़ आ गया—योग का, भक्ति का, ज्ञान का।...

जीवन जब विचारमुक्त होता है, तो व्यक्ति एक पोली बांस की पोंगरी जैसा हो जाता है। जैसे बांसुरी। फिर उससे परमात्मा के स्वर प्रवाहित होने लगते हैं।... जब कोई बिलकुल शून्य होता है, तो फिर जो बोले, वह हरिकथा हो जायेगा।...

'जो सोवैं तो सुन्न में'। समाधि की अवस्था को कहेंगे : शून्य में सो जाना। मगर होशपूर्वक, बोधपूर्वक। ऐसे शून्य से जो फिर जागता है—'जो जागैं हरिनाम'। फिर उस जागरण में उठो तो हरिनाम है, बैठो तो हरिनाम है। बोलो तो, न बोलो तो; चुप रहो तो, गुनगुनाओ तो; कुछ भी करो...।

'जो सोवैं तो सुन्न में, जो जागैं हरिनाम'। ऐसे व्यक्ति की निद्रा समाधि होती है और ऐसे व्यक्ति का जागरण प्रभु-स्मरण होता है। 'जो बोलैं तो हरिकथा'—अगर ऐसा व्यक्ति बोले तो हरिकथा। न बोले, तो भी हरिकथा। उसके पास भी बैठ जाओ, तो हरिकथा। जरूरी नहीं है कि शब्द ही हों; निःशब्द भी हो। सुनने वाला चाहिए। तरंगित होने वाला हृदय चाहिए—तो ऐसे समाधिस्थ व्यक्ति के पास उठने-बैठने में भी हरिकथा हो जायेगी।

—भगवान श्री रजनीश